४११

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास कृत

# विनयपत्रिका

आगरा निवासी

## पण्डित रामेश्वर भट्ट

कृत

सरला टीका सहित

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

१९१७

द्वितीय वार ]



[ मूल्य २॥)

Rs 2/8/-

Printed and published by Apurva Krishna Basu, at the Indian Press, Allahabad

# भूमिका

हिन्दी-भाषा का कोई ऐसा रसिक न होगा कि जिसने हिन्दी-साहित्य-गगन-मण्डल के मार्तण्ड प्रातः-स्मरणीय महात्मा गोस्वामी तुलसीदास का नाम न सुना हो। गुसाँई जी की सर्वाङ्ग-सुन्दरी कविता देश देश में, नगर नगर में, गाँव गाँव में, घर घर में अपनी मनमोहिनी छटा दिखा कर लोगों को चकित और कृतार्थ कर रही है। क्या राजा, क्या रङ्क, सब इसका आदर करते हैं और अपनी अपनी रुचि के अनुसार इसके आनन्द में मग्न होकर अपने को धन्य और जीवन्मुक्त मानते हैं। गुसाँई जी की कविता में ऐसी मोहिनी शक्ति है कि इसका निर्मल यश स्वदेश में ही नहीं किन्तु द्वीपान्तरों में भी छा गया है। इङ्गलैण्ड आदि के निवासी भी इससे मोहित और चकित होकर मुक्त-कण्ठ से इसकी प्रशंसा करते हैं।

रामायण में तो गुसाँई जी ने प्रसङ्गवश कहीं कहीं संक्षिप्त रूप से भक्ति ज्ञान का दिग्दर्शन मात्र ही करा दिया है परन्तु 'विनयपत्रिका' को तो भक्ति और ज्ञान की साक्षात् मूर्ति कहना भी अत्युक्ति न होगा। गुसाँई जीकृत पुस्तकों में यह सर्वोत्तम है। इसकी रचना में उन्होंने अपनी लेखनी का अद्भुत चमत्कार दिखाया है। ज्ञान और भक्ति-विषयक भजनों में वेदान्त के बड़े बड़े गूढ़ रहस्य भरे हैं। कहने को तो यह भाषा है पर कहीं कहीं इसका भाव इतना कठिन है कि उसके समझने में बड़े बड़े वेदान्तियों की बुद्धि चकरा जाती है। वास्तव में विनयपत्रिका से ही गुसाईं जी की विलक्षण बुद्धि का परिचय मिलता है। इसे गुसाँई जी ने किसी विशेष पुस्तक के आधार पर नहीं बनाया, इसके किसी किसी भजन का कोई कोई भाग तो गीता आदि के किसी किसी श्लोक से मिलता है, जिसके प्रमाण में मैंने कहीं कहीं श्लोक दे दिये हैं, बाक़ी इसमें गुसाँई जी ने अपने हृदयङ्गत भक्ति और ज्ञान का चित्र उतार कर सबके सामने धर दिया है। गुसाँई जी का यही उद्देश्य था कि प्राणी किसी प्रकार भवसागर से तर कर मोक्ष के अधिकारी बनें। मोक्ष के साधनों में उन्होंने भक्ति को ही मुख्य माना है। उपास्य उपासक भाव को भुला कर उपास्य को ही सर्वत्र देखना—यही भक्ति का लक्ष्य है। भक्ति नौ प्रकार की है यथाः—

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥"

जब मनुष्य भक्ति के द्वारा अपने इष्टदेव को पहचान लेता है तब वह उसी में लीन हो जाता है। यथा गीतायाम् :—

"भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥"

भक्ति के सब अधिकारी हैं। उसमें जाति पाँति ऊँच नीच का बखेड़ा नहीं है।

"जाति पाँति पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई"

परन्तु भक्ति निष्काम और अनन्य होनी चाहिए, बिना ऐसी भक्ति के विशेष फल नहीं होता। "भगवान् से किसी बात की इच्छा प्रकट नहीं करना निष्काम भक्ति है" और एकाग्रचित्त होकर एक देवता का ही भजन करना अनन्य भक्ति कहाती है। बहुत से देवताओं की शरण जाना भक्ति नहीं कहाती। जो निष्काम और अनन्य भक्ति से भगवान् की सेवा करते हैं उनके सब कार्य भगवान् सिद्ध करते हैं। यथा गीतायाम् :—

"अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥"

परन्तु भक्ति सगुण में ही होती है, निर्गुण में नहीं हो सकती और सगुण के द्वारा निर्गुण की प्राप्ति सुगमता से हो सकती है। इसलिए गुसाँईं जी ने भक्ति को ज्ञान का आधार अर्थात् साधन माना है। देहादि में आत्मबुद्धि का अभाव और सब को आत्म-स्वरूप देखना—ज्ञान का लक्ष्य है। जैसे पात्र, ईंधन, जल इत्यादि के होने पर भी अग्नि के बिना पाक नहीं हो सकता उसी प्रकार जप, तप आदि कर्मों से केवल अन्तःकरण निर्मल हो जाता है परन्तु ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। अन्यान्य कर्मों के फल से तो स्वर्ग नरक भोगने पड़ते हैं पर ज्ञानाग्नि कर्मों को ऐसे नष्ट कर देती है जैसे जलती हुई अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है। यथा गीतायाम् :—

"यथैधांसि समिद्धोग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा। ॥"

भगवान् को भी ज्ञानी बहुत प्यारा है। यथा गीतायाम् :—

"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम् ।"

परन्तु ज्ञान बड़ा कठिन है, जैसा गुसाँईं जी ने कहा है ।

"ज्ञानकै पन्थ कृपाणकै धारा । परत खगेश न लागै बारा ।
जौ निर्बिघ्न पन्थ निर्वहई । सो कैवल्य परम पद लहई ॥"

अनन्य भक्ति और अभेद ज्ञान में कुछ अन्तर नहीं है । यथा :—

ज्ञानहिं भक्तिहिं नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव सम्भव खेदा ।

जैसे ज्ञानी को ब्रह्म से पृथक् कुछ नहीं भासता ऐसे ही भक्त को सब जगत् ईश्वर रूप प्रतीत होता है । जैसा गुसाईं जी ने लिखा है, यथा :—

"सियाराम मय सब जग जानी । करौं प्रणाम जोरि जुग पानी ॥"
पुनि—"नाम चतुर्गुण पञ्चयुत द्विगुणित वसुहृत शेष ।
रम्यो राम सब जगत में तुलसी यह मतिलेख ॥"

यहाँ जीवन्मुक्ति का आनन्द भोग कर स्वस्वरूप में लय हो जाना ही सब ज्ञान और भक्ति का निचोड़ है ।

यद्यपि गुसाँईं जी ने किसी देवता की निन्दा नहीं की और ग्रन्थारम्भ में गणेश सरस्वती की वन्दना की पुरानी परिपाटी भी नहीं छोड़ी परन्तु वास्तव में तो वे रामजी के ही निष्काम और अनन्य भक्त थे । जैसा उन्होंने लिखा है:—

"नाहिने नाथ अवलम्ब मोहि आन की । कर्म मन वचन प्रण सत्य करुणानिधे एक गति राम भवदीय पदत्राण की"

उनका यह आन्तरिक भाव उनकी पुस्तकों से स्पष्ट है । राम-मन्त्र पर उनकी बड़ी श्रद्धा थी और यथार्थ में राम-नाम बड़ा उत्कृष्ट मन्त्र है । यह नाम अनादि है । रकार, मकार इन दो अक्षरों का एक साथ उच्चारण करने से अन्तःकरण में ऐसी अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है कि जिससे तीन प्रकार के सन्ताप दूर होकर चित्त शांत और

निर्मल हो जाता है। यद्यपि भगवान् के नारायण आदि अनेक नाम हैं तथापि राम-नाम सब का आत्मरूप है जैसा शिवजी ने पार्वतीजी से कहा है। यथा :—

"परमेश्वरनामानि सन्त्यनेकानि पार्वति !।
परन्तु रामनामेदं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥१॥
नारायणादिनामानि कीर्तितानि बहून्यपि।
आत्मा तेषां च सर्वेषां रामनामप्रकाशकः ॥२॥"

इसलिए गुसाँईंजी ने राम-नाम को ही अपना मूलसूत्र ठहरा कर मुमुक्षु लोगों के लिए मोक्ष का एक बड़ा सीधा मार्ग बता दिया है।

गुसाँईंजी की विनयपत्रिका जैसी सुन्दर बनी है वैसा उसका प्रचार नहीं हुआ, क्योंकि एक तो इसमें अधिकतर वेदान्त विषय भरा है, दूसरे पूर्व के स्तुति-भाग में सन्धियों का संघट्ट और समासों का ठट्ट ऐसा जुड़ा है कि साधारण मनुष्य को पढ़ना भी कठिन पड़ता है। इसमें उपमा, रूपक आदि अलङ्कार, अप्रचलित हिन्दी और प्राकृत शब्दों के सिवाय अरबी, फ़ारसी के शब्द भी जहाँ तहाँ अपनी छटा दिखा रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि गुसाँईंजी सरीखे महातमा भी अरबी, फ़ारसी में दख़ल रखते थे। अरबी* फ़ारसी† के शब्द जो इस विनयपत्रिका में दीख पड़ते हैं वे पाठकों के संदर्शनार्थ टिप्पणी में लिखे जाते हैं।

विनयपत्रिका की दो तीन टीकायें प्रस्तुत होने पर भी इस टीका के लिखने का सौभाग्य मुझे क्योंकर मिला इसमें मूलकारण एक अपरिचित, हिन्दी भाषा के परमतत्त्वज्ञ और लण्डन मिशन सोसाइटी के अध्यक्ष पादरी एड्विन् ग्रीफ़्स साहब की गुणग्राहकता है। पादरी साहब ने मेरे पास जो पत्र भेज कर मुझे परम अनुगृहीत किया था उस पत्र की प्रति तथा उसका अनुवाद पाठकों के विनोदार्थ यहाँ देता हूँ।

---

* अरबी—लायक़, साहिब, वसीला, सदी, तकिया, ग़रीब, ग़ुलाम, फ़हम, कबूल, सूम, मुक़ाम, गनी, दिवान, शतरञ्ज, मालूम, सई, कुल, ख़ास, खलल, मनशा, हाल, ख़याल, ख़ास, मिसकीन इत्यादि।

† फ़ारसी—निशानी, इयार, निवाज, निशान, दिरमानी, शरम, दाद, पील, बाज़ीगर, कूँच, दरबार, जहान, ज़ोर, बुलन्द, गुल इत्यादि।

FROM

REV. EDWIN GREAVES.

LONDON MISSION,
BENARES, U. P.
*November 9th, 1908.*

DEAR SIR,

Has it ever occurred to you to get out a paraphrase of Tulsi Das's "Vinaya Patrika" on the lines on which you have carried out your work on his Ramayan? I cannot but think that it would prove a most valuable book for Hindi students.

I regard your work on the Ramayan as a *very* valuable book, it gives just what a student needs, *viz.*, the simple meaning of what Tulsi Das wrote. Most commentators run off into windy disquisitions about sundry and possible (and impossible) meaning, and leave the student quite in the dark as to what the simple text really stands for, grammatically and etymologically.

Excuse the liberty I am taking in thus writing to you but I am deeply interested in Hindi, and believe that if you would get out and publish such a book on the "Vinaya Patrika" as you have on the Ramayan, you would reap the thanks of many who, like myself, greatly value Tulsi Das's poetry, but find it by no means easy to understand it, the "Vinaya Patrika" seems far more difficult than the Ramayan, and so is far less well known, though Dr. Grierson has, I believe, told me that he regards it as Tulsi Das's very best work.

I am,
Dear Sir,
Yours Sincerely,
(Sd.) EDWIN GREAVES.

लण्डन मिशन, बनारस, यू, पी,
ता० ९ नवम्बर १९०८

प्रिय महाशय !

क्या आपने कभी तुलसीदास की विनयपत्रिका की भाषा उसी रीति पर बनाने का विचार किया है कि जिस पर आपने उनकी रामायण की भाषा बनाई है ? मैं यह विचार किये बिना नहीं रह सकता कि हिन्दी जिज्ञासुओं के लिए यह एक अत्यन्त

अमूल्य पुस्तक होगी। रामायण पर जो आपने टीका की है उसे मैं बहुतही अनमोल समझता हूँ। एक जिज्ञासु को जितनी बात की आवश्यकता है ठीक ठीक उतना ही यह प्रकट करती है अर्थात् जो तुलसीदासजी ने लिखा है उसका सीधा सीधा अर्थ। बहुत से टीकाकार नाना प्रकार के और सम्भव (तथा असम्भव) अर्थों के विचार में पड़ जाते हैं और व्याकरण और शब्दव्युत्पत्ति के अनुसार सीधे मूल का जो ठीक ठीक अर्थ है उसके समझने में जिज्ञासु को महाघोर अन्धकार में छोड़ देते हैं।

इस भाँति आपको जो मैं स्वतन्त्रतापूर्वक लिख रहा हूँ उसे आप क्षमा करें। परन्तु मैं हिन्दी का बड़ा रसिक हूँ और मेरा विश्वास है कि जैसी आपने रामायण पर टीका की है ऐसी ही एक पुस्तक विनयपत्रिका की बना कर जो आप छपवावें तो आपको मेरे समान बहुत से मनुष्य धन्यवाद देंगे कि जो तुलसीदासजी की कविता को बहुत गौरवान्वित समझते हैं किन्तु उसका समझना किसी भाँति भी सहज नहीं देखते। विनयपत्रिका रामायण की अपेक्षा बहुत कठिन दीखती है इसी कारण यह बहुत कम प्रसिद्ध है। यद्यपि मुझे विश्वास है कि डाक्टर ग्रियर्सन ने मुझसे कहा था कि वे इसको तुलसीदास का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ समझते हैं।

आपका हितैषी

(ह०) एड्विन ग्रीफ़्स

इस पत्र से स्पष्ट है कि हमारे यहाँ की उत्तम उत्तम पुस्तकों पर एक विदेशी और अन्य धर्मावलम्बी सज्जन की कैसी श्रद्धा है। पादरी महाशय कैसे गुणग्राहक और हिन्दी भाषा के प्रेमी हैं इस बात का साक्ष्य उनके पत्र का शब्द शब्द दे रहा है। यदि पादरी महाशय इस विनयपत्रिका की टीका की चर्चा न उठाते तो मुझे इसको हाथ में लेने का अवसर भी कदाचित् न आता। इसलिए पादरी साहब ही इस कार्य में प्रथम धन्यवाद के पात्र हैं। आप बहुत वर्षों से नागरी-प्रचारिणी सभा के सभासद् हैं और तन, मन, धन से सदा उसकी उन्नति में दत्तचित्त रहते हैं।

विनयपत्रिका की टीका लिखते समय दो तीन पुस्तकें मेरे दृष्टिगोचर हुईं परन्तु मेरा चित्त उनकी समालोचना करने की गवाही नहीं देता कारण जिन भक्तजनों ने परिश्रम कर अपना अमूल्य समय रामचर्चा में लगाया उनकी पुस्तकों की समालोचना करना मुझे किसी प्रकार अभिमत नहीं है। क्योंकि मुझे अपनी टीका पर ही भरोसा नहीं है कि लोग इसे न जाने कैसा समझें और क्या कहें। इसका यश अपयश स्वर्ग में विधाता के और यहाँ पाठकों के हाथ है। मेरी अल्पबुद्धि में पुस्तक की समालोचना

करने से नई टीका बना कर अपने अन्तःकरण के विचारों को सर्वसाधारण के सामने धरना बहुत अच्छा है क्योंकि समालोचकों के गूढ़ विचार पत्रों में छप कर और थोड़े से पठित लोगों के एक बार दृष्टिगोचर होकर रह जाते हैं और प्रत्येक मनुष्य के भिन्न भिन्न विचार होने के कारण एक व्यक्ति की की हुई समालोचना को सर्वसाधारण स्वीकार भी नहीं करते, इसलिए हिन्दी-भाषा के साहित्यसेवी लोगों से सविनय निवेदन करता हूँ कि समय समय पर नवीन नवीन टीकायें बनावें कि जिससे रामयश अधिक फैले और इसके नये नये गूढ़तत्त्वरूपी सुन्दर मणि स्पष्ट दीख पड़ें क्योंकि सुवर्ण जितना जितना तपाया जाय उतना ही उतना उत्तम निकलता है। मेरा अभिमत किसी टीकाकार पर कटाक्ष करने का नहीं है, इसलिए सब टीकाकारों को हार्दिक धन्यवाद देकर पुस्तकों की उत्तमता को पाठकों की रुचि पर छोड़ता हूँ, जो जिसको रुचे उसके लिए वही उत्तम है। एक कवि ने कहा है:—

"मीठी मीठी वस्तु हैं मीठी जाकी चाह।
अमली मिसरी छाँड़ कै आफू खात सराह॥"

प्रिय पाठकगण! आज-कल एक बात और स्पष्ट दीख रही है कि समय में परिवर्त्तन हुआ है, हिन्दीसाहित्य का सूर्य, जो बदली में हो रहा था, अब चमका है। शुद्ध गद्य, पद्य लेख में एक होनहार उन्नति हो रही है। बड़े बड़े बी० ए०, एम० ए० नवशिक्षित लोगों ने भी इस कार्य में भाग लिया है। गुण, अवगुण की परीक्षा होना आरम्भ हो गया है। ऐसे अवसर पर मुझ सरीखे अल्पज्ञ को विनयपत्रिका के छन्दों की जटिलता, गंभीरता और अर्थगौरवता देख कर भी लेखनी चलाने का साहस करना केवल उपहास कराना है? आज कल पुरानी शैली के लेखकों के पुनः संस्कार का समय है, इतना मैं अच्छी भाँति जानता हूँ परन्तु पाठक सोच सकते हैं कि मैंने किया ही क्या है? यह कोई कविता या सुन्दर लेख की बानगी तो है नहीं कि कोई सुलेखक इसमें शुद्ध भाषा का रंग-रूप टटोले और मुझे भी अपने लेख का अधिक भय हो, यह तो केवल रामचर्चा है, सीधी सीधी रीति से अपने प्यारे रामभक्तों को अपनी तुच्छ भाषा में केवल भजनों का अक्षरार्थ समझा देने का यत्न कर देना—इतना ही तो मेरा अभिमत है।

इस भाषा-टीका के बनाने में वे प्रचलित और सरल शब्द दिये गये हैं कि जिनको सर्वसाधारण समझ सकें और अनुवाद ऐसा अविकल करने का यत्न किया गया है कि मूल से अर्थ बराबर मिलता चला जाय, तिस पर भी जो कहीं कठिन शब्द जान पड़े

हैं वे अर्थ-सहित मूलार्थ के नीचे दे दिये गये हैं और अंत में गूढ़ार्थ कोश लगा दिया गया है। टीका में कहीं उर्दू-फ़ारसी शब्द आ गया हो तो आश्चर्य नहीं, कारण मूल में भी ऐसे शब्दों की कमी नहीं है।

जो शब्द समासान्त हैं उनका समास-विग्रह न करके सन्धि-विभाग कर दिया है कि जिससे हर एक शब्द अलग अलग दीख पड़े और अर्थ समझने में सुगमता हो।

रामायण, गीता आदि से कहीं कहीं प्रसंगानुकूल श्लोक और प्रसंगोत्थित इतिहास भी लिख दिये गये हैं।

जिन लोगों ने रामायण, भागवतादि सुन रक्खी हैं उन्हें तो प्रह्लाद आदि भक्तों की कथा विदित ही हैं पर जो इन कथाओं से अनभिज्ञ हैं उनके लिए अंत में एक छोटा सा भक्त-मालसार लगा दिया है।

पुस्तक के प्रूफ़ जहाँ तक हो सका शुद्ध किये गये हैं तिस पर भी अशुद्धियाँ रह जाना संभव है। आशा है कि छापे की ऐसी त्रुटियों को पाठक क्षमा कर मुझे दोष न देंगे।

प्रिय पाठकगण! विनयपत्रिका के छन्दों का अर्थ जैसा गूढ़ और गम्भीर है सो विदित ही है और जैसा मैं हूँ सो भी सब प्रकट है कि पण्डित कहाकर वृथा ही पण्डित शब्द को निरर्थक और लज्जित कर रहा हूँ, परन्तु राम-नाम का बड़ा माहात्म्य है और मुझे सिवाय राम-नाम के भरोसे के कुछ विद्याबल नहीं है, इसलिए भगवान् के उस नाम को लेकर (कि जिसकी कृपा से प्राणी भवसागर से पार हो जाते हैं और जिसकी कृपा से पाषाण तक जल में तैरने लगे थे) इस टीका को आपके समर्पण करता हूँ। आप इसे सहर्ष स्वीकार कीजिए और समझ लीजिए कि छोटी से छोटी वस्तु भी जो भेंट की जाती है वह अमूल्य हो जाती है। सुदामा के तंदुल और शबरी के बेरों में क्या ऐसा अनोखा स्वाद था जिन्हें भगवान् ने रीझ कर खाया और बड़ाई के पुल बाँध दिये। छोटे बड़ों के सहारे सदा से प्रतिष्ठा पाते आये हैं। यथाः—

> "कीटोपि सुमनःसंगादारोहति सतां शिरः।
> अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितम् ॥"

ऐसा समझ कर और पुस्तक में राम-नाम का महत्त्व विचार कर भक्ति पक्ष से यदि आप लोग इसका अवलोकन करेंगे तो मेरा परिश्रम सफल होगा और मैं अपने को बड़ा कृत-कृत्य और भाग्यशाली समझूँगा।

अब उपसंहार में मैं श्रीयुत बाबू चिन्तामणि घोष महाशय को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने इस विनयपत्रिका को सटीक छाप कर पादरी एड्विन् ग्रीफ़्स साहब का और मेरा मनोरथ पूर्ण किया है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी उनको दीर्घायु करें।

फाल्गुन शुक्ल १३ गुरौ
संवत् १९६९

रामचरणकमलानुरागी
रामेश्वर भट्ट

# ग्रन्थ-प्रबन्ध

विघनहरन तारनतरन मंगल वरनश्रमन्द ।
सिद्धिकरन असरनसरन द्रवहु सो गौरीनन्द ॥ १ ॥
बुधिबानीदानी जगत जानी मानी माइ ।
सरसानी सुख संपदा बानी होहु सहाइ ॥ २ ॥
सीसगंग अरधंगतिय भूषनभूतिभुजंग ।
उर उमंग वर दैन की वन्दौं वयरि अनंग ॥ ३ ॥
हितवाली आलीनिकट जगप्रातिपाली जोइ ।
तुरत निहाली करत जन वंदौं काली सोइ ॥४॥
दिनकरकुलपावनकरन हरन सकल भवफंद ।
सघनस्यामघनवरनतन द्रवहु सो दशरथनंद ॥५॥
सीसमुकट कटिपीतपट निपट अटपटीचाल ।
सो झटपट मो मन वसो नटवर श्रीनँदलाल ॥६॥
कनकभूधराकारतनु लूम घूमि रहि छाइ ।
रामभक्त मारुततनय बंदौं तिहि जस गाइ ॥७॥
भक्त शिरोमणि राम तजि किय न काहु की आस ।
कवितानभमंडलमिहिर वंदौं तुलसीदास ॥८॥
तरनि-तनूजा तटनि तट निकट निपट सुखधाम ।
वसत सरस चहुँ ओर वर नगर "आगरा" नाम ॥९॥
नागरकुल नागर सकल गुनआगर निरद्वंद ।
तहाँ वसत हे मोदयुत बुधवर बालमुकुन्द ॥१०॥

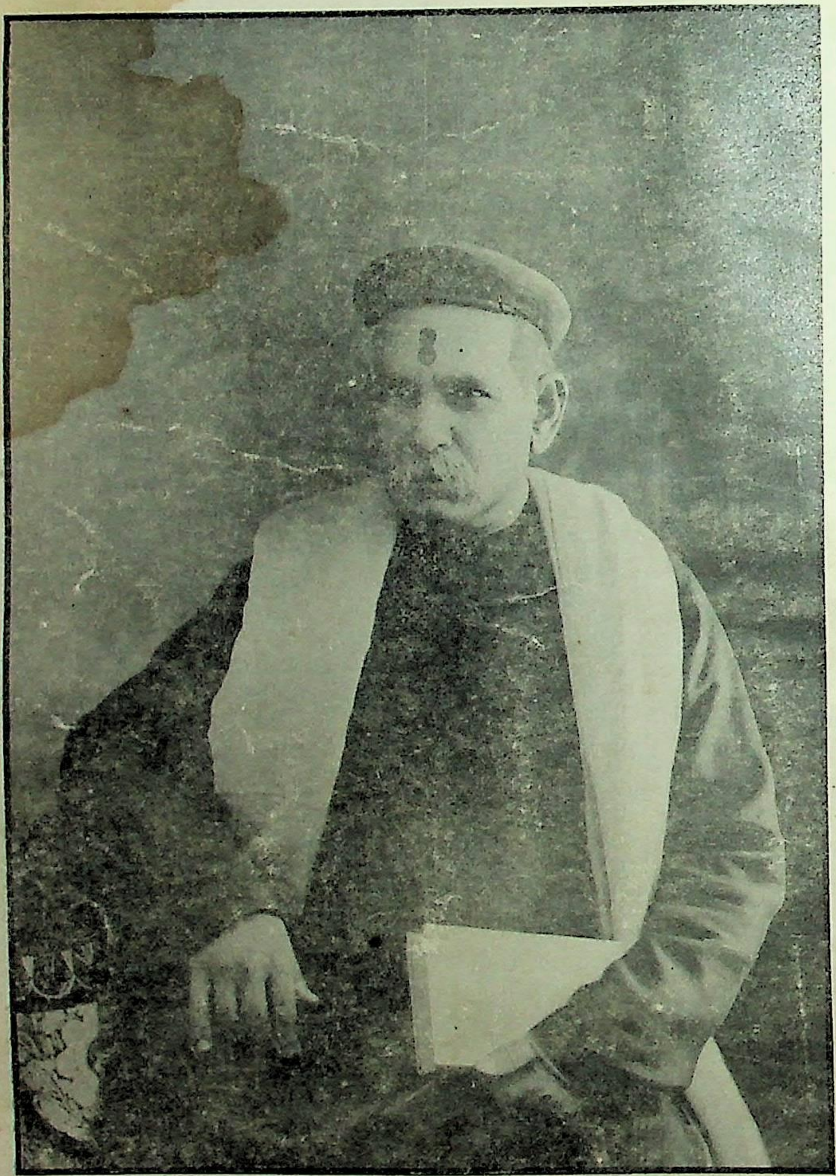
राजकीय कालेज महँ राज जीविका पाय ।
परिडत संस्कृत के प्रथम सो हे सरल सुभाय ॥११॥
रामेश्वर तिनकर तनय अज्ञानी मतिमंद ।
विनयतिलक किय जगत हित सुमिरि हृदय रघुचंद ॥१२॥
आये यूरप देस तें साहिब सुघर अनेक ।
निखिलनागरीरसरसिक गनौं ग्रीफ़्स कहँ एक ॥१३॥
विनयपत्रिकातिलक की तिनु अभिलासा कीन ।
तिहिं हित मम प्रति लेख लिखि अमित बड़ाई दीन ॥१४॥
तासन सासन पाय करि धरि हरि पद कर ध्यान ।
कियउ तिलक अक्षरन कर अरथ कोस परमान ॥१५॥
जिते ग्रन्थ तुलसी रचे इकते इक सुखदानि ।
निज चतुराई काढ़ि सब धरी विनय महँ आनि ॥१६॥
ज्ञान भगति वैराग की भरी विनय मृदुवानि ।
तुलसी निरगुन सगुन की रची अनूपम खानि ॥१७॥
निरगुन सरगुन रूप कौ यह है निडर निकेत ।
नेम प्रेम सों पढ़त छन मन वांछित फल देत ॥१८॥
तुलसी कविता सामुहैं होय अन्यकृत हास ।
नीकीहू फीकी लगै वेदव्यास की भास ॥१९॥
विनयपत्रिका कौ करैं जो प्रभात नित पाठ ।
चार पदारथ कर लहैं भरैं सदन सिधि आठ ॥२०॥
हुओ न है ह्वै है नहीं कहूँ सत्य करि आन ।
सेवक आन न राम कौ तुलसीदास समान ॥२१॥

सुजन सिरोमनि सरलचित श्रीचिन्तामणि घोष ।
विनयपत्रिका छापि दिय भक्त जनन सन्तोष ॥२२॥
भूल चूक जहँ होय तहँ सोधि सुजन जस लेहु ।
करौं विनय कर जोरि जुग दोस दीठ जनि देहु ॥२३॥
रस ऋतु निधि विधु बरन महँ रामचरन चित लाइ ।
संपूरन टीका करी हरि भगतन सुखदाइ ॥२४॥

॥ श्रीः ॥

# श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासकृत विनयपत्रिका के

## भजनों का सूचीपत्र ।



आगरानिवासी
पण्डित रामेश्वर भट्ट

इंडियन प्रेस, प्रयाग।



परम पूजनीय रामभक्तशिरोमणि
श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत

# विनयपत्रिका

राग बिलावल।

गणेशस्तुति

[ १ ]

गाइये गणपति जगवन्दन। संकर सुवन भवानी-नन्दन ॥१॥
सिद्धिसदन गजवदन विनायक। कृपासिंधु सुन्दर सब लायक॥२॥
मोदकप्रिय मुदमंगलदाता। विद्यावारिधि बुद्धिविधाता ॥३॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥४॥

संसार जिनकी वन्दना करता ऐसे गणेशजी का भजन करो। वह शिव-पार्वती के पुत्र और उनको आनन्द देने वाले हैं॥ १॥ सिद्धियों के स्थान (अर्थात् अष्ट सिद्धियों के देने वाले) जिनका मुख हाथी का सा है और जो विघ्नों के स्वामी हैं (अर्थात् जो उनका ध्यान करता है उसके यहाँ विघ्न नहीं होने देते)। कृपा के समुद्र (अर्थात् सब पर भारी कृपा करने वाले), सुन्दर (अर्थात् जिनका हर एक अंग

बड़ा मनोहर है ) और जो सब भाँति लायक हैं ( अर्थात् सुन्दर गुणों से युक्त हैं ) ॥ २ ॥ जिनको लड्डू प्यारा है और जो आनन्द-मङ्गल के दाता और विद्या के समुद्र हैं और बुद्धि के ( सुधारने के लिए दूसरे ) विधाता हैं ( अर्थात् चाहे जैसी मोटी बुद्धि हो उसे सुन्दर निर्मल कर देते हैं ) ॥ ३ ॥ ( ऐसे गणेशजी से ) मैं तुलसीदास हाथ जोड़ कर माँगता हूँ कि मेरे हृदय में सीतारामजी निवास करें ( मुझे ऋद्धि, सिद्धि, विद्या, बुद्धि, आदि कुछ नहीं चाहिए ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—गणपति = शिवजी के गणों के स्वामी। सुवन = पुत्र। ( शङ्कर और भवानी के बीच में सुवन शब्द आया है इसलिए देहलीदीपक न्याय से अर्थात् जैसे देहली पर दिया रखने से भीतर बाहर दोनों ओर चाँदना हो जाता है ऐसे ही–शिव पारवती के पुत्र ऐसा अर्थ हुआ नहीं तो सुवन और नन्दन दोनों शब्द एकार्थी होने से पुनरुक्ति दोष आता है)। नन्दन = प्रसन्न करने वाले। सदन = घर। वदन = मुख। वारिधि = समुद्र। अष्टसिद्धि = १ अणिमा, २ महिमा, ३ गरिमा, ४ लघिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य, ७ ईशित्व, ८ वशित्व।

## सूर्य-स्तुति।

[ २ ]

दीनदयालु दिवाकर देवा। कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥१॥
हिमतमकरिकेहरि करमाली। दहन दोषदुखदुरितरुजाली ॥२॥
कोक कोकनद लोक प्रकासी। तेज-प्रताप-रूप-रस-रासी ॥३॥
सारथि पंगु दिव्य रथ गामी। हरिसंकरविधिमूरति स्वामी ॥४॥
वेद पुराण प्रगट जस जागै। तुलसी रामभक्ति वर माँगै ॥५॥

हे दीनों पर दया करने वाले सूर्यदेव! मुनि, मनुष्य, देवता और दैत्य सब तुम्हारी सेवा करते हैं ( क्योंकि जिस लोक में प्रकाश न हो उसके ही प्राणी दुख पाते हैं ) ॥ १ ॥ पाला और अंधकार-रूपी हाथियों के ( मारने के लिए तुम ) सिंह-रूप हो ( अर्थात् जैसे सिंह अपने नख और दाँतों से हाथी का नाश कर देता है ऐसे ही तुम अपनी किरणों से पाले और अंधकार को दूर कर देते हो ), तुम किरणों की माला धारण किये हो और अपराध, दुःख, पाप और रोग इनके समूह को नाश करने वाले हो ॥ २ ॥ चकवा चकवी, कमल और संसार इनका प्रकाश करने वाले हो ( अर्थात् जब तुम्हारा प्रकाश होता है तब चकवा चकवी का विरह दूर होता है, कमल खिलते हैं और संसार अपने काम धन्धे में लगता है ), तुम तेज, प्रताप, रूप और रस की राशि हो ( अर्थात् तुममें तेज ऐसा है कि जिसे कोई सह न सके ; प्रताप ऐसा कि जिससे

अंधकार नाश हो जाय; रूप ऐसा कि जिसके बिना नेत्र काम नहीं दे सकते और रस ऐसा कि जहाँ तुम्हारी किरणें न पड़ें वहाँ अन्न फल आदि कुछ उत्पन्न न हों ) ॥ ३ ॥ तुम्हारा लूला (१) सारथि है और तुम दिव्यरथ (२) पर जानेवाले हो । हे स्वामी! तुम साक्षात् ब्रह्मा (३), विष्णु और महेश हो ( अर्थात् उदय में ब्रह्मा, मध्याह्न में शिव और अस्त समय विष्णु रूप हो ) ॥ ४ ॥ तुम्हारा यश वेदों और पुराणों में प्रकट है । तुम से तुलसीदास रामजी की भक्ति का वरदान माँगता है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—दिवाकर = ( जो दिन को करे ) सूर्य । हिम = पाला । तम = अँधेरा । करि = हाथी । दहन = अग्नि । दुरित = पाप । रुज = रोग । अली = पंक्ति, कतार । कोक = चकवा-चकवी । कोकनद = कमल ।

## शिव-स्तुति ।

### [ ३ ]

को जाँचिये संभु तजि आन ।
दीन-दयालु भक्त-आरत-हर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥१॥
कालकूट-ज्वर-जरतसुरासुर, निजपन लागि कीन्ह विषपान ।
दारुन दनुज जगत दुखदायक, मार्‍यौ त्रिपुर एकही बान ॥२॥
जो गति अगम महामुनिदुर्लभ, कहत सन्त श्रुति सकल पुरान ।
सो गति मरनकाल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान ॥३॥
सेवत सुलभ उदार कल्पतरु, पारवती-पति परमसुजान ।
देहु कामरिपु रामचरनरति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥४॥

हे शिवजी! तुम्हें छोड़ कर और किससे भीख माँगनी चाहिए । तुम ग़रीबों पर दयालु, भक्तों के दुःखनाशक, भगवान् और सब भाँति से समर्थ हो ( अर्थात् सब कुछ कर सकते हो ) ॥ १ ॥ (ऊपर कही हुई बात को अब प्रमाण से पुष्ट से करते हैं कि

---

(१) पंगु सारथि रखने से तुम्हारी दीन-दयालुता प्रकट है ।

(२) रथ का दिव्यपन यही है कि उसका लूला तो सारथि और उसमें एक पहिया, तिस पर भी एक पल में अनेक योजन जाता है ।

(३) जैसा भविष्यपुराण में कहा है—"उदये ब्रह्मरूपस्तु मध्याह्ने तु महेश्वरः ।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिस्तु दिवाकरः ॥"

समुद्र मथते समय जब ) कालकूट (१) विष निकला और उसके ताप से सब देवता और दैत्य जलने लगे तब ( सबको दुखी देख और दीनदयालुता का ) अपना प्रण रखने के लिए तुमने उस विष को पी लिया । ( फिर भक्तों का दुःख नाश करने में कैसे कि ) जब महा दुष्ट दनु का पुत्र ( त्रिपुर ) संसार को दुखदायी हुआ (और उससे घबरा कर देवता तुम्हारी शरण गये ) तब तुमने उस त्रिपुर को एकही बाण से मार दिया ॥२॥ ( फिर समर्थ कैसे कि ) जिस कठिन गति अर्थात् मुक्ति को सन्त, वेद और सब पुराण बड़े बड़े मुनियों को भी दुर्लभ बताते हैं उसी गति (मुक्ति) को हे सदाशिव ! तुम मरते समय (राम नाम के उपदेश से ) अपनी ( काशी ) पुरी में सब ( नर, कीट, पतंग आदि ) को एक सी देते हो ( अर्थात् जो यहाँ मरता है उसकी मुक्ति (२) हो जाती है—धर्मी अधर्मी का विचार नहीं है ) ॥ ३ ॥ सेवा करने से बड़े सहज में मिलने वाले हो, अर्थात् जल का लोटा और आक धतूरा चढ़ाया कि प्रसन्न हुए ) और दानी ( कैसे कि ) कल्प वृक्ष के समान हो ( जो माँगा जाय सो मिले ), तुम पार्वती के पति और बड़े भारी ज्ञाता ( अर्थात् घट घट की जाननेवाले हो इसलिए ) हे कामदेव को भस्म करनेवाले शिव जी ! मुझ तुलसीदास को रामजी के चरणों की भक्ति दो; क्योंकि तुम दया के स्थान हो ( अर्थात् तुम में दया ही दया भर रही है ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—आरति = दुख । दारुन = कठिन । स्रुति = वेद । उदार = दानी । परम = बहुत । भगवान् = छः ऐश्वर्य से युक्त । यथा—श्री ऐश्वर्य विराग अरु मोक्ष धर्म यश ज्ञान । ये षड् भग की खान जो ताहि कहत भगवान ।

## राग धनाश्री ।

[ ४ ]

**दानी कहुँ संकर सम नाहीं ।**
**दीन-दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं ॥ १ ॥**

---

(१) जब विष्णु भगवान् ने कच्छावतार लेकर समुद्र मथा तब उसमें से १४ रत्न निकले । उनको तो अन्य देवताओं ने बाँट लिया पर जब विष निकला और उसकी उष्णता से देवता जलने लगे तब हाहाकार कर पुकारे कि हे शङ्कर ! हमारी रक्षा करो नहीं तो हम भस्म हुए जाते हैं । निदान शिवजी ने दया विचार राम का नाम ले उस विष को पी लिया कि जो कंठ में पहुँचते ही राम की कृपा से अमृत हो गया ।

(२) अध्यात्मरामायण में शिवजी ने रामचन्द्रजी से कहा है—"अहो भवन्नाम जपन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या । मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम ॥ १ ॥ अर्थात् हे राम ! मैं आपका नाम जपता हुआ पार्वतीजी सहित काशी में रहता हूँ और मरते हुए प्राणी को मुक्ति के लिए तुम्हारे नाम का उपदेश करता हूँ ।

मारिकै मार थप्यो जग में, जाकी प्रथम रेख भट माहीं ।
ता ठाकुर कौ रीझि निवाजिबौ, कह्यौ क्यों परत मोपाहीं ॥२॥
जोग कोटि करि जो गति हरि सों, मुनि माँगत सकुचाहीं ।
वेदविदित तेहि पद पुरारिपुर, कीट पतङ्ग समाहीं ॥ ३ ॥
ईस उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाहीं ।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं ॥ ४ ॥

शिवजी के समान कोई दानी नहीं है । जो ग़रीबों पर दया करनेवाले हैं, जिनको देना ही देना अच्छा लगता है और माँगनेवाले सदा सुहाते हैं ॥१॥ जिसकी संसार के योधाओं में पहली गिनती थी ऐसे कामदेव को ( पहले अपनी समाधि छुड़ाने पर तो ) भस्म कर दिया ( पर जब रति के विलाप करने पर दया आई तब फिर) उसे रहने दिया, सो उस स्वामी का रीझ कर कृपा करना मुझसे कैसे पूरा पूरा कहा जा सकता है ॥ २ ॥ ( क्योंकि ) मुनीश्वर करोड़ों योग कर जिस गति को भगवान् से माँगने में सकुचाते हैं ( कि हम कैसे माँगें ) उसी पद (मुक्ति) को (कैसा सुलभ कर रक्खा है कि) काशी के कीट-पतंग तक उस पद में समा जाते हैं ( अर्थात् सबकी मुक्ति हो जाती है ) यह बात वेद में प्रकट है। ( यथा काश्यां मरणान्मुक्तिः ) ॥ ३ ॥ ऐसे दानी पार्वती-पति शिवजी को छोड़ कर जो लोग दूसरी जगह माँगने जाते हैं (अर्थात् और देवताओं की सेवा करते हैं) उन मूर्ख मँगताओं का ( माँगते माँगते ) कभी पेट नहीं भरेगा ( अर्थात् वे सदा भूखे ही बने रहेंगे ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—मार = कामदेव । भट = योधा । पुरारि पुर = पुरदैत्य के शत्रु अर्थात् शिवजी का पुर ( काशी ) । माँगने = भिखारी ॥

[ ५ ]

बावरौ रावरौ नाह भवानी ।
दानि बड़ो दिन देत दये बिन, वेद बड़ाई भानी ॥ १ ॥
निज घर की वर बात विलोकहु, हौ तुम परमसयानी ।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्रीसारदा सिहानी ॥ २ ॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी ।
तिन्ह रंकनको नाक सँवारत, हौं आयौ नकबानी ॥ ३ ॥

दुखी दीनता दुखियन के दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि, भीख भली मैं जानी ॥ ४ ॥
प्रेम प्रसंसा विनय व्यंगजुत, सुनि विधि की बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगतमातु मुसुकानी ॥ ५ ॥

एक समय ब्रह्माजी ने देखा कि शिवजी तो थोड़ी सी सेवा से प्रसन्न हो बिना विचारे हर किसी को संपत्ति दे देते हैं इससे हमने जो कर्मानुसार ललाट पर लिखा है वह वृथा हो जाता है और हमारी बात में बट्टा लगता है। यह सोच कर वह कैलास पर्वत पर गये कि जहाँ शिव-पार्वती आनन्द में मग्न बैठे थे और पार्वतीजी से बोले कि:—

हे पार्वतीजी! तुम्हारा पति बावला है, क्योंकि वह बड़ा दानी है बिना दिये भी नित्य देता है (भाव—जिसने कभी कुछ दान नहीं किया उसे भी बराबर देता है) सो इसने वेद की मर्यादा को भी भान डाला अर्थात् उसे तोड़ दिया (क्योंकि वेद में ऐसा लिखा है कि पूर्वजन्म में जिसने दिया है उसे मिलता है पर जिसने नहीं दिया उस पर भी यह भोलानाथ प्रसन्न होकर उसे कठिन से कठिन वरदान और धन-धान्यादि दे देता है) ॥ १ ॥ (फिर वेद की मर्यादा तो दूर रही) तुमतो आपही बड़ी चतुर हो, अपने घर की सुन्दर बात को ही देखो (रावण और बाणासुर आदि को तो वह सम्पत्ति दे दी है कि जो इन्द्र आदि देवताओं को भी दुर्लभ है और अपने घर में भूँजी भाँग नहीं है। धतूरे और मसान की राख के ढेर लगा रक्खे हैं इससे बढ़ कर, और क्या बावला होगा)। इस शिव की दी हुई सम्पत्ति को देख कर लक्ष्मी और सरस्वती भी तुम्हारी सराहना करती हैं (अर्थात् व्यंग भाव से हँसी उड़ाती हैं कि पार्वती का अच्छे से पाला पड़ा है) ॥ २ ॥ (देखो और सिड़ीपन दिखाऊँ कि) जिनके माथे पर मेरे लिखे अंक सुख की निशानी नहीं है। (अर्थात् जिनको कर्मानुसार मैंने सुख नहीं लिखा उनको पूर्व जन्म के अनुसार दुःख ही मिलना चाहिए और अन्त में स्वर्ग न मिलना चाहिए सो उनसे आक धतूरा ले ले कर ऐसे फल दे दिये हैं कि) उन कंगालों के लिए (बहीखातों में नरक काट काट कर) स्वर्ग बनाते बनाते मेरा तो नाक में दम आगया ॥ ३ ॥ (अधिक क्या कहूँ) ग़रीबों और दुखियों की दीनता और दुःख तक भी दुखी हो रहे हैं (वे कहते हैं कि शिवजी ने हमारा ऐसा सत्यानाश किया है कि हमें रहने को जगह नहीं रही क्योंकि सब लोग धनी और सुखी हो रहे हैं) और भीख भी (रहने की जगह न देख) घबरा रही है (अर्थात् कोई याचक नहीं रहा फिर मैं कहाँ रहूँ) सो इस (ब्रह्मत्व) के अधिकार को किसी दूसरे को सौंपो (मैंने छोड़ा यह

काम ), मैंने समझ लिया कि इससे तो भीख माँगना ही अच्छा है ॥४॥ इस भाँति ब्रह्माजी की प्रीति, बड़ाई और विनती से युक्त सुन्दर व्यंग वाणी को सुन कर शिवजी तो मन ही मन में प्रसन्न हुए और जगत् की माता पार्वतीजी मुसकुरा कर रह गईं ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—रावरो = तुम्हारा । नाह = पति । श्री = लक्ष्मी । सारदा = सरस्वती । नाक = स्वर्ग । व्यंग = जो सीधा अर्थ है उसे छोड़ कर कुछ और ही दूसरा भाव समझ पड़े वही व्यंग कहाता है जैसे ब्रह्माजी ने पार्वतीजी से कहा कि तुम्हारा पति बावला है यहाँ भीतरे भाव से समझना कि तुम्हारा पति अच्छा है बावला नहीं है इत्यादि और इसमें व्याज-स्तुति अलंकार है। क्योंकि यहाँ निन्दा के बहाने स्तुति की है ।

## राग रामकली ।

[ ६ ]

जाचिये गिरिजापति कासी । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥१॥
औढर दानि द्रवत पुनि थोरे । सकत न देखि दीन करजोरे ॥२॥
सुख सम्पति मति सुगति सुहाई । सकल सुलभ संकर सेवकाई ॥३॥
गये सरन आरतके लीन्हे । निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हे ॥४॥
तुलसिदास जाचक जस गावै । विमल भक्ति रघुपति की पावै ॥५॥

पार्वती के पति शिवजी से याचना करनी चाहिए । जिनका स्थान काशी है और जहाँ अणिमा आदि ( अष्ट सिद्धियाँ उनकी ) दासी होकर रहती हैं ॥ १ ॥ ( शिवजी ) औढरदानी हैं ( अर्थात् जो दान कोई देवता न दे सके उसके देनेवाले हैं ), फिर थोड़े ही ( भजन ) से कृपा करते हैं । और ग़रीबों को हाथ जोड़ते हुए नहीं देख सकते ( अर्थात् हाथ जोड़ते ही निहाल कर देते हैं ) ॥ २ ॥ सुख, सम्पत्ति, बुद्धि, मोक्ष और सुन्दरता ये सब शिवजी की सेवा से सुलभ हैं ( अर्थात् सहज में मिल सकते हैं ) ॥ ३ ॥ दुखी के शरण जाने पर उन्होंने उसका ग्रहण किया ( अर्थात् जो दुखी होकर उनकी शरण में गया उन्होंने उसको अपनाया) और देख कर एक पल भर में निहाल कर दिया ॥ ४ ॥ भिखारी तुलसीदास भी (शिवजी का) यश गाता है कि ( जिससे ) रघुनाथजी की निर्मल भक्ति को पावे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—द्रवत = कृपालु होते हैं । आरत = दुखी । निमिष = पल ।

[ ७ ]

कस न दीन पर द्रवहु उमावर । दारुनविपति हरन करुनाकर ॥१॥
वेद पुरान कहत उदार हर । हमरि बार कस भयहु कृपनतर ॥२॥

कवनि भक्ति कीन्हीं गुननिधि द्विज ।
ह्वै प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज ॥ ३ ॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं ॥४॥
देहु कामरिपु रामचरन रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेदमति ॥५॥

हे पार्वतीपति! (तुम मुझ) ग़रीब पर दया क्यों नहीं करते हो? तुम तो कठिन विपत्ति के नाशक और दया करने वाले हो (फिर मुझे दुखी देख क्यों चुपके बैठे हो) ॥१॥ वेद पुराण तो कहते हैं कि शिवजी बड़े दानी हैं फिर हमारी बिरियां ऐसे अधिक कंजूस क्यों हो गये हो ॥ २ ॥ (जो कहो कि तू ने मेरी कौनसी सेवा की है जो तेरे ऊपर कृपा करूँ तो) गुणनिधि (१) नाम ब्राह्मण ने तुम्हारी कौनसी भक्ति की थी, जो तुमने प्रसन्न होकर उसे अपना शिवलोक दे दिया था ॥३॥ जिस गति को बड़े बड़े मुनि बखानते हैं कि कठिन है उस गति अर्थात् मोक्ष को तुम्हारी (काशी) पुरी के कीड़े, पक्षी भी पाते हैं ॥ ४ ॥ सो हे कामदेव के शत्रु! मुझे रामचन्द्रजी के चरणों की प्रीति दो और इस तुलसीदास की भेदबुद्धि को दूर करो (क्योंकि) तुम समर्थ हो ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—भेदमति = अहंकार की बुद्धि अर्थात् अपने को बड़ा और को छोटा मानना—अथवा जीव ब्रह्म में भेद मानना। प्रभु = समर्थ। वर = पति।

[ ८ ]

देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे ।
किये दूर दुख सबन के, जिन जिन कर जोरे ॥ १ ॥
सेवा सुमिरन पूजिबो, पात अषत थोरे ।
दइ जग जहँ लगि संपदा, सुख गज रथ घोरे ॥ २ ॥
गाँव बसत मैं वामदेव, कबहूँ न निहोरे ।
अधिभवतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे ॥ ३ ॥
वेगि बोलि बलि वरजिये, करतूति कठोरे ।
तुलसी दल रूंध्यो चहैं, सठ साखि सिहोरे ॥ ४ ॥

---

(१) गुणनिधि नाम ब्राह्मण चोर था—शिवजी के ऊपर चढ़कर मंदिर का घंटा उतार रहा था। पुजारियों ने देख उसे ऐसा मारा कि वह मर गया; परन्तु शिवजी ने उस पर दया विचार उसे कैलास-वास दिया।

हे शिवजी ! तुम देवताओं में बड़े दानी, बड़े कल्याणकारी और भोले हो अर्थात् सहज में प्रसन्न हो जाते हो )। जिस जिसने तुम्हें हाथ जोड़े उसके दुःख तुमने दूर कर दिये ॥१॥ जिसने ( तुम्हारी ) सेवा की, तुम्हारा स्मरण किया और थोड़े से अक्षत तथा बेलपत्रों से पूजन किया, उसे तुमने संसार में जहाँ तक दौलत और हाथी, घोड़े, रथ आदि का सुख है ( सब ही ) दिया ॥२॥ हे शिवजी ! मैं आपके गाँव ( अर्थात् काशी-पुरी ) में रहता हूँ ( मुझे भी आपसे माँगना उचित है ) परन्तु मैंने कभी ( किसी बात का ) निहोरा नहीं किया ( कि मुझे अमुक वस्तु दो )। पर अब ( काम क्रोध आदि ) भूतों ने शरीर में बाधा कर रक्खी है ( अर्थात् उन्होंने बड़ा सता रक्खा है ) और वे तुम्हारे दास हैं ॥३॥ मैं बलि जाता हूँ कि उन्हें जल्दी बुला कर डाट दो (कि मुझे न सतावें) क्योंकि उनका कर्तब बड़ा दुष्टपने का है। वे मूर्ख तुलसी को उखाड़ कर सहोरे की डाली रोपा चाहते हैं ( अर्थात् मेरे हृदय से आपकी भक्ति को मिटाकर विषय-वासना का प्रचार किया चाहते हैं ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—अषत = चावल । वामदेव = शिवजी । अधिभवतिक = शरीर की बाधा—( यहाँ काम क्रोधादि से आशय है ) सहोरा = थूअड़, सेहड़ ।

[ ९ ]

सिव सिव होइ प्रसन्न करु दाया ।
करुनामय उदारकीरति बलि, जाउँ हरहु निज माया ॥ १ ॥
जलजनयन गुनअयन मयनरिपु, महिमा जान न कोई ।
बिनु तव कृपा रामपदपंकज, सपनेहु भगति न होई ॥ २ ॥
रिषी सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर, अपर जीव जगमाहीं ।
तव पद विमुख न पार पाव कोउ, कलपकोटि चलि जाहीं ॥ ३ ॥
अहिभूषन दूषनरिपुसेवक, देवदेव त्रिपुरारी ।
मोह-निहार-दिवाकर संकर, सरनसोकभयहारी ॥ ४ ॥
गिरिजामनमानसमराल, कासीस मसान-निवासी ।
तुलसिदास हरिचरनकमल वर, देहु भगति अविनासी ॥ ५ ॥

हे कल्याणस्वरूप शिवजी ! प्रसन्न होकर दया करो। तुम दया की मूर्ति हो और तुम्हारा बड़ा यश है। मैं बलि जाता हूँ। तुम अपनी माया को हर लो ॥१॥ तुम्हारे कमल

समान नेत्र हैं, तुम ( शांति, क्षमा आदि ) गुणों के स्थान और कामदेव के शत्रु हो, तुम्हारी महिमा को कोई नहीं जानता । और, तुम्हारी कृपा बिना रामजी के चरण कमलों की भक्ति स्वप्न में भी नहीं हो सकती है ॥२॥ ऋषि ( जो तपस्या, यज्ञ, हवन आदि करते हैं ), सिद्ध ( जो अष्टांग योग अष्टसिद्धियों को वश कर लेते हैं ), मुनि ( जो मन में ही सच्चिदानन्द का ध्यान करते हैं ) और मनुष्य, दैत्य, देवता, और संसार में जितने जीव हैं तुम्हारे चरणों के विमुख होने से कोई भी ( इस संसार का ) पार नहीं पा सकते । ( भले ही ) करोड़ों कल्प बीत जायँ ॥३॥ तुम सर्पों के भूषण धारण किये हो, दूषण राक्षस के शत्रु जो (१) रघुनाथजी वे तुम्हारे सेवक हैं, तुम देवों के देव और त्रिपुरासुर के शत्रु हो । तुम अज्ञानरूपी पाले के लिए सूर्य हो; ( अर्थात् जैसे पाले को सूर्य नाश कर देते हैं वैसे ही तुम अज्ञान को दूर कर देते हो ) तुम कल्याण के कर्ता, और शरणागत के शोक और भय को दूर करने वाले हो ॥४। पार्वतीजी का मन सोई हुआ मानसरोवर उसमें तुम हंस-रूप हो कर ( वास करने वाले ) हो । काशी के पति और स्मशान-वासी हो । (हे शिवजी ! ) तुलसीदास को भगवान् के सुन्दर चरण-कमलों की अटल भक्ति का वरदान दो । ५ ॥

शब्दार्थ—जलज = कमल । अयन = घर । मयन = कामदेव । दनुज = दैत्य । अहि = सर्प । नीहार = बरफ़, पाला ।

## राग धनाश्री ।

[ १० ]

मोहतमतरनि हर रुद्र संकर सरन, हरन मम सोक लोकाभिरामं ।
बाल-ससि-भाल, सुविसाल-लोचन-कमल, काम-सत-कोटि-लाव-न्यधामं ॥ १ ॥
कंबु-कुन्देन्दु-कर्पूर-विग्रह-रुचिर, तरुन रवि कोटि तन-तेज भ्राजै।
भस्मसर्वाङ्ग अरधांगसैलात्मजा, व्यालनृकपालमाला विराजै ॥२॥
मौलिसंकुलजटामुकुट विद्युतछटा, तटिनिवरवारि हरिचरनपूतं ।
स्त्रवनकुंडल गरलकंठ करुनाकन्द, सच्चिदानन्द वंदेऽवधूतं ॥ ३ ॥
सूलसायकपिनाकासिकर सत्रुवनदहनइव धूमध्वज वृषभजानं ।
व्याघ्र-गज-चर्म्म-परिधान विज्ञान-घन, सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सेव्य-मानं ॥ ४ ॥

---

(१) इसका अर्थ यों भी हो सकता है कि तुम रामचन्द्र के सेवक हो ।

तांडवित-नृत्यपर डमरु डिंडिमप्रवर, असुभ इव भाँति कल्यान-रासी।
महाकल्पान्त ब्रह्माण्डमंडलदवन, भवनकैलास आसीनकासी ॥५॥
तज्ञ सरवज्ञ जज्ञेस अच्युत विभो, विस्व भवदंससंभव पुरारी।
ब्रह्मेन्द्र चन्द्रार्क वरुनाग्नि वसु मरुत जम, अरचि भवदंघ्रि सर्वाधिकारी ॥ ६ ॥
अकल निरुपाधि निरगुन निरञ्जन ब्रह्म, कर्म्म पथमेकमजनिर्विकारं।
अखिलविग्रह उग्ररूप सिव भूप सुर सर्वगत सर्वसर्वोपकारं ॥७॥
ज्ञान वैराग्य धन धर्म कैवल्य सुख, सुभग सौभाग्य सिव सानुकूलं।
तदपि नर मूढ़ आरूढ़ संसारपथ, भ्रमत भव विमुख तवपादमूलं ॥८॥
नष्टमति दुष्ट अति, कष्टरत खेदगत, दास तुलसी संभु सरन आया।
देहि कामारि श्रीरामपदपंकजे, भक्तिमनवरत गतभेदमाया ॥६॥

हे शिवजी! तुम अज्ञानरूपी अँधेरे के (दूर करने के) लिए सूर्य रूप हो (अर्थात् तुम्हारे दर्शन करते ही अज्ञान दूर हो जाता है)। हे रुद्र! हे कल्याणकारी! मैं तुम्हारी शरण हूँ, तुम मेरे शोक के हरनेवाले और संसार को प्रसन्न करने वाले हो। बाल चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किये, कमल समान सुन्दर बड़े बड़े नेत्रवाले और सौ करोड़ काम देवों के समान सुन्दरता के स्थान हो ॥१॥ (१) शंख, कुंद, चन्द्रमा और कपूर के समान तुम्हारा सुन्दर (गौर) शरीर है, और करोड़ों तरुण सूर्य के समान उस शरीर का तेज चमकता है, सब अंग में भस्म रमाये हो, तुम्हारे (२) आधे अंग में

---

(१) शरीर की उपमा शंख, कुंद, चन्द्रमा और कपूर से इसलिए दी है कि एक तो इन चारों का गौर वर्ण है; दूसरे भीतरी भाव यह है कि शिवजी का शरीर शंख समान चिकना, कुंद समान कोमल, चन्द्र समान शीतल और कपूर समान सुगंधित है।

(२) एक दिन जब शिवजी भोजन करने बैठे उस समय उन्होंने पार्वतीजी को बुलाया कि आओ तुम भी भोजन कर लो। यह सुन उन्होंने कहा कि मैंने अभी विष्णुसहस्रनाम का पाठ नहीं किया है; पाठ करके आऊँगी। शिवजी ने कहा कि, "राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने" अर्थात् हे सुन्दरमुखी! राम का नाम एक बार लेना विष्णु के हज़ार नाम के बराबर है। यह सुन पार्वतीजी राम का नाम लेकर भोजन करने लगीं। शिवजी ने उन्हें अपने वचन पर आरूढ़ देख बड़ी प्रीति से अपने अर्द्धाङ्ग में स्थान दिया।

पार्वतीजी ( शोभायमान ) हैं और तुम्हारे ( गले में ) सर्प तथा नरमुंडों की माला विराजमान हैं ॥२॥ शिर पर जटा-जूटों का मुकुट पहिरे ( उसके ऊपर ) बिजली के समान चमकती हुई गंगाजी को धारण किये ( कि जिनका ) सुन्दर जल भगवान् के चरणों से (निकलने के कारण) पवित्र है। कानों में (सर्पों के) कुंडल पहरे, गले में विष धरे, दया के मूल ( अर्थात् करने वाले ) सच्चिदानन्दस्वरूप, योगी का वेश धारे (ऐसे) तुमको प्रणाम करता हूँ ॥३॥ तुम त्रिशूल, बाण, धनुष और फरसा इनको हाथों में लिये शत्रुरूपी वन को जलाने के लिए अग्निरूप ( अर्थात् तुरन्त भस्म करने वाले ), नादिये पर चढ़े हुए, बाघम्बर और गजचर्म के वस्त्र धारण किये, ब्रह्म ज्ञान के मेघ रूप अर्थात् बड़े ब्रह्मज्ञानी और सिद्ध, देवता मुनि और मनुष्यों से सेवा करने योग्य हो ॥४॥ तुम तांडवनृत्य करते हुए, अति सुन्दर डमरू की डिम डिम बजाते हुए, भयंकर भेस किये, कल्याण की राशि, महाप्रलय में ब्रह्मांड भर के नाशक, कैलास के वासी काशी में (आसन लगाये) बैठे हुए हो ॥५॥ तुम तत्त्व के जानने वाले, सबके ज्ञाता, यज्ञों के स्वामी और अविनाशी हो। और समर्थ (ऐसे हो कि ) यह संसार का वैभव तुम्हारे ही अंश से उत्पन्न हुआ है, और तुम त्रिपुरासुर के शत्रु हो। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि, वसु, वायु और यम सबने तुम्हारे ही चरणों का पूजन कर अपना अपना सब अधिकार पाया है ॥ ६ । तुम कलारहित हो ( अर्थात् चन्द्रमा के समान कभी घटते बढ़ते नहीं हो ), उपाधिरहित ( अर्थात् शुद्धस्वरूप ) हो, निर्गुण ( कहिए सत रज, और तम से रहित) हो, निरंजन ( माया-मोह-शून्य ), परब्रह्म और कर्म के मार्ग में एक ही हो; तुम अजन्मा, और विकाररहित ( अर्थात् निर्मलरूप ) हो। सब ब्रह्मांड तुम्हारा ही विराटरूप है, तुम भयंकर होने पर भी मंगलरूप हो, देवताओं के राजा हो, सब में रम रहे हो, और सबका सब भाँति भला करने वाले हो ॥७॥ ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, मोक्ष, सुख और सुन्दर सौभाग्य ( ये सब ) हे शिव ! तुम्हारे प्रसन्न होने से मिलते हैं, पर तो भी मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि तुम्हारे चरणों के आश्रय से विमुख होकर और संसारी मार्ग में प्रवृत्त होकर संसार में भ्रमते फिरते हैं ( अर्थात् ८४ योनि भुगतते हैं ) ॥८॥ हे शिवजी ! मैं बुद्धिहीन, दुष्ट तुलसीदास बड़े कष्ट में पड़कर और दुखी होकर तुम्हारी शरण में आया हूँ सो हे कामारि ! श्रीरघुनाथजी के चरण-कमलों में भेद-माया-रहित अविचल भक्ति दो ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—लोक + अभिराम ( प्रसन्नकारक )। कुंद + इन्दु । सर्व + अंग । अर्द्ध + अंग । सैल + आत्मजा ( पुत्री ) । सत् + चित् + आनन्द । वन्दे + अवधूतं ( योगी )। पिनाक + असि ( फरसा ) । जज्ञ + ईस । भवत् ( तुम्हारा ) + अंस । ब्रह्म + इन्द्र । चन्द्र + अर्क । वरुन + अग्नि । भवत् + अंघ्रि ( चरण )। सर्व + अधिकारी । पथं + एकं + अज। सर्वे + उपकारं । तत् + अपि । काम + अरि । भक्तिं + अनवरत ( सदा )

शब्दार्थ—तरनि = सूर्य । लावन्य = सुन्दरता । विग्रह = शरीर । नृ = मनुष्य । कपाल = मुंड । संकुल = व्याप्त । तटनी = नदी ( गंगाजी ) । स्रवन = कान । धूमध्वज = अग्नि । यान = सवारी । परिधान = वस्त्र । पूत = पवित्र । वन = पूर्ण वा मेघ । प्रवर = बड़ा सुन्दर । आसीन = बैठे हुए । विभव = वैभव । कैवल्य = मुक्ति ।

[ ११ ]

भीषनाकार भैरव भयङ्कर भूतप्रेतप्रमथाधिपति विपतिहरता ।
मोहमूषकमार्जार संसारभयहरन तारनतरन अभयकरता ॥१॥
अतुलबल विपुलविस्तार विग्रह गौर,अमल अतिधवल धरनीधराभं।
सिरसि संकुलित-कल-जूटपिङ्गलजटा, पटल-सत-कोटि विद्यु-च्छटाभं ॥ २ ॥
भ्राज विबुधापगा आपपावनपरम मौलिमालेव सोभाविचित्रं ।
ललित लल्लाटपर राज रजनीस-कल-कलाधर नौमि हर धनद-मित्रं ॥ ३ ॥
इन्दुपावकभानुनयन, मर्दनमयन, ज्ञानगुनअयन विज्ञानरूपं ।
रवन गिरिजा, भवन-भूधराधिप सदा, स्रवन-कुण्डल वदन-छविअनूपं ॥ ४ ॥
चर्म्म असि सूल धर, डमरु सर चाप कर, जानवृषभेस, करुना-निधानं ।
जरत सुर-असुर नर-लोक सोकाकुलं, मृदुल-चित अजित कृत-गरल-पानं ॥ ५ ॥
भस्मतनुभूषनं व्याघ्रचर्म्माम्बरं, उरगनरमौलि उरमाल-धारी ।
डाकिनी साकिनी खेचरं भूचरं, यंत्र मंत्र भंजन प्रबल कल्मषारी ॥६॥
कालअतिकाल कलिकाल-व्यालादि-खग त्रिपुर-मर्दन भीम-कर्मभारी ।

सकल-लोकान्त-कल्पान्त-सूलाग्र-कृतदिग्गजाऽव्यक्तगुन नृत्यकारी ॥ ७ ॥

पाप-संताप-घन-घोर-संसृति दीन, भ्रमत जगजोनि नहिं कोपि त्राता ।

पाहि भैरवरूप रामरूपी रुद्र बंधु, गुरु जनक जननी विधाता ॥८॥

यस्य गुन-गन गनति विमल-मति सारदा, निगम-नारद-प्रमुख ब्रह्मचारी ।

सेस सर्वेस आसीन आनन्दवन, दासतुलसी प्रनत त्रास-हारी ॥६॥

अब काशी के क्षेत्रपाल भैरवरूप शिवजी की स्तुति करते हैं—

हे भयानकमूर्त्ति ! भैरवनाथ ! तुम ( सहज ही ) भय दिखानेवाले, भूत-प्रेत और शिवगणों के स्वामी और दुख के हरनेवाले हो । मोहरूपी मूषक ( कि जो बड़े बड़े ज्ञानियों के जप-तपरूपी वस्त्रों को कतर डालता है और उनकी भक्तिरूपी खेती को खा जाता है उस) के लिए तुम बिलावरूप हो (अर्थात् उसे सहज में भक्षण कर जाते हो), संसार के भय ( अर्थात् आवागमन ) को छुड़ानेवाले, ( दूसरों को ) तारनेवालों के भी तारनेवाले और स्वयं तरण ( मुक्तरूप ) हो, और ( भक्तों को ) निर्भय करने वाले हो ॥ १ ॥ तुम्हारा बल अतोल है, तुम्हारे शरीर का बड़ा विस्तार है ( और वह शरीर ) गौर और बड़ा निर्मल है और बड़े श्वेत पर्वत (हिमालय) की सी उसकी प्रभा है। तुम्हारे शिर पर घनी पीली जटाओं का सुन्दर जूट बँधा है और ( उन पीली जटाओं की ) पाँति की छटा सो करोड़ बिजली की छवि के समान चमक रही है ॥ २ ॥ तुम्हारे माथे पर बड़े पवित्र जल वाली गङ्गाजी माला के समान विराजमान हैं और उनकी शोभा बड़ी अनोखी है । तुम अपने सुन्दर मस्तक पर रात्रि-पति चन्द्रमा की कला को धारण किये हो और कुबेर के मित्र हो। हे शिवजी ! ऐसे तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ चन्द्रमा, अग्नि, और सूर्य तुम्हारे नेत्र हैं, तुम काम के भस्म करनेवाले हो, ज्ञान और ( क्षमा, दया आदि ) गुणों के स्थान और आत्मज्ञान के स्वरूप हो । पार्वती के साथ विहार करनेवाले, पर्वतों का स्वामी ( कैलास ) तुम्हारा सदा वास-स्थान है, कानों में ( सर्पों के ) कुण्डल पहिरे हो, और तुम्हारे मुख की छवि उपमारहित है ॥ ४ ॥ ढाल, तलवार,

त्रिशूल, डमरू, बाण और धनुष को हाथ में धारण किये और नादिये पर सवारी किये हो, (ऐसे भयङ्कर रूप होने पर भी) दया के स्थान ( अर्थात् करनेवाले ) हो क्योंकि (समुद्र मथते समय ) जब देवता और दैत्य जले जाते थे और मनुष्य-लोक, शोक से व्याकुल था तब कोमल चित्तवाले और किसी से जीते जाने योग्य नहीं ऐसे तुमने ही विष को पी लिया था ॥ ५ ॥ ( फिर विरक्त कैसे कि ) शरीर में आभूषणों की जगह भस्म रमाये, व्याघ्र चर्म का वस्त्र पहिरे, गले में सर्प और मनुष्यों की खोपड़ियों की माला पहिरे, डाकिनी, शाकिनी, खेचर, भूचर और यंत्र मंत्र इनके नाश करने में बड़े बली और पाप के शत्रु अर्थात् नाशक हो ॥ ६ ॥ तुम काल के भी महाकाल हो अथवा कालों में अति भयंकर कलि कालरूपी सर्प के भक्षण करने को गरुड़रूप हो, त्रिपुरासुर के नाशकर्ता, और बड़े भयंकर कर्म करनेवाले हो ( वह क्या भयंकर कर्म है कि ) सब लोकों का नाश करनेवाला जो प्रलयकाल उसमें त्रिशूल की नोक पर दिशाओं के हाथियों को छेद कर ( नहीं है प्रकट गुण जिसमें ऐसे ) निर्गुणरूप को धारण कर नृत्य करते हो ॥ ७ ॥ मैं पाप और सन्तापों से भरे हुए इस भयंकर संसार में दुखी होकर जगत् की (अनेक) योनियों में भ्रमता फिरता हूँ और कोई मेरा रक्षक नहीं है । हे भैरवरूप ! हे रामरूपी रुद्र ! मेरी रक्षा करो, क्योंकि तुम ही मेरे बन्धु, गुरु, पिता, माता और उत्पन्न करनेवाले हो ॥ ८ ॥ ( जिनके कृपा उदारता आदि ) गुणों के समूहों को निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती वेद और नारद आदि ब्रह्मचारी तथा शेषनाग वर्णन करते हैं ऐसे सबके स्वामी, आनन्द वन ( काशी ) में बैठे हुए और भय को दूर करनेवाले ( शिवजी ) को मैं तुलसीदास प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—भीषन + आकार । प्रमथ ( शिवगण ) + अधिपति । धरनीधर ( पर्वत ) + आभं । विबुध ( देवता ) + आपगा ( नदी ) । माला + इव । भूधर + अधिप । वृषभ ( बैल ) + ईस । कलमष ( पाप ) + अरि । दिग्गज + अव्यक्त ।

शब्दार्थ—आभं = कांति । कल = सुन्दर । पटल = पाँति । रजनीश = रात्रि का स्वामी । कलाधर = चन्द्रमा । आप = जल । धनद = कुबेर । मयन = काम । चर्म = ढाल । असि = तलवार । जान ( यान ) = सवारी । खेचर = आकाशचारी । कलमष = पाप । अरि = शत्रु । आदि ( अद् भक्षणे धातु से बना है ) = भक्षक । खग = गरुड़ । भूचर = भूमिचर । अव्यक्त = अप्रकट । प्रमुख = आदि ।

[ १२ ]

संकरं संप्रदं सज्जनानंददं, सैलकन्या-वरं परमरम्यं ।
काम-मद-मोचनं तामरस-लोचनं, वामदेवं भजे भावगम्यं ॥ १ ॥
कम्बु-कुन्देन्दु-कर्पूर-गौरं सिवं, सुन्दरं सच्चिदानन्दकंदं ।
सिद्धसनकादियोगीन्द्रवृन्दारका, विष्णुविधिवन्द्यचरनारविंदं ॥२॥

ब्रह्मकुल-वल्लभं सुलभमति-दुर्लभं, विकटवेषं विभुं वेदपारं।
नौमि करुनाकरं गरलगंगाधरं, निर्मलं निर्गुनं निर्विकारं ॥ ३ ॥
लोकनाथं सोकसूलनिर्मूलिनं, सूलिनं मोह-तम-भूरि-भानुं।
कालकालं कलातीतमजरं हरं, कठिनकलिकालकाननकृसानुं ॥४॥
तज्ञमज्ञानपाथोधिघटसम्भवं, सर्वगं सर्वसौभाग्यमूलं।
प्रचुरभवभंजनं प्रनतजनरंजनं, दासतुलसीसरन सानुकूलं ॥५॥

कल्याण करनेवाले, सुख के दाता, सज्जनों को आनन्द देनेवाले, पार्वती के पति, बड़े सुन्दर, कामदेव के मद को छुड़ानेवाले, कमल से नेत्रवाले और भक्तिभाव से मिलनेवाले शिवजी को भजता हूँ ॥ १ ॥ वे शंख, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा और कर्पूर के समान गौर वर्ण, मङ्गलकर्ता, बड़े मनोहर और सच्चिदानन्द की जड़ अर्थात् मूर्ति हैं। सिद्ध, सनकसनन्दन, योगियों में इन्द्र (अर्थात् याज्ञवल्क्य आदि), देवता, विष्णु, और ब्रह्मा ने जिनके चरण-कमलों की वन्दना की है ॥ २ ॥ ये ब्राह्मण कुल के प्यारे हैं (अथवा उन्हें ब्राह्मण कुल प्यारा है), (भक्तों को) सहज में प्राप्त होनेवाले, (दुष्टों को) बड़े दुःख से मिलनेवाले, भयंकर भेषवाले (अर्थात् मुण्डमाल सर्प आदि धारण किये), समर्थ और वेद से परे अर्थात् जिनका पार वेद भी नहीं पाते। ऐसे दया की खान, (कंठ में) विष और (शिर पर) गंगा को धारण किये, शुद्ध स्वरूप (सत, रज, और तम तीनों) गुणों से रहित और (काम आदि) विकार से शून्य (ऐसे शिवजी) को प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ लोक की रक्षा करनेवाले, शोक और पीड़ा को जड़ से नाश करने वाले (हाथ में) त्रिशूल लिये और मोहरूपी बड़े अन्धकार के (नाश करने के) लिए सूर्यरूप। काल के भी काल (अर्थात् काल जो सबको भक्षण करता है उसके भी काल), कला से परे (अर्थात् सदा एक रस), वृद्धावस्था-रहित, संहारकर्ता, कठिन कलिकाल-रूपी वन को अग्निरूप (अर्थात् भस्म करनेवाले) हैं ॥ ४ ॥ तत्त्व के जाननेवाले, अज्ञान-रूपी समुद्र के (सोखने के) लिए अगस्त्यरूप, सब में व्याप्त, सब सौभाग्य की जड़ (अर्थात् सब भूषण, वसन, धन, यान आदि के दाता), अपार संसार के नाशक, भक्त-जनों को प्रसन्न करनेवाले ऐसे कृपालु शिवजी की शरण तुलसीदास है ॥ ५ ॥

सन्धिविभाग—सज्जन + आनन्ददं। कुन्द + इन्दु। सुलभं + अति दुर्लभं। कलातीतं + अजरं (वृद्धावस्था-रहित)। तज्ञम् + अज्ञान।

शब्दार्थ—सं = कल्याण। सैलकन्या = पर्वत की पुत्री पार्वती। वर = पति। तामरस = कमल। इन्दु = चन्द्रमा। वृन्दारक = देवता। अरविंद = कमल। भूरि = बहुत। अतीत = दूर, परे। कानन = वन। कृसानु = अग्नि। पाथोधि = समुद्र। घटसम्भव = अगस्त्य। प्रचुर = बहुत। सानुकूल = कृपालु।

## राग वसन्त ।

[ १२ ]

सेवहु सिवचरनसरोजरेनु । कल्यान अखिलप्रद कामधेनु ॥१॥
कर्पूरगौर करुनाउदार । संसारसार भुजगेन्द्रहार ॥ २ ॥
सुखजन्मभूमि महिमाअपार । निर्गुन गुननायक निराकार ॥३॥
त्रयनयन मयनमर्दन महेस । अहङ्कारनिहारउदितदिनेस ॥४॥
वरबालनिसाकरमौलिभ्राज । त्रैलोकसोकहर प्रमथराज ॥५॥
जिन्हकहँ विधि सुगति न लिखी भाल ।
तिन्ह की गति कासीपति कृपाल ॥ ६ ॥
उपकारी कोऽपर हर समान । सुर असुर जरत कृत गरलपान ॥७॥
बहु कल्प उपायन करि अनेक । विनु संभु कृपा नहिं भव विवेक ॥८॥
विज्ञानभवन गिरिसुतारवन । कह तुलसिदास मम त्राससमन ॥६॥

शिवजी के चरण कमलों की रज का सेवन करो। (कैसी रज है सो आगे कहते हैं) जो संपूर्ण कल्याण देने के लिए कामधेनु के समान (अर्थात् सब फल देने वाली) है ॥ १ ॥ (शिवजी कैसे हैं कि) कपूर के समान गौर-वर्ण, दया के दाता (अर्थात् करने वाले), संसार के सार (अर्थात् सबके तत्व) और सर्पराज का हार पहिरे हुए हैं ॥ २ ॥ वे सुख की जन्मभूमि (अर्थात् सुखों को उत्पन्न करने वाले हैं), उनकी महिमा का पार नहीं, (वे सत, रज, तम) गुणों से रहित (अर्थात् उनके वश में नहीं, और कृपालुता उदारता आदि) गुणों के नायक हैं, और निराकर (अर्थात् आकार जो पंचभौतिक माया उससे रहित शुद्ध आत्म स्वरूप) हैं ॥ ३ ॥ वे तीन नेत्र-वाले, कामदेव के नाशक, बड़े समर्थ और अहंकाररूपी कोहिरे को दूर करने के लिये उदय हुए सूर्यरूप हैं ॥४॥ वे सुन्दर बाल-चन्द्रमा को शिर पर धारण किये, त्रिलोकी का शोक हरनेवाले और प्रमथ आदि गणों के राजा हैं ॥ ५ ॥ ब्रह्मा ने जिनके माथे में सुगति (मुक्ति) नहीं लिखी उनको भी गति के दाता ऐसे दयालु और काशी के पति हैं ॥ ६ ॥ शिवजी के समान दूसरा कौन उपकार करने वाला है क्योंकि (समुद्र मथते समय जब) देवता, दैत्य जले जाते थे तब विष (१) पान कर गये ॥ ७ ॥ अनेक कल्पों तक बहुत से (शम,

(१) तीसरे भजन की पहली टिप्पणी देखो ।

दम आदि ) उपाय करके भी शिवजी की दया बिना संसार का ज्ञान नहीं होता। ( अर्थात् संसार झूठा है वा सच्चा )। ब्रह्मानन्द के भवन अर्थात् मूर्ति ऐसे पार्वती-रमण, तुलसीदास कहते हैं कि, मेरे भय को दूर करने वाले हैं ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—अखिल = सब। मयन = काम। नीहार = बरफ़, पाला। मौलि = सिर।

[ १४ ]

देखो देखो वन बन्यो आज उमाकंत।
मानों देखन तुमहिं आई रितु वसन्त ॥ १ ॥
जनु तनुदुति चम्पक कुसुम-माल।
वर वसन नील नूतन त माल ॥ २ ॥
कलकदलि-जंघ पद कमल लाल। सूचत कटि केसरि गति मराल ॥
भूषन प्रसून बहु विविध रंग। नूपुर किंकिनि कल रव विहंग ॥४॥
कर नवल बकुल पल्लव रसाल। श्रीफल कुच, कंचुकि लताजाल ॥५॥
आनन सरोज, कच मधुप गुंज। लोचन विसाल नवनील कंज ॥६॥
पिक वचन चरित वर बरहि कीर। सित सुमन हास, लीलासमीर ७॥
कह तुलसिदास सुनु सिवसुजान। उर बसि प्रपंच रच पंचवान ॥८॥
करि कृपा हरिय भ्रमफंद काम। जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम ॥

गुसाईं जी पहले शिवजी की विनय तो कर चुके अब पार्वती युक्त शिवजी की प्रार्थना करते हैं। यहाँ मानो पद के होने से (१) उत्प्रेक्षा अलंकार है।

हे शिवजी! देखो देखो आज तुम बन बने हो। और ( तुम्हारे अर्द्धांग (२) में पार्वती क्या है ) मानो वसंत ऋतु तुम्हें देखने को आई है ॥ १ ॥ पार्वती के शरीर की कांति मानो चंपा के फूलों की क़तार है। सुन्दर नील वस्त्र मानो नये तमाल के पत्र हैं ॥ २ ॥ जंघा मानो सुन्दर कदली हैं और चरण मानो लाल कमल हैं। कमर सिंह की और गति हंस की जताती है अर्थात् सिंह की सी पतली कमर है और हंस की सी सुन्दर चाल है ॥ ३ ॥ भूषण मानो अनेक प्रकार के रंग के फूल हैं। और पायज़ेब और कौंधनी

---

(१) उत्प्रेक्षा अलंकार वह है जहां उपमेय में उपमान का भेद होने पर भी कुछ कल्पित आरोप कर लिया जावे। मानता हूँ, जानता हूँ, इत्यादि शब्द से उत्प्रेक्षा समझी जाती है।

(२) १० वें भजन की (२) टिप्पणी में देखो।

मानों पक्षियों के शब्द हैं ॥ ४ ॥ हाथ मानो नवीन बकुल और आम के पत्ते हैं । ( अर्थात् उनके गुद्दे बाहु और कोमल पत्ते हथेलियाँ हैं ) कुच मानो श्रीफल हैं और चोली मानो लताओं का जाल है ॥ ५ ॥ मुख मानो कमल है, बाल मानो भौंरों का पुञ्ज है। विशाल नेत्र मानो नवीन ( खिले ) नीले कमल हैं ॥ ६ ॥ वचन मानो कोयल के शब्द हैं, सुन्दर चरित्र मानो मोर और तोते हैं ( कि जो नाच कूद रहे हैं ), हास्य मानों सुन्दर श्वेत पुष्प हैं और लीला मानो ( शीतल, मन्द, सुगन्ध ) पवन है ॥ ७ ॥ तुलसीदास कहता है कि हे चतुर शिवजी ! सुनो । ( वसंत ऋतु में कामोद्दीपन बहुत होता है इसलिए ) यह कामदेव मेरे हृदय में बस कर बड़ा फरफन्द रचता है ( अर्थात् मन को इन्द्रियों के द्वारा विषयों में लगाता है सो कामदेव ने जो झूठे संसार को सच्चा दिखाने के लिए भ्रमरूपी फंदा गेरा है ) उस भ्रम फंद को तुम कृपा कर दूर करो ( क्योंकि तुम कामदेव के शत्रु हो ) कि जिससे सुख की राशि रामजी हृदय में वास करें ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—कल = सुन्दर । सूचत = जताती है । केसरि = सिंह । मराल = हंस । रव = शब्द । रसाल = आम । कच = बाल । कंज = कमल । बरहि = मोर । पंचबाण = कामदेव ।

देवी-स्तुति ।

राग मारू ।

[ १५ ]

दुसह-दोष-दुखदलनि करु देवि दाया ।
विस्वमूलाऽसि जनसानुकुलाऽसि करसूलधारिनि महामूलमाया ॥
तडितगर्भाङ्ग सर्वाङ्गसुन्दरलसत दिव्यपट भव्यभूषन बिराजै ।
बालमृगमंजुखंजनविलोचनि चन्द्र-वदनि लखि कोटि रति-मार लाजै ॥ २ ॥
रूप सुख सील-सीमाऽसि भीमाऽसि रामाऽसि वामाऽसि वर-बुद्धि वानी ।
छमुखहेरम्ब-अंबासि जगदंबिके संभु-जायाऽसि जैजै भवानी ॥३॥
चंड भुजदंडखंडनि विहंडनि महिष मुंड मदभंगकर अंग तोरे ।

सुम्भ निःसुम्भकुम्भीस रणकेसरिनि क्रोधवारीधि अरि वृन्द बोरे४॥
निगम आगम अगम गुर्वि तव गुन कथन, उर्विधर करत जेहि सहसजीहा ।
देहि मा मोहि पन प्रेम यह नेम निज राम घनस्याम तुलसी पपीहा ॥ ५ ॥

हे देवि ! हे दुःसह दोष और दुःखों का नाश करने वाली ! ( मेरे ऊपर ) दया करो । तुम संसार की मूल ( उत्पत्तिस्थान ) हो, भक्तों के ऊपर प्रसन्न हो, ( दुष्टों के लिए ) बाण और त्रिशूल धारण किये हो और माया की मुख्य जड़ हो ( अर्थात् उसे उत्पन्न करने वाली हो ) ॥ १ ॥ जिनके प्रत्येक भाग में बिजली भरी हो ऐसे तुम्हारे सब सुन्दर अंग शोभायमान हैं, (उनमें) दिव्य वस्त्र और परम सुन्दर आभूषण धारण किये हो । मृग-छौना और खंजन के से तुम्हारे सुन्दर नेत्र हैं और चन्द्र समान मुख है और तुम्हें देख सौ करोड़ रति और कामदेव लजाते हैं ॥ २ ॥ तुम रूप, सुख और शील की सीमा हो ( अर्थात् तुम से बढ़ कर किसी में रूप आदि नहीं और दुष्टों के डराने के लिए ) भयंकररूप ( अर्थात् काली ) हो, तुम ही लक्ष्मी हो, तुम ही शिव की पत्नी हो और तुम ही सुन्दर बुद्धि वाली सरस्वती हो । तुम स्वामिकार्तिक और गणेशजी की माता हो और हे जगत् की माता ! तुम शिवजी की स्त्री हो सो हे भवानी ! तुम्हारी जय हो ॥ ३ ॥ तुम चंड राक्षस के भुजदंडों को तोड़ने वाली, और महिषासुर नाम असुर के नाश करने वाली हो । तुमने मुंड के घमंड को नाश कर उसके अंगों को तोड़ा है । तुम शुंभ निशुंभरूपी मतवाले हाथियों के रण में ( उनके फाड़ने के लिए ) सिंहनी-रूप हो और तुमने अपने क्रोधरूपी समुद्र में शत्रुओं के समूह को डुबो दिया है ॥ ४ ॥ वेद, शास्त्र, और जिनके हज़ार जीभ हैं ऐसे शेषनाग तुम्हारे गुणों का वर्णन करते हैं पर तुम्हारा गुण वर्णन (उनके लिए) बड़ा भारी कठिन है ( अर्थात् उनसे भी हो नहीं सकता ) । हे माता ! मुझ तुलसीदास को अपने मेघ समान श्याम स्वरूप रामजी में ऐसा प्रण, प्रेम और नेम दो कि जैसा चातक का प्रण, प्रेम और नेम श्याम मेघ में होता है ( अर्थात् प्राण भले ही जाते रहें पर प्रेम के नेम का प्रण न छूटे ) ॥ ५ ॥

सन्धि-विभाग—मूल + असि । अनुकूला + असि । सीमा + असि । भीमा ( भयंकर ) + असि । रामा ( जानकी वा लक्ष्मी ) + असि । वामा ( पार्वती ) + असि । अम्बा + असि । जाया ( स्त्री ) + असि ॥

शब्दार्थ—सूल = जड़, उत्पत्तिस्थान। असि = हो। भव्य = सुन्दर। मार = काम। छमुख = स्वामि-कार्तिक। हेरंब = गणेश। बृन्द = समूह। चंड, सुम्भ, निसुम्भ ये सब राक्षस थे इनको देवी ने मारा है। इनकी कथा मार्कण्डेयपुराण में है। गुर्वि = भारी। उर्विधर = भूमिधारी। सहस जीहा = हज़ार जीभवाला शेषनाग।

## राग रामकली।

[ १६ ]

जय जय जगजननि देवि सुरनरमुनिअसुरसेवि, भुक्तिमुक्ति-दायनि भयहरनि कालिका।

मङ्गलमुद सिद्धिसदनि पर्वसर्वरीस-वदनि तापतिमिरतरुनतरनि-किरनमालिका ॥ १ ॥

वर्मचर्म करकृपान सूलसेलधनुषबान, धरनि दलनिदानवदल, रन-करालिका।

पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत, भूत ग्रह बेताल खग मृगालि जालिका ॥ २ ॥

जय महेसभामिनी अनेकरूपनामिनी समस्तलोकस्वामिनी हिमसैलबालिका।

रघुपतिपद परम प्रेम तुलसी चह अचलनेम देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रनतपालिका ॥ ३ ॥

हे जगत् की माता! हे देवि! तुम्हारी जय जय। देवता, मनुष्य, मुनि और दैत्य तुम्हारी सेवा करते हैं और तुम (भक्तों को) सम्पत्ति और मोक्ष देनेवाली और उनका भय हरने के लिए कालिका हो। तुम आनन्द-मंगल और सिद्धियों की स्थान (अर्थात् देने वाली) हो, पूर्णिमा की रात्रि के चन्द्रमा के समान तुम्हारा मुख है और (कायिक, वाचिक, मानसिक) तापरूपी अंधकार को तरुण (मध्याह्न के) सूर्य की किरणों की माला अर्थात् समूह हो। (भाव—जैसे सूर्य से अँधेरा नहीं रहता वैसे ही तुम्हारी कृपा से ताप नष्ट हो जाता है) ॥ १ ॥ तुम बख़्तर (पहरे) और हाथों में ढाल, तलवार, त्रिशूल, सांगी, धनुष और बाण धारण किये हो- और दैत्यों की सेना का नाश करने वाली और युद्ध में भयानकरूप हो। और पूतना, पिशाच, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी, समेत भूत, ग्रह, बैतालरूपी खग और मृग की पाँति के (पकड़ने के) लिए जालरूप हो ॥२॥

हे पार्वतीजी ! तुम्हारी जय हो । तुम्हारे अनेक रूप और नाम हैं। तुम सब संसार की स्वामिनी और हिमाचल की पुत्री हो । मैं तुलसीदास रघुनाथजी के चरणों में भारी प्रेम और अचल नेम चाहता हूँ ; ( सो हे माता ! ) प्रसन्न होकर दो और हे भक्तजनों की पालन करने वाली ! मेरी रक्षा करो ॥ ३ ॥

सन्धिविभाग—मृगालि = मृग + अलि ( पंक्ति ) ।

शब्दार्थ—पर्व = पूतो । सर्वरी = रात्रि । तरनि = सूर्य । वर्म = बख़तर । चर्म = ढाल ।

## राग रामकली ।

### गंगा-स्तुति ।

[ १७ ]

जै जै भगीरथनन्दिनि मुनिचयचकोरचंदनि नर-नाग-विबुध-वन्दिनि जय जह्नुबालिका ।
विष्णुपदसरोजजासि, ईससीस पर विभासि, त्रिपथगासि पुन्य-रासि पापछालिका ॥ १ ॥
विमल विपुल बहसि वारि, सीतल त्रयतापहारि, भवँरवरविभङ्गतर तरङ्गमालिका ।
पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवलधार, भंजनि भवभार, भक्ति-कल्प थालिका ॥ २ ॥
निजतटवासी विहङ्ग जल थल चर पसु पतङ्ग, कीट जटिल तापस सब सरिस पालिका ।
तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुवंस-वीर विचरत मति देहि मोहमहिषकालिका ॥ ३ ॥

हे भगीरथ की पुत्री ! तुम्हारी जय हो । तुम मुनियों के समूहरूपी चकोरों को ( आनन्द देने के लिए ) चाँदनी रूप हो ! मनुष्य, नाग, और देवता तुम्हें माथा नवाते हैं सो हे जह्नु की पुत्री ! तुम्हारी जय हो । तुम विष्णु के चरण-कमल से उत्पन्न हुई हो, शिवजी के मस्तक पर शोभायमान हो, (स्वर्ग मर्त्य और पाताल इन ) तीन मार्गों से गई हो, पुण्य की राशि और पापों को धोनेवाली हो ॥१॥ तुम गहरे और निर्मल

जल को धारण किये हो, जो कि शीतल और तीनों (१) तापों को हरनेवाला है। और तुम सुन्दर भँवर और बड़ी चंचल तरंगों की माला धारण किये हो (अर्थात् तुम्हारे जल में सुन्दर भँवरें पड़ रही हैं और चंचल तरंगें उठ रही हैं), पुर के रहनेवालों ने जो पूजा के समय (चन्दन, फूल, दूध, आदि वस्तु) भेंट चढ़ाई है उससे तुम्हारी चन्द्रमा के समान उजली धारा शोभायमान हो रही है। तुम संसार के भार (आवागमन) को नाश करनेवाली हो (अर्थात् जो तुममें स्नान करता है वा तुम्हारा जल पान करता है वह मुक्त हो जाता है) और तुम भक्तिरूपी कल्पवृक्ष के लिए थाँवला रूप हो (अर्थात् तुम्हारे सेवन से रामभक्ति सदा बनी रहती है)॥ २॥ तुम अपने तट के रहनेवाले पक्षी, जलचारी, थलचारी, पशु, पतंग, कीट और जटाधारी तपस्वी सबका एक सा पालन करती हो (अर्थात् सबको मुक्त कर देती हो)। हे! मोहरूपी महिषासुर को (मारने के लिए) काली रूप! मुझे ऐसी बुद्धि दो कि मैं तुलसीदास तुम्हारे किनारे किनारे रघुवंश के वीर (श्रीरामचन्द्रजी) का स्मरण करता हुआ फिरता रहूँ॥ ३॥

सन्धिविभाग—सरोज(कमल से) + जा (उत्पन्न हुई) + असि (हो)। त्रिपथगा + असि।

शब्दार्थ—चय = समूह। जह्नु = एक ऋषि (जह्नु ऋषि गंगा तट पर रहते थे। एक बार गंगाजी ऐसी चढ़ीं कि ऋषि का आश्रम भी डूब गया। यह देख ऋषि गंगाजी का पान कर गये। परन्तु जब भगीरथजी ने बड़ी विनय की तब फिर उन्हें प्रगट कर दिया इसलिए गंगा जह्नु की पुत्री कहलाती हैं)। विपुल = बहुत। विभंगतर = बड़ी चंचल। थालिका = थामला। सरिस = बराबर।

[ १८ ]

**जयति जय सुरसरी जगदखिल पावनी।**
**विष्णुपदकंज-मकरन्द इव अम्बुवर वहसि, दुखदहसि अघवृन्द-विद्रावनी॥ १॥**
**मिलित जलपात्र अज जुक्त हरिचरनरज विरजवरवारि त्रिपुरारि सिर धामिनी।**
**जह्नुकन्या धन्य पुन्यकृतसगरसुत, भूधरद्रोनि विद्दरनि बहुनामिनी॥ २॥**

---

(१) तीन ताप अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

जच्छ गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृतपुंज जुतकामिनी।
स्वर्गसोपान विज्ञानज्ञानप्रदे मोह मद मदन पाथोज हिमजामिनी॥
हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीर वर, मध्यधाराविसद विस्व-अभिरामिनी।
नीलपरजंककृतसयनसर्पेस जनु, सहससीसावलीस्रोत सुरस्वामिनी।
अमित-महिमा अमित रूप भूपावलीमुकुटमनिवंदित त्रैलोकपथ-गामिनी।
देहि रघुवीरपद प्रीति निरभर मातु, दास तुलसी त्रासहरनि भवभामिनी॥ ५॥

हे गंगाजी! तुम्हारी जय हो! तुम सब संसार को पवित्र करनेवाली हो। विष्णु के चरण-कमल के पराग के समान सुन्दर जल को धारण कर रही हो, दुःखों को भस्म करती हो और पापों के झुंड को भगानेवाली हो॥ १॥ ब्रह्माजी के कमण्डलु में भगवान् के चरणों की रज जिसमें मिली हुई है ऐसा तुम्हारा सुन्दर, निर्मल जल भर रहा है और तुम शिवजी के शिर पर रहनेवाली हो। हे जह्नु (१) की कन्या तुम्हें धन्य है, तुमने सगर के पुत्रों को पवित्र किया है, तुम पर्वत के गंध द्रव्य और वृक्ष आदि का नाश करने वाली हो और तुम्हारे बहुत से नाम हैं॥ २॥ जो यक्ष, गंधर्व, मुनि, किन्नर, नाग, दैत्य और मनुष्य अपनी स्त्रियों समेत स्नान करते हैं वे पुण्य के समूह (अर्थात् बड़े पुण्यात्मा) हो जाते हैं। तुम स्वर्ग की निसेनी हो (अर्थात् पापियों का पाप दूर कर उन्हें स्वर्ग में पहुँचा देती हो) और आत्मज्ञान तथा ज्ञान की देनेवाली हो और मोह, मद, काम-रूपी कमल (जो हृदय-तड़ाग में खिल रहे हैं उनका नाश करने) के लिए हिम ऋतु की रात्रि हो (अर्थात् सब विकारों को मिटा कर अन्तःकरण को शुद्ध कर देती हो)॥ ३॥ हरे और घने बेंत तुम्हारे सुन्दर दोनों तीरों पर लग रहे हैं और उनके बीच में संसार को सुख देनेवाली तुम्हारी निर्मल धारा (बह रही) है (सो उसकी कैसी शोभा हो रही है) मानो नील रंग के पलङ्ग पर शेषनाग सो रहे हैं और हे देवताओं की स्वामिनी!

[१] १७ वें भजन के शब्दार्थ में देखो।

तुम्हारे ( जो हज़ारों ) सोते ( इधर उधर वह रहे हैं सोई मानों ) शेषजी के हज़ार फनों की पंक्तियाँ हैं ॥ ४ ॥ तुम्हारी महिमा की सीमा नहीं है, तुम्हारे अनगिनत रूप हैं और राजाओं के समूह अपने मुकुट-मणियों से तुम्हें प्रणाम करते हैं। तुम तीनों लोकों के मार्ग से गई हो। हे माता! ( मुझ ) तुलसीदास को रघुनाथजी के चरणों की गाढ़ी प्रीति दो, ( क्योंकि ) तुम भय के हरनेवाली और शिवजी की पत्नी हो ( कि जो सबका दुःख हरनेवाले हैं ) ॥ ५ ॥

सन्धिविभाग—किन्नर + उरग ( सर्प )। सीस + अवली ( पाँति )। भूप + अवली।

शब्दार्थ—अंबु = जल । वृन्द = समूह । अज = ब्रह्मा । विरज = निर्मल । पाथोज = कमल । जामिनी = रात्रि। द्रोणि = पर्वत पर उत्पन्न हुए गंध, द्रव्य, वृक्ष आदि । वानीर = वेंत । स्रोत = सोता । निर्भर = गाढ़ा, बहुत । त्रास = भय । भव = शिव

[ १९ ]

हरनि पाप त्रिविधताप सुमिरत सुरसरित ।
बिलसति महि कल्पवेलि मुदमनोरथ फरित ॥ १ ॥
सोहत ससिधौलधार सुधासलिलभरित ।
विमलतर तरङ्ग लसत रघुवरकेसेचरित ॥ २ ॥
तो विनु जगदंब गंग कलियुग का करित ।
घोर भव अपारसिंधु तुलसी किमि तरित ॥ ३ ॥

हे गंगाजी! स्मरण करते ही तुम पाप और तीन प्रकार के तापों को हरनेवाली हो और पृथ्वी पर कल्पवेलि के समान शोभायमान हो और आनन्द और मनोरथों को सफल करती हो ॥ १ ॥ तुम्हारी धारा चन्द्रमा के समान श्वेत शोभायमान है, उसमें अमृत समान जल भर रहा है। और ( निर्मल ) रामचरित्र के समान उसमें बड़ी निर्मल तरंगें उठ रही हैं ( भाव यह है कि जैसे रामजी के चरित्र, काम क्रोधादिरहित निर्मल हैं वैसी ही तुम्हारी तरंगें निर्मल हैं ) ॥ २ ॥ हे जगत् की माता गंगाजी! तुम्हारे बिना ( अर्थात् जो तुम पृथ्वी पर न आतीं तो न जाने ) कलियुग क्या क्या करता। और भयंकर संसाररूपी अपार समुद्र से तुलसीदास कैसे तरता ॥ ३ ॥

[ २० ]

ईससीस बससि त्रिपथ लससि नभपतालधरनि ।
सुर नर नाग मुनि सिद्ध सुजन मङ्गल करनि ॥ १ ॥

देखत दुख दोष दुरित दाह दारिद दरनि ।
सगर-सुवन साँसतिसमनि जलनिधिजल भरनि ॥ २ ॥
महिमा की अवधि करसि बहु विधि हरि हरनि ।
तुलसी करु बानि विमल, विमल-वारि-वरनि ॥ ३ ॥

(हे गंगे!) तुम शिवजी के शिर पर निवास करती हो, आकाश, पाताल और पृथ्वी (ये तुम्हारे) तीन मार्ग शोभित हैं (अर्थात् एक मार्ग से आकाश को, एक से पाताल को और एक से पृथ्वी पर गई हो इसलिए) देवता, मनुष्य, मुनि, नाग, सिद्ध और हरि-भक्त (इन सब) का मङ्गल करने वाली हो ॥१॥ तुम अपने दर्शनमात्र से दुःख, दोष, पाप, (तीन प्रकार का) ताप और दरिद्रता के नाश करने वाली हो। तुमने सगर के पुत्रों की (कि जो कपिल मुनि के शाप से भस्म हो गये थे और जिन्हें नरक होना चाहिए था) यम-यातना को दूर कर दिया, और तुम अपने जल से समुद्र को भी भरने वाली हो (अर्थात् ऐसे बड़े और गंभीर समुद्र को भी याचक बना रक्खा है) ॥ २ ॥ तुम ब्रह्मा, विष्णु और महेश की बड़ी महिमा की मर्यादा रख रही हो (अर्थात् ब्रह्मा के कमंडलु में तुम्हारा जल रहने से ब्रह्मा की, विष्णु के चरणों से निकलने के कारण विष्णु की, और शिवजी की जटा में रहने से शिव की महिमा तुमने बढ़ा रक्खी है इसलिए) तुलसी की वाणी को भी ऐसी निर्मल कर दो कि जैसा तुम्हारे निर्मल जल का रंग है ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—साँसति = यम-यातना। अवधि = हद, मर्यादा। वारिवरनि = पानी जैसे रंगवाली।

## राग बिलावल ।

### यमुना-स्तुति ।

[ २१ ]

गरमी के दिनों में जब यमुनाजी में थोड़ा सा जल रह गया तब कलियुग प्रसन्न होने लगा कि अच्छा है सब सूख जाय तो मेरा राज्य हो, पुण्य को निकाल पाप फैलाऊँगा। परन्तु वर्षा का जल पाकरः—

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न ।
त्यौं त्यौं सुकृत सुभट कलि भूपहिं, निदरि लगे बहु काढ़न ॥१॥
ज्यौं ज्यौं जल मलीन त्यौं त्यौं जमगन मुख मलीन है आढ़न ।
तुलसिदास जगदघजवास ज्यौं अनघमेघ लागे डाढ़न ॥ २ ॥

यमुनाजी ज्यों ज्यों बढ़ने लगीं, त्यों त्यों पुण्यरूपी योधा कलिरूपी राजा को बड़े निरादर से (गरदन पकड़ कर) निकालने लगे (भाव—यमुना के बढ़ने से पुण्य की वृद्धि हुई और कलियुगरूपी अधर्मी राजा नष्ट हुआ) ॥ १ ॥ (गरमी में यमुना का थोड़ा जल देख यमदूतों का भी मुख प्रसन्न था, कारण न यमुना में जल होगा और न कोई स्नान कर स्वर्ग जायगा, सबको हमही बाँध कर ले जायँगे) पर जैसे जैसे (वर्षा होने से यमुनाजी बढ़ीं और उनका) जल गदला होता गया त्यों त्यों यम के दूतों का मुख काला होता गया, (अन्त में) कोई सहारा नहीं रहा (अर्थात् लाचार हो गये) और जगत् में पापरूपी जवासे को पुण्यरूपी मेघ जलाने लगे (इस पद का भाव यह है कि जैसे गरमियों में जवासा हरा होता है और वर्षा का जल पड़ते ही जल जाता है ऐसे ही कलिरूपी ग्रीष्म पाकर जो पापरूपी जवासा बढ़ा था उसे यमुना के बढ़ते ही पुण्यरूपी मेघों ने जला दिया अर्थात् जब यमुना बढ़ीं तब अधर्म का नाश हुआ और धर्म बढ़ा) ॥ २ ॥

सन्धिविभाग—जगदघ = जगत् + अघ = पाप।

शब्दार्थ—आढ़न = आड़, सहारा। न = नहीं। डाढ़ना = जलाना

## राग भैरव।

### काशी-स्तुति।

[ २२ ]

सेइय सहित सनेह देहभर, कामधेनु कलि कासी।
समनि सोक सन्ताप पाप रुज, सकलसुमंगलरासी ॥ १ ॥
मरजादा चहुँ ओर चरनवर, सेवत सुरपुरवासी।
तीरथ सब सुभअंग रोम सिवलिङ्ग अमित अविनासी ॥ २ ॥
अन्तरअयन अयनु भलथनु फल, बच्छ वेद बिस्वासी।
गलकंबल वरुना विभाति जनु, लूम लसति सरितासी ॥ ३ ॥
दंडपानि भैरव विषान मलरुचि खलगन भयदासी।
लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटासी ॥ ४ ॥
मनिकर्निका वदन ससिसुन्दर, सुरसरि सुख सुखमासी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन, पञ्चकोसि महिमासी ॥ ५ ॥

विस्वनाथ पालक, कृपालचित, लल ति नित गिरिजासी ।
सिद्धि सची सारद पूजहिँ मन, जुगवत रहति रमासी ॥ ६ ॥
पञ्चाच्छरी प्रान, मुदमाधव, गव्य सुपञ्चनदासी ।
ब्रह्म जीव सम राम नाम जुग, आखर विस्वविकासी ॥ ७ ॥
चारितु चरति करम कुकरम करि, मरत जीवगन घासी ।
लहत परमपद पय पावन, जेहि चहत प्रपञ्चउदासी ॥ ८ ॥
कहत पुरान रची केसव निज कर करतूति कलासी ।
तुलसी वसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी ॥ ९ ॥

प्रेम समेत जन्म भर इस कलियुग में कामधेनु रूप काशी का सेवन करना चाहिए। वह शोक, (तीन प्रकार के) संताप, पाप और रोग का नाश करने वाली है और सब सुन्दर मंगलों की राशि है ॥ १ ॥ (कामधेनु के चार चरण होते हैं, यहाँ) चारों दिशाओं की जो सीमा है सो ही (काशी के) सुन्दर चरण हैं। और (कामधेनु का) देवता सेवन करते हैं और (काशी की) सेवा पुरवासी करते हैं (और जैसे कामधेनु के सिर, कंधा, पीठ, कोख आदि अंग और रोम होते हैं ऐसे ही) काशी के सब तीर्थ उसके अंग हैं और अनगिनत और विनाशरहित जितने शिवलिंग हैं वे ही उसके रोम हैं ॥ २ ॥ (जैसे कामधेनु के ऐन, चार थन, बछड़ा, गल-कंवल और पूँछ होती है ऐसे ही काशी के) अंतरगृही ही ऐन है; (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार प्रकार के) फल ही सुन्दर थन हैं और वेद पर विश्वास करने वाले ही बछड़े हैं। सुन्दर वरुणा नदी ही गल-कंवल है और असी नदी मानो पूँछ शोभायमान है ॥ ३ ॥ (कामधेनु के सींग और नेत्र होते हैं और गले में घंटा बँधा रहता है सो यहाँ काशी के) दंडपाणि और भैरव ही दोनों सींग हैं उनसे वह पाप में जिनकी रुचि है ऐसे दुष्टों के समूह को भय देनेवाली (अर्थात् मारनेवाली) है। लोलार्क (कुंड) और त्रिलोचन तीर्थ (उसके दोनों) नेत्र हैं और कर्ण घंटा-तीर्थ ही घंटा है ॥ ४ ॥ (कामधेनु के मुख से उसकी शोभा और महिमा होती है यहाँ काशी का) मणिकर्णिका ही चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख है और गंगाजी का सुख (अर्थात् वहाँ स्थिरता से बहना सो ही) शोभा है और स्वार्थ (स्त्री, पुत्र, धन, धाम आदि का सुख) और परमार्थ (मोक्ष) से परिपूर्ण (अर्थात् देनेवाला) पंचकोसी तीर्थ ही उसकी महिमा है ॥ ५ ॥ (धेनु के साथ

पालक, प्यार करने वाला पूजक और देखने वाला भी होता है सो यहाँ काशी के) विश्वनाथजी ही पालक हैं (सो कैसे हैं कि) चित्त में बड़े दयालु। पार्वती सरीखी उसका नित्य दुलार करती रहती हैं, अष्टसिद्धि, इन्द्राणी और सरस्वती (मनोकामना पाने के लिए उस धेनु का) पूजन करती हैं और लक्ष्मीजी सरीखी उसके मन कहिए रुख को देखती रहती हैं (कि जो आज्ञा करे उसे तुरन्त करूँ) ॥ ६ ॥ (गौ के (१) पाँच प्राण और अन्तःकरण में आनन्द होता है और यहाँ काशी के) पंचाक्षरी मंत्र ही पाँच प्राण हैं और बिन्दुमाधव ही आनन्द है। धेनु के पंचगव्य होता है कि जिसे पीकर मनुष्य पवित्र होता है; यहाँ काशी के) पंच नदी तीर्थ ही पंचगव्य (२) है। फिर गाय के भीतर ब्रह्मजीव रहते हैं सो यहाँ काशी के) ब्रह्मजीव के समान संसार को प्रकाश करने वाले राम नाम के दो अक्षर हैं (अर्थात् रकार ब्रह्म और मकार जीव) ॥ ७ ॥ (धेनु घास चरती है यहाँ काशी के लिए) बुरे भले कर्म करके मरने वाले जो जीवगण हैं वही घास है। (जो कोई इस काशी का सेवन करता है वह) परम पदरूपी पवित्र दूध पाता है कि जिसको संसार से विरक्त रहने वाले चाहा करते हैं। (भाव यह है कि शुभ कर्म का फल स्वर्ग और अशुभ का फल नरक है परन्तु यहाँ काशी में मरनेवाले को कुछ नहीं होता क्योंकि काशी में मरने से प्राणी के सब शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं और उसकी मुक्ति हो जाती है) ॥ ८ ॥ पुराण कहते हैं कि भगवान् ने अपने हाथ से (काशी को नमूने के तौर पर) रच कर अपनी कारीगरी की बानगी दिखाई है। सो हे तुलसीदास! जो तू सुखी अथवा संसार से निश्चिन्त हुआ चाहे तो काशी में रह कर राम नाम को जपा कर ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—रुज = रोग। गलकंवल = जो गाय के गले में लटकता है। अंतरअयन = अंतरगृही (काशी के तीर्थों की परिक्रमा) लूम = पूँछ। सरिता + असी (नाम की नदी) विषान = सींग। सुखमा = शोभा। .

## राग वसन्त।

### चित्रकूट।

[ २३ ]

**सब सोचविमोचन चित्रकूट। कलिहरन करनकल्यान बूट ॥१॥**
**सुचि अवनि सुहावनि आलबाल। कानन विचित्र बारीबिसाल ॥**
**मन्दाकिनिमालिनि सदासींच। वरवारि, विषम नर नारि नीच ॥२॥**

(१)—(२)—गूढार्थ कोश में देखो।

साखा सुसृंग, भूरुहु सुपात । निरझर मधु बर, मृदु मलय वात ॥४॥
सुक पिक मधुकर मुनिवर विहारु ।
साधन प्रसून फल चारि चारु ॥ ५ ॥
भवघोर घामहर सुखद छाँह । थप्यो थिर प्रभाव जानकीनाह ॥६॥
साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ । पावत अनेक अभिमत अघाइ ॥७॥
रस एक, रहितगुनकरमकाल । सिय राम लषन पालक कृपाल ॥८॥
तुलसी जो रामपद चहिय प्रेम । सेइय गिरि करु निरुपाधिनेम ॥९॥

अब चित्रकूट की महिमा कहते हैं:—

चित्रकूट सब शोक को दूर करने वाला है । कलि का नाशक और कल्याण करने वाला हरा वृक्ष है ॥ १ ॥ ( वृक्ष थाँवले में रहता है सो चित्रकूट की ) पवित्र भूमि ही उसका सुन्दर थाँवला है । ( और जैसे हरा वृक्ष बगीचे में लगाया जाता है ऐसे ही भाँति भाँति के फूलों के खिलने से यह ) बड़ा अनोखा वन ( सो ही उसका ) बगीचा है ॥ २ ॥ ( जहाँ वृक्ष होता है वहाँ उसे पानी से सींचने के लिए माली चाहिए ) मंदाकिनीरूपी मालिन उसे अपने सुन्दर ( पवित्र ) जल से सदा ऐसे सींचती है कि जैसे छोटे बड़े नीच स्त्री पुरुष ( सुन्दर बगीचे में वृक्षों को सींचा करते हैं ) ॥ ३ ॥ ( वृक्ष में शाखा और सुन्दर पत्ते होतेहैं ऐसे ही यहाँ ) सुन्दर शृंग ही शाखा हैं ( और ऊपर लगे ) वृक्ष ही सुन्दर पत्ते हैं । ( वृक्ष में मधु होता है सो यहाँ जो ) झरना ( झिरता ) है सो ही सुन्दर मकरंद है ( वृक्ष में कोमलता और सुगंधि होती है सो यहाँ जो शीतल मंद सुगन्ध ) पवन चलती है वही इसकी कोमलता और सुगंधि है ॥ ४ ॥ (जैसे वृक्ष के ऊपर पक्षी रहते हैं वैसे ही यहाँ जो ) श्रेष्ठ मुनि विहार करते हैं वे ही तोता, कोकिल, और भौंरे हैं ( वृक्ष पर फूल फल होते हैं सो यहाँ जो मुनि योग जप आदि ) साधन करते हैं सो ही फूल हैं और ( धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये ) चार सुन्दर फल हैं ॥ ५ ॥ ( वृक्ष की छाया ताप को हरती है और इसकी ) छाया संसार के ( जन्म-मरण आदि ) कठिन संतापों का नाश कर सुन्दर सुख देती है । ( चित्रकूट का प्रभाव तो सदा से सिद्ध है परन्तु ) रघुनाथ जी ने इसके प्रभाव को और भी स्थिर कर दिया है ॥ ६ ॥ ( वृक्ष की छाया में रास्तेगीर बैठते हैं सो धर्म अर्थ आदि के ) साधनवाले ही सुन्दर पथिक हैं जो सुन्दर बड़े भाग्य से इसे पाते हैं और पाते ही अनेक ( प्रकार के ) मनोरथों से

अघा जाते हैं ( अर्थात् फिर उन्हें किसी बात की इच्छा नहीं रहती ) ॥ ७ ॥ ( वृक्ष की छाया सदा एक सी नहीं रहती परन्तु इस चित्रकूट की छाया सदा ) एक सी रहती है और ( जो इसकी सेवा करते हैं वे ) गुण, काल और कर्म से रहित हो जाते हैं ( अर्थात् उन्हें रज आदि गुण, अच्छे बुरे कर्म और कलि-काल ये नहीं व्यापते हैं क्योंकि ) कृपालु सीताराम लक्ष्मण इसके पालक हैं ॥८॥ हे तुलसीदास ! जो तू रामजी के चरणों में प्रेम चाहता है तो ( चित्रकूट ) पर्वत का सेवन ऐसे नियम से कर कि जिसमें कोई विघ्न वा खटका न हो ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—बूट = हरा वृक्ष। आलवाल = थाँवला। वारी = वाड़ी, बगीची। वारि = जल। भूरुह = वृक्ष। प्रसून = फूल। विषम = छोटे बड़े। निरुपाधि = उपाधि ( जिसमें विघ्न वा खटका ) न हो।

राग कान्हरा।

[ २४ ]

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
कोपित कलि, लोपित मङ्गल मग, विलसत बढ़त मोहमायामलु ॥१॥
भूमि विलोक रामपद अंकित, वन विलोक रघुवरविहारथलु।
सैलस्रृंग भवभंगहेतु लख, दलन कपटपाखंडदंभदलु ॥ २ ॥
जहँ जनमे जग-जनक जगतपति, विधि हरि हर परिहरि प्रपंच छलु।
सकृत प्रवेस करत जेहि आस्रम, विगत विषाद भये पारथ नलु ॥३॥
न करु विलंब विचारु चारुमति वरष, पाछिले सम अगिलेपलु।
मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे, अजर अमर हर अँचइ हलाहलु ॥ ४ ॥
राम नाम जप जाग करत नित, मज्जन पय पावन पीवत जलु।
करिहैं राम भावतौ मन को सुख, साधन अनयास महाफलु ॥५॥
कामदमनि कामता कल्पतरु, सो जुग जुग जागति जगती तलु।
तुलसी तोहिं विसेषि बूझिए, एक प्रतीत प्रीति एक बलु ॥६॥

( गुसांईजी अपने चित्त से कहते हैं कि ) हे चित्त ! अब तो चेत और चित्रकूट को चल। कलियुग ने क्रोध करके ( जप, तप, दया, ज्ञान, भक्ति इत्यादि धर्म के ) मंगल

मार्गों का लोप कर दिया इससे अज्ञान, माया और पाप बढ़ते जाते हैं और वह प्रसन्न होता है ॥ १ ॥ ( चित्रकूट की ) भूमि जो रामजी के चरणों से अंकित है ( अर्थात् जिसमें रामजी के चरणों के चिह्न बने हुए हैं ) उसे देख ( अहिल्या की भाँति तू भी तर जायगा ) और रघुनाथजी के विहार के स्थान वन को देख ( इससे तेरे तीन प्रकार के सन्ताप दूर हो जायँगे ) फिर पर्वत के शिखरों को देख जो संसार ( अर्थात् जन्म-मृत्यु आदि ) के नाश का ( मुख्य ) कारण हैं ( उनके दर्शन करने से तू मुक्त हो जायगा ) और ( यह चित्रकूट ) कपट, पाखंड, दंभ के दल को नाश करने वाला है ॥ २ ॥ जिस ( चित्रकूट ) में जगत् के पिता और संसार के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु, महेश ( संसार के ) प्रपंच (१) ( अर्थात् उत्पत्ति, पालन, नाश ) और छल (२) छोड़ कर जनमे हैं और जिस आश्रम में एक बार प्रवेश करते ही युधिष्ठिर (३) आदि और नल (४) का दुःख दूर होगया था ॥ ३ ॥ अब देर मत कर और ( अपनी ) सुन्दर बुद्धि से पिछले वर्षों को सौ वर्ष और आनेवाले वर्षों को पल के समान विचार ( अर्थात् मूर्खता से बीते हुए वर्षों को जो तू पल के समान गिनता है और आने वाले पलों को वर्ष मानता है कि अभी बहुत जीना है सो तुझे यह सोचना चाहिए कि जितनी आयु बीत गई सो सौ वर्ष बीत गये और जो आयु बाक़ी है उसे पल मान कर यह समझ कि मृत्यु पास है और जो करना है उसे जल्दी कर ले ) और ( वहाँ जाकर ) उस ( राम ) मंत्र को जप कि जिसके जपने से शिवजी अजर अमर हो गये और हलाहल ( विष ) को पी गये ॥ ४ ॥ ( जब तू वहाँ ) राम नाम का जपरूपी यज्ञ, और पयस्विनी नदी के पवित्र जल में नित्य स्नान, करता रहेगा और उसके जल को पीता रहेगा तब रामजी तेरे मन

---

(१) चित्रकूट में अत्रि मुनि और अनुसूया के तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा विष्णु, महेश, ने दर्शन दिया और कहा कि वर मांगो—उन्होंने कहा कि हमारे वायु समान पुत्र हों। शिवजी ने कहा कि तुम्हारे ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा, विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और मेरे अंश से दुर्वासा ये तीन पुत्र होंगे। इसी वरदान को पूरा करने के लिए ब्रह्माजी ने जगत् की रचना, विष्णु ने पालन और शिवजी ने संहार को छोड़ कर वहाँ जन्म लिया।

(२) ब्रह्माजी ने और शिवजी ने बहुत से दैत्यों को वरदान दे दिया पर जब वे दुःख देने लगे तो भगवान् के हाथ से उनको मरवा दिया—विष्णु ने कच्छ, मच्छ आदि अवतार लेकर छल के बहुत से काम किये; ऐसी कथायें पुराणों में भरी पड़ी हैं।

(३) जब दुर्योधन ने छल करके पांडवों का राज्य ले लिया था तब उन्होंने चित्रकूट में आकर तप किया और उसके प्रभाव से फिर राज्य पाया।

(४) जब राजा नल का राज्य भी जुए के कारण छिन गया और दमयन्ती का वियोग हुआ तब उसका दुःख भी इसका सेवन करने से दूर हो गया और उसने फिर राज्य पाया।

का मनोरथ पूरा करेंगे और इस सुखपूर्वक साधन से बिना ही परिश्रम के बड़े बड़े ( धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ) फल देंगे ॥ ५ ॥ ( जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष स्वर्ग में हैं वैसे ही यहाँ चित्रकूट में ) कामतानाथ जो पर्वत है वही कामदमणि ( अर्थात् चिन्तामणि और कल्पवृक्ष ) है सो युग युग में पृथ्वीतल पर प्रकाशित रहता है और ( यों तो चित्रकूट का फल सबको ही समझना चाहिए पर ) हे तुलसी, तुझे विशेष करके केवल उसीका विश्वास, प्रेम और एक बल समझना चाहिए ( इसीसे रामजी प्रसन्न होंगे ) ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—सकृत=एकबार । चारु=सुन्दर । कामदमनि=जो सब मनोरथों को दे ऐसा रत्न । अजर=जो बूढ़ा न हो । जगती=पृथ्वी ।

## राग धनाश्री ।

### हनुमानजी की स्तुति ।

[ २५ ]

जयति अंजनीगर्भअम्भोधिसंभूतविधुविबुधकुलकैरवानन्दकारी ।
केसरी चारु लोचन चकोरक सुखद, लोकगनसोकसन्तापहारी ॥
जयति जय बाल कपि केलि कौतुक उदित चंडकरमंडल ग्रासकर्त्ता ।
राहु-रवि-सक्र-पविगर्वखर्वीकरन सरनभयहरन जय भुअनभर्त्ता ॥
जयति रनधीर रघुवीरहित देवमनि रुद्र अवतार संसारपाता ।
बिप्रसुरसिद्धमुनिआसिषाकारवपु विमलगुनबुद्धिवारिधिविधाता ॥
जयति सुग्रीव सिच्छादि रच्छननिपुन बालिबलसालिवधमुख्यहेतू ।
जलधिलंघन सिंहसिंहिकामदमथन रजनिचरनगरउत्पातकेतू ॥४॥
जयति भूनंदिनी सोचमोचन विपिनदलन घननादवस विगतसंका ।
लूमलीला अनलज्वालमालाकुलित होलिकाकरन लंकेसलंका ॥
जयति सौमित्ररघुनन्दनानन्दकर रिच्छकपिकटकसंघटविधाई ।
बद्धवारिधसेतु अमरमंगलहेतु भानुकुलकेतुरनविजयदाई ॥ ६ ॥
जयति जय वज्रतनु दसन नख मुख विकट, चंड भुजदंड तरु-
सैल पानी ।

समर तैलिकजंत्र तिलतमीचरनिकर पेरि डारे सुभट घालि घानी ॥
जयति दशकंठघटकरनवारिदनाद कदनकारन, कालिनेमिहन्ता ।
अघटघटनासुघट सुघटविघटन विकटभूमिपातालजलगगन
गन्ता ॥ ८ ॥
जयति विस्वविख्यात बानैत विरदावली विदुष, बरणत वेद विमल-
बानी ।
दासतुलसी त्राससमन सीतारमनसंगसोभितरामराजधानी ॥६॥

हे हनुमानजी ! तुम्हारी जय हो, तुम अंजनी के गर्भरूपी समुद्र से चन्द्ररूपी उत्पन्न होकर देवताओं के कुलरूपी कुमुदों को आनन्द देनेवाले हो, ( अर्थात् जैसे समुद्र से चन्द्रमा उत्पन्न होकर कुमुदों को खिलाता है ऐसे ही तुमने अंजनी के गर्भ से उत्पन्न होकर देवताओं को आनन्द दिया )। केसरी के सुन्दर नेत्ररूपी चकोरों को सुख देने वाले हो ( अर्थात् जैसे चन्द्रमा को देख चकोर सुख पाता है वैसे ही तुम्हारा पिता केसरी तुम्हें देख सुखी होता है ) और तुम लोकगण ( अर्थात् तीनों लोकों ) के शोक और संताप के दूर करनेवाले हो ॥ १ ॥ हे महावीर ! बालकपन ( १ ) में तुमने अपनी लीला से ऐसा खेल किया था कि उदय हुए प्रचण्ड किरणोंवाले ( सूर्य ) के मंडल को लीलने गये थे और ( उस समय तुमने ) राहु, सूर्य, इन्द्र और वज्र इनके घमंड को थोड़ा ( २ ) कर दिया था। तुम्हारी जय हो, जय हो। हे शरणागत के भय को दूर करनेवाले और

---

( १ ) एक दिन हनुमानजी बालकपन में अमावस के दिन सूर्य को लाल फल जान उसे खाने के लिए उसके पास पहुँच गये उसी समय ग्रहण होने के कारण सूर्य को राहु ग्रसने आया और हनुमानजी के तेज को न सह कर सीधा इन्द्र के पास जाकर कहने लगा कि तुमने तो हमें सूर्य, चन्द्रमा भोजन के लिए दिये थे सो सूर्य को तो कोई और बड़ा तेजस्वी खाने आया है। यह सुन इन्द्र हाथी पर सवार हो राहु के साथ सूर्य के पास आये। आते ही हनुमानजी राहु को भक्षण करने के लिए दौड़े पर वह तो डर के मारे दूर से ही भाग गया फिर यह इन्द्र पर लपके सो उसने इनकी ठोड़ी में ऐसा वज्र मारा कि वह चपटी हो गई और यह मूर्छित होकर गिर पड़े और वज्र की भी धार कुण्ठित पड़ गई। इसकी पूरी कथा वाल्मीकिरामायण में लिखी है।

(२) सूर्य को घमंड था कि मेरा तेज कोई नहीं सह सकता; उसे सहा। राहु को घमंड था कि मैं सूर्य का भक्षण करनेवाला हूँ सो वह इन्हें देख डर कर भागा; इन्द्र को गर्व था कि मेरे वज्र से कोई नहीं बच सकता सो भी वृथा हुआ और धार बिगड़ी। इस प्रकार इन सबका गर्व थोड़ा कर दिया।

संसार के स्वामी! तुम्हारी जय हो ॥ २ ॥ तुम युद्ध में बड़े धीर, रामजी के हितकारी, देवताओं के शिरोमणि रुद्र का अवतार और संसार के रक्षक हो। तुम्हारा शरीर ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनि इनके आशीर्वाद की मूर्त्ति है, (अर्थात् जब इन्द्र ने तुम्हारे वज्र मारा था और पवन ने कोप कर सबका श्वास बन्द कर दिया था तब घबरा कर सबने जाकर तुम्हें आशीर्वाद दिया था) तुम निर्मल-गुण और बुद्धि के समुद्र और विधाता हो, तुम्हारी जय ॥ ३ ॥ तुम शिक्षा आदि से सुग्रीव की रक्षा करने में चतुर हो, (अर्थात् सुग्रीव राज्य पाकर जब सीताजी की सुध भूल गया था तब तुमने जाकर उसे शिक्षा दी थी) बालि जो बल से शोभित था अर्थात् बड़ा बली था उसके मारे जाने में तुम ही मुख्य कारण हो, तुम समुद्र के लाँघते समय सिंहिका (१) राक्षसी के घमंड को तोड़ने के लिए सिंह के समान (शूर-वीर) और राक्षस (रावण) के नगर (लंका) में उत्पात करने को केतुरूप थे (अर्थात् पुच्छल-तारे के समान कि जहाँ वह उदय हो वहाँ का ही नाश करे) ऐसे आपकी जय ॥ ४ ॥ तुम जानकीजी के शोक को छुड़ानेवाले और (रावण की अशोक) वाटिका का विध्वंस करनेवाले हो। तुम मेघनाद के वश होने पर भी (अर्थात् जब मेघनाद ने तुम्हें ब्रह्मास्त्र में बाँध लिया था तब भी) भयरहित रहे। और तुम पूंछ की लीला से (फैली हुई) अग्नि की लपटों की माला से घबराये हुए रावण की लंका की होली करनेवाले हो। तुम्हारी जय हो ॥ ५ ॥ लक्ष्मण और रघुनाथजी को आनन्द देनेवाले, रीछ बन्दरों की सेना को इकट्ठा करके समुद्र का पुल बाँधनेवाले, देवताओं के मङ्गल के कारण (अर्थात् करनेवाले) और सूर्य-कुल के पताका (रघुनाथजी) को युद्ध में विजय देनेवाले हो तुम्हारी जय हो ॥ ६ ॥ तुम्हारा शरीर, दाँत और नख वज्र के समान हैं, (कि जिनमें चोट नहीं लगती) भयंकर मुख है (कि जिसे देख राक्षस डर जायँ), तुम्हारे भुजदंड चंड (अर्थात् बड़े पुष्ट और बली) हैं, तुम हाथों में वृक्ष और पर्वतों को उठानेवाले हो। और तुमने संग्रामरूपी तेल के यन्त्र में राक्षसों के झुंड और बड़े बड़े योद्धारूपी तिलों को गेर कर घानी की तरह पेल डाला है ऐसे आपकी जय हो ॥ ७ ॥ तुम रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद के नाश करने में मुख्य कारण (अर्थात् उपाय करनेवाले) और कालनेमि के (२) नाशक हो। जो घटना (बात) अघट है अर्थात् नहीं हो सकती है उसके

---

(१) सिंहिका राक्षसी समुद्र में रहती थी और जीवजन्तु की परछाईं पकड़ उसे खा जाती थी। जब हनुमान ने समुद्र फांदा तब उसने इनसे भी वही छल किया परन्तु इन्होंने उसका गर्व नष्ट कर दिया।

(२) कालनेमि राक्षस था। जब लक्ष्मणजी के शक्ति लगी थी और हनुमानजी संजीवनी बूटी लेने गये थे तब कालनेमि हनुमानजी के साथ छल करना चाहता था सो उन्होंने पूंछ में लपेट उसे मार डाला।

सहज में करनेवाले हो ( जैसे कि समुद्र का लाँघना कठिन था उसे सहज में पार कर गये। और सुघट ( बनी बनाई बात ) को विघटन अर्थात् बिगाड़नेवाले हो ( जैसे बाली और रावण का ऐश्वर्य धूल में मिला दिया )। तुम बड़े भयंकर और भूमि, पाताल, जल और आकाश में जानेवाले हो ऐसे तुम्हारी जय हो ॥८॥ तुम संसार में विख्यात और (वीरता का) बाना कसे हो ; तुम्हारी विरदावली पण्डित और वेद निर्मल वाणी से वर्णन करते हैं। तुम तुलसीदास के भय को दूर करनेवाले और सीतापति ( रामजी ) के संग रामजी की राजधानी ( अयोध्या ) में शोभायमान हो ; तुम्हारी जय हो ॥ ९ ॥

संधिविभाग—कैरव ( कुमोदिनी ) + आनन्द । आसिष + आकार । माला (समूह) + आकुलित । रघुनन्दन + आनन्दकर ।

शब्दार्थ—चंडकर = चंड अर्थात् तेज़ हैं कर कहिये किरणें जिसकी ऐसा सूर्य । पवि = वज्र । खर्ब = बौना, छोटा ( थोड़ा ) । भूनन्दिनी = पृथ्वी की पुत्री सीता । लूम = पूंछ । पानी = हाथ । दसन = दांत । घटकरण = कुम्भकर्ण । वारिदनाद = मेघ का सा है नाद ( शब्द ) जिसका । विदुष = पण्डित = । माला = समूह ।

[ २६ ]

जयति मर्कटाधीस मृगराजविक्रम महादेव मुदमङ्गलालय कपाली ।
मोहमदकोहकामादिखलसंकुलाघोरसंसार निसिकिरनमाली ॥१॥
जयति लसदञ्जनादितिजकपिकेसरी, कस्यपप्रभव जगदार्तिहर्त्ता ।
लोकलोकपकोककोकनदसोकहर हंस, हनुमान कल्यानकर्त्ता ॥२॥
जयति सुविसालविकरालविग्रह वज्रसार सर्वांग भुजदंड भारी ।
कुलिसनखदसनवर लसत, बालधिबृहद, वैरि सस्त्रास्त्रधर, कुधर-
धारी ॥ ३ ॥
जयति जानकीसोचसन्तापमोचन, रामलछमनानन्दवारिज-
विकासी ।
कीसकौतुककेलि, लूमलंकादहन, दलन कानन तरुनतेजरासी ॥४॥
जयति पाथोधिपाषानजलजानकर, जातुधानप्रचुरहर्षहाता ।
दुष्टरावनकुम्भकरनपाकारिजित्, मर्मभित् कर्मपरिपाकदाता ॥५॥
जयति भुवनैकभूषन, विभीषनवरद, विहित कृत रामसंग्रामसाका।

पुष्पकारूढ़सौमित्रसीतासहित भानुकुलभानुकीरतिपताका ॥६॥
जयति परजन्त्रमन्त्राभिचारग्रसन, कारमन कूटकृत्यादिहन्ता।
साकिनीडाकिनीपूतनाप्रेत वैताल भूत प्रमथ जूथजन्ता ॥७॥
जयति वेदान्तवित विविधविद्याविसद, वेदवेदांगविद ब्रह्मवादी।
ज्ञानवैरागविज्ञानभाजन विभव, विमलगुनगनत सुक नारदादी॥
जयति कालगुनकर्ममायामथन, निश्चल ज्ञानव्रत सत्यरत धर्म्मचारी।
सिद्धसुरवृन्दजोगीन्द्रसेवित सदा दासतुलसी प्रनत भयतमारी॥

हे हनुमानजी! तुम वानरों के राजा, सिंह के समान पराक्रमी, देवों मे श्रेष्ठ, आनन्द-मंगल के स्थान (अर्थात् करनेवाले) और कपालधारी (रुद्र का अवतार) हो। मोह, मद, क्रोध, और काम आदि रूपी खलों से भरे हुए भयंकर संसाररूपी रात्रि के (नाश करने को) सूर्य रूप हो। ऐसे आपकी जय॥ १॥ (अब सूर्य का रूपक दिखाते हैं कि जैसे देवताओं की माता अदिति और पिता कश्यप हैं कि जिनसे सूर्य उत्पन्न हुए हैं वैसे ही) तुम सुन्दर अंजनीरूपी अदिति से उत्पन्न और वानर केशरीरूपी कश्यप से (हनुमानरूपी सूर्य) उत्पन्न हुए हो (कैसे हो कि) संसार के दुःख के हरनेवाले हो (अर्थात् जैसे सूर्य संसार में प्रकाश करता है ऐसे ही तुमने दुष्ट राक्षसों को मार के संसार का दुःख दूर किया) लोक और लोकपालरूपी चक्रवाक और कमलों का शोक हरने को सूर्य रूप हो (अर्थात् जैसे सूर्य उदय होकर चक्रवाक को सुख देता है और कमलों को खिलाता है ऐसे ही तुमने उत्पन्न होकर लोकों और इन्द्रादि लोकपालों को प्रसन्न किया) हे हनुमान! तुम कल्याण करनेवाले हो; तुम्हारी जय॥ २॥ तुम्हारी देह सुन्दर बड़ी भारी और बड़ी भयंकर है; और (तुम्हारे नख से शिखा तक देह के) सब अंग वज्र के सार के समान, बड़े भारी भुजदंड और कुलिश के समान नख और दाँत सुन्दर शोभायमान हैं, तुम्हारी पूँछ बड़ी लम्बी है, तुम शत्रुओं के (नाश के) लिए शस्त्र-अस्त्र धारण किये हो और (द्रोण) पर्वतधारी हो (ऐसे तुम्हारी) जय॥ ३॥ तुम श्रीजानकीजी के शोक और सन्ताप को दूर करनेवाले, राम-लक्ष्मण के आनन्दरूपी कमल को खिलानेवाले (सूर्यरूप) हो। बन्दरों का जो खेल अर्थात् कूद-फाँद तोड़-फोड़ इत्यादि उसकी लीला करनेवाले, पूँछ से लंका को भस्म कर-

नेवाले, वन (अशोकवाटिका) को उजाड़नेवाले और तरुण (भभकते हुए) तेज की राशि हो। तुम्हारी जय॥ ४॥ तुमने समुद्र पर पाषाणों का पुल बना दिया, और तुम राक्षसों के परम आनन्द के नाशक हो। और दुष्ट रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद के मर्म-स्थान को तोड़ कर उनके कर्मों का फल देनेवाले हो। तुम्हारी जय॥ ५॥ तुम संसार के एक ही मुख्य) आभूषण हो, विभीषण को वर देने वाले हो और तुमने विशेष हित के लिए रामजी के साथ संग्राम में उनके बड़े बड़े साके (भलाई के काम) किये हैं। पुष्पक विमान पर लक्ष्मण और सीता सहित बैठे हुए, सूर्य कुल के सूर्य (रामजी) की कीर्तिरूपी पताका के समान तुम (शोभायमान) हुए थे। ऐसे तुम्हारी जय॥ ६॥ तुम शत्रु के किये यंत्र मंत्र और अभिचार के ग्रसने वाले और मारण और गुप्त जीव-हिंसक तामसी देवताओं के नाशक हो। शाकिनी, डाकिनी, पूतना, प्रेत, वैताल, भूत और प्रमथ इनके झुंडों को जीतने वाले ऐसे तुम्हारी जय॥ ७॥ तुम वेदान्त के जाननेवाले हो; अनेक प्रकार की जो विशद (सतोगुणी) विद्या और (चारों) वेद तथा वेदांग इनके ज्ञाता हो और ब्रह्मवादी (अर्थात् परमात्मा के रूप के कहने वाले) हो। ज्ञान, वैराग्य और आत्मज्ञान के पात्र हो (अर्थात् ये सब आप में भर रहे हैं); तुम्हारी समर्थता के निर्मल गुणगणों को शुक और नारद आदि गाते हैं ऐसे तुम्हारी जय॥ ८॥ तुम (दिन, घड़ी, पल आदि) काल, (सत आदि) गुण, (शुभ अशुभ) कर्म और माया (जो आत्मरूप को भुलाकर जीव को इन्द्रिय सुख में लगाती है) इनके नाशक हो। तुम ज्ञान और व्रत में दृढ़ हो, सत्यव्रत में तुम्हारी प्रीति है और धर्म पर चलने वाले हो। सिद्ध और देवताओं के समूह और बड़े बड़े योगी सदा तुम्हारी सेवा करते हैं (ऐसे तुम्हें) तुलसीदास प्रणाम करता है तुम (उसके) भयरूपी अँधेरे के लिए सूर्य रूप हो॥९॥

सन्धिविभाग—मर्कट + अधीस। मंगल + आलय (स्थान)। काम + आदि। लसत् + अंजना + अदिति। जगत् + आर्ति (दुःख)। सस्त्र + अस्त्र। लछमन + आनन्द। भुवन + एक। पुष्पक + आरूढ़। मंत्र + अभिचार। कृत्या + आदि। नारद + आदि।

शब्दार्थ—संकुल = व्याप्त, भरा हुआ। किरनमाली = (किरणों की है माला जिनके) सूर्य। कोकनद = कमल। हंस = सूर्य। विग्रह = देह। बालधी = पूँछ। कुधर = (कु नाम पृथ्वी को धारण करने वाला) पर्वत। पाथोधि = समुद्र। जलजान = जहाज़, पुल। प्रचुर = बहुत। पाकारिजित् = पाक राक्षस का शत्रु इन्द्र उसका जेता, इन्द्रजीत। पर = शत्रु। अभिचार = उच्चाटन आदि। कारमन = जंत्र, मंत्र से मारना (संस्कृत शब्द कार्मण है)। कृत्या = जीवहिंसक देवता आदि। साकिनी = जोगिनी, पिसाचनी। पूतना = बालकों पर खोड़ करने वाली। वैताल = भूत। प्रमथ = शिव के गण। विभव = समर्थ।

[ २७ ]

जयति मंगलागार संसारभारापहार वानराकारविग्रह पुरारी ।
रामरोषानल-ज्वालमालामिषध्वांतचरसलभसंहारकारी ॥ १ ॥
जयति मरुदञ्जनामोदमन्दिर, नतग्रीवसुग्रीव-दुःखैकबन्धो ।
जातुधानोद्धतक्रुद्धकालाग्निहर सिद्धसुरसज्जनानन्दसिन्धो ॥२॥
जयति रुद्राग्रनी विस्वविद्याग्रनी विस्वविख्यात भट चक्रवर्ती ।
सामगाताग्रनी कामजेताग्रनी रामहित रामभक्तानुवर्ती ॥ ३ ॥
जयति संग्रामजय रामसन्देसहर कौसलाकुसलकल्यानभाषी ।
रामविरहार्कसन्तप्तभरतादिनरनारिसीतलकरन कल्पसाषी ॥
जयति सिंघासनासीनसीतारमन निरखि निर्भरहरषनृत्यकारी ।
रामसंभ्राजसोभासहित सर्वदा तुलसिमानसरामपुरविहारी ॥५॥

हे हनुमानजी ! तुम्हारी जय । तुम मंगलों के स्थान, और संसार के भार ( जन्म मरण आदि ) के नाशक हो, वानर के आकार के समान तुम्हारा शरीर है और तुम शिव-स्वरूप हो । और, रघुनाथजी के क्रोधरूपी अग्नि की लपटों की माला के बहाने से राक्षसरूपी पतंग ( तीतरी आदि ) के नाश करने वाले हो ( भाव यह है कि जैसे अग्नि की लपट पतंग आदि को भस्म कर देती है ऐसे ही रघुनाथजी के क्रोधित होने पर तुमने राक्षसों को मार डाला था ) ॥ १ ॥ पवन और अंजनी के आनन्द के मंदिर अर्थात् देने वाले तुम, ( बालि के डर के मारे ) सुग्रीव ने जो नीची गरदन कर रक्खी थी सो उसके दुःख में मुख्य बन्धु के समान ( सहायक ) हुए । और तुम राक्षसों के बढ़े हुए क्रोधरूपी प्रलय-काल की अग्नि को हरनेवाले, और सिद्ध देवता और सज्जनों को आनन्द के समुद्र हो । तुम्हारी जय ॥ २ ॥ तुम ( ग्यारह ) रुद्रों में श्रेष्ठ, संसार भर के विद्वानों में मुख्य, संसार भर में विख्यात और वीरों में चक्रवर्ती राजा के समान हो। तुम सामवेद के गाने वालों में श्रेष्ठ, कामदेव के जीतने वालों में मुख्य ( अर्थात् सबसे बढ़ कर जितेन्द्रिय ), रघुनाथजी के हितकारी और रामभक्तों के पीछे पीछे (रक्षा करने के लिए) रहने वाले हो । तुम्हारी जय ॥ ३ ॥ तुम युद्ध जीतने वाले, रामजी के संदेसे को (सीता और भरतजी के पास ) ले जानेवाले और अयोध्या की कुशल-मंगल ( रघुनाथजी से ) कहने वाले हो । और तुम रामजी के वियोगरूपी सूर्य से तचते हुए भरत आदि

( अयोध्यावासी ) स्त्री-पुरुषों को शीतल करने के लिए कल्पवृक्षरूप हो ( भाव—जैसे सूर्य से तपे हुए को वृक्ष की छाया शीतल करती है ऐसे ही तुमने रघुनाथजी के आने का संदेसा कह कर भरतजी आदि की विरहाग्नि को हर लिया था); तुम्हारी जय ॥ ४ ॥ तुम रामजी को सिंहासन पर बैठा हुआ देखकर बड़ा भारी आनन्द और नृत्य करने वाले हो सो जैसे रामजी शोभा अर्थात् ठाटवाट से ( सिंहासन पर ) विराजमान हुए थे वैसे ही तुम सदा तुलसी के मनरूपी अयोध्या में विहार करो ॥ ५ ॥

सन्धिविभाग—मंगल + आगार ( स्थान ) । भार + अपहार । बानर + आकार । रोप + अनल । मरुत् + अँजना । दुःख + एक + बन्धो । जातुधान + उद्धत । काल + अग्नि । रुद्र + अग्रनी ( श्रेष्ठ) । विद्या + अग्रनी । गाता + अग्रनी । जेता + अग्रनी । भक्त + अनुवर्ती । विरह + अर्क । सिंहासन + आसीन ।

शब्दार्थ—पुरारी = ( पुर दैत्य के शत्रु ) शिव । माला = समूह । मिष = बहाना । ध्वान्तचर = ध्वान्त कहिये अँधेरे में चलने वाला, राक्षस । साषी ( शाखी ) = वृक्ष । निरभर = अत्यन्त ।

[ २८ ]

जयति वातसञ्जात विख्यातविक्रम बृहद्‌बाहु बलविपुल बालधि-विसाला ।
जातरूपाचलाकारविग्रह लसत, लूमविद्युल्लताज्वालमाला ॥ १ ॥
जयति बालार्कवरवदन, पिंगलनयन, कपिस-कर्कसजटा जूटधारी ।
विकटभ्रुकुटी वज्रदसन नखवैरिमदमत्तकुंजरपुंजकुंजरारी ॥ २ ॥
जयति भीमार्जुनव्यालसूदनगर्वहर, धनञ्जयरथत्रानकेतू ।
भीषमद्रोनकरनादिपालितकालदृकसुजोधनचमूनिधनहेतू ॥ ३ ॥
जयति गतराजदातार हरतार, संसारसंकट दनुजदर्पहारी ।
ईति अति भीति ग्रहप्रेतचौरानलव्याधि बाधासमन घोरमारी ॥४॥
जयति निगमागम व्याकरनकरनलिपि, काव्यकौतुककलाकोटि-सिन्धो ।
सामगायक भक्तकामदायक वामदेव, श्रीराम प्रियप्रेम बन्धो ॥५॥
जयति घर्मांसुसन्दग्धसंपाति नवपच्छलोचनादिव्यदेहदाता ।
काल कलिपापसन्तापसंकुलसदा, प्रनत तुलसीदास तात माता ॥

हे वायुपुत्र ! तुम्हारी जय—तुम्हारा पराक्रम विख्यात है, तुम्हारी बड़ी बड़ी बाहु हैं, तुम बड़े बली हो और तुम्हारी पूँछ बड़ी लंबी है। सोने के पर्वत ( सुमेरु ) के आकार के समान तुम्हारा शरीर शोभायमान है और तुम्हारे रोमों में बिजली की लता के समान बड़ी भारी चमक ( झकझका रही है ) ॥ १ ॥ तुम्हारा मुख बाल-सूर्य के समान सुन्दर है, पीले नेत्र हैं और तुम ( शिर पर ) भूरे और कठोर जटाजूट को धारण किये हो। तुम्हारी टेढ़ी भृकुटी हैं, वज्र के समान दाँत हैं और नख, शत्रु के मदरूपी मतवाले हाथियों के झुंड को ( फाड़ने के लिए ) सिंहरूप हैं। तुम्हारी जय ॥ २ ॥ तुम भीम (१) अर्जुन (२) और गरुड़ (३) के घमंड के हरनेवाले और धनञ्जय के रथ की पताका में (बैठ कर) उसकी रक्षा करने वाले हो। तुम भीष्म (पितामह), द्रोणाचार्य्य और कर्ण आदि से रक्षा की गई और काल के समान दृष्टिवाली ( अर्थात् देखते ही मानो शत्रु को खा जाय ऐसी ) दुर्योधन की सेना के नाश करने में कारण हो ( अर्थात् तुमने अर्जुन की ध्वजा में बैठकर उससे दुर्योधन की सेना को हरवा दिया ); तुम्हारी जय ॥ ३ ॥ ( तुम सुग्रीव, विभीषण के ) गये हुए राज्य को दिलाने वाले, संसार के

---

[१] जब पांडव वन में गये तब भीमसेन ने देखा कि एक भारी बूढ़ा बन्दर पूँछ से मार्ग रोके हुए सो रहा है। भीम निडर होकर उसके पास गये और ऐसे ज़ोर से गरजे कि वानर की नींद खुल गई और उसने भीम से कहा कि तूने मुझे क्यों जगा दिया ? भीम ने कहा कि हमको रास्ता दो। वानर ने कहा कि हम बूढ़े हैं इससे उठना नहीं चाहते; तुम पूँछ हटा कर चले जाओ। भीम ने पूँछ हटाने के लिए बहुतेरा यत्न किया पर पूँछ न सरकी। फिर भीम ने हाथ जोड़े तब हनूमानजी ने मार्ग दिया। यह कथा महाभारत के वन-पर्व में है।

[२] कौरव-पांडवों के युद्ध में भगवान् ने हनूमान्जी को अर्जुन के रथ की पताका में बैठा दिया था। जब कर्ण और अर्जुन का संग्राम हुआ तब अर्जुन को यह अभिमान हुआ कि मेरे बाण से तो कर्ण का रथ कोसों दूर जा पड़ता है और उसके बाण से मेरा रथ थोड़ा सा सरक जाता है। इस अभिमान को दूर करने के लिए भगवान् ने हनूमान्जी से कह दिया कि तुम ध्वजा पर से अलग हो जाओ और जब वे हट गये तब कर्ण के बाण से भी अर्जुन का रथ दूर जा पड़ा। यह देख अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि यह क्या हुआ कि मेरा रथ इतनी दूर आपड़ा। भगवान् ने कहा कि तुम्हारे रथ के झंडे पर हनुमान्जी बैठे थे सो वे उतर गये और वह तो मैं त्रिलोकी का स्वामी तेरे पास बैठा हूँ तब इतना सरका है नहीं तो न जाने क्या होता। इसलिए तेरा अभिमान वृथा है।

(३) एक बार भगवान् ने गरुड़जी से कहा कि तुम हनुमान्जी को बुला लाओ। गरुड़जी हनुमान्जी के पास पहुँचे और कहा कि भगवान् ने आप को बुलाया है सो मेरे साथ चलिए। हनुमान्जी ने कहा कि तुम चलो; मैं पीछे से आता हूँ और तुमसे पहिले पहुँचूँगा। यह सुन गरुड़जी को बड़ा घमंड हुआ और अधिक शीघ्र चले परन्तु हनुमानजी उनसे बहुत पहिले भगवान के पास आ पहुँचे और गरुड़जी का घमंड दूर किया—यह कथा स्कंदपुराण की है।

संकट को दूर करने वाले और राक्षसों के घमंड के नाशक हो। और ईति, बड़े बड़े भय, ग्रह, प्रेत, चोर, अग्नि और बड़ी भयंकर महामारी आदि बीमारियों की बाधा को दूर करने वाले हो (अर्थात् तुम्हारा नाम लेते ही ये सब बाधायें भाग जाती हैं)। तुम्हारी जय॥ ४॥ तुम वेद, शास्त्र और व्याकरण (इनको सूर्य से पढ़कर उन) पर (टीका आदि) लिखने वाले हो और काव्य का जो कौतुक (अर्थात् अलंकार, उपमा, विचित्रता आदि) और (चतुरता की जो) करोड़ों कला हैं उनके समुद्र हो। तुम साम के गाने वाले, भक्तों के मनोरथों के दाता, शिवस्वरूप और प्यारा है प्रेम जिनको ऐसे श्रीरामजी के बन्धु (समान हित करने वाले) हो। तुम्हारी जय॥ ५॥ तुम सूर्य से जले हुए संपाति (१) को नये पंख, नेत्र और सुन्दर देह के देनेवाले हो और कलिकाल के पापों और संतापों से सदा भरे हुए इस दीन तुलसीदास के माता-पिता हो। तुम्हारी जय॥६॥

सन्धिविभाग—जातरूप (सोना) + अचल (पर्वत) + आकार। बाल + अर्क। कुंजर (हाथी) + अरि (शत्रु)। भीम + अर्जुन। कर्ण + आदि। चौर + अनल। निगम (वेद) + आगम (शास्त्र)।

शब्दार्थ—कुंजरारि = सिंह। व्यालसूदन = गरुड़। धनञ्जय = अर्जुन। ईति = अति वृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टीड़ी, तोते और राजाओं का पास होना। घर्म (गरम) + अंशु (किरणें) जिसकी = सूर्य। संकुल = व्याप्त, भरा।

[ २९ ]

जयति निर्भरानंदसंदोह कपिकेसरी केसरीसुअन भुवनैकभरता।
दिव्य भूम्यंजनामंजुलाकरमने भक्तसंतापचिंतापहरता॥ १॥
जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो ब्रह्मलोकादिवैभवविरागी।
वचन मानसकर्मसत्यधर्मव्रती जानकीनाथचरनानुरागी॥ २॥
जयति विहगेसबलबुद्धिवेगातिमदमथन मनमथ-मथन ऊर्धरेता।
महानाटकनिपुन कोटिकविकुलतिलक गानगुनगरवगन्धर्वजेता॥
जयति मंदोदरीकेसकर्षन विद्यमानदसकंठ भट मुकुट मानी।
भूमिजादुःखसंजातरोषांतकृतजातना जंतुकृत यातुधानी॥ ४॥

(१) संपाती जटायु का भाई था। तरुण अवस्था में ये दोनों उड़कर सूर्य के पास गये। जटायु तो तेज न सहने के कारण पीछे लौट आया और संपाती अभिमान के मारे सूर्य के बहुत ही पास चला गया सो उसके सब पंख जल गये और वह नीचे गिर पड़ा। जब हनुमानजी सीता की सुध लेने गये तब समुद्र पर संपाती ने सीता की सुध बताई और हनुमान्जी ने उसको नवीन पंख, नेत्र आदि देकर कृतार्थ किया।

जयति रामायन स्त्रवनसंजातरोमांच लोचनसजल सिथिलवानी ।
रामपदपद्ममकरंदमधुकर पाँहि दास तुलसी सरन सूलपानी ॥

( हे हनुमानजी ! तुम ) जो हृदय में न समा सके ऐसे भारी आनन्द के समूह, वानरों में सिंह-समान ( पराक्रमवाले ), केशरी के पुत्र और संसार के मुख्य स्वामी हो । ( और जैसे मणि भूमि से निकलती है ऐसे ही तुम ) अंजनीरूपी दिव्य भूमि की ( उदररूपी ) सुन्दर खान के मणि हो, ( इसलिए ) भक्तों के सन्ताप और चिन्ता को दूर करनेवाले हो ( भाव यह है कि जिसके पास मणि होगी उसके पास चिन्ता और सन्ताप का क्या काम ) । तुम्हारी जय ॥ १ ॥ तुम धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के देनेवाले और समर्थ हो, और ब्रह्मलोक आदि के वैभव से प्रीति तोड़नेवाले और मन, वचन, कर्म से सत्य धर्म का व्रत करनेवाले हो और श्रीजानकीनाथ के चरणों के प्रेमी हो । तुम्हारी जय ॥२॥ तुम गरुड़जी के बल, बुद्धि और वेग के बड़े भारी घमंड ( १ ) को तोड़नेवाले, (अर्थात् उनसे भी अधिक बली, बुद्धिमान् और वेग से जानेवाले हो और शिवरूप होने से ) कामदेव के नाशक और जितेन्द्रिय हो । तुम बड़े बड़े नाटक ( बनाने और करने ) में चतुर हो और ( वाल्मीकि आदि ) करोड़ों कवियों के समूहों के शिरोमणि, और गाने के गुण से गंधर्वों के घमंड को जीतनेवाले ( अर्थात् गंधर्वों से भी बढ़ कर गानेवाले ) हो । तुम्हारी जय ॥ ३ ॥ तुम रावण के होते हुए मन्दोदरी के झोंटे खींचनेवाले और घमंडी वीरों के शिरोमणि हो । और जानकीजी के दुःख से उत्पन्न हुए क्रोध के कारण तुमने राक्षसियों को ऐसा दुःख दिया जैसा कि यमराज जीवों को देता है । तुम्हारी जय ॥ ४ ॥ रामायण सुनने से तुमको रोमांच हो जाता है, नेत्रों में आँसू भर आते हैं और वाणी शिथिल हो जाती है ( अर्थात् तुमसे बोला नहीं जाता ) और तुम रामजी के चरण-कमलों के रस के लिए भँवररूप हो; तुलसीदास तुम्हारी शरण है ( उसकी कलि से ) रक्षा करो; ( क्योंकि ) तुम शिवस्वरूप हो और तुम्हारे हाथ में त्रिशूल है । तुम्हारी जय ॥ ५ ॥

सन्धिविभाग—निर्भर + ( अत्यन्त ) आनन्द । भुवन + एक । भूमि + अंजना । मंजुल (सुन्दर) + आकर । चिंता + अपहर्ता । धर्म + अर्थ । काम + अपवर्ग ( मोक्ष ) । लोक + आदि । चरन + अनुरागी । वेग + अति । रोष + अंतकृत ( यमराज ) ।

शब्दार्थ—विहगेस = ( पक्षियों के स्वामी ) गरुड़ । मन्मथ = कामदेव । ऊर्धरेता = ऊर्ध है रेत ( वीर्य ) जिसका, जितेन्द्री । भूमिजा = ( पृथ्वी से उत्पन्न ) जानकीजी । जातुधानी = राक्षसियाँ । मकरंद = पुष्परस ।

---

[ १ ] २८ वें भजन की [ ३ ] टिप्पणी देखो ।

## राग सारंग।

[ ३० )

जाके गति है हनुमान की।
ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की॥ १॥
अघटितघटनि सुघट विघटनि ऐसी विरुदावली नहीं आन की।
सुमिरत संकटसोचविमोचनि मूरति मोदनिधान की॥ २॥
तापर सानुकूल गिरिजा हर लषन राम अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपाविलोकनि खानि सकल कल्यान की॥ ३॥

जिसको हनुमानजी की शरण है, उसकी पैज पूरी हुई। यह वज्र और पत्थर की लकीर है अर्थात् पक्की है, कभी नहीं मिट सकती॥ १॥ (क्योंकि) नहीं होनेवाली बात को तो बनाना (जैसे सुग्रीव का बाली से अभय होना और विभीषण को राज्य मिलना कहाँ सम्भव था सो इनकी ही कृपा से हुआ) और अच्छी बनी बनाई बात को बिगाड़ देना (जैसा बाली और रावण का राज्य बिगड़ना) ऐसी यश की पाँति (अर्थात् ऐसा भारी बाना) दूसरे का नहीं है। स्मरण करते ही वे संकट और सोच को नाश करनेवाले और आनन्द के स्थान की मूर्ति हैं॥ २॥ और उन पर शिव-पार्वती और राम-लक्ष्मण, जानकीजी कृपालु हैं (अर्थात् जो हनुमानजी कहते हैं सो वे करते हैं इसलिए) हे तुलसी! हनूमान्जी की कृपादृष्टि सब कल्याणों की खान है॥ ३॥

शब्दार्थ—पैज = प्रण। अघटित = नहीं होनेवाली। घटन = बनाना। सुघट = अच्छी बनी बनाई। विघटनि = बिगाड़नी।

## राग गौरी।

[ ३१ ]

ताकि है तमकि ताकी ओर को।
जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी-किसोर को॥ १॥
जन-रंजन अरिगन-गंजन मुख-भंजन-खल बलजोर को।
वेदपुरानप्रगटपुरुषारथ सकल-सुभट-सिरमोर को॥ २॥
उथपे थपन, थपे उथपन, पन विबुधवृंदवंदि छोर को।
जलधिलाँघि दहि लंक प्रबलबल दलन निसाचर घोर को॥ ३॥

जाको बालविनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को।
जाकी चिबुकचोट चूरन किये रदमद कुलिसकठोर को ॥ ४ ॥
लोकपाल अनुकूल विलोकिबो चहत विलोचन कोर को।
सदा अभय जय मुदमंगलमय जो सेवक रनरोर को ॥ ५ ॥
भक्तकामतरु नाम राम परिपूरन चन्द चकोर को।
तुलसी फल चारौं करतल जस, गावत गई बहोर को ॥ ६ ॥

तमक कर उसकी ओर कौन ताकेगा कि, जिसे सब भाँति केशरीनन्दन हनुमानजी का भरोसा है ॥ १ ॥ दासों को प्रसन्न करनेवाला, शत्रुगणों का नाशक, दुष्टों का मुख तोड़नेवाला बड़ा बली कौन है ? ( अर्थात् इनको छोड़ कोई दूसरा नहीं है ) और ( इनका ऐसा ) पुरुषार्थ वेदों और पुराणों में प्रगट है। फिर सब बड़े बड़े योद्धाओं का शिरोमणि दूसरा कौन है ( अर्थात् येही हैं क्योंकि ) ॥ २ ॥ जो ( सुग्रीव विभीषण ) निकाल दिये गये थे उनको तो ( राजा बना कर ) रक्खा और जो ( बाली, रावण सिंहासन पर ) बैठे थे उनको निकाल बाहर किया। जो देवताओं के समूह बन्दीख़ाने में पड़े थे उन्हें प्रण करके कौन छुड़ाता और समुद्र को फाँद कर, लंका को फूँक कर बड़े बड़े बली और भयंकर राक्षसों का कौन नाश करता ॥ ३ ॥ जिनकी बाललीला समझ कर प्रातःकाल के सूर्यदेव जी में (१) डरते हैं ( कि कहीं फिर मेरा ग्रास न कर लें ) और जिनकी ठोड़ी की चोट ने (इन्द्र के) कठिन वज्र के दाँतों के मद का चूरा कर दिया ( अर्थात् वज्र की धार के भी दाँत खट्टे कर दिये ऐसी कठिन ठोड़ी थी ) ॥ ४ ॥ (इन्द्रादि) लोकपाल उनके नेत्रों की कोर को सीधी देखना चाहा करते हैं, ( अर्थात् हमारे ऊपर इनकी सीधी दृष्टि बनी रहे क्योंकि ) युद्ध में कठिन ( ऐसे हनुमानजी ) का जो सेवक है वह सदा निडर ( रहता है ) और ( संग्राम में ) जय पाता है और उसके आनन्द-मङ्गल होते हैं ॥ ५ ॥ रामजी मानो पूरे ( पूर्णमासी के ) चन्द्रमा हैं उनको चकोर के समान ( इकटक देखनेवाले हनुमानजी ) का नाम भक्तों को कल्पवृक्ष के समान ( सब मनोरथों का देनेवाला ) है। हे तुलसी ! चारों (२) फल उसकी हथेली पर हैं कि जो ( मनुष्य ) गई हुई ( वस्तु ) को फिर ( दिलानेवाले हनुमानजी ) का यश गाता है ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—किसोर = लड़का। बंदि = जेलख़ाना। चिबुक = ठोड़ी। रद = दाँत।

(१) २५ वें भजन में देखो। (२) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

इस भजन से यह स्पष्ट होता है कि गुसाईं जी को जब सेवा करते करते बहुत दिन हो गये और काम क्रोध लोभ मोह अधिक सताने लगे और किसी भाँति चित्त की शान्ति न हुई तब उन्होंने तंग होकर हनुमानजी को भी दो चार बुरी भली सुना दीं:—

राग बिलावल।

[ ३२ ]

ऐसी तोहि न बूझिए हनुमान हठीले।
साहब कहूं न राम से, तोसे न उसीले॥ १॥
तेरे देखत सिंघ के सिसु मेंढ़क लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले॥ २॥
हाँक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीले।
सो बलु गयो किधौं भयो अब गरवगहीले॥ ३॥
सेवक को परदा फटे तुम समरथ सीले।
अधिक आपुते आपुनो सुनि मान सहीले॥ ४॥
सासति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले।
तिहूँकाल तिनको भलो जे रामरँगीले॥ ५॥

हे हनुमान! तुझे ऐसी समझ नहीं चाहिए। तू तो बड़ा हठ करनेवाला है (अर्थात् जिस बात की तू हठ करता है उसे पूरा करके छोड़ता है और मेरी विनती नहीं सुनता। यह समझ ठीक नहीं, ऐसी बातों से तेरे यश में कलंक लग जायगा), रामजी सरीखे (समर्थ तो) कहीं स्वामी नहीं हैं और तुझ सरीखा (मेरा कोई दूसरा) वसीला नहीं है॥ १॥ सो तेरे देखते देखते सिंह के बच्चे को मेंढ़क लीले जाता है (अर्थात् तू सिंह समान है और मैं तेरा शरणागत बालक हूँ और तेरे लिए कलियुग मेंड़क समान है सो मुझे खाये जाता है (अर्थात् राम के चरणकमलों से विमुख किया चाहता है और तू तमाशा देख रहा है सो) ऐसा जानता हूँ कि कलियुग ने मानो तेरे भी (दया, उदारता आदि) गुणसमूहों को कील दिया है (क्योंकि जो गुण, मन्त्र आदि कील दिये जाते हैं उनमें शक्ति नहीं रहती सो देख लिया तुझमें भी सिंह का सा पराक्रम नहीं रहा)॥ २॥ (तेरे एक दिन वे थे कि लंका-दहन के समय) तेरी हुंकार सुनते ही रावण के बन्धन (अर्थात् अंग अंग के जोड़) ढीले पड़ गये थे (भाव—तेरे भय के

मारे उसके पेट में पानी हो गया था ) सो तेरा वह ( पहिला सा ) बल कहाँ गया ( जो चुप साधे बैठा है ) अथवा अब तू घमंडी हो गया है ( अर्थात् रामराज्य में दयाशील था और अब कलियुग में अभिमानी हो गया कि मेरी सुध नहीं लेता ) ॥ ३ ॥ और ( जो पहलासा ही बल है और अभिमान भी नहीं है तो मुझ ) सेवक का जो परदा फट रहा है ( अर्थात् मैं जो रामयश फैलाता हूँ उसे कलियुग मिटाता है इससे मेरी बात में बट्टा लग रहा है ) उसे ( रक्षा और अनुग्रहरूपी सुई तागे से ) सीँ दे ( अर्थात् कलियुग को डाट दे कि राम-चर्चा में विघ्न न करे ) क्योंकि तू सब ( भाँति से ) समर्थ है ( अर्थात् कलि और उसके चेले काम, क्रोध, लोभ, मोह सब तेरे कहे में हैं। और पहले तेरा यह स्वभाव था कि ) अपने से अधिक अपने (सेवक) की सुनता मानता और उसकी सहता था ( अब क्या हो गया ) ॥ ४ ॥ तुलसीदास की पीड़ा को सुन कर तू ही सुन्दर यश ले और ( यों तो तीनों काल उनका भला ही होता है जो राम के रंग में रँग रहे हैं ( भाव यह है कि रामभक्त होने से मेरा तो भला हो होगा पर तुझे भी जो बहती गंगा में हाथ धोना है तो धो ले ) ॥ ५ ॥

संकेत—गुसाईं जी के जीवन-चरित्र में ऐसा लिखा है कि इनके अनेक सिद्धाई के काम सुन कर एक बार बादशाह ने इन्हें बुलाया और कहा कि हमें भी कोई चमत्कार दिखाओ। गुसाईं जी ने उत्तर दिया कि मैं तो केवल राम का नाम जानता हूँ, मेरे पास कोई चमत्कार नहीं। यह सुन बादशाह ने कहा कि राम को ही दिखाओ और उन्हें जेलख़ाने में भेज दिया। उस समय गोस्वामीजी ने यह पद बनाया था। इस भजन के दूसरे और चौथे पद का अर्थ जो बादशाह के पक्ष में लगता है उसी को लिखे देते हैं। बाक़ी सब एक सा है।

२—तेरे लिए बादशाह मेढ़क के समान है सो मुझे बन्दीख़ाने में तङ्ग कर रहा है।

४—मुझ सेवक का जो परदा फट रहा है अर्थात् लोग कह रहे हैं कि राम का सेवक होकर भी गुसाईं बादशाह को कुछ चमत्कार नहीं दिखाता कि जिसमें बन्दीख़ाने से छूटे। सो तू उस परदे को सींदे अर्थात् बादशाह को कुछ ऐसा कौतुक दिखा दे कि मेरी बात में बट्टा न लगे। क्योंकि तू समर्थ है अर्थात् सब कुछ कर सकता है।

[ ३३ ]

**समरथ सुअन समीर के रघुवीर पिआरे।**
**मो पर कीबी तोहि जो करिलेहि भियारे ॥ १ ॥**
**तेरी महिमा ते चलैं चिँचिनीचिँआरे।**
**अँधियारो मेरी बार क्यों त्रिभुवनउजियारे ॥ २ ॥**

[ ४२ ]

कबहुँ समय सुधि द्याइबो मेरी मातु जानकी ।
जन कहाइ नाम लेत हौं किए पन चातक ज्यों प्यास प्रेम पानकी ॥
सरलप्रकृति आपु जानिए करुनानिधान की ।
निज गुन अरिकृत अनहितो दास दोष सुरति चित रहत न दिये दान की ॥ २ ॥
बानि बिसारनसील हैं मानद अमान की ।
तुलसीदास न बिसारिए मन क्रम बचन जाके सपनेहुँ गति न आनकी ॥ ३ ॥

हे जानकीमाता ! कभी समय पाकर (रघुनाथजी को) मेरी सुध दिला देना । उनका दास कहला कर उनका नाम लेता हूँ । मैं चातक का सा प्रण किये हूँ (अर्थात् उसे स्वाति का जल मिले तो पिये नहीं पियासा रहे ) मुझे उनके प्रेम के जल की प्यास है ॥ १ ॥ ( जो कहो कि कदाचित् वे रिस हो जायँ कि ऐसे पापी की बात हमसे क्यों कहती हो सो शंका न कीजिए क्योंकि ) कृपानिधान ( रामजी ) का स्वभाव बड़ा सीधा है उसे तुम जानती ही हो, (वे अवश्य कृपा करेंगे) क्योंकि अपना गुण, शत्रु की की हुई बुराई, दास का दोष और जो वरदान देते हैं इन बातों की याद उनके चित्त में नहीं रहती है ॥ २ ॥ और मानरहित ( भगवान् ) की ऐसी टेव है कि दूसरों को मान दे करके भी उसे भूल जाते हैं सो हे माता, ( तुम कहना कि ) तुलसीदास को न भूलिए कि जिसको मन, क्रम, वचन से सुपने में भी दूसरे ( किसी देवता ) का सहारा नहीं है ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति ।

[ ४३ ]

जयति सच्चितव्यापकानंद यतब्रह्म विग्रह व्यक्तलीलावतारी ।
विकलब्रह्मादिसुर सिद्धसंकोचवस विमलगुनगेह नरदेहधारी ॥१॥
जयति कौसलाधीस कल्यान कोसलसुताकुसल कैवल्यफल चारु चारी ।

वेदबोधितकर्मधर्म धरनी धेनु बिप्र सेवक साधु मोदकारी ॥२॥
जयति रिषिमखपाल समनसज्जनसाल सापवससुनिवधूसापहारी ।
भंजि भवचाप दलिदापभूपावली सहितभृगुनाथ नत माथभारी ॥
जयति धार्मिकधुरधीर रघुवीर गुरु मातु पितु बंधुवचनानुसारी ।
चित्रकूटाद्रिविंध्याद्रि दंडकविपिन धन्यकृत पुन्यकाननविहारी ॥
जयति पाकारिसुतकाककरतूतिफलदानि खनि गर्त्त गोपित विराधा ।
दिव्यदेवीवेष देखि लखि निसिचरी जनु बिडंवितकरी विस्वबाधा ॥
जयति खरत्रिसिरदूषनचतुर्दससहससुभटमारीचसंघारकरता ।
गीधसबरीभक्तिविवस करुनासिंधु चरितनिरुपाधि त्रिविधार्ति-हरता ॥ ६ ॥
जयति मदअंधकुकबंधवध बालि बलसालि वध करन सुग्रीव राजा ।
सुभटमर्कटभालुकटकसंघटसजत नमतपदरावनानुज निवाजा ॥
जयति पाथोधि कृत सेतु कौतुकहेतु कालमन अगम लइ ललकि लंका ।
सकुल सानुज सदल दलित दसकंठ रन, लोकलोकप किए रहितसंका ॥ ८ ॥
जयति सौमित्रि सीतासचिवसहित चले पुष्पकारूढ निज राज-धानी ।
दासतुलसी मुदित अवधवासी सकल राम भे भूप वैदेहि रानी ॥९॥

सियावररामचन्द्र की जय ।

जो सत् अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरूप, चित् ( चैतन्य ) और व्यापक अर्थात् (अन्तर्यामी रूप से ) चर अचर में रहनेवाले और आनन्दस्वरूप ऐसे सच्चिदानन्द परब्रह्म

शरीर धारण कर, (संसार में) लीला करने के लिए प्रकट हुए हैं। जब ब्रह्मा आदि सब देवता और सिद्ध (रावण की अनीति से) व्याकुल हो गये तब उनके संकोच के वश (अर्थात् उनके दबाव से रूप, तेज, बल, वीर्य आदि) निर्मल गुणों का स्थान नर-शरीर धारण किया ॥ १ ॥ और मंगलस्वरूप, अयोध्यापति (राजा दशरथ) और कल्याणरूप कौशल्या के यहाँ मोक्ष के (सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य रूप) सुन्दर चार फल हुए (उनमें से) वेद में कहे हुए (यज्ञ आदि) कर्म, (सत्य आदि) धर्म करनेवाले और पृथ्वी, गौ, ब्राह्मण, भक्त, और साधु इनको आनन्द देने-वाले रघुनाथजी की जय ॥ २ ॥ (बिश्वामित्र) ऋषि के यज्ञ के रक्षक, सन्तजनों के दुःखनाशक और शाप के वश (पाषाणरूप) मुनिवधू (अहल्या) के शाप को हरनेवाले, जिन्होंने महादेवजी का धनुष तोड़ कर परशुरामजी समेत बहुत से राजाओं के घमंड का नाश कर दिया और (जिनके सामने परशुरामजी ने) अपना भारी माथा नवाया—(अर्थात् जो माथा बल-वीर्य के घमंड से भारी हो रहा था और किसी के सामने नहीं झुका था उसे झुकाया) ऐसे रामजी की जय ॥ ३ ॥ धर्म के भार को धारण करने में धीर, रघुकुल के वीर, और गुरु, माता, पिता, और भाई इनके कहने में चलनेवाले; चित्रकूट पर्वत, विन्ध्याचल पर्वत और दंडक वन में विचर कर (जिन्होंने) उन्हें धन्य कर दिया ऐसे रामजी की जय ॥ ४ ॥ इन्द्र के पुत्र को काक रूप की करनी का फल देनेवाले (अर्थात् दंडक वन में जब जयन्त ने सीताजी के चरण में चोंच मारी थी तब उसके शरण आने पर उसे काणा कर दिया) और विराध राक्षस को (जो वर के प्रभाव से नहीं मर सकता था) गड्ढा खोद कर उसमें गाड़ दिया। फिर (पंचवटी में) बड़ा सुन्दर देवांगना का वेष की हुई (शूर्पणखा) को देखकर और उसे राक्षसी (और रावण की बहिन) पहचान कर (जिन्होंने उसके नाक, कान काट उसे कुरूप कर दिया) मानो संसार की बाधा (रावण) का तिरस्कार किया (अर्थात् उसे चिनोती दी) ऐसे रामजी की जय ॥ ५ ॥ (शूर्पणखा के सहायक) खर, त्रिशिरा और चौदह हज़ार बड़े योद्धाओं के तथा मारीच राक्षस के नाश करनेवाले; गिद्ध और शबरी की भक्ति से उनके अधिक वश में होनेवाले (अर्थात् गिद्ध की पिता समान क्रिया करी और शबरी को तारा) ऐसे दया के समुद्र, निष्कलंक चरित्रवाले और तीन प्रकार के तापों को हरनेवाले रामजी की जय ॥ ६ ॥ उन्होंने मद के अन्धे दुष्ट कबन्ध को मारा और बड़े बली बाली को मार सुग्रीव को राजा बनाया। और बड़े बड़े वीर बन्दर और रीछों की सेना इकट्ठी कर सजाई और चरणों में नवते ही रावण के छोटे भाई (विभीषण)

को निहाल कर दिया ( अर्थात् प्रसन्न हो लंका का राज दिया ) ऐसे रामजी की जय ॥ ७ ॥ कौतुक के लिए समुद्र का पुल बाँध कर, काल के मन को भी अगम ( अर्थात् जहाँ काल तो क्या उसका मन भी न जा सके) ऐसी लंका को ललकार कर ले लिया । और कुलसहित, भाईसहित और सेना-समेत रावण का रण में नाश करके ( तीनों ) लोकों और ( इन्द्र आदि ) लोकपालों को भयरहित कर दिया । ऐसे रामजी की जय ॥ ८ ॥ और फिर लक्ष्मण, सीताजी और ( सुग्रीव, हनुमान आदि ) मन्त्रियों सहित पुष्पक विमान पर चढ़ कर अपनी राजधानी ( अयोध्या ) को चले और राम के राजा होने से और जानकीजी के रानी होने से सब अवधवासी प्रसन्न हो गये । ऐसे रामजी की जय ॥ ९ ॥

संधिविभाग—व्यापक + आनन्द । लीला + अवतारी । ब्रह्मा + आदि । कौसल + अधीस । भूप + अवली ( क़तार, समूह ) । वचन + अनुसारी । चित्रकूट + अद्रि ( पर्वत ) । विन्ध्य + अद्रि । त्रिविध + आर्ति ( दुःख ) । रावन + अनुज । स + अनुज । पुष्पक + आरूढ़ ।

शब्दार्थ—व्यक्त = प्रकट । मख = यज्ञ । कैवल्य = मुक्ति । पाकारि = इन्द्र । साल = दुःख । गर्त = गड्ढा । गोपित = छुपा दिया, गाड़ दिया । दिव्य = बड़ा सुन्दर । विडंबित = तिरस्कृत । निरुपाधि = निष्कलंक । पाथोधि = समुद्र । दशकंठ = रावण ।

[ ४४ ]

जयति राजराजेंद्र राजीव-लोचन रामनाम कलि-कामतरु स्याम-
साली ।
अनयअंभोधिकुंभज निशाचर-निकर-तिमिर-घन-घोर-खर किरन-
माली ॥ १ ॥
जयति मुनिदेवनरदेव दशरत्थ के देवमुनि वंद्य किए अवधवासी ।
लोकनायककोकसोकसंकटसमन, भानुकुलकमलकानन विकासी ॥
जयति सिंगाररसतामरसदामदुतिदेह गुनगेह विस्वोपकारी ।
सकलसौभाग्यसौंदर्य सुखमारूप मनोभवकोटिगरवापहारी ॥२॥
जयति सुभग सारंग सु-निखंग सायक सक्ति चारु चर्मासि
वरवर्मधारी ।

धर्मधुरधीर रघुवीर भुजबल अतुल हेलयादलितभूभार भारी ॥४॥
जयति कलधौतमनिमुकुट कुंडल तिलकझलकझलिभाल विधुवदनसोभा।
दिव्यभूषनवसन पीत उपवीत किय ध्यान कल्यान-भाजन न को भा ॥ ५ ॥
जयति भरत सौमित्रि सत्रुहन सेवित सुमुख सचिवसेवकसुखद सर्वदाता।
अधम आरत दीन पतित पातकपीन सकृत नतमात्र कह पाहि पाता ॥ ६ ॥
जयति जय भुवनदसचारिजसजगमगत पुन्यमय धन्य जय राम राजा।
चरितसुरसरित कविमुख्यगिरिनिःसरित, पिवत मज्जत मुदित सत-समाजा ॥ ७ ॥
जयति बरनास्त्रमाचार पर नारि नर सत्य सम दम दया दानसीला।
बिगतदुखदोष संतोष सुख सर्वदा, सुनत गावत रामराजलीला ॥
जयति वैराग्यविज्ञानवारांनिधे नमतनर्मद पापतापहर्त्ता।
दासतुलसीचरन सरन संसयहरन देहि अवलम्ब वैदेहिभर्त्ता ॥६॥

श्रीरामचन्द्र की जय। राजाओं के राजाओं में भी इन्द्र के समान, कमल समान नेत्र वाले, जिनका नाम राम है, कलियुग में कल्प-वृक्ष और श्याम ( वर्ण से ) शोभायमान, अनीतिरूपी समुद्र ( सोखने ) को कुम्भज-ऋषि, और राक्षसों के समूहरूपी घने और भयानक अँधेरे के लिए तेज़ सूर्य के समान ॥ १ ॥ मुनि, देवता और मनुष्यों के स्वामी दशरथनन्दन ने अवधवासियों को ऐसा कर दिया कि देवता और मुनि उनकी वंदना करने लगे। ( इन्द्र आदि ) लोकपालरूपी कोकों के शोक और संकट को दूर करनेवाले और सूर्यकुलरूपी कमल-वन को खिलाने वाले रामजी की जय ॥ २ ॥ शृंगार ( रस ) रूपी सरोवर में ( खिले हुए ) कमलों की माला के समान जिनके

देह की शोभा हो रही है, ( सुशीलता आदि ) गुणों के स्थान, और संसार के उपकार करनेवाले और सम्पूर्ण सौभाग्य, सुन्दरता, और परम शोभा युक्त ( अपने ) रूप से करोड़ों कामदेवों के घमंड को दूर करनेवाले रामजी की जय ॥ ३ ॥ सुन्दर सारंग धनुष, सुन्दर तरकस, बाण, शक्ति, सुन्दर ढाल, तलवार, और सुन्दर बख़्तर धारण किये, धर्म का भार धारण करने में धीर, रघुवंश में वीर, जिनकी भुजाओं का बल अतोल है, पृथ्वी के भारी भार ( अर्थात् राक्षस-समूह ) को खेल की तरह नाश कर देनेवाले रामजी की जय ॥ ४ ॥ सुवर्ण का ( बना हुआ ) और जिसमें ( हीरे, पन्ने, लाल आदि ) मणि जड़े हैं ऐसा मुकुट ( शिर पर धारण किये ) ( कानों में मकराकृत ) कुण्डल पहिरे, माथे पर ( केसर के ) तिलक की सुन्दर झलक हो रही है और चन्द्रमा के समान मुख की शोभा है। ( शरीर में ) अनोखे भूषण वस्त्र पहिरे, ( गले में ) पीला जनेऊ डाले, ऐसा ध्यान करने से कौन कल्याण का पात्र नहीं हुआ अर्थात् किसका भला नहीं हुआ। ऐसे रामजी की जय ॥ ५ ॥ भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न (तीनों भाइयों ) से सेवा किये गये, प्रसन्न-मुख, ( सुग्रीव आदि ) मन्त्री और भक्तों को सुखदाई और सब ( वस्तुओं ) के देनेवाले नीच, दुखी, ग़रीब, पतित ( चांडाल आदि ) तथा महापापी इनके एकही बार प्रणाम मात्र से "रक्षा करो" ऐसा कहने पर रक्षा करनेवाले, ऐसे रामजी की जय ॥ ६ ॥ चौदहों भुवन में जिनका यश जगमगा रहा है, बड़े पुण्यात्मा और धन्य अर्थात् प्रशंसा किये गये ऐसे राजा रामचन्द्रजी की जय ३—जिनकी कथारूप गंगाजी कवियों में मुख्य वाल्मीकिरूपी पर्वत से निकली हैं जिसे पी कर अर्थात् कानों से सुन कर और उसमें स्नान कर अर्थात् मनन करके संत-समाज प्रसन्न हो जाता है ऐसे रामजी की जय ॥ ७ ॥ ( रामराज्य में ) स्त्री-पुरुष वर्णाश्रम आचार पर चलनेवाले थे और उनका स्वभाव सत्य, दम, शम, दया और दान करने का था। और ( जो अब ) रामजी के राज्य की लीला सुनते और गाते हैं उनके दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं और वे सदा सन्तोष और सुख पाते हैं। ऐसे रामजी की जय ॥८॥ वैराग्य और आत्मज्ञान के समुद्र ( अर्थात् संसारी विषयों से अलग और ब्रह्मानन्द सुख का अनुभव करनेवाले ) हैं जो कोई उनको प्रणाम करता है उसे सुख देते हैं और पाप तथा ( तीनों ) तापों के हरनेवाले हैं। ( ऐसा समझ ) तुलसीदास भी उनके चरणों की शरण ( आया ) है सो हे संशय के दूर करनेवाले जानकीनाथ उसे सहारा दो ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—राजा + इन्द्र । विश्व + उपकारी । गर्व + अपहारी । चर्म + असि । वरनास्रम + आचारि ।

शब्दार्थ—राजीव = कमल। साली = शोभायमान। अनय = अनीति। अंबोधि = समुद्र। कुम्भज =

बड़े से उत्पन्न अर्थात् अगस्त्य। निकर = समूह । किरनमाली = किरणों की है माला जिसके, सूर्य। तिमिर = अन्धेरा। तामरस = कमल। दाम = माला। सुखमा = शोभा। मनोभव = ( मन से उत्पन्न ) कामदेव। सारंग = भगवान् का खास धनुष। निखंग = तरकस। चर्म = ढाल। असि = तलवार। वर्म = कवच। हेला = खेल। कलधौत = सुवर्ण। पीन = मोटा। सकृत = एक बार। सम = मन, बुद्धि आदि को रोकना। दम = कर्ण, नासा आदि बाहरी इन्द्रियों को रोकना। वारांनिधि = समुद्र। नर्म = सुख ।

## राग गौरी।

[ ४५ ]

श्रीरामचन्द्र कृपाल भजु मन हरनभवभयदारुनं ।
नवकंजलोचन कंजमुख करकंज पदकंजारुनं ॥ १ ॥
कंदर्प अगनित अमित छवि नवनीलनीरदसुंदरं ।
पटपीतमानहुँ तड़ितरुचि सुचि नौमि जनक-सुता-वरं ॥ २ ॥
भजु दीनबंधु दिनेस दानवदैत्यवंसनिकंदनं ।
रघुनंद आनँदकंद कोसलचंद दसरथनंदनं ॥ ३ ॥
सिरमुकुटकुंडल तिलकचारु उदार अंगविभूषनं ।
आजानुभुज सरचापधर संग्रामजितखरदूषनं ॥ ४ ॥
इति वदत तुलसीदास संकरसेषमुनिमनरंजनं ।
मम हृदयकंज निवास करु कामादिखलदल गंजनं ॥ ५ ॥

हे मन! कृपालु श्रीरामचन्द्रजी का भजन कर। वे संसार के कठिन भय ( आवागमन ) के दूर करने वाले हैं। उनके हाल के खिले हुए कमल-समान नेत्र, कमल-समान मुख, कमल सदृश हाथ और लाल कमल-समान चरण हैं ॥ १ ॥ उनकी शोभा अनगिनत कामदेवों से भी बढ़ कर हो रही है और उनके नवीन नीले सुन्दर मेघवर्ण (शरीर) पर पीताम्बर (कैसा शोभा दे रहा है) मानो (मेघ में) बिजली की सुन्दर चमक (झलक रही है) ऐसे जानकीपति को,प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ ग़रीबों के बन्धु अर्थात् भाई सम प्यार करने वाले, सूर्य के समान (तेज धारण किये) दानव और दैत्यों के वंश के नाशक, रघुकुल को प्रसन्न करनेवाले, आनन्द के मेघ और अवध में चन्द्र के समान प्रकाश

करने वाले ऐसे दशरथनन्दन ( रामजी ) का भजन कर ॥ ३ ॥ शिर पर ( रत्नजटित ) मुकुट, ( कानों में मकराकृत ) कुंडल पहिरे, (भाल में केसर का ) सुन्दर तिलक लगाये, अंग अंग में सुन्दर आभूषण धारण किये, घोंटू तक लम्बी भुजाओं में धनुष-बाण लिये और संग्राम में खर, दूषण को जीतनेवाले ॥ ४ ॥ महादेवजी, शेषनाग और मुनियों के मन को प्रसन्न करनेवाले और काम आदि दुष्टों के दल के नाशक रघुनाथजी मेरे हृदय-कमल में निवास करें । यह तुलसीदास प्रार्थना करता है ॥ ५ ॥

सन्धि-विभाग—कंज + अरुन ( लाल ) ।

शब्दार्थ —अमित = अनगिनती, बेहद । कंदर्प = कामदेव । नीरज = कमल । तड़ित = बिजली । उदार = सुन्दर । आजानु = घुटनों तक ।

## राग रामकली ।

[ ४६ ]

सदा रामजपु रामजपु रामजपु रामजपु रामजपु मूढ़ मन बार बारं।
सकल-सौभाग्य-सुख-खानि जिय जानि सठ मानि विस्वास वद वेदसारं ॥ १ ॥
कौसलेंद्र नवनीलकंजाभतन मदनरिपुकंजहृदचंचरीकं ।
जानकीरवन सुखभवन भुअनैक प्रभु समर भंजन परमकारुनीकं ॥
दनुजवनधूमधुज पीनआजानुभुजदंडकोदंडवरचंडवानं ।
अरुन कर चरन मुख नैन राजीव गुनऐन बहुमैन सोभा-निधानं ॥ ३ ॥
वासनावृंदकैरवदिवाकर कामक्रोधमदकंजकाननतुषारं ।
लोभअतिमत्तनागेंद्रपंचाननं भक्तहितहरनसंसारभारं ॥ ४ ॥
केसवं क्लेसहं केसबंदितपदद्वंद्व मंदाकिनीमूलभूतं ।
सर्वदानंददसंदोह मोहापहं घोरसंसारपाथोधिपोतं ॥ ५ ॥
सोकसंदेहपाथोदपटलानिलं पापपर्वतकठिन कुलिसरूपं ।
संत जनकामधुकधेनुविस्रामपद नाम कलि कलुष भंजन अनूपं ॥

धर्मकल्पद्रुमाराम हरिधामपथिसंबलं मूलमिदमेव एकं।
भक्तिवैराग्यविज्ञानसमदानदम नामआधीन साधन अनेकं॥ ७॥
तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं।
येन श्रीरामनामाऽमृतंपानकृतमनिसमनवद्यमवलोक्यकालं॥ ८॥
स्वपचखलभिल्लजमनादिहरिलोकगत नामबल विपुल मति मलिन परसी।
त्यागि सब आस संत्रास भवपास असि निसित हरिनाम जपु दासतुलसी॥ ९॥

हे मूर्ख मन! सदा बारम्बार राम नाम जप। हे मूर्ख! "वह सब सौभाग्य और सुख की खानि है" ऐसा जी में जानकर और "वह वेद का सार है" ऐसा विश्वास मान कर उसे (बार बार) कह॥ १॥ (वे रामजी) अयोध्या के राजा हैं, हाल के खिले हुए नील कमल के समान उनके शरीर की छवि है और वे शिवजी के हृदय-कमल में भौंरे रूप होकर निवास करते हैं (अर्थात् देवों के देव महादेवजी भी उनका ध्यान करते हैं)। जानकीजी के साथ विहार करने वाले, सुख के स्थान, (सब) भुवनों के एक ही स्वामी और संग्राम में (दुष्टों के) नाशक और बड़े दयावान् हैं॥ २॥ राक्षसों के वन के लिए अग्नि के समान, मोटे और घुटनों तक के लंबे भुजदंडों में सुन्दर धनुष और तीखे बाण को धारण किये। जिनके हाथ, चरण, मुख और नेत्र लाल कमल के समान हैं जो (दया, उदारता आदि) गुणों के स्थान और बहुत से कामदेवों की शोभा के निधान हैं॥ ३॥ (धन, धाम, स्त्री, पुत्र आदि की संसारी) वासना का समूह ही कुमोदनी हुआ उसको (बन्द करने के लिए) सूर्य-रूप और काम, क्रोध, मद-रूपी कमलों के वन को मारने के लिये तुषाररूप अर्थात् जिनका नाम लेते ही काम क्रोधादि नष्ट हो जाते हैं) और लोभरूपी बड़े मतवाले श्रेष्ठ हाथी के लिए सिंह-रूप (अर्थात् जिनके ध्यान मात्र से लोभ नष्ट हो जाय) और भक्तों के हित के लिए संसार के भार (रावण आदि राक्षस) का नाश करने वाले॥ ४॥ जिनका केशव नाम है, क्लेश के नाशक, ब्रह्मा और महादेव ने जिनके दोनों चरणों को प्रणाम किया (कि जो चरण) गंगाजी की उत्पत्ति के स्थान हैं। सदा आनन्द के समूह, मोह के नाशक और भयानक संसाररूपी समुद्र के (तरने के) लिए जहाज़रूप हैं॥ ५॥ शोक और संदेह-रूपी

मेघों के समूह के दूर करने के लिए वायु-रूप, और पापरूपी कठिन पर्वत को तोड़ने के लिये वज्र-रूप ॥ ६ ॥ वे संतजनरूपी कामधेनु की विश्राम के स्थान अर्थात् देने वाले हैं और उनका नाम कलियुग के पापों का ऐसा नाशक है कि जिसकी उपमा नहीं। यह ( नाम ) धर्मरूपी कल्पवृक्ष को ( लगाने के लिए ) बाटिका-रूप और विष्णुधाम के ( जाने वालों के लिए ) मार्ग में कलेवे के समान है और यही ( नाम भगवान् से मिलने की ) एक जड़ है। और भक्ति, वैराग्य, आत्मज्ञान, शम, दान और दम ये अनेक साधन नाम के ही अधीन हैं अर्थात् नाम के बिना ये नहीं हो सकते ॥७॥ उसी ने तप, होम और सबही दान कर लिये और उसीने सब कर्मजाल—यज्ञादि—किये कि जिसने कलिकाल को देखकर पवित्र राम नाम-रूपी अमृत-पान रात दिन किया ॥ ८ ॥ दुष्ट श्वपच, भील और यवन आदि भी नाम के बल से विष्णुधाम को गये कि जिनकी बुद्धि को बड़ी मलिनता ने स्पर्श किया था अर्थात् जिनकी बुद्धि बड़ी भ्रष्ट थी। ( इसलिए ) हे तुलसीदास ! सब आशा, संत्रास अर्थात् नरक आदि की पीड़ा और संसाररूपी बन्धन को काटने के लिए पैनी तलवार के समान भगवान् के नाम को जप ॥ ९ ॥

सन्धि-विभाग—कंज + आभ (छबि)। भुअन + एक। क (ब्रह्मा) + ईस (शिव)। सर्वदा + आनंद। मोह + अपहं। पटल + आविलं (वायु)। कल्पद्रुम + आराम (बाग़)। दत्तं + एव (ही, भी) + अखिलं ( सब )। नाम + अमृतं। कृतं + अनिसं ( सदा )। अनवद्य ( पवित्र ) + अवलोक्य ( देखकर )। जमन + आदि।

शब्दार्थ—मदनरिपु = कामदेव के शत्रु ( शिव )। धूमधुज = अग्नि। ऐन = घर। मैन = कामदेव। कैरव = कुमोदनी। तुषार = पाला। नागेन्द्र = श्रेष्ठ हाथी। पंचानन = सिंह। मूलभूत = उत्पत्ति-स्थान। पाथोधि = समुद्र। पोत = जहाज़। पाथोद = मेघ। पटल = समूह। कुलिस = वज्र। आराम = बाटिका, बगीची। संबल = कलेवा। पास = फंदा। असि = तलवार। निसित = पैनी।

[ ४७ ]

**ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन।**
**हरनदुखद्वंद्व गोविंद आनंदघन ॥ १ ॥**
**अचरचररूपहरि सर्वगत सर्वदा बसत इति वासना धूप दीजै।**
**दीप निजबोध गतकोहमदमोहतम प्रौढ़ अभिमान चितवृत्ति छीजै ॥ २ ॥**

भाव अतिसै विसद प्रवर नैवेद्यसुभ श्रीरमनपरमसंतोषकारी।
प्रेम तांबूल गतसूलसंसयसकल विपुलभववासनाबीजहारी ॥३॥
असुभसुभकर्मघृतपूर्नदसवर्तिका त्यागपावकसतोगुनप्रकासं।
भक्तिवैराग्यविज्ञान दीपावली अर्चि नीराजनं जगनिवासं ॥४॥
विमलहृदिभवन कृतसांतिपर्जंकसुभ सयन विस्राम श्रीरामराया।
छमाकरुनाप्रमुष तत्र परिचारिका जत्र हरि तत्र नहिं भेदमाया ॥५॥
इहैआरती निरत सनकादिसुक सेष सिव देव रिषि अखिल-
मुनितत्त्वदरसी।
करै सोइ तरै परिहरै कामादिमल वदति इति अमलमति दास
तुलसी ॥ ६ ॥

हे मन! रघुकुल के वीर रामचन्द्रजी की ऐसी आरती कर। वे द्वन्द्व (अर्थात् शीत, उष्ण, रागद्वेष आदि) दुःख के नाशक, इन्द्रियों के चैतन्य करनेवाले और आनन्द के बरसाने वाले हैं ॥ १ ॥ "भगवान् चर और अचररूप, सर्वव्यापक और सर्वदा (अर्थात् तीनों कालों में) रहने वाले हैं" इस वासना की धूप दे (भाव यह है कि जैसे गूगुल आदि की धूप देने से दुर्गन्धि जाती रहती है ऐसे ही इस वासना से सब चर अचर में से भेदभाव जाता रहेगा) फिर धूप के आगे दीपक होता है सो कहते हैं कि अपने आत्मज्ञान का दीपक जलाकर उससे क्रोध, मद, मोह के अंधकार का नाश कर। इससे भारी अभिमान की चित्तवृत्तिरूपी बत्ती धीरे धीरे जल जायगी ॥ २ ॥ (अब दीपक के पीछे नैवेद्य कहते हैं) अत्यन्त निर्मल (अर्थात् निष्कपट) जो बड़ा सुन्दर भाव है उसीका श्रेष्ठ नैवेद्य लगा, वह लक्ष्मीपति भगवान् को बड़ा संतोष देने वाला है। (अब नैवेद्य के पीछे ताम्बूल चाहिए सो कहते हैं कि भगवान् में जो) प्रेम है सोई हुआ तांबूल उससे सब संशयरूपी शूल का नाश कर कि जो (प्रेमरूपी तांबूल) संसार की बड़ी भारी वासना के बीज का नाश करने वाला है ॥ ३ ॥ (अब तांबूल के पीछे आरती कहते हैं कि) शुभ और अशुभ कर्मरूपी घृत में डूबी हुई दश (इन्द्रियरूपी) बत्तियों को त्यागरूपी अग्नि से जला कर (शरीररूपी दीपक में) सतोगुणरूपी (१)

(१) तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्। अर्थात् तीनों गुणों में सतोगुण निर्मल होने से प्रकाशक और शान्त है।

प्रकाश कर। और भक्ति, वैराग्य, ज्ञान की दीपावली की आरती भगवान् के अर्पण कर ॥ ४ ॥ ( आरती के पीछे शयन कराते हैं सो ) निर्मल हृदयरूपी मन्दिर में शान्तिरूपी सुन्दर पलंग पर श्रीराजा रामचन्द्रजी को सुला कर विश्राम करा। ( जहाँ महाराज का शयन होता है वहाँ दासियाँ रहती हैं सो यहाँ ) क्षमा, करुणा आदि को दासियाँ बना। जहाँ भगवान् हैं वहाँ भेद ( कराने वाली ) माया नहीं होती। ( भाव यह है कि भगवान् सुखपूर्वक सोते हैं ) ॥ ५ ॥ इस आरती में सनक आदि, शुकदेवजी, शेषनाग, शिवजी, देवता, ऋषि और तत्व के जानने वाले सब मुनि लगे रहते हैं और जो करता है सोई तर जाता है और काम आदि मल से छूट जाता है। यह ( सनक आदि ) निर्मल मतिवालों का दास तुलसी कहता है ॥ ६ ॥

इसका आशय यह है कि जब चराचर में भेद-भाव नहीं रहे और ईश्वर को सर्व-व्यापी समझा जाय तब आत्म-ज्ञान का उदय होता है जिससे क्रोध, मद, मोह और अभिमान का नाश हो जाता है। निर्मल भाव से चित्त में संतोष होता है और भगवान् में अनन्य प्रेम उत्पन्न होता है जिससे सब संशय और वासना आदि का कारण ही नष्ट हो जाता है। दश इन्द्रियाँ, जो भले बुरे कामों में लगी रहती हैं, त्याग के होने से अपने सब विषय छोड़कर सतोगुणी वृत्ति धारण करती हैं और भक्ति, वैराग्य और विज्ञान में लीन हो जाती हैं। इससे हृदय के निर्मल हो जाने पर वहाँ सर्वतोभाव से शान्ति व्यापती है तब ब्रह्म का प्रकाश होता है। ब्रह्म का प्रकाश होने पर क्षमा, करुणा आदि सद्गुण ही रहते हैं तथा भेद, माया का नाश हो जाता है। यथाः—

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम॥

शब्दार्थ—बोध = आत्मज्ञान। तम = अँधेरा। वासना = इच्छा। विसद = निर्मल। विपुल = सब। नीरांजन = आरती। पर्जक = पलंग। परिचारिका = दासी। आरती = छः उपचार अर्थात् धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, आरती और शयन।

[ ४८ ]

**हरति सब आरती आरती राम की।**
**दहन दुख दोष निर्मूलिनी काम की ॥ १ ॥**
**सुभगसौरभधूपदीपवरमालिका।**
**उड़त अघ विहँग सुनि ताल करतालिका ॥ २ ॥**

भक्तहृदभवन अज्ञानतमहारिनी।
विमलविज्ञानमय तेज विस्तारिनी ॥ ३ ॥
मोहमदकोहकलिकंजहिमजामिनी।
मुक्ति की दूतिका देहदुतिदामिनी ॥ ४ ॥
प्रनतजनकुमुदवन इंदुकरजालिका।
तुलसि अभिमान महिषेस बहु कालिका ॥ ५ ॥

रामजी की आरती सब पीड़ा को हरती है, दुःख और पापों को जलाती है और काम को जड़ से उखाड़ डालती है ॥ १ ॥ वह सुन्दर सुगंधियुक्त धूप और सुन्दर दीपकों की माला है, ( उस आरती के समय ) हाथ की ताली की ताल सुनकर पापरूपी पक्षी उड़ जाते हैं ॥ २ ॥ भक्त के हृदयरूपी मन्दिर के अज्ञानरूपी अँधेरे को हरने वाली है। और निर्मल आत्मज्ञान के प्रकाश को बढ़ाने वाली है ॥ ३ ॥ मोह, मद, क्रोध और क्लेश-रूपी कमलों को ( नाश करने के लिये ) पाले की रात्रि है और मुक्ति (रूपी नायिका) की दूती है और उसके देह की चमक बिजली के समान है ॥ ४ ॥ प्रणाम करते हुए भक्तजन ही हुए कमलिनी के वन उनको ( खिलाने के लिये ) चन्द्रमा की किरणों की माला है और तुलसी के अभिमान-रूपी महिषासुर के लिए बहुत सी कालिकाओं का रूप है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—आरती = दुःख आरता। सौरभ = सुगंधित। अघ = पाप। विहग = पक्षी। कंज = कमलिनी। जामिनी = रात। दामिनी = बिजली। कर = किरण। महिषेस = महिषासुर।

[ ४९ ]

## हरिशंकरी पद।

दनुज-वनदहन गुनगहन गोविंद नंदादिआनंददाताऽविनासी।
संभु सिव रुद्र संकर भयंकरभीम घोर तेजायतन क्रोधरासी ॥ १ ॥
अनंत भगवंत जगदंत अंतक त्रास समन श्रीरमन भुवनाभिरामं।
भूधराधीस जगदीस ईसान विज्ञान घन ज्ञानकल्यानधामं ॥ २ ॥

वामनाव्यक्त पावन परावरविभो प्रगट परमात्मा प्रकृतिस्वामी ।
चन्द्रसेषर सूलपानि हर अनघ अज अमित अविछिन्न वृषभेश-
गामी ॥ ३ ॥

नीलजलदाभतनु स्याम बहु कामछवि राम राजीवलोचन कृपाला ।
कंबुकर्पूरवपुधवल निर्मल मौलि जटा सुरतटिनि सित सुमनमाला॥
वसनकिंजल्कधर चक्रसारंगदरकंजकौमोदकी अतिविसाला ।
मारकरिमत्तमृगराज त्रैनैन हर नौमि अपहरनसंसारजाला ॥
कृष्ण करुनाभवन दवनकालीय खल बिपुलकंसादि निर्वंसकारी ।
त्रिपुरमदभंगकर मत्तगजचर्मधर अंधकोरग ग्रसनपन्नगारी ॥ ६ ॥
ब्रह्म व्यापक अकल सकलपर परमहित ज्ञानगोतीत गुनवृत्ति
हरता ।

सिंधुसुतगर्वगिरि वज्र गौरीस भव दच्छमखअखिलविध्वंसकरता ॥
भक्तिप्रिय भक्तजनकामधुकधेनु हरि हरनदुर्घटाविकट विपति
भारी ।

सुखद नर्मद वरद, विरज अनवद्याखिल, विपिन आनंदवीथिन-
विहारी ॥ ८ ॥

रुचिर हरिसंकरी नाममन्त्रावली द्वंद्वदुखहरनि आनंदखानी ।
विष्णुसिवलोकसोपानसम सर्वदा वदत तुलसीदास विसदबानी ॥

यह पद हरिशंकरी है । इसके एक पक्ष में भगवान् का और दूसरे पक्ष में शिव का वर्णन है—

( भगवान् कैसे हैं कि ) दैत्यरूपी वन को ( भस्म करने के लिये ), अग्निरूप ( शील आदि ) गुणों के वन अर्थात् बड़े गुणी, इन्द्रियों को चैतन्य करने वाले, नन्द आदि को आनन्द के दाता और जिनका विनाश न हो । (शिवजी कैसे हैं कि) शंभु, शिवशंकर

( कल्याणकारी जिनके नाम हैं ), भयङ्कर जो काल आदि उनसे भी भयङ्कर, भारी तेज के स्थान ( अर्थात् बड़े तेजस्वी ) और ( प्रलय के समय ) क्रोध की राशि हैं ॥१॥ ( भगवान् कैसे हैं कि ) जिनका अंत नहीं, छः ऐश्वर्ययुक्त, संसार के नाशक, यमराज के दिये हुए भय को दूर करने वाले, लक्ष्मीपति और सब भुवनों को आनन्द के दाता हैं। ( शिवजी कैसे हैं कि ) कैलाश पर्वत के पति, संसार के स्वामी, ईशान ( है नाम जिनका ), बड़े आत्मज्ञानी और ज्ञान तथा कल्याण के स्थान हैं ॥ २ ॥ ( भगवान् कैसे हैं कि ) वामन रूप धरनेवाले, अप्रकट, पवित्र, परावर ( अर्थात् जड़ चैतन्य के स्वामी ), साक्षात् परमात्मा और माया के स्वामी हैं। ( शिवजी कैसे हैं कि ) शिर पर चन्द्रमा को धारण किये, हाथ में त्रिशूल लिये, हर, निष्पाप, जन्मरहित, जिनका परिमाण नहीं, पूर्णरूप, नन्दीगण पर ( बैठकर ) जानेवाले ॥ ३ ॥ ( भगवान् कैसे हैं कि ) नीले मेघ की छबि के समान जिनका श्याम शरीर है, बहुत से कामदेवों की सी शोभावाले, जिनके नेत्र कमल समान हैं, जो कृपालु हैं और जिनमें योगी रमते हैं। (शिवजी कैसे हैं कि) जिनका शरीर शंख और कपूर के समान स्वेत (अर्थात् शंख-समान चिकना और कपूर के समान सुगंधित ) तथा निर्मल है, और जिनके शिर पर जटाजूट में गंगाजी विराजमान हैं और जो स्वेत पुष्पों की माला पहिरे हैं ॥४॥ (भगवान् कैसे हैं कि) कमल की केसर के समान पीताम्बर धारे, ( हाथों में ) "सुदर्शन" चक्र "शारंग" शंख, कमल और बड़ी भारी कौमोदकी धारण किये हैं। ( शिव कैसे हैं कि ) कामरूपी मतवाले हाथी को ( विदारने के लिये ) सिंहरूप, जिनके तीन नेत्र हैं और जो संसार के जाल को दूर करने वाले हैं। ऐसे शिवजी को प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥ ( भगवान् कैसे हैं कि ) श्याम-स्वरूप, दया के स्थान, कालीनाग को दमन करनेवाले, और कंस आदि बहुत से दुष्टों को निर्वंश करने वाले हैं। ( शिवजी कैसे हैं कि ) त्रिपुरासुर का मद भंग करने वाले, मतवाले हाथी का चर्म धारण किये, अंधक नाम दैत्यरूपी सर्प को ग्रसने के लिए गरुड़ रूप हैं ॥ ६ ॥ ( भगवान् कैसे हैं कि ) ब्रह्म ( चराचर में ) व्यापक, कलारहित, सबसे परे ( अर्थात् श्रेष्ठ ) बड़े हितकारी, ज्ञान और इन्द्रियों से परे, ( अर्थात् भिन्न ) और रजोगुण आदि की वासना के हरने वाले हैं। शिवजी ( कैसे हैं कि ) जलंधर के (१) गर्वरूपी पर्वत को (तोड़ने के लिये) वज्र रूप, पार्वती के पति, मंगलरूप

---

( १ ) एक बार जब जलंधर से सब देवता हार गये तब उन्होंने शिवजी के पास जाकर विनय की। शिवजी ने उससे बड़ा भारी युद्ध किया परन्तु वह दैत्य बड़ा बली था; मारा ही न मरे। क्योंकि जलंधर की स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। उसके प्रताप से जब शिवजी उसे नहीं जीत सके तब भगवान् साधु का वेश बनाकर जलंधर के घर पर जा बैठे। उसकी स्त्री उनसे युद्ध का समाचार पूछने लगी। इतने ही में भगवान् की माया से जलंधर

और दक्ष के संपूर्ण यज्ञ के विध्वंस करने वाले हैं ॥ ७ ॥ ( भगवान् कैसे हैं कि ) जिनको भक्ति प्यारी है, भक्तजनों को कामधेनु के समान और कठिन और भयानक भारी विपत्ति के हर्ता हैं। ( शिव कैसे हैं कि ) सुख के दाता, आनन्द देनेवाले, वर के दाता रजोगुणरहित, सब विकारशून्य, और आनन्द-वन ( काशी ) की गलियों में विहार करने वाले हैं ॥ ८ ॥ हरिशंकरी नाम ( यह ) सुन्दर मंत्रों की ( दुहरी ) पंक्ति कर्मबन्धन के दुःख को हरनेवाली, आनन्द की खान और सदा विष्णु और शिवलोक की सीढ़ी के समान है यह तुलसीदास निर्मल वाणी से कहता है ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—नन्द + आदि। दाता + अविनासी। तेज + आयतन (स्थान)। भुवन + अभिराम। भूधर + अधीस। जगत् + ईस। वामन + अव्यक्त ( निराकार )। जलद + आभ ( छवि )। कंस + आदि। अंधक + उरग। गो (इन्द्रियाँ) + अतीत ( परे )। अनवद्य ( पाप वा विकाररहित ) + अखिल। गौरी + ईस। मन्त्र + अवली ( पंक्ति )।

शब्दार्थ—भीम = भयङ्कर। जगदंत = संसार के नाशक। अंतक = यमराज। प्रकृति = माया। अविछिन्न = जो कटा हुआ न हो, पूर्ण। वृषभेस = बैलों का स्वामी, नन्दीगण। राजीव = कमल। कंबु = शंख। सुरतटनि = देवताओं की नदी, गंगा। किंजल्क = कमल की केसर। सारंग = विष्णु का धनुष। कौमोदकी = विष्णु की गदा। दर = शंख। मार = कामदेव। पन्नगारि = गरुड़। सिंधुसुत = जलंधर। बर्स = आनन्द। बीथिन = गलियाँ। सोपान = सीढ़ी।

[ ५० ]

भानुकुलकमलरवि कोटिकंदर्पछवि कालकलिव्यालमिव वैनतेयं।
प्रबल भुजदंड परचंड कोदंडधर तूनवर विसिष बलमप्रमेयं ॥१॥
अरुनराजीवदलनैन सुखमाअयन स्यामतनकांति वर वारिदाभं।
तप्तकांचनवस्त्र सस्त्रविद्यानिपुन सिद्धसुरसेव्य पाथोजनाभं ॥२॥
अखिललावन्यगृह विस्वविग्रह परमप्रौढ़ गुनगूढ़ महिमाउदारं।
दुर्द्धर्ष दुस्तर दुर्ग स्वर्गअपवर्गपति भग्नसंसारपादपकुठारं ॥ ३ ॥

---

के शरीर के सब अंग वहाँ आ गिरे जिन्हें देख स्त्री महाविलाप करने लगी। साधुरूप भगवान् ने कहा तू तो सती है; इसका शरीर जोड़ दे। तेरे सत से यह जी उठेगा। जब उसने वैसाही किया तब जलंधर में प्राण आगये। यह देख उसकी स्त्री भगवान् के पैर दबाने लगी। अंग के स्पर्श होते ही सतीपन नष्ट होगया और वहाँ शिवजी ने उसे मारा। उसके मरते ही वहाँ से साधु और जलंधर के रूप का लोप होगया। स्त्री ने यह भेद जान भगवान् को शाप दिया कि तुम स्त्री के विरह में बड़े दुखी होगे और मेरा पति तुम्हारी स्त्री को चुरावेगा।

सापवस मुनिवधूमुक्तकृत विप्रहितजज्ञरच्छणदच्छ पच्छकरता।
जनकनृपसदसि सिवचापभंजन उग्रभार्गवागर्वगरिमापहरता ॥४॥
गुरुगिरागौरवअमरसुदुस्त्यजराज्यत्यक्त सहित सौमित्रि-भ्राता।
संग जनकात्मजा मनुजमनुसृत्य अज दुष्टवधनिरत त्रैलोक्यत्राता॥
दंडकारन्य-कृतपुन्य-पावनचरन हरनमारीच-मायाकुरंगं।
बालिबलमत्तगजराज इव केसरी सुहृदसुग्रीवदुखरासिभंगं ॥६॥
रिच्छमर्कट विकट सुभट उद्भट समरसैलसंकासरिपुत्रासकारी।
बद्धपाथोधि सुरनिकरमोचनसकुलदलन दससीसभुजबीसभारी॥
दुष्टविबुधारिसंघात अपहरन महिभार अवतार कारनअनूपं।
अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुनसगुन ब्रह्म सुमिरामिनरभूपरूपं ॥८॥
सेष स्रुति सारदा संभु नारद सनक गनत गुन अंत नहिं तव चरितं।
सोइ राम कामारिप्रिय अवधपति सर्वदा दासतुलसीत्रास निधि-वहितं॥ ९ ॥

सूर्य वंशरूपी कमल को (खिलाने के लिए) सूर्यरूप, करोड़ों कामदेव की सी जिनकी छवि है और जो कलिकालरूपी सर्प को (ग्रसने के लिए) गरुड़रूप हैं। अपनी बड़ी बलवाली लम्बी भुजाओं में बड़े कठिन धनुषबाण को धारन किये, (कमर में) तरकस बाँधे और जिनके बल का प्रमाण नहीं है॥ १॥ लाल कमल-पत्र के समान जिनके नेत्र हैं, जो शोभा के स्थान हैं और जिनके श्याम शरीर की छवि सुन्दर मेघ की छवि के समान है। जो तपे हुए सुवर्ण के समान (चमकते हुए) वस्त्र धारण किये हैं और शस्त्र-विद्या में चतुर तथा सिद्ध और देवताओं के पूज्य हैं और जिनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ है ॥२॥ जो सम्पूर्ण सुन्दरता के स्थान, संसार है शरीर जिनका (अर्थात् विराट्स्वरूप), बड़े चतुर, (तेल बल-वीर्य ऐश्वर्य इत्यादि) गुण जिनके गुप्त हैं, और जिनकी महिमा बड़ी है, दुर्धर्ष (अर्थात् किसी से जीते जाने के योग्य नहीं हैं) और दुस्तर (अर्थात् जिनकी महिमा के पार कोई न जा सके), दुर्ग (अर्थात् कठिन कि जहाँ शत्रु के शस्त्र काम न दें) स्वर्ग और अपवर्ग अर्थात् मोक्ष के पति, (अर्थात् देनेवाले)

और (सन्तजनों के हृदयों में से) संसाररूपी वृक्ष को (उखाड़ने के लिये) कुठार रूप हैं ॥३॥ मुनि की स्त्री (अहिल्या) को (शाप वश से) छुड़ानेवाले हैं, विप्र (विश्वामित्र) के लिए यज्ञ की रक्षा में बड़े चतुर, और (भक्तों का) पक्ष करनेवाले हैं। और राजा जनक की सभा में शिव-धनुष को तोड़ कर क्रूर परशुरामजी के भारी घमंड को नाश करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ उन्होंने पिता के वचन का बडप्पन रखने के लिए देवताओं से भी बड़े दुःख से छोड़ा जाय ऐसे राज्य को छोड़ दिया। और भाई लक्ष्मण-सहित और जानकीजी के साथ साक्षात् ब्रह्म और त्रिलोकी के रक्षक (भगवान्) नर-लीला करने के लिए दुष्ट (रावण) के मारने में लगे ॥ ५ ॥ अपने पवित्र चरणों से दंडकवन को पवित्र करनेवाले, कपट के मृग मारीच को मारनेवाले। वाली के बलरूपी मतवाले हाथी को (विदारण करने के लिए) सिंहरूप और मित्र सुग्रीव के दुःख-समूह के नाशक हैं ॥ ६॥ भयंकर और बड़े वीर, रीछ-बन्दरों में बड़े भारी योद्धा के समान, और समर में पर्वत के समान (कुम्भकरण आदि) शत्रुओं को डरानेवाले, जिन्होंने समुद्र को बाँधा, देवताओं के समूह को छुड़ाया और भारी दश-शिर और बीस भुजावाले (रावण) का कुल-समेत नाश कर दिया ॥७॥ दुष्ट और देवताओं के शत्रुओं के समूह जो पृथ्वी का भाररूप (रावण आदि) थे उनके नाश के लिए अवतार लेने में उपमारहित कारणवाले। निर्मल, दूषण-रहित, अद्वैत (अर्थात् जिनके समान कोई नहीं) निर्गुण (अर्थात् सत, रज, और तम इन गुणों से रहित), और सगुण (अर्थात् अवतार धारण करनेवाले) ब्रह्म और नराकार ऐसे राजस्वरूप (रामजी) का स्मरण करता हूँ ॥ ८ ॥ शेषनाग, वेद, सरस्वती, शिवजी, नारद, और सनकादि ये गुणों का वर्णन करते हैं परन्तु जिनके चरित्र का पार नहीं पाते, सोई शिवजी के प्यारे, अवध के स्वामी रामचन्द्रजी इस तुलसीदास को दुःखरूपी समुद्र से (तारने के लिए) सदा नाव रूप हैं ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—व्यालं + इव। बलं + अप्रमेयं (प्रमाणरहित) वारिद (मेघ) + आभं। गरिमा (बोझा, भारीपन) + अपहर्ता। अनुजं + अनुसृत्य। दंडक + अरन्य। विबुध + अरि। काम + अरि।

शब्दार्थ—वैनतेय = गरुड़। तून—तरकस। विसिख = बाण। पाथोज, वारिज = कमल। संकास = आकार, समान। अनवद्य = दूषणरहित।

[ ५१ ]

जानकीनाथ रघुनाथ रागादितम-तरनि तारुन्यतनु तेजधामं।
सच्चिदानंदआनंदकंदाकरं विस्वविस्राम रामाभिरामं ॥ १ ॥
नीलनववारिधरसुभग सुभकांतिकर पीत कौसेय बरवसनधारी।

रत्नहाटकजटितमुकुटमंडितमौलि भानुसतसद्दस उद्योतकारी ॥
स्त्रवनकुंडल भालतिलक भ्रूरुचिरअति अरुन अम्भोज-
लोचनविसालं ॥ २ ॥

बक्रअवलोक त्रैलोक्यसोकापहं माररिपुहृदयमानसमरालं ॥ ३ ॥
नासिकाचारु सुकपोल द्विजवज्रदुति अधरविंबोपमा मधुरहासं ।
कंठदर चिबुकवर वचनगंभीरतर सत्यसंकल्प सुरत्रासनासं ॥४॥
सुमनसुविचित्रनवतुलसिकादलयुतं मृदुलवनमालउरभ्राजमानं ।
भ्रमतआमोदवसमत्तमधुकरनिकर मधुरतरमुखर कुर्वंति गानं ॥
सुभगश्रीवत्स केयूरकंकनहार किंकिनीरटनिकटितटरसालं ।
वाम दिसिजनकजासीनसिंहासनं कनकमृदुवल्लिवत तरु तमालं ॥
आजानुभुजदंड कोदंडमंडितबाम बाहु दच्छिनपानिबानमेकं ।
अखिलमुनिनिकर सुर सिद्ध गन्धर्ववर नमत नर नाग अवनिप
अनेकं ॥ ७ ॥

अनवद्य अवछिन्न सर्वज्ञ सर्वेस खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं ।
प्रनतजनखेदविच्छेदविद्यानिपुन नौमि श्रीरामसौमित्रि साकं ॥८॥
युगलपदपद्मसुखसद्मपद्मालयं चिह्नकुलिसादि सोभाति भारी ।
हनुमंतहृदि विमल कृत परम मंदिर सदा दासतुलसीसरन
सोकहारी ॥ ९ ॥

जानकीपति रघुकुल के स्वामी, राग आदिरूपी अंधकार को (नाश करने के लिए) सूर्यरूप, तरुण शरीरवाले, तेज के स्थान, सच्चिदानन्द, आनन्द-कन्द की खान, संसार को विश्राम देनेवाले ऐसे सुन्दर रामचन्द्रजी हैं ॥१॥ नीले नवीन मेघ के समान सुन्दर, मंगलीक कांतिवाले, सुन्दर रेशमी पीताम्बर को धारण किये। रत्नजटित सुवर्ण का मुकुट जिनके मस्तक पर शोभित है और जो सैकड़ों सूर्य के समान प्रकाश करनेवाले हैं ॥ २ ॥ कानों में (मकराकृत) कुण्डल पहिरे, माथे में (केसरिया) तिलक लगाये,

जिनकी बड़ी सुन्दर भ्रुकुटी और लाल कमल के समान बड़े बड़े नेत्र हैं। टेढ़ी चितवन है, त्रिलोकी का शोक दूर करनेवाले, और शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर में हंस रूप होकर (निवास करनेवाले) हैं ॥ ३ ॥ जिनकी सुन्दर नाक, जिनके सुन्दर (गोल गोल) गाल, हीरे की चमक कैसे दाँत, बिम्बा-फल के समान होठ, जिनका मधुर हास, जिनकी शंख की सी ग्रीवा और उत्तम ठोड़ी है और जो बड़े गम्भीर वचन बोलनेवाले, सत्य-प्रतिज्ञ और देवताओं के भय के नाशकर्ता हैं ॥ ४ ॥ जिसमें तरह तरह के फूल और नये तुलसीपत्र गुथ रहे हैं ऐसी कोमल वनमाला जिनकी छाती पर शोभायमान है। और ( उस पर ) सुगन्धि के वश मतवाले भौंरों का झुंड उड़ रहा है और (वे भौंरे) बड़े मीठे शब्द से गान कर रहे हैं ॥ ५ ॥ जिनके ( हृदय पर ) सुन्दर श्रीवत्स का चिह्न है, ( हाथ में ) बाज़ूबंद और कंकण तथा ( गले में सुन्दर मणियों का ) हार पहिरे और कमर में सुन्दर तागड़ी बज रही है। सिंहासन के बाईं ओर जानकीजी के विराजमान होने से ( ऐसी शोभा हो रही है मानों ) तमाल वृक्ष के पास कोमल सुवर्ण-लता शोभित हो ॥ ६ ॥ जिनकी घोटूं तक लम्बी दंड समान भुजायें हैं, बाम बाहु में धनुष शोभित है, दाहने हाथ में एक बाण है। सम्पूर्ण मुनियों का समाज देवता, सिद्ध, सुन्दर गन्धर्व, नर, नाग और अनेक राजा जिनको प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥ जो पापरहित, जिनके अंश कला न हो सकें, जो सबके (हृदय की ) जाननेवाले, सबों के स्वामी और निश्चय करके सब प्रकार से हमको कल्याण के दाता और भक्तजन के खेद के नाश की विद्या में चतुर हैं ऐसे लक्ष्मणजी समेत श्री रामचन्द्रजी को प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥ जिनके दोनों चरण-कमल लक्ष्मी के मन्दिर होने से सुख के स्थान हैं और ( उन चरणों में ) कुलिश आदि चिह्नों की भारी शोभा हो रही है और जिन्होंने हनुमानजी के निर्मल हृदय को अपना उत्तम मन्दिर बनाया है ऐसे शोकनाशक भगवान् की मैं "तुलसीदास" सदा शरण हूँ ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—राग + आदि। आनन्दकन्द + आकर। राम + अभिराम। सोक + अपहं। बिम्ब + उपमा। जनकजा + आसीन। बाणं + एकं। सर्व + ईस। दाता + अस्माकं ( हमारे )। पद्मा ( लक्ष्मी ) + आलय।

शब्दार्थ—तरनि = सूर्य। सच्चिदानन्द = आत्मा का स्वरूप। (सत् जो त्रिकाल में एक सा रहे, चित् = ज्ञानस्वरूप, घटपटादि का देखनेवाला और अनुभवकर्त्ता, आनन्द जो दुःखों से नष्ट न हो )। वारिधर = बादल। कौसेय = रेशमी। उद्योत = उजेला। द्विज = दाँत। वज्र = हीरा। अधर = होठ। दर = शंख। मुखर = शब्दायमान। श्रीवत्स = विष्णु की छाती का चिह्न। वल्लि = लता। अवनि = ( पृथ्वी ) + प ( रक्षक ) = राजा।

[ ५२ ]

कौसलाधीस जगदीस जगदेकहित अमितगुनविपुलविस्तार-लीला ।
गायंति तव चरित सुपवित्र स्रुति सेष सुक संभु सनकादि मुनि मनन-सीला ॥ १ ॥
वारिचरवपुषधर भक्तनिस्तारपर धरनिकृत नाव महिमातिगुर्वी ।
सकलजज्ञांसमय उग्रविग्रहक्रोड मरदि दनुजेस उद्धरन उर्वी ॥२॥
कमठ अतिविकटतनु कठिन पृष्ठोपरी भ्रमतमंदर कंडुसुख मुरारी ।
प्रगटकृतअमृत गो इंदिरा इंदु वृंदारकावृंदआनंदकारी ॥ ३ ॥
मनुज, मुनि, सिद्ध, सुर, नाग त्रासक दुष्ट दनुज द्विजधर्ममरजाद-हरता ।
अतुल मृगराजवपुधरित विद्दरितअरि भक्तप्रहलादअहलादकरता ॥
छलनबलिकपट बटुरूपवामन ब्रह्मभुवनपर्जंत पदतीनिकरनं ।
चरननखनीरत्रैलोकपावनपरम विबुधजननीदुसहसोकहरनं ॥५॥
छत्रियाधीसकरिनिकर नर केसरी परसुधरविप्रसासिजलदरूपं ।
बीसभुजदंडदससीस खंडन चंडवेगसायक नौमि रामभूपं ॥ ६ ॥
भूमिभरभारहर प्रगट परमातमा ब्रह्म नररूपधर भक्तहेतू ।
बृष्णिकुलकुमुदराकेस राधारवन कंसवंसाटवीधूमकेतू ॥ ७ ॥
प्रबलपाखंडमहिमंडलाकुल देखि निंद्यकृत अखिलमखकर्म जालं ।
सुद्धबोधैकघनज्ञानगुनधाम अज बौधअवतार वंदे कृपालं ॥ ८ ॥
कालकलिजनित मलमलिन मन सर्वनर मोह निसि निबिडजमनान्धकारं ।
विष्णुजसपुत्रकलकी दिवाकरउदित दासतुलसीहरनविपतिभारं ॥

हे अयोध्या के पति! तुम जगत् के स्वामी, और संसार के एक ही हितकारी हो, तुमने अपने अनगिनती गुणों से बड़ी लीला फैलाई है। तुम्हारे बड़े पवित्र चरित्र को वेद, शेषनाग, शुक, महादेव, सनक आदि और मन में ध्यान करनेवाले मुनि गाते हैं ॥१॥ तुमने मत्स्यरूप धारण कर, भक्तों का निस्तार करने के लिए (प्रलय के समय) पृथ्वी की नाव बनाई (क्योंकि उस पर सब प्रजा को बैठा कर जब तक प्रलय रहा तब तक उसे धारण किये रहे इसलिए) तुम्हारी महिमा बड़ी भारी है। तुम सम्पूर्ण यज्ञों के अंशों से पूर्ण हो, (जब हिरण्याक्ष पृथ्वी को चुरा ले गया था तब) तुम बड़े भयंकर शूकर के शरीर से हिरण्याक्ष का चूरा करके पृथ्वी को छुड़ा लाये थे ॥ २ ॥ हे मुरारी! तुमने बड़ा भयंकर कछुये का रूप धरा और तुम्हारी कड़ी पीठ पर मन्दराचल के घूमने से तुम्हें ऐसा सुख हुआ जैसा कि खाज खुजाने में होता है, (फिर समुद्र को मथ कर) तुमने अमृत, कामधेनु, लक्ष्मी, और चन्द्रमा को प्रकट किया, और यह (तुम्हारा काम) देवताओं के समूह को आनन्द का करनेवाला हुआ ॥ ३ ॥ मनुष्य, मुनि, सिद्ध, सुर और नाग इनको दुःख देनेवाले और ब्राह्मण तथा धर्म की मर्यादा के नाशक ऐसे दुष्ट दैत्य (हिरण्यकशिपु) को, बड़े भारी नृसिंह का रूप धर कर और शत्रु को फाड़ कर प्रह्लाद भक्त को आनन्दित कर दिया ॥ ४ ॥ तुमने राजा बलि को छलने के लिए कपट से बौने ब्रह्मचारी के रूप से ब्रह्मांड तक को तीन चरण में नाप लिया और (नापते समय ब्रह्मांड से) चरण के नख लगते ही (गंगा) जल निकला कि जिसने तीनों लोकों को परम पवित्र कर दिया और तुमने देवताओं की माता (अदिति) के दुःसह शोक को हर लिया (अर्थात् इन्द्र का राज्य जो बलि ने ले लिया था उसे फिर इन्द्र को दे दिया इससे अदिति प्रसन्न हुई) ॥५॥ तुमने (सहस्रबाहु आदि) क्षत्री राजारूपी हाथियों के झुंड को (विदारण करने के लिये) सुन्दर सिंह रूप और ब्राह्मणरूपी धान्य को (उपजाने के लिये) मेघ रूप ऐसा परशुराम स्वरूप धारण किया। फिर तुमने बीस भुजा और दश शिरवाले (रावण) का बड़े भयंकर वेगवाले बाणों से नाश किया ऐसे तुम्हें-राजा रामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ भूमि के (१) भारी भार को हरने के लिए तुम परमात्मा, ब्रह्म स्वरूप, भक्तों के लिए नर रूप धरके प्रकट हुए। और तुम वृष्णि

---

(१) गीता में कहा हैः—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत! अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥
अर्थात् हे अर्जुन! जब जब (वेदोक्त वर्णाश्रम) धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं अपने को उत्पन्न करता हूँ। और साधुओं की रक्षा, दुष्टों का नाश, और धर्म का स्थापन करने के लिए मैं युग युग में अवतार लेता हूँ।

कुल रूपी कुमुदनी को ( खिलाने के लिए ) चन्द्रमा रूप राधा के पति और कंसवंश रूपी वन ( जलाने ) के लिए अग्निरूप हुए ॥७॥ ( जब यज्ञ, धर्म, कर्म करके बली असुरों से देवता हार गये तब असुरों के ) प्रबल पाखंड से पृथ्वी-मंडल को व्याकुल देख तुमने यज्ञ कर्म के सम्पूर्ण जाल की निन्दा की ( कि यह किसी काम का नहीं इसमें हिंसा होती है और यों असुरों से यज्ञ, धर्म आदि छुड़ाया ) और शुद्ध बोधस्वरूप, बड़े ज्ञान और गुणों के स्थान तथा जन्मरहित ऐसे तुमने बुद्धावतार लिया। ऐसे कृपालु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥ इस कलिकाल में उत्पन्न हुए सब मनुष्यों का मन पाप से मलिन हो रहा है सो तुम अज्ञानरूपी रात्रि में म्लेच्छरूपी घने अंधकार के (नाश करने के) लिए सूर्योदय रूप होकर विष्णु यश (नाम ब्राह्मण) के यहाँ पुत्र रूप से कल्कि अवतार लोगे। ऐसे तुम तुलसीदास की विपत्ति के भार को दूर करो ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—कौसला + अधीस। जगत् + एक। महिमा + अति। जज्ञ + अंस। पृष्ठ + उपरि। क्षत्रिय + अधीस। वंसन + अटवी (वन)। मंडल + आकुल (घबराये)। बोध + एक। जमन + अंधकार।

शब्दार्थ—वारिचर = पानी में चलनेवाला। गुर्वी = भारी। विग्रह = देह। क्रोड = पेट। उर्वी = पृथ्वी। कमठ = कछुआ। कंडु = खुजली। इन्दिरा = लक्ष्मी। वृन्दारका = देवता। बटु = ब्रह्मचारी। वामन = बौना। ससि (सस्य) = खेती। राकेस = चन्द्रमा। धूमकेतु = धुँआ है ध्वजा जिसकी; अर्थात् अग्नि। निविड = घना।

[ ५२ ]

सकल सौभाग्यप्रद सर्वतोभद्रनिधि सर्व सर्वेस सर्वाभिरामं।
सर्वहृदिकंजमकरंदमधुकर रुचिररूप भूपालमनि नौमि रामं ॥१॥
सर्वसुखधाम गुनग्राम विस्रामपद नामसर्वासपदमतिपुनीतं।
निर्मलं सांत सुविसुद्ध बोधायतन क्रोधमदहरन करुनानिकेतं ॥२॥
अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्तविभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं।
प्राकृतं प्रकटपरमातमापर्महित प्रेरकानंत वंदे तुरीयं ॥ ३ ॥
भूधरं सुंदरं श्रीवरं मदन-मद-मथन सौंदर्यसीमातिरम्यं।
दुःप्राप्य दुःप्रेच्छ दुस्तर्क्य दुःपार संसारहर सुलभ मृदुभावगम्यं ॥
सत्यकृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदा पुष्ट संतुष्ट संकष्टहारी।
धर्मवर्मनि ब्रह्मकर्मबोधैक विप्रपूज्य ब्रह्मन्यजनप्रिय मुरारी ॥५॥

नित्य निर्मम नित्यमुक्त निर्मान हरि ज्ञानघन सच्चिदानन्द मूलं ।
सर्वरच्छक सर्व भच्छकाध्यच्छ कूटस्थ गूढ़ार्चि भक्तानुकूलं ॥६॥
सिद्धसाधकसाध्य वाच्यवाचकरूप मंत्रजापकजाप्य सृष्टिस्रष्टा ।
परमकारन कंजनाभ जलदाभतन सगुन निर्गुन सकलदृस्यद्रष्टा ॥
व्योमव्यापक विरज ब्रह्मवरदेस वैकुंठ वामन विमल ब्रह्मचारी ।
सिद्ध वृंदारकावृंदवंदितसदा खंडिपाखंडनिर्मूलकारी ॥ ८ ॥
पूरनानंदसंदोह अपहरन संमोहअज्ञानगुनसन्निपातं ।
वचनमनकर्मगतसरनतुलसीदास त्रासपाथोधिइव कुंभजातं ॥९॥

सब सौभाग्य के देनेवाले, सब प्रकार से कल्याण की खान, विश्वरूप, सबके ईश, सब लोगों को सुख के देनेवाले, शिवजी के हृदय-कमल के मकरन्द को ( पीने के लिए ) भ्रमररूप, सुन्दर रूपवान् और राजाओं के शिरोमणि ऐसे रामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ ( हे राम ) तुम सब सुख के स्थान, गुणों की राशि, विश्राम के देनेवाले हो, तुम्हारा बड़ा पवित्र नाम, सब ( वस्तुओं ) का स्थान अर्थात् देनेवाला है। तुम निर्मल, शान्त, परम शुद्ध, ज्ञान के स्थान ( अर्थात् अखंड आत्मस्वरूप ) हो और क्रोध तथा मद के हरनेवाले और करुणा के गृह हो ॥ २ ॥ तुम किसीसे जीतने योग्य नहीं, उपाधि ( माया ) रहित, इन्द्रियों से परे, ( निर्गुण रूप से ) प्रकट नहीं, दूषणरहित, अजन्मा और अद्वितीय ऐसे एक तुम्हीं समर्थ ,हो । ( और भक्तों के ) बड़े हित के लिए परमात्मा से मनुष्य रूप में प्रकट हुए हो, ( सबके ) प्रेरक हो, तुम्हारा अंत नहीं है और तुम तुरीय ( निर्गुण ब्रह्म ) हो ऐसे तुम्हें प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ ( शेष रूप से ) पृथ्वी धारण किये हो, सुन्दर हो, लक्ष्मी के पति हो, ( सुन्दरता में ) कामदेव के घमंड को तोड़नेवाले हो, सुन्दरता की सीमा और बड़े मनहरन हो । (जो विमुख हैं उन्हें ) दुःख से प्राप्त होने योग्य और कठिनता से दर्शन देनेवाले हो, तुम्हारे विषय में तर्कना नहीं हो सकती, तुम दुःख से पार होने योग्य, संसार को हरनेवाले, ( भक्तों को) सहज में मिलनेवाले और कोमल प्रीति से प्राप्त होनेवाले हो ॥ ४ ॥ तुम सत्य के उत्पन्न करनेवाले हो, सत्य में तुम्हारी प्रीति है, तुम्हारा सत्य संकल्प है, तुम सदा पुष्ट ( दिव्य देहधारी ) और सन्तोषी हो और बड़े बड़े कष्टों को हरनेवाले हो। धर्म के कवच को पहिरे हुए हो और ब्रह्म ( वेद ) और कर्म ( मीमांसा ) के ज्ञान में अद्वितीय हो, ब्राह्मणों के

पूज्य हो (अथवा ब्राह्मण तुम्हारे पूज्य हैं), तुम ब्राह्मणों के और भक्तजनों के प्यारे और मुर-दैत्य के शत्रु हो ॥ ५॥ तुम नित्य हो, और ममतारहित, नित्य मुक्त, मानरहित, और हरि हो; तुम बड़े ज्ञानस्वरूप, सच्चिदानन्द और (सबके) मूल ( अर्थात् कारण ) हो । तुम सब के रक्षक, और सर्वभक्षक जो यमराज उसके भी स्वामी हो, और कूटस्थ ( निर्विकार ) ब्रह्म हो, तुम्हारा तेज गुप्त है । और तुम भक्तों पर प्रसन्न रहनेवाले हो ॥ ६ ॥ तुम्हीं सिद्ध, साधक और साध्य हो, तुम्हीं वाच्य और वाचक रूप हो, तुम्हीं मन्त्र, जापक और जाप्य तथा सृष्टिकर्त्ता हो; तुम्हीं सबके परम कारण हो; तुम्हारी नाभि से पद्म निकला है; तुम मेघ की छवि समान श्याम शरीर वाले, सगुण और निर्गुण हो, और तुम (सांसारिक) सब दृश्य के देखने वाले हो ॥ ७ ॥ तुम आकाश के समान व्यापक, और रजोगुण से रहित हो, और तुम ब्रह्मा, तथा (शिव आदि) वर के देनेवालों के भी स्वामी हो, (तुम्हारा नाम) वैकुण्ठ है और तुम बामन रूप, मलरहित और ब्रह्मचारी हो; सिद्ध और देवताओं के समूह से सदा प्रणाम किये गये हो, और पाखंड का खंडन कर उसे निर्मूल करनेवाले हो ॥८॥ तुम पूर्ण आनन्द की राशि, और महा मोह, अज्ञान और (रज आदि) गुण समूह के दूर करने वाले हो । और मन, वचन और कर्म से जो यह तुलसीदास आपकी शरण में प्राप्त है उसके भयरूपी समुद्र के (सोखने के ) लिए अगस्त्य ऋषि रूप हो ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—सर्व + ईस । सर्व + अभिराम । सर्व + आस्पदं ( स्थान ) + अति । बोध + आयतन । गो + अतीतं ( परे ) + अव्यक्त । विभुं + एकं । अनवद्यं ( निर्दोष, शुद्ध) + अजं + अद्वितीयं । प्रेरक + अनंत । सीमा + अति । बोध + एक । भच्छक + अध्यच्छ । गूढ़ + अर्चि (तेज) । भक्त + अनुकूल । जलद ( मेघ ) + आभ ( छवि ) ।

शब्दार्थ—भद्र = कल्याण । सर्व = शिव । गो + इन्द्री । प्राकृत = सांसारिक । तुरीय = निर्गुण ब्रह्म । मदन = काम । बर्म = बख़्तर । सच्चिदानन्द = ५१वें पद में देखो । सिद्ध = ब्रह्म की प्राप्ति जिसे हो गई हो । साधक = ब्रह्म की प्राप्ति करनेवाला । साध्य = जिसका साधन करे अर्थात् ब्रह्म । वाच्य = जो कहा जाय । वाचक = कहनेवाला । मन्त्र = ओं आदि । जापक = जपनेवाला । जाप्य = भक्त जिसे जपें । व्योम = आकाश । वृंदारका = देवता । संदोह, सन्निपात = समूह । पाथोधि = समुद्र । कुंभजात = अगस्त्य ।

[ ५४ ]

**बिस्वविख्यात बिस्वेस बिस्वायतन बिस्वमरजाद ब्यालारिगामी ।**
**ब्रह्म बरदेस बागीस ब्यापक बिमल बिपुलबलवान निर्बानस्वामी ॥**
**प्रकृतिमहतत्त्वसब्दादि गुन देवता ब्योम मरुदग्नि अमलांबु उर्बी ।**
**बुद्धिमनइंद्रिया प्रानचित्तातमा काल परमानु चिच्छक्तिगुर्बी ॥२॥**

सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि व्यक्तमव्यक्त गतभेद विष्णो ।
भुवन भवदंग कामारिवंदितपदद्वन्द्व मंदाकिनीजनक जिष्णो ॥३॥
आदि मध्यान्त भगवंत त्वं सर्वगतमीस पस्यंति ये ब्रह्मवादी ।
जथा पटतंतु घटमृत्तिका सर्प स्रग दारुकरि कनक कटकांगदादी ॥
गूढ़ गंभीर गर्वघ्न गूढ़ार्थवित् गुप्त गोतीत गुरु ज्ञानज्ञाता ।
ज्ञेय ज्ञानप्रिय प्रचुरगरिमागार घोरसंसारकर पार दाता ॥ ५ ॥
सत्यसंकल्प अतिकल्प कल्पान्तकृत कल्पनातीत अहितल्पबासी ।
बनजलोचन वनजनाभ वन-दाभ-बपु वनचरध्वज कोटि लावन्य-
रासी ॥ ६ ॥
सुकर दुःकर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गार्तिहर्त्ता ।
वेदगर्भार्भकादअगुनगर्व अर्वागपरगर्वनिर्वापकर्त्ता ॥ ७ ॥
भक्तअनुकूल भवसूलनिर्मूलकर तूलअघनामपावकसमानं ।
तरल तृष्णातमीतरनि धरनीधरन सरनभयहरन करुनानिधानं ॥
बहुल वृंदारकावृंदवंदारुपदद्वन्द्व मंदारमालोरधारी ।
पाहि मामीस संतापसंकुलसदा दासतुलसीप्रनत रावनारी ॥८॥

(हे राम! तुम) संसार में विख्यात, संसार के स्वामी, विराट रूप से संसार के स्थान, संसार की मर्यादा, (अर्थात् सांसारिक जीवों की पहुँच केवल तुम्हारे पास तक है) और गरुड़ पर जानेवाले हो। तुम ब्रह्म हो, वरद जो शिव आदि उनके ईश हो, वाणी के स्वामी हो, (सब में) व्यापक, निर्मल, बड़े बलवान् और मोक्ष के स्वामी अर्थात् दाता हो ॥ १ ॥ तुम प्रधान माया, महत्तत्व, शब्द आदि और रज आदि गुण तथा आकाश, वायु, अग्नि, निर्मल जल और पृथ्वी इनके देवता हो। और बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, प्राण, चित्त, आत्मा, काल, परमाणु और बड़ी चैतन्य शक्ति ॥ २ ॥ इन सब में तुम्हारा रूप है और हे राजाओं के मणि, तुम प्रगट हो, तुम ही अप्रगट हो, तुम भेद (अनेक बुद्धि) करके रहित हो। यह भुवन तुम्हारा अंग है। शिवजी ने तुम्हारे दोनों चरणों की वन्दना की है, तुम गंगाजी के पिता हो (क्योंकि गंगाजी तुम्हारे चरणों से निकली हैं) और तुम सब को जीतने वाले हो ॥ ३ ॥ हे भगवन्!

तुम आदि, मध्य और अंत इन सब में व्याप्त हो और हे ईश ! ब्रह्मवादी तुम को कैसे देखते हैं कि जैसे वस्त्र में सूत, घड़े में मिट्टी, सर्प में माला, लकड़ी के हाथी में लकड़ी, और कड़े बाज़ू आदि में सोना ॥ ४ ॥ इस प्रकार तुम गूढ़ ( अर्थात् चर अचर में गुप्त ) हो, गंभीर हो ( अर्थात् तुम्हारे अंतःकरण का भेद कोई नहीं जानता ), तुम घमंड के नाश करने वाले, और गूढ़ार्थवित् ( अर्थात् कर्म वचन में जो गुप्त अर्थ उसके वित् नाम जाननेवाले) हो, फिर गुप्त हो, गोतीत हो (गो नाम इन्द्रियों से अतीत नाम बहुत परे हो अर्थात् इन्द्रियों से प्राप्त नहीं हो सकते ), तुम ही गुरु, ज्ञान और उसके ज्ञाता हो, (अथवा ज्ञान के जाननेवालों के गुरु हो अथवा बड़े ज्ञान के ज्ञाता हो) । (फिर तुम) ज्ञेय हो (ज्ञेय उसे कहते हैं जो पदार्थ जाना जाय), ज्ञान-प्रिय हो (अर्थात् तुमको ज्ञान प्यारा है), अति श्रेष्ठता के स्थान हो और भयङ्कर संसार के पार करने वाले हो ॥ ५ ॥ तुम्हारा संकल्प सत्य है ( अर्थात् जो कुछ निश्चय कर लेते हो सो करते हो ), तुम अतिकल्प, (महाकल्प कि जब ब्रह्मा की आयु पूरी हो जाती है) और कल्प (ब्रह्मा का एक दिन) इन दोनों के प्रलय करनेवाले हो, कल्पना से परे हो ( अर्थात् मन से तुम्हारी कोई कल्पना नहीं कर सकता ), और शेषनाग की शय्या पर वास करने वाले हो । तुम्हारे कमल-समान नेत्र हैं, तुम्हारी नाभि में से कमल उत्पन्न हुआ है, और तुम मेघ की कांति-समान श्याम शरीर वाले हो । और तुम करोड़ों कामदेवों की सुन्दरता की राशि हो (अर्थात् सुन्दरता में करोड़ों कामदेवों से बढ़ कर हो ) ॥ ६ ॥ ( भक्तों के लिये तुम ) सुकर (अर्थात् सुन्दर कर्म करनेवाले, अथवा सुलभ ) हो, ( दुष्टों के लिये ) बुराई करने वाले हो ( जैसा हिरण्यकशिपु के साथ किया ), दुराराध्य नाम कठिनता से आराधना करने के योग्य हो, (भाव—मनुष्य अनेक अच्छे कर्म करके जब शुद्ध हो तब तुम्हारी सेवा के योग्य हो ) और (मदपान परस्त्री-गमनादि) खोटे कर्मों के हरनेवाले हो, तुम दुर्ग हो (अर्थात् कठिनता से प्राप्त होनेवाले) और दुर्धर्ष हो ( अर्थात् दुःख से भी तुम्हारा कोई अनादर नहीं कर सकता ) और तुम कठिन दुःख के हरनेवाले हो ! और ब्रह्माजी के बालक सनकादिकों को जो अपनी परा-अपरा नाम ब्रह्म-विद्या का घमंड था उसके दूर करने वाल हो ॥ ७ ॥ तुम भक्तों पर प्रसन्न रहने वाले, संसाररूपी शूल ( जन्म-मरणादि की पीड़ा ) का जड़ से नाश करने वाले हो और तुम्हारा नाम पाप रूपी रूई को ( भस्म करने के लिये ) अग्निरूप है । तुम चंचल तृष्णारूपी रात्रि के नाश करने को सूर्यरूप, पृथ्वी के धारण करने वाले, शरणागतों के भय हरनेवाले और करुणा के स्थान हो ॥ ८ ॥ बहुत से देवताओं के समूहों से तुम्हारे दोनों चरण वन्दना करने योग्य हैं और तुम

मंदार की माला को हृदय पर धारण करते हो। हे रावण के शत्रु ! सदा संताप से व्याकुल मैं तुलसीदास तुम्हें प्रणाम करता हूँ । हे ईश मेरी रक्षा करो ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—विस्व + ईस । विस्व + आयतन । व्याल ( सर्प ) + अरि ( शत्रु )। वरद + ईस। वाक् + ईस। सब्द + आदि । मरुत ( वायु ) + अग्नि । अमल + अंबु । चित्त + आत्मा । चित् ( ज्ञान-स्वरूप ) + सक्ति । सर्व + एव + अत्र । त्वत् (तुम्हारा) + रूप । व्यक्त + अव्यक्त । भवत् (तुम्हारा) + अंग । सर्वगत + ईस । कटक + अंगद + आदी । गूढ़ + अर्थ । गो ( इन्द्रिय ) + अतीत ( परे )। गरिमा ( श्रेष्ठता ) + आगार । कल्पना + अतीत । वनद + आभ । अर्वाक् ( अपरा ) + अपर (परा)। दुर्ग + आर्ति । वेदगर्भ ( ब्रह्मा ) + अर्भक ( बालक ) + अदभ्र ( बहुत ) । माला + उर । पाहि मां + ईस । रावण + अरि ।

शब्दार्थ—विपुल = बहुत । व्योम = आकाश । उर्वी = धरती । गुर्वी = भारी । कामारि = शिव । प्रचुर = बहुत । तल्प = शय्या । वनज = ( वन नाम जल से जो उत्पन्न हो ) कमल । वनद = ( वन नाम जल को जो दे ) मेघ । वनचरधुज = ( वन = जल ) चर ( चलने वाला ) = मगर, और मगर है ध्वजा में जिसकी ऐसा कामदेव । निर्वाप = नाश । वंदारु = वन्दना करने योग्य । वृन्दारका = देवता ।

[ ५५ ]

संतसंतापहर विस्वविस्रामकर राम कामारि अभिरामकारी ।
सुद्धबोधायतन सच्चिदानंदघन सज्जनानंदवरधन खरारी ॥ १ ॥
सीलसमताभवन विषमतामतिसमन राम रामारमन रावनारी ।
खड्गकरचर्मवर वर्म धर रुचिर कटितून सरसाक्तिसारंगधारी ॥२॥
सत्यसंधान निर्वानप्रद सर्वहित सर्वगुनज्ञानविज्ञानसाली ।
सघनतमघोरसंसारभरसर्वरी नाम दिवसेस खरकिरनमाली ॥३॥
तपनतीच्छन तरुनतीव्रतापघ्न तपरूप तनभूप तमपर तपस्वी ।
मानमदमदनमत्सरमनोरथमथनमोह अंभोधिमंदर मनस्वी ॥४॥
वेदविख्यात वरदेस वामन विरज विमल वागीस वैकुंठस्वामी ।
कामक्रोधादिमर्दन विवर्धनछमा सांतविग्रह विहगराजगामी ॥५॥
परमपावन पापपुंजमुंजाटवी अनल इव निमिष निर्मूलकर्त्ता ।
भुवनभूषन दूषनारि भुवनेस भूनाथ स्रुतिमाथ जयभुवनभर्त्ता ॥६॥

अमल अविचल अकल सकल संततकलिविकलता भंजनानंदरासी।
उरगनायकसयन तरुनपंकजनयन छीरसागरअयन सर्ववासी ॥७॥
सिद्धकविकोविदानंददायक पदद्वंद्व मंदात्ममनुजैर्दुरापं।
जत्र संभूत अतिपूतजलसुरसरी दर्सनादेव अपहरति पापं ॥ ८ ॥
नित्यनिर्मुक्त संयुक्तगुन निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता।
विस्वपोषनभरन विस्वकारनकरन सरनतुलसीदासत्रासहंता ॥

हे राम! तुम संतों के संताप को हरनेवाले, संसार को विश्राम के कराने वाले और शिवजी को आनन्द देने वाले हो। तुम आत्मज्ञान के स्थान, सच्चिदानन्दघनरूप, सज्जनों का आनन्द बढ़ाने वाले और खर दैत्य के शत्रु हो॥ १॥ हे राम! तुम शील और समता के स्थान हो। विषमता (अर्थात् किसी से प्रीति किसी से वैर इत्यादि) की बुद्धि के नाशक हो, लक्ष्मी के पति और रावण के शत्रु हो। तुम हाथ में सुन्दर ढाल, तलवार, शक्ति, बाण और धनुष को धारण करते हो, (शरीर पर) कवच और सुन्दर कमर में तरकस धारण करते हो॥ २॥ तुम सत्य प्रतिज्ञा वाले, मोक्ष के दाता, सब (चर और अचर) के हितू हो और (सुशीलता आदि) गुण, ज्ञान और आत्मज्ञान ये सब तुम में शोभित हैं। और (अज्ञानरूपी) घने अंधकार से युक्त, ऐसे भयङ्कर संसार के भार (आवागमन) रूपी रात्रि के लिए तुम्हारा नाम तेज किरण युक्त सूर्यरूप है॥ ३॥ तुम्हारी तपन बड़ी तेज़ है, फिर तुम (संसार के) नवीन और तेजयुक्त सन्तापों के हरनेवाले हो, राजा का शरीर होने पर भी तपस्या के रूप हो (पिता की आज्ञा मान भूषण-वसन त्याग वल्कल चीर पहिर वन को चल दिये)। तुम तम अर्थात् अविद्या से परे हो, और तपस्वी हो (१४ वर्ष तक हिम, वर्षा, आतप सहकर और कंद, मूल, फल खाकर वन में रहे) और मान, मद, काम, मत्सर, मनोरथ और मोहरूपी समुद्र के मथन के लिए तुम मंदिराचल हो (भाव—जैसे मंदराचल से समुद्र को मथ कर रत्न निकले थे ऐसे ही तुम मान, मद आदि को मथकर आत्मज्ञानरूपी रत्न देते हो) और मनस्वी (अर्थात् प्रसन्न-चित्त वाले) हो॥ ४॥ तुम वेदों में विख्यात हो, वर के देनेवाले (ब्रह्मा, महादेव) के स्वामी हो, वामनरूपधारी, रजोगुणरहित, विकाररहित, वाणी के पति और वैकुण्ठ के स्वामी हो। और काम, क्रोध आदि के नाशक और क्षमा (गुण) को बढ़ाने वाले हो, तुम्हारा शान्त स्वरूप है और तुम गरुड़ पर चलने वाले हो॥ ५॥ तुम बड़े पवित्र और पाप पुंजरूपी मूँज की बनी को अग्नि रूप होकर एक पल भर में

जड़ से नाश करने वाले हो। तुम भुवनों के भूषण, दूषण (राक्षस) के शत्रु, भुवन के ईश, पृथ्वी के नाथ, और वेद के मस्तक हो (भाव—जैसे शिर से देह सजीव होती है ऐसे ही तुम से वेद सजीव हैं) और तुम भुवनों के पालन करनेवाले हो—तुम्हारी जय॥ ६॥ तुम अमल (रजोगुण आदि) मल से रहित वा शुद्ध-स्वरूप, अविचल (किसी से चलायमान नहीं अर्थात् एक-रस) और अकल (कलारहित) हो, (भाव—तुम्हारी कला चन्द्रमा के समान घटती बढ़ती नहीं) तुम कलासहित (अर्थात् पूर्ण कला वाले), कलियुग के संतप्त (जीवों) की विकलता के नाशक, और आनन्द की राशि हो। तुम शेषनाग पर शयन करने वाले हो, हाल के खिले कमल के समान तुम्हारे नेत्र हैं, और क्षीरसागर में तुम्हारा स्थान है और तुम सब (चराचर) में निवास करते हो॥ ७॥ तुम्हारे दोनों चरण सिद्ध, कवि और पण्डितों को आनन्द देने वाले हैं, और मलिन आत्मावाले (विषयी) मनुष्यों को तुम दुःख से प्राप्त होने योग्य हो। (और तुम्हारे चरण कैसे हैं कि) जहाँ से बड़े पवित्र 'जल-वाली गंगाजी निकली हैं कि जो दर्शन मात्र से ही पाप को हर लेती हैं॥ ८॥ तुम (माया से) नित्य छूटे हुए अर्थात् रहित हो, (कृपा, करुणा आदि) गुणों से युक्त हो, (रज आदि) गुण न होने से निर्गुण हो, तुम्हारा अंत नहीं है, तुम भगवंत हो (अर्थात् ६ गुण जो ऐश्वर्य, धर्म, यश, सत्य, शोभा और वैराग्य हैं उनसे युक्त हो) नियामक (अर्थात् रक्षा, दंड आदि के नियमों के कर्ता अथवा अपनी सामर्थ्य से सब को वश में करने वाले) हो, और नियंता हो, (अर्थात् ब्रह्मा आदि सबको प्रेरणा करते हो)। संसार का पालन-पोषण करने वाले, संसार के कारण (अर्थात् उसकी उत्पत्ति करने वाले) और कारण हो (अर्थात् संसार के उत्पन्न करने में जो महत्तत्त्व अहंकार आदि सामग्री चाहिए सो भी तुम ही हो)। और शरणागत तुलसीदास के भय को दूर करनेवाले हो॥ ९॥

सन्धि-विभाग—काम + अरि। बोध + आयतन। सत् + चित् + आनंद। सज्जन + आनंद। खर + अरि। रावन + अरि। दिवस + ईस। वरद + ईस। वाक् + ईस। क्रोध + आदि। मुञ्ज + अटवी (वन)। दूषण + अरि। भुवन + ईस। भंजन + आनन्द। कोविद (पण्डित) + आनंद। मंद (नीच) + आत्मा। दर्सनात् + एव। निर्गुन + अनंत।

शब्दार्थ—सुद्धबोध = आत्मज्ञान। समता = सब में एक सी बुद्धि रखना। सच्चिदानन्द = २१ वें पद में देखो। चर्म = ढाल। वर्म = बख़्तर। तून = तरकस। सक्ति = सांगी। सारंग = भगवान का धनुष। निर्वान = मोक्ष। सर्वरी = रात्रि। मत्सर = द्वेष। विहंगराज = पक्षियों के राजा गरुड़। उरगनायक = शेषनाग। निमिष = पल।

[ ५६ ]

दनुजसूदन दयासिंधु दंभापहन दहनदुर्दोष दुःपापहरता ।
दुष्टतादमन दमभवन दुःखौघहर दुर्गदुरवासनानासकरता ॥ १ ॥
भूरिभूषन भानुमंत भगवंत भवभंजनाभयद भुवनेसभारी ।
भावनातीत भववंदि भवभक्तहित भूमिउद्धरन भूधरनधारी ॥२॥
वर वदन वनदाभवागीस विस्वातमा विरज वैकुंठमंदिरविहारी ।
व्यापकव्योम वंदारु वामन विभो ब्रह्मविद्ब्रह्म चिंतापहारी ॥३॥
सहजसुंदर सुमुख सुमनसुभ सर्वदा सुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी ।
सर्वकृत सर्वभृत सर्वजित् सर्वहित सत्यसंकल्प कल्पांतकारी ॥४॥
नित्य निर्मोह निर्गुन निरंजन निजानंद निर्वान निर्वानदाता ।
निर्भरानंद निःकंप निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता ॥५॥
महामंगलमूल मोद महिमायतन मुग्धमधुमथन मानद अमानी ।
मदनमर्दन मदातीत मायारहित मंजुमानाथ पाथोजपानी ॥६॥
कमललोचन कलाकोसकोदंडधर कोसलाधीस कल्यानरासी ।
यातुधानप्रचुरमत्तकरि केसरी भक्तमनपुन्य आरन्यवासी ॥ ७ ॥
अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनंदसिंधो ।
अचल अनिकेत अविरल अनामयअनारंभ अंभोदनादघ्नबंधो ॥८॥
दासतुलसी खेदखिन्न आपन्न इह शोकसंपन्न अतिसै सभीतं ।
प्रनतपालक राम परमकरुनाधाम पाहि मामुर्विपति दुर्विनीतं ॥९॥

हे राम ! तुम दैत्यों के नाशक, दया के समुद्र, पाखंड के नाश करनेवाले, बुरे बुरे दोषों के जलानेवाले, और बुरे बुरे पापों के हर्ता हो। तुम दुष्टता के नाशक, दम (अर्थात् बाहर की इन्द्रियों का रोकना) के स्थान, दुःख-समूह को हरनेवाले, कठिन और बुरी वासना के नाशकर्त्ता हो ॥ १ ॥ तुम बहुत से आभूषण धारण किये, सूर्य सम प्रकाशमान्, छः ऐश्वर्ययुक्त, संसार के नाशक, अभय के देनेवाले, भुवनों के स्वामी जो ब्रह्मा,

शिव आदि उनसे भी बड़े हो। तुम भावनातीत ( अर्थात् मन, बुद्धि के विचार से परे ), शिवजी से वन्दना करने योग्य, शिवभक्तों के हितकारक, भूमि का उद्धार करनेवाले, और ( गोवर्द्धन ) पर्वतधारी हो॥ २॥ तुम्हारे सुन्दर मुख की मेघ समान ( श्याम ) छवि है, तुम वाणी के स्वामी, विश्व के आत्मा, रजोगुणरहित, वैकुंठ मन्दिर में विहार करनेवाले, आकाश के समान सब में व्याप्त, प्रणाम के योग्य, वामन अवतार, समर्थ, ब्रह्म के जाननेवाले ( स्वयं ) ब्रह्म और चिन्ता के दूर करनेवाले हो ॥ ३ ॥ तुम स्वभाव से ही सुन्दर, सुन्दर मुख और सुन्दर मनवाले हो, शुभ अर्थात् मङ्गलस्वरूप, सदा शुद्ध-रूप, सबके ज्ञाता और स्वतंत्र विचरनेवाले हो। और तुम सबके जीतनेवाले, और सबको धारण करनेवाले हो, ( अर्थात् जड़ चैतन्य सब में तुम्हारी सत्ता है ), तुम सर्वकृत् ( ब्रह्मा आदि सबके कर्त्ता ), सबके पालक, सबके जीतनेवाले, सबके हितकारी, सत्य प्रतिज्ञा-वाले, और प्रलय के कर्त्ता हो॥ ४॥ तुम नित्य हो, और तुम अज्ञानरहित, निर्गुण, ( रज आदि गुणहीन ) निरंजन ( मायारहित ), और ( अपनी आत्मा में ) पूर्ण आनन्द करनेवाले, मोक्षस्वरूप और मोक्ष के दाता हो। तुम पूर्ण आनन्दस्वरूप, अचलाय-मान, सीमारहित, मुक्तिरूप, और उपाधि जो माया उससे रहित हो, तुम ममतारहित ( अर्थात् जब स्वयं ही विश्वरूप हो तो ममता किस पर करो ) और सबके विधाता हो, ( अर्थात् सब संसार को तुमनेही बनाया है )॥ ५॥ तुम बड़े बड़े मङ्गलों के मूल ( अर्थात् देनेवाले ), आनन्दरूप, महिमा के स्थान, मूर्ख मधु ( दैत्य ) के नाशकर्त्ता, मान-देनेवाले, ( स्वयं ) मानरहित, कामदेव के नाशक, मद से परे, मायारहित, सुन्दर लक्ष्मी के पति हो और कमल को हाथ में लिये हो ॥ ६॥ तुम कमल कैसे नेत्रवाले, (६४ कलाओं के) भंडार, कोदंड—धनुष धारण किये, अवध के स्वामी और कल्याण की राशि हो। और राक्षसरूपी बहुत से मतवाले हाथियों को ( नास करने के लिए ) सिंह-रूप हो, भक्तों के मन को पवित्र करनेवाले, और वन के वासी हो॥ ७॥ पापरहित, अद्वैत ( दूषणरहित ), अप्रकट, अजन्मा, सीमारहित, ( काम, क्रोध आदि ) विकाररहित, ( अर्थात् शुद्ध आत्मरूप ), और आनन्द के समुद्र हो। तुम अचल हो, ( एक स्थान में ) तुम्हारा वास नहीं है ( अर्थात् सर्वत्रवासी हो ), सघन ( अर्थात् सब में परिपूर्ण ), और नीरोग हो। तुम्हारा आरम्भ नहीं और तुम मेघनाद के नाशक जो लक्ष्मणजी उनके भाई हो॥८॥ यह तुलसीदास ( संसार के दुःख से दुखी और विपद्ग्रस्त हो रहा है और इस संसार में ) शोकयुक्त और ( कलि से ) अधिकतर डरा हुआ है सो हे प्रणतों के पालक ! हे करुणा के स्थान ! हे पृथ्वी के पति ! हे राम ! मुझ दुर्विनीत की रक्षा करो॥ ९॥

सन्धि-विभाग—दंभ + अपहन । दुःख + ओघ ( समूह )। भंजन + अभय । भुवन + ईस । भावना + अतीत ( परे )। वनद ( मेघ )+ आभ । वाक् + ईस । विस्व + आतमा। चिंता + अपहारी । कल्प ( ब्रह्मा का दिन )+ अंत। निर्भर ( पूर्ण )+ आनंद। मद + अतीत। कौसला + अधीस। माम् + उर्वि ( पृथ्वी )।

शब्दार्थ—दंभ = पाखंड । दुर्ग = कठिन । भव = महादेव । वनद = वन अर्थात् जल का दाता, मेघ । वंदारु = वन्दना के योग्य । मुग्ध = मूर्ख। मंजु = सुंदर । मानाथ = लक्ष्मी के पति । पाथ नाम जल उसमें जो (ज), उत्पन्न हो अर्थात् कमल । पानी = हाथ । प्रचुर = बहुत । जातुधान = राक्षस । अद्वैत = जिसके समान दूसरा न हो । अनवद्य = निर्दोष । अनामय = नीरोग । अंभोदनादघ्न = अंभ नाम जल उसे देनेवाला हुआ मेघ और मेघ का सा नाद करनेवाला हुआ मेघनाद रावण का पुत्र उस के घ्न कहिए नाशक अर्थात् लक्ष्मणजी । खिन्न = दुखी । संपन्न ॥ युक्त ।

[ ५७ ]

देहि सतसंग निजअंग श्रीरंग भवभंगकारन सरनसोकहारी ।
जे तु भवदंघ्रिपल्लवसमाश्रित्त सदा भक्तिरत विगतसंसय मुरारी ॥
असुर सुर नाग नर जच्छ गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध जे चापि अन्ने ।
संत संसर्ग त्रैवर्गपर परमपद प्राप निःप्राप्यगति त्वयि प्रसन्ने ॥२॥
वृत्र बलि बान प्रहलादमयव्याधगजगृद्ध द्विजबंधु निजधर्मत्यागी ।
साधुपदसालिल निर्धूतकल्मषसकल स्वपचजवनादि कैवल्यभागी ॥
सांत निरपेच्छ निर्मम निरामय अगुन सब्दब्रह्मैकपर ब्रह्मज्ञानी ।
दच्छसमदृक स्वदृक विगतअतिस्वपरमाति परमरति विरति तव चक्रपानी ॥ ४ ॥
विस्व उपकारहित व्यग्रचित सर्वदा त्यक्तमदमन्यु कृतपुन्यरासी ।
जत्र तिष्ठंति तत्रैव अज सर्व हरि सहित गच्छन्ति छीराब्धिवासी ॥
वेदपयसिंधु सुविचारमंदरमहा अखिलमुनिवृंदनिर्मथनकरता ।
सारु सत्संगमुद्धृत्य इति निश्चितं वदत श्रीकृष्ण वैदर्भिभरता ॥६॥
सोकसंदेहभयहर्षतमतर्षगन साधुसद्युक्तिविच्छेदकारी ।
जथा रघुनाथसायक निसाचरचमू निचय निर्दलन पटु वेगभारी ॥

जत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मवस भ्रमत जगजोनि संकटअनेकम् ।
तत्र त्वद्भक्तिसज्जनसमागम सदा भवतु मे राम विस्राममेकम् ॥८॥
प्रबलभवजनितत्रैव्याधिभेषजभगति भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी ।
संतभगवंतअंतरनिरंतर नहीं किमपि मतिमलिन कहदासतुलसी ॥

हे श्रीरंग ! सत्संग को दीजिए जो तुम्हारा (अर्थात् तुम्हारे मिलने का) एक अंग (साधन) है, संसार के नाश करने का कारण है और शरणागत के शोक का हरनेवाला है। हे मुरारि! जो (सन्त) तुम्हारे चरण-पल्लव के सदा आश्रित हैं और तुम्हारी भक्ति में जिनकी प्रीति है, उनका सन्देह जाता रहता है ॥ १ ॥ ( सत्संग का प्रभाव कैसा है कि ) दैत्य, देवता, नाग, मनुष्य, यक्ष, गंधर्व, पक्षी, राक्षस, सिद्ध, और जो दूसरे हुए हैं वे भी सन्तों के संसर्ग से त्रयवर्ग ( धर्म, अर्थ, काम ) से परे जो परम पद ( मोक्ष है ) उसे पाते हैं। ( वह मोक्षपद कैसा है कि ) निःप्राप्यगति है ( अर्थात् उसकी गति साधन आदि से नहीं प्राप्त होती, वह तो ) आपके प्रसन्न होने पर ( मिलता ) है ॥ २ ॥ वृत्रासुर, बालि, बाणासुर, प्रहलाद सहित जो व्याध, ( वाल्मीकि ) गजेन्द्र, गृध्र ( जटायु ) और, ब्राह्मणों का भाई होने पर भी अपने धर्म का त्यागी ( अजामेल ) इन्हों का साधुओं के चरणामृत ( पीने ) से सब पाप जाता रहा और ( तो क्या ) श्वपच और यवन आदि भी मोक्ष के भागी हो गये ॥ ३ ॥ ( सत्संग के प्रभाव से साधु कैसे हो जाते हैं कि ) शान्त ( रागद्वेष-रहित ) निरपेक्ष ( अर्थात् जिनको किसी बात की वासना नहीं ), निर्मम, ( अर्थात् ममतारहित ), निरामय (अर्थात् संसारी कामक्रोधादि रोगरहित), अगुण (सत, रज, तम, गुणों से रहित ), शब्द ब्रह्मैक ( शब्द ब्रह्म जो वेद उसके जानने में एक अर्थात् मुख्य ), और परब्रह्म के जानेवाले । दक्ष (अर्थात् सब शास्त्रों में चतुर अथवा भगवत्संबन्धी भक्ति, वैराग्य आदि में कुशल ), सम-दृष्टि ( सब चराचर में समान दृष्टि रखनेवाले ), स्वदृक् ( अपने स्वरूप को देखनेवाले ) और विशेष करके छूट गई है अपनी और पराई मति जिनकी ( अर्थात् जो अपना पराया नहीं समझते ) और हे चक्रपाणि ! जो वैराग्य होने के कारण तुमसे बड़ी प्रीति करते हैं ॥४॥ संसार के उपकार के लिए जिनका चित्त सदा चिन्ता-युक्त रहता है, जिन्होंने मद और क्रोध को त्याग दिया है, और जिन्होंने बहुत से पुण्य किये हैं वे ( ऐसे साधु ) जहाँ बैठते हैं वहाँ हीं ब्रह्मा, और महेश को साथ लेकर क्षीर समुद्र के निवासी भगवान् जाते हैं ॥ ५ ॥ ( फिर सत्संग अमृत समान है सो कहते हैं ) वेद सोही क्षीरसमुद्र है उसका अच्छी भाँति विचारना ही बड़ा मन्दिराचल है और

सब मुनियों के समूह उसके मथनेवाले हैं, और उसमें जो सार निकला सो सत्संग है यह निश्चय हुआ। यह रुक्मिणीजी के पति श्रीकृष्णजी कहते हैं ( भाव यह है कि बड़े बड़े मुनियों ने जो वेद वेदान्त पढ़ कर सबका तत्त्व निकाला वह सत्संग निश्चित हुआ जो वह मोक्ष पाने में आदि कारण है ) ॥ ६ ॥ शोक, सन्देह, भय, हर्ष, अज्ञान और वासना इनके समूहों को साधुओं की सुन्दर युक्ति ही ऐसे नाश करनेवाली है कि जैसे रघुनाथजी का बाण राक्षसों की सेना के झुंडों का नाश करने में समर्थ है और बड़े वेग से जाता है ॥ ७ ॥ ( हे देव ! ) अपने कर्म के वश जहाँ कहीं मेरा जन्म हो और संसार में जिस जिस योनि में अनेक संकट सहता हुआ भ्रमता फिरूँ उसी उसी ( योनि ) में मुझे तुम्हारी सदा भक्ति और सज्जनों का संग हो। हे राम ! मुझे एक यही विश्राम हो ॥ ८ ॥ बड़े बली संसार में उत्पन्न हुई जो तीन प्रकार की पीड़ा है उसकी दवाई आपकी भक्ति है और अद्वैतदर्शी ( अर्थात् चराचर में एक दृष्टि रखनेवाले भगवान् के ) भक्त ही हकीम हैं। सन्त और भगवान् में सदा से कुछ भी भेद नहीं है फिर मलिन बुद्धिवाला तुलसीदास क्या कहे ( कि भेद है अर्थात् नहीं कह सकता ) ॥ ९ ॥

सन्धि-विभाग—भवत् ( तुम्हारे ) + अंघ्रि ( चरण ) । च + अपि । ब्रह्म + एक । तत्र + एव । क्षीर + अब्धि । सत्संगम् + उद्धृत्य ( निकाल कर ) । सत् ( अच्छी ) + जुक्ति । त्वत् ( तुम्हारी ) + भक्ति । विस्रामं + एकं ।

शब्दार्थ—पल्लव = पत्ता । च = और । अन्ने ( अन्ये ) = दूसरे । निधूंत = जड़ से धुल जाता है अर्थात् नाश होता है । कलमष = पाप । कैवल्य = मोक्ष । चक्रपानी = चक्र है हाथ में जिनके अर्थात् विष्णु । मन्यु = क्रोध । सर्व = शिव । रासि = समूह, बहुत सा । वैदर्भि = रुक्मिणी । तर्ष = वासना । चमू = सेना । निचय = समूह । पटु = चतुर । निरंतर = सदा ।

[ ५८ ]

देहि अवलंब कर कमल कमलारमन दमनदुख समनसंतापभारी ।
अज्ञानराकेसग्रासनविधुंतुद गर्वकामकरिमत्तहरि दूषणारी ॥१॥
वपुषब्रह्माण्ड सुप्रवृत्तिलंकादुर्ग रचित मनदनुजमयरूपधारी ।
विविधकोसौघ अतिरुचिरमंदिरनिकर सत्त्वगुन प्रमुख त्रैकटक-
कारी ॥ २ ॥
कुनपअभिमान सागर भयंकर घोर विपुल अवगाह दुस्तर अपारम् ।
नक्ररागादिसंकुल मनोरथसकल संगसंकल्पवीचीविकारम् ॥ ३ ॥

मोहदसमौलि तदभ्रातअहंकार पाकारिजित् काम विस्रामहारी।
लोभअतिकाय मत्सरमहोदरदुष्ट क्रोधपापिष्ठविबुधांतकारी ॥४॥
द्वेषदुर्मुख दंभखर अकंपनकपट दर्पमनुजाद मदसूलपानी।
अमितबल परमदुर्जय निसाचरनिकर सहितषड्वर्ग गो जातुधानी॥
जीवभवदंघ्रि सेवक विभीषन बसत मध्यदुष्टाटवीग्रसितचिंता।
नियम जम सकल सुरलोकलोकेस लंकेसवसनाथअत्यंतभीता॥
ज्ञानअवधेस गृहगेहिनीभक्तिसुभ तत्र अवतारभूभारहरता।
भक्तसंकष्ट अवलोकि पितुवाक्यकृत गमन किय गहन वैदेहिभरता॥
कैवल्यसाधन अखिल भालु मर्कट विपुल ज्ञानसुग्रीव कृतजलधिसेतू।
प्रबलवैराग्यदारुनप्रभंजनतनय विषयवनभवनमिव धूमकेतू ॥८॥
दुष्टदनुजेस निर्वंसकृत दासहित विस्वदुखहरन बोधैकरासी।
अनुजनिजजानकीसहितहरि सर्वदा दासतुलसीहृदयकमलवासी॥

हे लक्ष्मीपते! (मैं संसाररूपी सागर में डूबा जाता हूँ) मुझे अपने कर-कमल का सहारा दो। क्योंकि तुम दुःख दूर करनेवाले (और तीन प्रकार के) भारी सन्तापों के नाशक हो। और हे दूषण राक्षस के शत्रु! अज्ञानरूपी चन्द्रमा के ग्रसने के लिए तुम राहु रूप हो और गर्व तथा कामरूपी मतवाले हाथियों के (नाश के) लिए सिंहरूप हो॥ १॥ शरीररूपी ब्रह्मांड में प्रवृत्ति ही लंका का क़िला है, (लंका को मय दैत्य ने बनाया था और इस प्रवृत्तिरूपी लंका की) मय दैत्य रूप मन (१) ने रचना की है। (लंका में बड़े अच्छे अच्छे भाँति भाँति के महल और सेनापति थे) और इस (देह

---

(१) शरीर में प्रवृत्ति का आधार मन है अर्थात् जब मन में संकल्प होता है तब इन्द्रियां अपना अपना विषय ग्रहण करने की ओर झुकती हैं और तब ही प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और उस पर अन्नमयादि पांचों कोशों का प्रतिबिम्ब पड़ता है जिससे प्राणी "मैं मनुष्य हूँ, मैं क्षुधित हूँ, मेरा देह है, मैं ज्ञानी हूँ, मैं सुखी हूँ" इत्यादि कहता है। और तीनों गुणों का प्रकाश भी प्रवृत्ति में ही होता है क्योंकि संसार की कोई अवस्था या मनुष्य का कोई कर्म ऐसा नहीं जो तीनों गुणों में से एक का प्रकाश न हो। जैसा गीता में कहा है—"न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्रिभिर्गुणैः" अर्थात् पृथ्वी में या स्वर्ग में या देवताओं में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो प्रकृति के इन तीन गुणों से अलग हो।

की प्रवृत्ति ) में अनेक प्रकार के जो ( अन्न (१) मय आदि ) कोशों के समूह हैं ( कि जिनके द्वारा जीव को सब प्रकार की चाहना होती है ) सो ही बड़े बड़े सुन्दर महलों के समूह हैं और सत्त्वगुण को आदि लेकर ( अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ) ही सेनापति हैं ॥ २ ॥ ( जैसे लंकागढ़ को बड़ा भयंकर बहुत गहरा अपार और दुस्तर समुद्र घेरे हुए है वैसे ही यहाँ प्रवृत्ति को ) सागर के समान देहाभिमान (२) घेरे हुए है जो ( दया आदि गुण न रहने से ) महा भयङ्कर है, (बुद्धि से थाह न मिलने के कारण) बड़ा अथाह है, और अपार ( कहिए चौड़े पाटवाला ) है जो कि तरा न जाय ( अर्थात् छोड़ा न जाय । और जैसे समुद्र में अनेक जलचर होते हैं और पानी की लहरें उठा करती हैं वैसे ही यहाँ ) राग आदि सब मनोरथ ही घड़याल हैं उनसे भरा हुआ है और इसमें विषयासक्ति का संकल्प ही लहरों का उठना है ॥ ३ ॥ (जैसे लंका में रावण आदि राक्षस थे, यहाँ प्रवृत्ति में ) मोह रावण है; अहंकार उस रावण का भाई (कुम्भकर्ण) है और विश्राम का हरनेवाला काम ही इंद्रजीत है । लोभ अतिकाय (राक्षस) है, मत्सर सो ही दुष्ट महोदर है और क्रोध पापी देवान्तक है ( भाव यह हुआ कि जैसे रावण के राज्य में सब राक्षस चैन करते थे वैसे ही अहंकार आदि के राजा और आत्म-स्वरूप को भुलानेवाले मोह के राज्य में काम, क्रोध आदि की अच्छी बन पड़ती है ) ॥४॥ (इनके सिवा जैसे लंका में दुर्मुख, खर आदि और भी राक्षस और मन्दोदरी आदि राक्ष-सियाँ थीं ऐसे ही यहाँ प्रवृत्ति में ) द्वेष दुर्मुख है, दम्भ खर है, कपट अकंपन है, दर्प मनुजाद है और मद शूलपाणि है । और इन राक्षसों का समूह बड़ा भारी बली और बड़ा दुर्जेय है ( अर्थात् किसी से जीता नहीं जा सकता ) क्योंकि इस ( मोह आदि ) छः राक्षसों के समूह के साथ इन्द्रियाँरूपी राक्षसियाँ भी हैं । (भाव यह है कि लंका के राक्षस और राक्षसियों की तरह प्रवृत्ति में भी मोहादिक भरे हैं और ये इन्द्रियों के साथ रमण करते हैं क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा ही इनकी प्रत्यक्षता होती है इसलिए इनका जीतना महा कठिन है ) ॥ ५ ॥ ( जैसे विभीषण राक्षसों के मध्य में रहकर उनके नाश की चिन्ता

---

( १ ) गूढ़ार्थ कोश में देखो ।

( २ ) देहाभिमान के घेरने से मन की प्रवृत्ति सदा ऐसी हो जाती है कि मनुष्य अपने को वृथा बड़ा समझने लगता है कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैं धनिक हूँ, मैं राजा हूँ इत्यादि । विषयों में अनुराग होने के कारण वह महल, भूषण, वाहन आदि के पाने के लिए बड़े बड़े संकल्प करता है और अपने अभिमान की तृप्ति करने के लिए आकाशकुसुम के समान बड़े बड़े मनोरथ किया करता है और बहुत से कामों के करने का संकल्प करता है जिससे देहाभिमान और भी बढ़ता है । इसीसे देहाभिमान को भयङ्कर दुस्तर और अपार कहा है ।

किया करता था और जैसे सुरलोक और लोकेश भी रावण के वश में होने से डरते थे ऐसे ही ) जीव ही हुआ आपके चरणों का सेवक विभीषण सो ( मोहादिरूपी ) दुष्टों ( अर्थात् राक्षसों ) की बनी के मध्य में बसकर ( उनके नाश की ) चिन्ता में फँसा रहता है। और हे नाथ ! नियमरूपी सब सुरलोक और यमरूपी लोकपाल भी (मोहरूपी) रावण के वश में होने से बहुत डरते हैं। ( भाव यह है कि जीव तो बहुतेरा चाहता है कि मोह का नाश हो और मुझे सुख मिले पर मोह के कारण यम नियम तो हो ही नहीं सकते फिर जीव को कैसे शांति मिल सकती है ) ॥ ६ ॥ सो हे नाथ ! जैसे तुमने राजा दशरथ और कौशल्या के यहाँ पृथ्वी का भार उतारने के लिए सुन्दर ( सगुण ) अवतार लिया था ऐसे ही यहाँ ज्ञानरूपी राजा दशरथ और सुन्दर भक्तिरूपी कौशल्या रानी के द्वारा (मोहादि को नाश करने के लिए) अपना रूप प्रकट करो। और हे जानकीपते ! जैसे भक्त का कष्ट देखकर पिता के वचन से वन में गमन किया था ( वैसे ही यहाँ भी जीवरूपी भक्त का कष्ट देख कर ज्ञानरूपी दशरथ की प्रेरणा से हृदयरूपी वन में गमन करो अर्थात् ज्ञान के द्वारा अपना प्रकाश करो ) ॥ ७ ॥ मोक्ष के ( जप, तप, वैराग्य आदि ) अनेक साधन ही हुए अनेक रीछ, बन्दर ( इनके द्वारा ) विवेकरूपी सुग्रीव ( देहाभिमानरूपी ) समुद्र का पुल बाँध देगा। और प्रबल वैराग्य ही हुआ कठिन हनूमान् सो ( देहाभिमानरूपी समुद्र को फाँद ) विषयरूपी ( अशोक ) वन और ( कोशरूपी ) भवनों को अग्नि के समान भस्म कर देगा ॥ ८ ॥ और तुम ( जीवरूपी विभीषण ) भक्त के लिये—(मोहरूपी ) दुष्ट रावण को निर्वंश करके संसार का दुःख दूर कर दो और हे आत्मस्वरूप ! अपने छोटे भाई ( लक्ष्मणजी ) और जानकीजी सहित हे हरे ! तुलसीदास के हृदय-कमल में सदा वास करो। (भाव यह है कि जब समाधि, जप, तप आदि मोक्ष साधनों के द्वारा ज्ञान का उदय होता है तब मनुष्य का देहाभिमान छूट जाता है और इन्द्रियों के विषय और अन्नमयादि कोशों की लवलीनता, कि जिसके कारण मनुष्य तेरा मेरा करता है, जाती रहती है फिर आत्मज्ञान होने पर हृदय में आत्मस्वरूप का प्रकाश होता है और जीव को परम शान्ति मिलती है ॥ ९ ॥

**सन्धि-विभाग**—राका ( रात्रि) + ईस । दूषण + अरि । कोस + ओघ ( समूह ) । राग + आदि । विबुध + अंतकारी । भवत् ( आपके ) + अंघ्रि ( चरण ) । दुष्ट + अटवी ( वन ) । लोक + ईश । लंका + ईस । अवध + ईस । भवनं + इव । दनुज + ईस । बोध + एक ।

**शब्दार्थ**—राकेस = चन्द्रमा । विधुंतुद = राहु । करि = हाथी । हरि = सिंह । प्रवृत्त = चित्तवृत्ति। कोस = गूढ़ार्थ में देखो । निकर = समूह । प्रमुख = आदि । कुनप = देह । संकुल = व्याप्त, भरा हुआ।

संग = विषय में लगना । बीची = लहरें । विकार = उठना । दसमौलि = रावण । पाकारिजित् = ( पाकारि = इन्द्र ) उसे जीतने वाला इन्द्रजीत । विबुध = देवता । गो = इन्द्रियाँ । जातुधानी = राक्षसियां । अटवी, गहन = वन । वैदेही = सीता । भर्त्ता = पति ( राम ) । कैवल्य = मुक्ति । प्रभंजन = पवन । धूमकेतु = अग्नि । बोधैकराशि = ब्रह्मज्ञानी ।

[ ५९ ]

दीनउद्धरन रघुवर्ज करुनाभवन समनसंताप पापौघहारी ।
बिमलविज्ञानविग्रह अनुग्रहरूप भूपवर विबुधनरमद खरारी ॥१॥
संसारकांतार अतिघोर गंभीर घन गहन तरुकर्मसंकुल मुरारी ।
वासनावल्लि खरकंटकाकुलविपुल निबिडविटपाटवीकठिनभारी ॥
विविधचित्तवृत्ति खग-निकर सेनोलूक काकबकगृद्ध आमिषअहारी ।
अखिल खल निपुनछल छिद्र निरखत सदा जीवजनपथिकमन-खेदकारी ॥ ३ ॥
क्रोधकरिमत्त मृगराज कंदर्प मद दर्प वृकभालु अतिउग्रकरमा ।
महिष मत्सर क्रूर लोभसूकररूप फेरु छल दंभ मार्जार धरमा ॥४॥
कपटमर्कटविकट व्याघ्रपाखंड मुखदुखदमृगव्रातउतपातकरता ।
हृदय अवलोकि यह सोक सरनागतं पाहि मापाहि भो विस्वभरता ॥
प्रबलअहंकारदुरघट महीधर महामोहगरिगुहा निबिडांधकारम् ।
चित्तवेताल मनुजादमन प्रेतगनरोग भोगौघवृस्चिक विकारम् ॥
विषयसुखलालसादंसमसकादि खल झिल्लि रूपादि सब सर्प स्वामी ।
तत्र आच्छिप्त तव विषममायानाथ अंध मैं मंद व्यालादगामी ॥
घोरअवगाह भवआपगा पापजलपूर दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर अपारा ।
मकरषड्वर्ग गोनक्रचक्राकुला कूल सुभ असुभ दुखतीव्रधारा ॥८॥
सकल संघट्ट पोच सोचवस सर्वदा दासतुलसी विषम गहनग्रस्तम् ।
त्राहि रघुवंसभूषन कृपाकर कठिन कालविकरालकलित्रास-त्रस्तम् ॥ ६ ॥

हे देव ! तुम दीनों का उद्धार करनेवाले, रघुकुल में श्रेष्ठ, करुणा के स्थान, सन्ताप के दूर करनेवाले और पापों के समूह को हरनेवाले हो । तुम निर्मल आत्मज्ञान का शरीर धारण किये, कृपा के स्वरूप, राजाओं में श्रेष्ठ, देवताओं को सुखदाई और खर दैत्य के शत्रु हो ॥ १ ॥ हे मुरारी ! संसाररूपी वन ( शुभाशुभ ) कर्मरूपी वृक्षों से भरा हुआ है और ( कैसा है कि ) बड़ा भयानक, बड़ा गहरा, घना ( ऐसा कि जिसमें कुछ नहीं सूझे ) और कठिन है ( अर्थात् जिसमें दुःख ही दुःख मिले और उन कर्मरूपी वृक्षों पर) वासनारूपी बेलें ( लिपट रहीं ) हैं और ( वासना पूरी न होने से जो ) व्याकुल होना है सो ही पैने काँटे हैं ऐसा बड़े और गहरे वृक्षों का वन बड़ा भारी कठिन है ॥२॥ ( वन में भयानक जीव रहते हैं सो यहाँ संसाररूपी वन में पर-स्त्री-हरण, पर-निन्दा, पराया दोष देखना आदि ) अनेक प्रकार की चित्त की वृत्तियाँ ही मांसाहारी बाज़, उल्लू, काक, बगुले और गिद्ध आदि पक्षियों का झुंड है और ( जैसे वन के सब दुष्ट जीव छल में निपुण होते हैं और छिद्र देखते ही पथिक जन के मन को खेद करते हैं ऐसे ही इस संसार में ) बहुत से दुष्ट, जो छल में चतुर होते हैं, वे दोष देखते ही जीवरूपी पथिक जन के मन को सदा दुःख देते हैं (अर्थात् मन में स्थिरता, शान्ति, सुख आदि नहीं होने देते) ॥३॥ (संसाररूपी वन में कौन कौन से दुष्ट जन्तु हैं सो कहते हैं कि) क्रोधरूपी मतवाला हाथी है, कामरूपी सिंह है, मदरूपी भेड़िया और गर्वरूपी रीछ है और जिनके काम बड़े उग्र अर्थात् दुखदाई हैं । और मत्सररूपी क्रूर भैंसा है, लोभरूपी शूकर है, छलरूपी गीदड़ है, और दम्भ में बिलाव का धर्म है ॥ ४ ॥ कपटरूपी बड़ा विकट बन्दर है, पाखंडरूपी बाघ है, क्योंकि जैसे बाघ का मुख मृग के झुंडों को दुखदाई और उत्पात करनेवाला है ( ऐसे ही पाखंड वेदविरुद्ध बातें करा कर सन्तों को दुःख देता है ) हे विश्व के पालक ! हृदय में इस शोक को देख कर मैं तुम्हारी शरण आया हूँ । सो मेरी रक्षा करो ॥५॥ ( यहाँ तक तो वन के जीवजन्तु से रक्षा करने के लिए विनय की । आगे, और रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं कि संसाररूपी वन में ) बड़ा भारी अहंकाररूपी दुर्घट ( जो लाँघा न जाय ऐसा ) पर्वत है और जैसे ( वन में बड़ी अँधेरी गुफा होती हैं ऐसे ही संसाररूपी वन में ) महामोहरूपी पर्वत की कन्दरा है कि जिसमें घना अँधेरा भरा है (उसमें जाने से अपना आत्मस्वरूप नहीं दीखता फिर जैसे वन में बैताल रहते हैं) यहाँ चित्तरूपी बैताल है, मनरूपी राक्षस है, रोगरूपी प्रेतगण हैं, और (स्त्री, भोजन वसन, भूषण, गान, वाहन आदि ) भोग का समूहरूपी बिच्छू का विकार अर्थात् ज़हर है ॥६॥ (और जैसे वन में मक्खी, मच्छर, झिल्ली और सर्प होते हैं और जीव को सुख नहीं

होने देते ऐसे ही संसाररूपी वन में ) विषयसुख की लालसारूपी वन की मक्खियाँ और मच्छर हैं और ( बुरे वचन बोलनेवाले ) दुष्टरूपी झिल्ली हैं और हे स्वामी ! रूप, रस, गंध आदि सब विषयरूपी सर्प हैं। हे गरुड़गामी ! हे नाथ ! तुम्हारी कठिन माया ने मुझ मूर्ख को (वहाँ संसाररूपी वन में) पटक रक्खा है। ( वहाँ से निकल नहीं सकता क्योंकि ज्ञानरूपी नेत्र न होने से ) अंधा हूँ ॥ ७ ॥ (वन में नदी होती है अब उसका रूपक कहते हैं) यह संसाररूपी नदी बड़ी भयंकर और गहरी है और पापरूपी जल से भरी है, बड़े दुःख से भी देखने योग्य नहीं, दुःख से पार करने योग्य और अपार है ( अर्थात् जिसका पार नहीं सूझता अथवा जो पार नहीं हो सकती) । इसमें षड्वर्ग (अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) रूपी मगर हैं, इन्द्रियाँरूपी घड़ियाल और कछुए भरे हैं, और शुभाशुभ कर्मरूपी ( उस नदी के दोनों ) किनारे हैं और दुःखरूपी बड़ी कठिन धारा है ( उस में पड़ कर कौन बच सकता है ) ॥ ८ ॥ ( संसाररूपी कठिन वन में काम, क्रोधादि रूपी जो जीवजंतु हैं इन ) सब नीचों ने इकट्ठे हो कर मुझे पकड़ लिया है सो तुलसीदास सदा शोच के वश रहता है, हे रघुवंश के भूषण ! इस कठिन भयंकर कलिकाल के भय से डरे हुए को कृपा कर बचाइए ॥ ९ ॥

सन्धि-विभाग—पाप + ओघ । कंटक + आकुल ( दुःख ) । विटप + अटवी ( वन ) । सेन + उलूक । निविड़ ( घना ) + अंधकार । भोग + ओघ ( समूह ) । मसक + आदि । रूप + आदि । व्याल + अद ( खानेवाला ) = गरुड़ । चक्र + आकुल ( व्याप्त, भरा हुआ ) ।

शब्दार्थ—संकुल = भरा हुआ । सेन = बाज़ । फेरु = गीदड़ ) व्रात = झुंड । मनुजाद = मनुज ( मनुष्य ) को अद नाम खानेवाला अर्थात् राक्षस । दंस = वन की मक्खी । आपगा = आप नाम जल से जो जाय अथवा जल जिस में बहै अर्थात् नदी । संघट्ट = इकट्ठे हो कर ।

[ ६० ]

नौमि नारायनं नरं करुनायनं ध्यानपारायनं ज्ञानमूलम् ।
अखिलसंसारउपकारकारन सदय हृदय तपनिरत प्रनतानुकूलम् ॥
स्यामनवतामरसदामदुतिवपुष छवि कोटिमदनार्कअगनित-
प्रकासम् ।
तरुनरमनीय राजीवलोचन ललितवदनराकेस करनिकरहासम् ॥
सकलसौंदर्जनिधि बिपुलगुनधामविधिवेदबुधसंभुसेवित अमानम् ।

अरुनपदकंज मकरंदमंदाकिनी मधुपमुनिवृंद कुर्वन्ति पानम् ॥
सक्रप्रेरित घोरमदनमदभंगकृत क्रोधगत बोधरत ब्रह्मचारी ।
मार्कंडेयमुनिवर्जाहितकौतुकी विनहिं कल्पांत प्रभु प्रलयकारी ॥
पुन्यवनसैलसरिबदरिकास्रम सदा सीनपद्मासनं एकरूपं ।
सिद्धजोगींद्रवृंदारकानंदप्रद भद्रदायक दरस अतिअनूपं ॥ ५ ॥
मान मनभंग चितभंगमद क्रोधलोभादिपर्वतदुर्ग भुवनभरता ।
द्वेषमत्सररागप्रबलप्रत्यूह प्रति भूरि निर्दयक्रूरकर्मकरता ॥ ६ ॥
बिकटतरवक्रछुरधारप्रमदातीव्र दर्पकंदर्पगरखड्गधारा ।
धीरगंभीरमनपीरकारक तत्र के वराका वयं विगतसारा ॥ ७ ॥
परमदुर्घटपंथ खलअसंगतसाथ नाथनहिंहाथवरावरातियष्टी ।
दरसनारतदास त्रासितमायापास त्राहि हरि त्राहि दास जानकष्टी॥८॥
दासतुलसी दीन धर्मसंबलहीन स्रमित अतिखेदमतिमोहनासी ।
देहि अवलंब न विलंब अंभोजकर चक्रधर तेजबलसर्मरासी॥९॥

मैं नर नारायण को प्रणाम करता हूँ कि जो करुणा के स्थान, ध्यान में मग्न और ज्ञान के मूल अर्थात् कारण हैं। जो सब संसार का उपकार करनेवाले हैं, जिनका हृदय दयायुक्त है, और जो तपस्या में लगे हुए और प्रणत जो भक्त उन पर कृपालु हैं ॥१॥ नीले और नये ( खिले हुए ) कमलों की माला के समान जिनके शरीर की शोभा है, जिनकी करोड़ों कामदेवों की सी छवि है और अनगिनती सूर्यों का सा जिन का प्रकाश है। हाल के खिले सुन्दर कमल के समान जिनके नेत्र हैं, चन्द्र-समान सुन्दर मुख है और चन्द्र की किरणों के समूह के समान जिनकी मुसक्यान है ॥२॥ जो सम्पूर्ण सुन्दरता की खान, बहुत से गुणों के स्थान, ब्रह्मा, वेद, पण्डित और शिवजी से सेवा किये गये और मानरहित हैं। जिनके लाल कमल-समान चरणों से निकली हुई मन्दाकिनी नाम गंगाजी के ( जल-रूपी ) रस को मुनि-रूपी भौंरे पान करते हैं ॥ ३ ॥ और जो इन्द्र से भेजे गये भयङ्कर ( अर्थात् सबका चित्त डिगानेवाले ), कामदेव के मद को भंग करनेवाले, क्रोधरहित, बोधरत ( अर्थात् शुद्ध ज्ञानी ) और ब्रह्मचारी हैं। जो मुनियों में श्रेष्ठ मार्कंडेयजी के लिये लीला करनेवाले और कल्पांत के बिनाहीं प्रलय

करने में समर्थ हैं ॥ ४ ॥ और जिस में पवित्र वन, पर्वत और नदियाँ हैं ऐसे बद-रिकाश्रम में सदा पद्मासन लगाये एक रूप से ( निश्चल ) बैठनेवाले हैं और सिद्ध तथा बड़े बड़े योगी और देवता इनको विशेष आनन्ददायक और कल्याण के देनेवाले हैं और जिनका बड़ा उपमारहित दर्शन है ॥ ५ ॥ ( आगे बदरिकाश्रम के मार्ग की और हृदय में दर्शन मार्ग की कठिनता कहते हैं कि उस कठिन मार्ग को लांघकर जाय तो दर्शन हो ) हे भुवन के कर्त्ता ! वहाँ तो मनभंग पर्वत है ( जिसे देख कर ही मन में संकल्प विकल्प उठता है ) और यहाँ अभिमानरूपी मनभंग पर्वत है ( कि जिसके कारण दर्शन करने को मन न करे ) और वहाँ तो चित्तभंग पर्वत है ( कि जिसे देख आगे जाने का विचार ही न हो ) और यहाँ मदरूपी चित्तभंग पर्वत है। वहाँ तो बड़े बड़े कठिन पर्वत हैं और ( यहाँ इस दर्शन मार्ग में ) क्रोध, लोभ आदि कठिन पर्वत हैं। और वहाँ तो ( व्याघ्र, सिंह, कोलकिरात आदि ) बड़े भारी विघ्न हैं ( खा जायँ, लूट लें ) और इस ( दर्शन मार्ग ) में द्वेष, मत्सर और रागरूपी बड़े भारी विघ्न हैं और इन में से हर एक बड़ा निर्दयी और दुष्ट कर्म करनेवाला है ॥ ६ ॥ ( बदरीनाथ के मार्ग में तो बटमार बड़ी भयङ्कर और पैनी, छुरी, तलवार, की धार से पथिकों को मारते हैं ) और यहाँ स्त्री की बड़ी टेढ़ी चितवन ही छुरी की बड़ी भयङ्कर धार है और काम-विष ही तलवार की पैनी धार है (ये बीच में ही काम तमाम करती हैं वहाँ दर्शन कैसे हों। ये ऊपर कही हुई विघ्नकारी वस्तु ) धीर और गंभीर ( मनुष्यों ) के मन को भी पीड़ा करनेवाली हैं फिर वहाँ हम सरीखे बिचारे बलहीन कौन हैं ( अर्थात् किस गिनती में हैं ) ॥ ७ ॥ ( एक तो ) बड़ा कठिन मार्ग है ( दूसरे काम, क्रोधादि ) दुष्ट नीचों का साथ है ( तीसरे ) हे नाथ ! हाथ में सुन्दर वैराग्यरूपी लकड़ी नहीं है (लकड़ी हो तो कुछ बच सकूँ ) और यह दास दर्शन के लिये घबड़ा रहा है और माया के फँदे से दुखी है सो दास को कष्टी जान कर हे भगवन् ! रक्षा करो, रक्षा करो ॥ ८ ॥ ( इन ऊपर के विघ्नों के सिवा ) मुझ ग़रीब तुलसीदास के पास धर्मरूपी कलेवा नहीं है (कि जिसे खाता हुआ चला जाऊँ फिर मार्ग की कठिनाई से ) थक गया हूँ, और बड़ा दुखी हूँ (इस पर भी) मोह ने मति का नाश कर दिया है। सो हे चक्रधारी ! मुझे अपने कर-कमल का सहारा दो ; देर मत करो ( क्योंकि ) तुम तेज, बल और सुख के समूह हो ( इसलिए सब कुछ कर सकते हो ) ॥ ९ ॥

संधि-विभाग—करुना + ऐन। मदन + अर्क। राका + ईस। बदरिका + आस्रम। सदा + आसीन। जोगी + इंद्र। वृंदारका + आनंद।

शब्दार्थ—राकेस=(राका=रात्रि उसका ईस) चन्द्रमा। वर्ज=श्रेष्ठ। द्वेष=वैर। मत्सर=डाह। राग=संसारी मोह। प्रत्यूह=विघ्न। भूरि=बड़ा। प्रमदा=स्त्री। कंदर्प=काम। बराक=ग़रीब, छोटा। सार=बल। सर्म (शर्म)=कल्याण, सुख। प्रति=हर एक। आतुर=घबराया हुआ।

[ ६१ ]

सकलसुखकंद आनंदवन पुन्यकृत बिंदुमाधव द्वन्द्वविपति हारी।
यस्यांघ्रिपाथोज अज संभु सनकादिसुक सेसमुनिवृंद अलि निलय-
कारी ॥ १ ॥
अमलमर्कतस्याम कामसतकोटिछबि पीतपट तडित इव जलद-
नीलम्।
अरुनसतपत्रलोचन विलोकनिचारु प्रनतजनसुखद करुनार्द्र
सीलम् ॥ २ ॥
कालगजराजमृगराज दनुजेसवनदहनपावक मोहिनिसिदिनेसम्।
चारिभुजचक्रकौमोदकीजलजदर सरसिजोपरि जथा राजहंसम् ॥
मुकुट कुंडल तिलक अलकअलिव्रात इव भ्रकुटिद्विज अधर वर
चारु नासा।
रुचिरसुकपोल दरग्रीव सुख सीँव हरि इंदुकरकुंदमिव मधुरहासा॥
उरसि वनमाल सुविसाल नवमंजरी भ्राज श्रीवत्सलांछन उदारम्।
परमब्रह्मन्य अतिधन्य गतमन्यु अज अमितबल विपुलमाहिमा
अपारम् ॥ ५ ॥
हार केयूर कर कनक कंकन रतन जटित मनिमेखला कटिप्रदेसम्।
जुगलपदनूपुरामुखर कल हंसवत सुभगसर्वांग सौंदर्यवेषम् ॥६॥
सकलसौभाग्यसंजुक्तत्रैलोक्यश्री दच्छदिसि रुचिरवारीसकन्या।
वसत विबुधापगा निकट तट सदन बर नैन निरखंति नरतेऽतिधन्या॥

अखिलमंगलभवन निबिड़संसयसमन दमनब्रजनाटवी कष्टहरता।
विस्वधृत विस्वहित अजित गोतीत सिव विस्वपालनहरनविस्व-
करता ॥ ८ ॥
ज्ञान विज्ञान वैराग्य ऐस्वर्जनिधि सिद्धि अनिमादि दे भूरिदानम्।
ग्रसतभवव्याल अतित्रासतुलसीदास त्राहि श्रीराम उरगारियानम् ॥

हे बिन्दुमाधव! तुम सब सुख के मेघ अर्थात् बरसानेवाले हो, आनन्द के वन, और पुण्य स्वरूप हो और द्वन्द्व (राग द्वेष आदि) तथा विपत्ति के हरनेवाले हो। तुम्हारे चरण-कमलों में ब्रह्मा, शिव, सनक आदि शुक, शेषनाग और मुनियों के समूह इन्होंने भ्रमररूप होकर अपने स्थान बनाये हैं, (अर्थात् जैसे भौंरे कमल पर रहते हैं ऐसे ही ब्रह्मा आदि तुम्हारे चरण-कमलों में पड़े रहते हैं॥ १॥ तुम निर्मल मरकत (मणि) के समान श्याम हो, सौ करोड़ कामदेवों के समान तुम्हारी छवि है, पीताम्बर धारण किये (कैसे शोभायमान लगते हो) जैसे नीले मेघ में बिजली होती है। तुम्हारे लाल कमल के से नेत्र हैं, सुन्दर चितवन है, तुम भक्तजनों को सुख देने वाले हो और तुम्हारा स्वभाव करुणा से भीग रहा है॥ २॥ तुम कालरूपी गजराज को (फाड़ने के लिए) सिंहरूप हो, दैत्यराजरूपी वन को (भस्म करने के लिए) अग्निरूप हो, और मोहरूपी रात्रि को (दूर करने के लिए) सूर्यरूप हो, चारों भुजाओं में चक्र, कौमोदकी (गदा) कमल, और शंख को धारण किये हो (और हाथ में शंख ऐसा शोभा दे रहा है। (जैसे कमल पर राजहंस ॥ ३॥ (शिर पर रत्नजटित सुन्दर) मुकुट धारण किये, (कानों में मकराकृत) कुंडल पहिरे और (मस्तक पर केसरिया) तिलक लगाये हो, तुम्हारी अलकें भौंरों के समूह के समान काली हैं और भ्रुकुटी, दाँत और होठ ये शुन्दर हैं और नाक भी मनोहर है; तुम्हारे सुन्दर (गोल गोल) कपोल, शंख की सी ग्रीवा मानों सुख की सीमा है और हे भगवन्! तुम्हारी मधुर मुसक्यान चन्द्रमा (१) की किरण और कुन्द पुष्प के समान है॥४॥ तुम्हारे हृदय पर नई मंजरी की सुन्दर लम्बी बनमाला और सुन्दर श्रीवत्स नाम लांछन शोभायमान है। तुम परम ब्रह्मण्य (अर्थात् ब्राह्मणों का बड़ा आदर करने वाले) और बड़े धन्य हो (अर्थात् सब संसार तुम्हारी बड़ाई करता है), तुम क्रोधरहित,

(१) हास को चन्द्रमा की किरण और कुन्द के पुष्प की उपमा इसलिए दी गई है कि हास श्वेत वर्णन किया जाता है।

अजन्मा, और अतोल बलवाले हो और तुम्हारी बड़ी अपार महिमा है ॥ ५ ॥ तुम ( गले में मणियों के ) हार, हाथ में सुवर्ण के रत्नजटित बाज़ू और कंगन पहिरे हो और कमर की जगह मणियों की तागड़ी धारण किये, दोनों चरणों में हंस के समान सुन्दर शब्द करने वाले झाँझन पहिरे हो और तुम्हारे सब अंग सुन्दर हैं, ( और तुम साक्षात् ) सुन्दरता का वेश बनाये हो ॥ ६ ॥ और तुम्हारे दक्षिण भाग में सम्पूर्ण सौभाग्य से भरी पूरी और तीनों लोकों की शोभा, सुन्दर लक्ष्मीजी (विराजमान ) हैं । और तुम गंगाजी के पास किनारे पर सुन्दर मन्दिर में निवास करते हो । और जो मनुष्य नेत्रों से तुम्हारे दर्शन करते हैं वे बड़े धन्य हैं ॥७॥ तुम सब मंगलों के स्थान, कठिन कठिन संदेहों के दूर करने-वाले, पापों के वन के भस्म करने वाले और कष्ट हरनेवाले हो । तुम संसार को धारण किये हो, संसार के हितकारी और अजित हो (अर्थात् किसी से जीते नहीं जाते हो ) तुम इन्द्रियों से परे हो, शिव अर्थात् मंगल करने वाले और संसार के पालक, संहारक और विश्व के उत्पन्न कर्त्ता भी हो । ज्ञान, आत्मज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य इनकी खान और अणिमादि सिद्धियों के देनेवाले ऐसे बड़े दानी हो (ऐसा जान मैं भी भीख माँगने आया हूँ सो मुझ) तुलसीदास को जो संसाररूपी सर्प लीले जाता है इसका मुझे बड़ा डर है, सो हे श्रीराम ! ( इससे मेरी ) रक्षा करो ( कुछ बड़ी बात नहीं है ) गरुड़ तुम्हारी सवारी है । (फिर तुम्हारी आज्ञा से गरुड़ के लिए सर्प भक्षण क्या बड़ी बात है । भाव यह है कि संसार के आवागमन से छुटाओ ) ॥ ८ ॥

सन्धि-विभाग—यस्य + अंघ्रि । सनक + आदि । करुना + आर्द्र (गीला ) । दनुज + ईस । दिन + ईस । सरसिज + उपरि । कुन्दम् + इव । विबुध + आपगा । ते + अति । व्रजन ( पाप ) + अटवी ( वन ) । अनिमा + आदि । उरग + अरि ।

शब्दार्थ—कंद = मेघ । अंघ्रि = चरण । सतपत्र = कमल । कौमोदकी = भगवान् की गदा । दर = शंख । अलि = भौंरे । व्रात = समूह । द्विज = दांत (दो वार उगते हैं) । मन्यु = क्रोध । गो = इंद्री ।

## राग आसावरी ।

[ ६२ ]

**इहै परमफल परम बड़ाई ।**
**नख सिख रुचिर बिंदुमाधव-छबि निरखहिं नयन अघाई ॥ १ ॥**
**बिसद किसोर पीन सुंदर बपु श्यामसुरुचि अधिकाई ।**
**नीलकंज बारिद तमालमनि इन्ह तनुते दुति पाई ॥ २ ॥**

मृदुलचरन सुभ चिह्न पदज नख अति अद्भुत उपमाई।
अरुननीलपाथोजप्रसव जनु मनियुत दलसमुदाई ॥ ३ ॥
जातरूप मनिजटित मनोहर नूपुरजन सुखदाई।
जनु हर उर हरि विविध रूप धरि रहे वरभवन बनाई ॥ ४ ॥
कटितट रटति चारु किंकिनिरव अनुपम वरनि न जाई।
हेमजलज कलकलिन मध्य जनु मधुकर मुखर सोहाई ॥ ५ ॥
उर बिसाल भृगुचरन चारु अति सूचत कोमलताई।
कंकन चारु विविधभूषन विधि रचि निज कर मनु लाई ॥६॥
गजमनिमाल बीचभ्राजत कहि जाति न पदिक निकाई।
जनु उडुगन-मंडल वारिद पर नवग्रह रची अथाई ॥ ७ ॥
भुजगभोग भुजदंड कंज दर चक्र गदा बन आई।
सोभासीव ग्रीव चिबुकाधर वदन अमित छबि छाई ॥ ८ ॥
कुलिस कुंद कुडमल दामिनिदुति दसनन देख लजाई।
नासा नैन कपोल लिलत स्रुति कुंडल भ्रू मोहि भाई ॥ ९ ॥
कुंचित कच सिर मुकुट भालपर तिलक कहौं समुझाई।
अलप तड़ित जुगरेख इंदुमहँ रहि तजि चंचलताई ॥ १० ॥
निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई।
बहुमनि युत गिरि नील सिखर पर कनक वसन रुचिराई ॥११॥
दच्छभाग अनुरागसहित इंदिरा अधिक ललिताई।
हेमलता जनु तरुतमाल ढिंग नील निचोल ओढ़ाई ॥१२॥
सतसारदा सेष स्रुति मिलि करि सोभा कहि न सिराई।
तुलसिदास मतिमंद द्वंद्वरत कहै कौन विधि गाई ॥१२॥

यही बड़ा भारी फल और बड़ी भारी बड़ाई है कि नख से शिखा तक सुन्दर विन्दु-माधवजी की छवि के दर्शन कर नेत्रों को तृप्त करे। ( विन्दुमाधवजी कैसे हैं कि )

निर्मल, किशोर अर्थात् १६ वर्ष की अवस्थावाले हैं और जिनके पुष्ट और सुन्दर श्याम शरीर की बड़ी अधिक छबि है (भाव—ऐसा मन में आता है कि दर्शन ही करते रहैं)। नीले कमल, मेघ, तमाल वृक्ष और नील मणि इन्होंने इन्हीं के शरीर से शोभा पाई है (अर्थात् नील कमल में चिकनापन श्यामता और खिलाव, मेघ में गम्भीरता और श्यामता, तमाल वृक्ष में श्यामता लिये प्रकाश, और नीलमणि में झलक इन्हीं भगवान् के शरीर से आई है) ॥ २ ॥ कोमल चरणों में सुन्दर (वज्र, अंकुश कमल आदि के) चिह्न हो रहे हैं, पदज अर्थात् उँगली, अँगूठों और नखों की बड़ी भारी अनोखी उपमा है कि मानों लाल और नीले कमल से मणि सहित पत्तों का समूह उत्पन्न हुआ है (इसका भाव यह है कि भगवान् के चरण ऊपर की ओर श्याम और नीचे की ओर लाल कमल के समान हैं उन पर उँगलियों के साथ नखों की ऐसी शोभा हो रही है मानों मणि-जटित लाल नीले पत्ते निकले हैं। कमल के पत्ते मणियुक्त नहीं होते इसीसे अनोखी उपमा है)।। ३ ।। सोने के मणि-जटित मनहरण झाँझन (धारण किये हैं कि जो) भक्तजनों को सुख देनेवाले हैं। (अब यहाँ कवि उत्प्रेक्षा करता है कि) मानों शिवजी के हृदय में भगवान् अनेक भाँति का रूप धर कर सुन्दर भवन बना कर रहे हैं, और जो "जनु हर डर" अर्थात् उर की जगह डर पाठ हो तो ऐसा अर्थ करना कि मानों शिवजी के डर के मारे हरिनाम कामदेव अनेक प्रकार का रूप धर कर सुन्दर भवन बना कर रहा है (कि कहीं शिवजी भस्म न कर दें) ॥ ४ ॥ कटि के पास सुन्दर तागड़ी शब्द रट रही है उसकी उपमा वर्णन नहीं की जाती मानों सुवर्ण के कमल की सुन्दर कलियों के बीच में भौंरों का सुन्दर शब्द हो रहा है॥ ५॥ चौड़ी छाती में बड़ा सुन्दर भृगु-चरण का चिह्न,है कि जिससे छाती की कोमलता प्रकट होती है। (भाव—ऐसी कोमल कि भृगुजी ने चरण मारा सो चिह्न उखड़ आया है।) कंकण आदि अनेक भाँति के आभूषण (हाथों में) ऐसे सुन्दर हैं कि मानों ब्रह्मा ने अपने हाथ से मन लगा कर बनाये हैं ॥ ६ ॥ और गजमुक्ताओं की माला के बीच में पदिक की (अर्थात् रंग रंग की मणि-जटित चौकोन रत्नों की) ऐसी शोभा हो रही है कि उनकी सुन्दरता कही नहीं जाती। मानों मेघ के ऊपर तारागणों के मंडल के बीच में (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु इन) नवग्रहों ने बैठने की जगह बनाई है। (भाव यह है कि भगवान् के मेघ-तुल्य श्याम शरीर पर मुक्ताओं की माला सोई हुई तारागण का मण्डल उसमें जो बीच बीच में मणि पुह रहे हैं सोई मानों नवग्रहों के बैठने की जगह है) ॥७॥ सर्प के शरीर के समान जिनके भुजदंड हैं (अर्थात्

चिकने और ऊपर से मोटे नीचे से पतले ) उनमें शंख, चक्र, गदा, पद्म की शोभा हो रही है। जिनकी ग्रीवा शोभा की सीमा है (अर्थात् इससे बढ़ कर सुन्दर गरदन नहीं हो सकती ) और ठोड़ी, होठ, और मुख इनकी असीम छवि झलक रही है ॥८॥ हीरा, कुन्द की कली और बिजली इनकी झलक दाँतों को देख कर लजाती है ( अर्थात् उजलापन देख कर हीरा और आकार को देख कर कुन्द की कली और चमक को देख कर बिजली) और जिनके नाक, नेत्र, गाल, तथा सुन्दर कुण्डलों से सजे हुए कान और भौंहें—ये मुझे अच्छे लगते हैं ॥९॥ उन के शिर पर कुंचित नाम टेढ़े (अर्थात् घूँघरवाले) बाल हैं, वे जो मुकुट पहिरे हैं और भाल पर जो तिलक लगाये हैं उसे समझा कर कहता हूँ—मानों थोड़ी बिजली की दो रेखा अपनी चंचलता छोड़ कर चन्द्रमा में वास कर रही हैं ॥१०॥ और निर्मल, अनुपम जो पीतांबर धारण किये हैं उसकी उपमा हृदय में नहीं समाती। मानों बहुत से मणियों से युक्त नील पर्वत के शिखर पर सोने के वस्त्र की सुन्दरता हो ( भाव—श्याम पर्वत के समान शरीर हुआ, मणियों के समान अनेक भूषण हुए और सुनहरे वस्त्र के समान पीताम्बर हुआ ) ॥११॥ दाहिने भाग में प्रेम सहित लक्ष्मीजी ( बैठी ) हैं उनकी सुन्दरता इतनी अधिक है मानों तमाल के वृक्ष के पास सोने की लता नील वस्त्र ओढ़े बैठी हो ॥ १२ ॥ सैकड़ों सरस्वती, शेषनाग और वेद मिल कर जो ( भगवान् की ) शोभा कहें तो पार न पावें फिर तुलसीदास, जो मंद-बुद्धि है और द्वंद्व, ( काम, क्रोध, आदि ) में जिसकी प्रीति है सो किस प्रकार गाकर कहे ॥ १३ ॥

सन्धि-विभाग—चिबुक ( ठोड़ी ) + अधर ( होठ ) ।

शब्दार्थ—विसद = निर्मल । किसोर = १६ वर्ष का । हेम, जातरूप = सोना । कल = सुन्दर । भोग = सर्पशरीर । कुड्मल = कली । दर = शंख । दसन = दाँत । स्रुति = कान । इंदिरा = लक्ष्मी । निचोल = वस्त्र । कच = बाल ।

## राग जयतिश्री ।

### [ ६३ ]

मन इतनोई या तनु को परमफलु ।
सब अँग सुभग बिंदुमाधव छबि तजि सुभाउ अवलोकु एक पलु ॥
तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु नख दुति हृदयतिमिरहारी ।
कुलिस केतु जव जलज रेखवर अंकुस मन गज वसकारी ॥२॥

कनक जटित मनिनूपुरमेखल कटितट रटति मधुरवानी।
त्रिवली उदर गँभीर नाभिसर जहँ उपजे विरंचिज्ञानी ॥ ३ ॥
उर वनमाल पदिक अति सोभित विप्रचरन चित कहँ करषै।
स्याम तामरसदामवरनवपु पीतवसन सोभा वरषै ॥ ४ ॥
कर कंकन केयूर मनोहर देति मोद मुद्रिक न्यारी।
गदा कंज दर चारु चक्रधर नागसुंडसम भुजचारी ॥ ५ ॥
कंबुग्रीव छबिसीँव चिबुक द्विज अधर अरुन उन्नत नासा।
नवराजीवनैन ससि आनन सेवकसुखद विसदहासा ॥ ६ ॥
रुचिर कपोल स्रवन कुंडल सिर मुकुट सुतिलक भाल भ्राजै।
लुलित भ्रुकुटि सुंदर चितवनि कच निरखि मधुपअवली लाजै ॥७॥
रूपसीलगुनखानि दच्छ दिसि सिंधुसुता रत पदसेवा।
जाकी कृपाकटाच्छ चहत सिव विधि मुनि मनुजदनुज देवा ॥८॥
तुलसिदास भव त्रास मिटै तब जब मति एहि स्वरूप अटकै।
नाहिंत दीन मलीन हीनसुख कोटि जन्म भ्रमि भ्रमि भटकै ॥९॥

हे मन! इस शरीर का बड़ा फल इतना ही है कि जिनके (नख से सिख तक) सब अंग सुन्दर हैं उन विन्दुमाधव की छवि को एक पल अपने (चंचल) स्वभाव को छोड़ कर (अर्थात् स्थिर होकर प्रेम से) दर्शन कर ॥ १ ॥ नये खिले लाल कमल के समान जिनके कोमल चरण हैं और नखों की झलक हृदय के अंधकार को हरनेवाली है। और (चरणों में) वज्र, ध्वजा, जव, और कमल इनकी रेखारूपी सुन्दर अंकुश मनरूपी हाथी को वश में करनेवाला है ॥ २ ॥ (चरणों में) सोने की मणि-जटित झाँझन पहिरे और कमर में तागड़ी मधुर मधुर वाणी रटती है (अर्थात् मधुर मधुर बज रही है). उदर पर तीन रेखायें (पड़ी) हैं और सर समान गहरी नाभि है कि जहाँ से ब्रह्मा सरीखे ज्ञानी उत्पन्न हुए हैं ॥ ३ ॥ छाती पर पदिक (अर्थात् मणिजटित रत्नमाला) और वनमाला अत्यन्त शोभायमान हैं और (छाती में) भृगुजी का चरण (भक्तों के) चित्त को खींचता (अर्थात् चुराये लेता) है। नीले कमल के गुच्छे के समान शरीर का वर्ण है और उस पर पीताम्बर

शोभा बरसा रहा है॥ ४॥ हाथ में मन को हरनेवाले कंगन और बाज़ू-बन्द हैं और अँगूठी जुदा ही आनन्द दे रही है। सुन्दर शंख, चक्र, गदा, पद्म को हाथी की सूँड के समान अपनी चारों भुजाओं में धारण किये हैं॥ ५॥ छवि की सीमा ऐसी, शंख की सी ग्रीवा है और ठोड़ी, दाँत, लाल होठ, और ऊँची नाक है। नये कमल समान नेत्र, चन्द्रमा के समान मुख और निर्मल ( मृदु ) मुसक्यान भक्तों को सुख देनेवाली है॥ ६॥ जिनके सुन्दर ( गोल गोल ) गाल, कानों में कुण्डल, शिर पर मुकुट और भाल पर सुन्दर तिलक चमक रहा है। सुन्दर भौंहें और सुन्दर चितवन है और जिनके बालों को देख कर भौंरों की पाँति लजाती है॥ ७॥ जो रूप, शील और गुण की खान हैं और जिनके दाहनी ओर लक्ष्मीजी पद-सेवा में लग रही हैं। जिनके कृपा-कटाक्ष को शिव, ब्रह्मा, मुनि, मनुष्य, दैत्य और देवता चाहते हैं॥ ८॥ तुलसीदास का संसाररूपी भय तब मिटे कि जब बुद्धि इस स्वरूप में अटके ( प्रेमपूर्वक लगे )। नहीं तो दीन, मलीन और सुखहीन हुआ करोड़ों जन्म तक योंहीं घूमता भटकता फिरेगा ( अर्थात् संसार के आवागमन से नहीं छूटेगा )॥ ९॥

शब्दार्थ — सर = ताल। विप्र = भृगुजी। दर = शंख। नाग = हाथी। द्विज = दाँत (दो बार उगते हैं)।

## राग वसन्त।

[ ६४ ]

वन्दों रघुपति करुनानिधान। जाते छूटै भवभेदज्ञान॥ १॥
रघुवंस कुमुदसुखप्रदनिसेस। सेवित पदपंकज अजमहेस॥ २॥
निजभक्तहृदयपाथोजभृंग। लावन्यवपुषअगनितअनंग॥ ३॥
अतिप्रबलमोहतममारतंड। अज्ञानगहन पावकप्रचंड॥ ४॥
अभिमानसिंधुकुंभजउदार। सुररंजन भंजन भूमिभार॥ ५॥
रागादिसर्पगनपन्नगारि। कंदर्पनागमृगपति मुरारि॥ ६॥
भवजलधिपोतचरनारविंद। जानकीरमन आनंदकंद॥ ७॥
हनुमंतप्रेमवापीमराल। निःकाम कामधुक गोदयाल॥ ८॥
त्रैलोकतिलक गुनगहनराम। कह तुलसिदास विस्रामधाम॥९॥

मैं करुणानिधान रघुनाथजी को प्रणाम करता हूँ कि जिससे संसार में भेदज्ञान छूट जाता है॥१॥ जो रघुवंशरूपी कुमुद को चन्द्रमा के समान सुख देनेवाले ( अर्थात्

खिलानेवाले ) और ब्रह्मा और शिव जिनके चरण-कमलों की सेवा करते हैं ॥ २ ॥ जो अपने भक्तों के हृदयरूपी कमल को भ्रमररूप हैं ( अर्थात् जैसे कमल पर रस पाने के लिए भौंरा रहता है, ऐसे ही भक्त के हृदय में रामजी वास करते हैं ) और जिनके अंग की शोभा अनगिनत कामदेवों की सी है ॥ ३ ॥ जो बड़े प्रबल मोहरूपी अंधकार को ( मिटाने के लिए ) सूर्यरूप हैं और अज्ञानरूपी वन को ( भस्म करने के लिए ) धधकती हुई अग्निरूप हैं ॥ ४ ॥ जो अभिमानरूपी समुद्र के (सोखने के) लिए उदार अगस्त्य-रूप हैं, और देवताओं को सुख के दाता और भूमि के भार ( राक्षसादि ) के नाशक हैं ॥ ५ ॥ राग ( विषय आदि ) रूपी सर्पों के समूह को ( भक्षण करने के लिए ) गरुड़-रूप हैं और कामरूपी नाग को भगवान सिंह-रूप हैं ॥ ६ ॥ संसाररूपी समुद्र के लिए जिनके चरण-कमल जहाज़-रूप हैं ऐसे वे जानकीपति आनन्द बरसानेवाले हैं ॥ ७ ॥ हनूमानजी के प्रेमरूपी बावड़ी में हंस रूप होकर ( सदा वास करनेवाले ) और कामनारहित भक्तों के लिये कामधेनुरूप और दया करनेवाले हैं ॥ ८ ॥ तीनों लोकों के तिलक अर्थात् शिरोमणि, गुणों के वन ऐसे ( राम ) विश्राम के धाम हैं यह तुलसीदास कहता है ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—भेदज्ञान = चर अचर में ऊँच नीच का भेद समझना । निसेस = (निसा + ईस) निशा का स्वामी, चन्द्र । पाथोज = (पाथ नाम जल उससे उत्पन्न) कमल । मारतंड = सूर्य । अनंग = (जिसके शरीर नहीं ) कामदेव । पन्नगारि = (पन्नग = सर्प + अरि = वैरी) गरुड़ । मुरारि = (मुर = दैत्य + अरि = शत्रु ) भगवान् । पोत = नाव । कंद = मेघ ।

## राग भैरव ।

### [ ६५ ]

राम राम रटु राम राम रटु राम राम जपु जीहा ।
रामनाम नवनेह मेह को मन हठि होहि पपीहा ॥ १ ॥
सब साधनफल कूप सरित सर सागरसलिलनिरासा ।
रामनामरति स्वातिसुधासुभसीकर प्रेमपियासा ॥ २ ॥
गरजि तरजि पाषान वरषि पवि, प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर पर परमिति पहिचानै ॥३॥
राम नामगति रामनाममति रामनामअनुरागी ।
ह्वैगये, हैं, जे होहिंगे आगे तेइ त्रिभुवन गनियत बड़भागी ॥४॥

**एकअंग मग अगम गवन कर बिलँबु न छिन छिन छाहैं ।**
**तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहैं ॥ ५ ॥**

गुसांईजी अपनी जिह्वा और मन से कहते हैं:—

हे जीभ ! तू राम राम रट और राम राम ही जप । और हे मन ! (तू भी) राम नाम में नवीन स्नेहरूपी मेघ के लिए हठ करके पपीहा हो (अर्थात् सबकी आशा-भरोसा छोड़ एक रामजी से प्रेम कर) ॥१॥ (राम साधन को छोड़ अन्य) सब साधनों का फल (तुझे ऐसा है कि जैसे पपीहे को) कुआँ, नदी, तालाब, समुद्र का जल । सो जैसे वह इनकी आशा छोड़कर स्वाति के जल की सुन्दर एक बूँद के प्रेम का प्यासा होता है ऐसे ही तू (सब साधनों को छोड़ कर) राम नाम में प्रीति कर ॥२॥ (देखो चातक के प्रेम को देख मेघ) गर्जता है और तर्जता है (अर्थात् डाटता है कि हम से प्रीति मत कर और जब डाटने से भी वह नहीं मानता है तब) ओले बरसाता है, (जब ओले से भी नहीं मानता है तब) वज्र गिराता है (फिर भी न मानने पर) प्रीति को परख कर जी में जान लेता है (कि मेरे इतना करने पर भी) इसके हृदय में अधिक अधिक प्रेम उपजता है । और (जब ऐसे प्रेम की) पूरी हद को पहचान लेता है (तब स्वाति की बूँद बरसाता है । ऐसे ही तू भगवान की प्रीति कर । वे क्रोध करेंगे, तेरा चित्त उचटावेंगे, निर्धन और रोगी करेंगे, स्त्री, पुत्रादि का वियोग और दुःख देंगे । जब इतना करने पर भी तू प्रेम करता जायगा तब तेरी प्रीति पहचान तुझे स्वाति बूँद के समान मोक्ष देंगे) ॥ ३ ॥ राम नाम की ही शरण (१) रख (अर्थात् जो होगा सो इसीसे होगा), राम नाम में ही बुद्धि को स्थिर कर (अन्य देवताओं में बुद्धि लगाने से कुछ काम नहीं बनेगा) और राम नाम में ही प्रेम कर (अर्थात् उसका ही स्मरण करता रह क्योंकि ऐसा करने से) जो हो गये हैं जो मौजूद हैं और जो आगे होंगे वेही त्रिलोकी में बड़भागी गिने जाने योग्य हैं ॥४॥ परन्तु एकांगी (२) (अर्थात् चातक के समान दृढ़ होकर एक राम नाम में ही प्रीति करना यह) मार्ग बड़ा कठिन है (प्रथम तो अन्य देवताओं के पूजन का फल और संसार की झूँठी सिद्धियों का फल सुनकर उसमें जाना ही दुर्लभ है और) जो तू चला भी जाय तो

---

(१) सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । सरलार्थ ।

(२) अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् । भाव—जो अन्य को छोड़कर मेरी ही उपासना करते हैं उन अपने भक्तों को मैं योग क्षेम देता हूँ । अर्थात् सब भाँति उनके मनोरथ पूर्ण करता हूँ ।

छिन छिन में छाया के सहारे से देर मत कर ( अर्थात् जैसे जब मार्ग में कड़ी धूप होती है तब मनुष्य वृक्षों की छाया में ठहरता ठहरता जाता है ऐसे ही लोक परलोक के लिए जितने पूजा, पाठ, जप, तप, यज्ञादि, साधन हैं और स्त्री, पुत्र, धन आदि का सुख है यही ठहरी सुन्दर हरे हरे वृक्षों की छाया, इसका सहारा मत ले, नहीं तो देर हो जायगी अर्थात् आयु पूरी हो जायगी। बीच में ही मरकर रह जायगा और जो राम का ही केवल भरोसा करेगा तो संसाररूपी कठिन मार्ग को काट मोक्ष पद पर पहुँच जायगा )। हे तुलसीदास! अपना भला तो ( भगवान् में ) अपनी ओर से निरुपाधि ( अर्थात् संसार में जितने कष्ट और चिंता हैं उनमें से जिसमें एक भी न हो ऐसा ) प्रेम निबाहे से होगा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—सुधा = जल। लावन्य = सुन्दरता। मारतंड = सूर्य। पन्नगारि ( पन्नग = सर्प + अरि शत्रु ) = गरुड़। कंदर्प = कामदेव।

[ ६६ ]

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।
घोर भवनीरनिधि नाम निज नाव रे ॥ १ ॥
एकही साधन सब रिद्धि सिद्धि साधि रे।
ग्रसे कलिरोग जोग संजम समाधि रे ॥ २ ॥
भलो जो है पोच जो है दाहिनो जो बाम रे।
रामनामही सों अंत सबही को काम रे ॥ ३ ॥
जग नभवाटिका रही है फलफूलि रे।
धुवाँ केसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥ ४ ॥
रामनाम छाँड़ि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे ॥ ५ ॥

अरे बावरे मन! राम जप, राम जप, राम जप। भयानक संसाररूपी समुद्र को (पार करने के लिये राम का) नाम ही अपनी नाव है (अर्थात् जब चाहो तब बिना भाड़ा दिये पार चले जाओ ) ॥१॥ अरे! एक (राम नाम के) ही साधन से सब ऋद्धि-सिद्धियों को साध अर्थात् प्राप्त कर। क्योंकि योग, संयम और समाधि को कलियुगरूपी रोग ने ग्रस लिया है ( अर्थात् कलि में विषयी जीवों से आलस्य के कारण योग आदि कठिन साधन नहीं

हो सकते) ॥ २ ॥ जो भला है, या बुरा है जो सीधा है या उलटा है अंत में सबको राम नाम ही से काम है। ( अर्थात् कैसा ही आदमी हो मरण-समय जो आता है उसे यह उपदेश करता है कि राम राम जप और फिर मरने पर भी लोग राम राम सत्य कहते हुए उसे श्मशान को ले जाते हैं ) ॥ ३ ॥ ( देखो बगीचा भूमि पर होता है; आकाश में नहीं होता। कोई कहे भी तो सर्वथा झूठ है सो ही कहते हैं ) अरे ! यह संसार (ऐसा है कि जैसे ) आकाश में बगीची फल-फूल रही है—( अर्थात् झूठा है ) । और धुएँ कैसे धौरहर ( महल ) हैं ( अर्थात् जैसे गीले ईंधन में अग्नि जलाने से जो धुँआँ उठता है उसमें भाँति भाँति के महल बनते और बिगड़ते चले जाते हैं ऐसे ही संसार में धन, धाम, स्त्री, पुत्रादि सब झूठे हैं ) इन्हें देख कर तू मत भूल ( अर्थात् इनमें प्रीति मत कर ) ॥ ४ ॥ अरे ! जो तू राम नाम को छोड़ और ( कर्मयोग, ज्ञान, यज्ञ आदि ) का भरोसा करेगा तो हे तुलसी ! परोसे हुए ( अन्न ) को त्याग कुत्ते के समान टुकड़ा टुकड़ा माँगता फिरेगा ( सो उससे क्या पेट भरेगा ) ॥ ५ ॥

[ ६७ ]

रामनाम जपु जिय सदा सानुराग रे।  
कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग रे ॥ १ ॥  
रामसुमिरन सब बिधिही को राज रे।  
राम को बिसारिबो निषेध सिरताज रे ॥ २ ॥  
रामनाम महामनि फनि जगजाल रे।  
मनि लिये फनि जियै ब्याकुल बिहाल रे ॥ ३ ॥  
रामनाम कामतरु देत फल चारि रे।  
कहत पुरान वेद पंडित पुरारि रे ॥ ४ ॥  
रामनाम प्रेम परमारथ को सार रे।  
रामनाम तुलसी को जीवन आधार रे ॥ ५ ॥

हे मन ! सदा प्रेम से राम नाम का जप कर। कलियुग में (१) विराग, योग, यज्ञ

(१) जैसा कहा है—"रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन् मुक्तिमुपैति जन्तुः।  
कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः ॥ १ ॥

और तप दान नहीं है ( क्योंकि लोभ छोड़ने से विराग होगा, सो कलि में लोभ छूटेगा नहीं; योग, यज्ञ, तप में मन और इन्द्रियाँ स्थिर करनी पड़ेंगी सो काम बड़ा बली है वह यह भी न होने देगा ) ॥ १ ॥ अरे ! राम नाम का सुमरन करना सब साधनों का राजा है और राम नाम का भूलना सब निषेधों का सिरताज है ( फिर बहुतेरा चाहो कोई पदार्थ नहीं मिल सकता ) ॥ २ ॥ अरे ! राम का नाम तो महामणि है ( जो सर्प के शिर पर होती है ) और यह संसार का जाल ( दुख सुख, संयोग वियोगादि ) सर्प है और मणि ले लेने से सर्प व्याकुल होकर बुरे हाल से जीता है ( भाव यह है कि जिसने राम नाम महामणि नहीं लिया और संसार को सच्चा माना उसे जगत्‌रूपी सर्प ने डस लिया और जिसने संसार को झूँठा माना और राम नामरूपी महामणि ले लिया उसका जगजालरूप सर्प अवश्य मरेगा ) ॥ ३ ॥ अरे ! (स्वर्ग में कल्प-वृक्ष तो धर्म, अर्थ, काम, तीन ही फल देता है और ) राम नामरूपी कल्पवृक्ष ( धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ) चार फल देता है यह बात वेद, पुराण, पण्डित और शिवजी (१) कहते हैं ॥४॥ अरे ! राम नाम में प्रेम करना परमार्थ का सार है (अर्थात् मुक्ति का दाता है) और राम नाम तुलसीदास के जीवन का आधार है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—जाग = यज्ञ । निषेध = नाहीं । त्याग = दान । फनि = सर्प । पुरारि = (पुर दैत्य के शत्रु ) शिव ।

[ ६८ ]

राम राम राम जीह जौलों तू न जपि है ।
तौलों तू कहूँ ही जाय तिहूँ ताप तपि है ॥ १ ॥
सुरसरि तीर विनु नीर दुख पाइ है ।
सुरतरुतरे तोहिं दारिद सताइ है ॥ २ ॥
जागत वागत सपने न सुख सोइ है ।
जनम जनम जुग जुग जग रोइ है ॥ ३ ॥
छूटिवे के जतन विसेष बाँधो जायगो ।
ह्वैहै विष भोजन जो सुधा सानि खायगो ॥ ४॥

(१) रामनाम परंब्रह्म सर्वदेवप्रपूजितम् । महेश एव जानाति नान्यो जानाति वै मुने ॥

तुलसी तिलोक तिहूं काल तोसे दीन को ।
रामनामही की गति जैसे जल मीन को ॥ ५ ॥

हे जीव! जब तक तू जीभ से राम राम नहीं जपेगा तब तक ( स्वर्ग आदि में ), तू कहीं जा, तीनों तापों से तपता ही रहेगा ॥१॥ गंगाजी के किनारे ( जाने पर भी ) बिना पानी के दुःख पावेगा ( भाव—जब रोगी होगा तब राम विमुख जान तुझे कोई पानी न देगा ) और कल्पवृक्ष के नीचे भी तुझे दरिद्र सतावेगा ॥२॥ जागते फिरते भी सुख न होगा और सुपने में भी सुख से नहीं सोवेगा और युग युग में जन्म जन्म कर संसार में रोवेगा (अर्थात् बिना राम नाम के तेरा दुःख से पीछा नहीं छुटेगा) ॥३॥ और छूटने के उपाय ( यज्ञ, योग, जप, तप आदि ) करेगा तो ( राम-विमुख होने से ) और भी अधिक बाँधा जायगा ( जैसे शिवजी से विमुख होने पर दक्ष की दशा हुई थी ) और जो अमृत सान कर खायगा तो भी भोजन विष हो जायगा ॥४॥ हे तुलसी! तीनों लोक और तीनों काल में तुझ सरीखे ग़रीब को राम नाम की ही गति ऐसे है कि जैसे मछली को जल की होती है ॥ ५ ॥

[ ६९ ]

सुमिर सनेह सों तु नाम रामराय को ।
संबर निसंबर को सखा असहाय को ॥ १ ॥
भाग है अभागेहू को गुन गुनहीन को ।
गाहक गरीब को दयाल दानि दीन को ॥ २ ॥
कुल अकुलीन को सुन्यो है वेद साखि है ।
पाँगुर को हाथ पाँय आँधरे को आँखि है ॥ ३ ॥
माय बाप भूखे को अधार निराधार को ।
सेतु भवसागर को हेतु सुख सार को ॥ ४ ॥
पतितपावन रामनाम सौ न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सौ ऊसरो ॥ ५ ॥

( हे जीव! ) तू स्नेह से राजा रामचन्द्रजी के नाम को सुमिर। ( जो नाम ) जिसके पास ( मार्ग के लिए ) कलेवा नहीं उसके लिए कलेवा अथवा राह-ख़र्च है। ( देखो,

साधु-सन्त, देश-परदेश फिरते हैं और राम के नाम से ही उन्हें खाने को मिलता है ) और जिसका ( पिता-माता आदि ) सहायक नहीं उसका ( राम नाम ) सखा है ( अर्थात् नाम के प्रताप से अनेक लोग सखा समान उसकी सेवा करते हैं ) ॥ १ ॥ अभागे का भी भाग है ( अर्थात् नाम स्मरण करनेवाले कुछ व्यापार नहीं करते तिस पर भी सम्पत्ति उनके पीछे लगी फिरती है ) और जो ( विद्या आदि ) गुण से रहित हैं उनका (राम नाम) गुण है ( अर्थात् उनमें आपही गुण आ जाते हैं ), वह ग़रीब का गाहक है ( अर्थात् जिसके पास यज्ञादि के लिए दाम नहीं वह भी इसे जप कर यज्ञादि का फल पा लेता है ), और दीन के लिए दयावान् दानी है ( अर्थात् नाम लेते ही दीन के दुःख का नाश और उसे सुख होता है ) ॥ २ ॥ जो अकुलीन हैं ( अर्थात् जिनका कुल अच्छा नहीं है ) उनका कुल है ( अर्थात् नाम के प्रभाव से वे बड़े कुलवन्त हो जाते हैं जैसे वाल्मीकिजी ब्रह्मर्षि हो गये ) यह सुना है और वेद भी साखी है। और जो लूले हैं उनका ( राम नाम ) हाथ पाँय है ( अर्थात् यज्ञ आदि कर स्वर्ग तो जा नहीं सकते वे राम नाम के सहारे से ही स्वर्ग पाते हैं ) और अंधे को आँख के समान है ( अर्थात् आँख की जोत ठीक हो तो थोड़ी दूर की वस्तु देखे और नाम के प्रभाव से परमेश्वर का रूप तक सूझ जाता है ) ॥ ३ ॥ भूखे का माँ-बाप है ( अर्थात् भूखा राम के नाम से माँग कर पेट भर लेता है ) और जो निराधार है (अर्थात् जिसका कोई सहारा नहीं ) उसका आधार है। (अर्थात् स्मरण मात्र से संकट दूर हो जाता है जैसे गजेन्द्र को किसका सहारा था ? वह नाम लेने से ही तर गया) वह (राम नाम) संसाररूपी सागर का पुल है ( अर्थात् जिसके पास संसाररूपी भवसागर से पार होने के लिए पुल की उतराई का यज्ञादिरूपी पैसा नहीं वह भी राम नाम लेकर पार हो जाता है ) और सुख का सार (जो मुक्ति) उसका कारण है ( अर्थात् बिना राम नाम के मुक्ति ही नहीं होती ) ॥ ४ ॥ राम नाम के सिवा पतित को पवित्र करनेवाला दूसरा नहीं है क्योंकि तुलसी सरीखा ऊसरा (कि जिसमें धर्म, कर्म-रूप का तिनका भी नहीं उगता था सो राम नाम का) सुमिरन करके सुन्दर भूमि हो गया (अर्थात् अब तो उसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि सबकी बड़ी बड़ी खेतियाँ लहलहाने लगीं) ॥५॥

शब्दार्थ—संवर = कलेवा। निसंवर = जिसके पास संवर न हो। ऊसर = धरती जिसमें कुछ पैदा न हो।

[ ७० ]

**भलो भलीभाँति है जो मेरे कहे लागि है।**
**मन रामनाम सों सुभाय अनुरागि है ॥ १ ॥**

राम नाम को प्रभाउ जानि जूड़ी आगि है ।
सहित सहाइ कलिकाल भीरु भागि है ॥ २ ॥
राम नाम सों विराग जोग जप जागि है ।
वाम विधि भालहू न कर्म दाग दागि है ॥ ३ ॥
राम नाम मोदक सनेह सुधा पागि है ।
पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागि है ॥ ४ ॥
रामनाम कामतरु जोई जोइ माँगि है ।
तुलसीदास स्वारथ परमारथौ न खाँगि है ॥ ५ ॥

हे मन ! अच्छी तरह भला होगा जो तू मेरे कहे पर चलेगा और राम नाम से स्वभाव से प्रेम करेगा ॥ १ ॥ राम नाम का प्रभाव जाड़े के बुख़ार को अग्नि है ऐसा जान ( अर्थात् जैसे अग्नि के सामने जाड़े का बुख़ार नहीं ठहर सकता ऐसे ही राम नाम के प्रभाव से ) कलिकाल अपने सहायक ( काम-क्रोध, लोभ, मोह आदि की फौज ) समेत डरकर भाग जायगा ॥ २ ॥ राम नाम से वैराग्य, योग और जप आप ही ( चित्त में ) जागेंगे ( और जब उनके प्रकाश से पापों का नाश हो जायगा ) फिर वाम विधाता भी माथे को कर्मरूपी दाग से नहीं दाग सकेगा । ( भाव—पापकर्मानुसार माथे में बुरा फल नहीं लिखेगा) ॥३॥ राम नामरूपी लड्डू को जो प्रेमरूपी अमृत में पागेगा तो उसे पाकर तू अघा जायगा और घर घर नहीं चिल्लाता फिरेगा ( अर्थात् प्रेम से राम नाम जप, उससे तुझे संतोष हो जायगा फिर अन्य देवता के शरण नहीं जाना पड़ेगा ) ॥ ४ ॥ राम नाम कल्पवृक्ष है इससे जो तू माँगेगा तो हे तुलसीदास, तुझे स्वारथ और परमारथ की कमी नहीं रहेगी ( अर्थात् तुझे दोनों मिलेंगे ) ॥ ५ ॥

[ ७१ ]

ऐसेहू साहब की सेवा सों होत चोर रे ।
आपनी न बूझि न कहै को राँडुरोर रे ॥ १ ॥
मुनि मन अगम सुगम माइ बाप सो ।
कृपासिंधु सहजसखा सनेही आपसो ॥ २ ॥

लोक वेद विदित बड़ो न रघुनाथ सो।
सब दिन सब देस सबहि के साथ सो॥ ३॥
स्वामी सर्वज्ञ सों चलै न चोरी चार की।
प्रीति पहिचानि यह रीति दरबार की॥ ४॥
काय न कलेस लेस लेत मान मन की।
सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की॥ ५॥
रीझे वस होत खीझे देत निज धाम रे।
फलत सकल फल कामतरु नाम रे॥ ६॥
बेंचे खोटो दाम न मिलै न राखे काम रे।
सोऊ तुलसी निवाजौ ऐसो राजा राम रे॥ ७॥

ऐसे भी स्वामी की सेवा से तू चोर होता है (अर्थात् छिपता फिरता है)। तुझे न तो अपनी समझ है और न दूसरे के कहे का (ख़याल) है सो तू किसी काम का नहीं है, पत्थर का टोल है॥ १॥ जो (राम) मुनियों के मन को भी कठिन (अर्थात् जहाँ मुनियों के मन भी न जा सकें) सो अपने मा-बाप को सहज में प्राप्त हुए, वे कृपासिंधु स्वभाव से ही सखा और अपने आप स्नेह करने वाले हैं॥ २॥ लोक और वेद में विदित है कि रघुनाथजी से बड़ा कोई नहीं है और वे सब दिन, सब देश में, सबके ही साथ रहते हैं॥ ३॥ स्वामी तो सर्वज्ञ (अर्थात् अन्तःकरण की जाननेवाले) हैं उनसे सेवक की चोरी नहीं चलेगी (जो कहो कि क्या सेवा करूँ तहाँ कहते हैं कि) प्रीति को पहिचान (अर्थात् भगवान् में प्रेम कर)। इस दरबार की यही रीति है॥ ४॥ (किसी की सेवा करने में तो बड़ा क्लेश होता है परन्तु रामजी की सेवा में) शरीर को लेशमात्र भी क्लेश नहीं होता और वे मन की (प्रीति) मान लेते हैं (भाव—कपट छोड़कर प्रीति कर इतनी ही सेवा है। जो कहो कि सेवा करने से मिलेगा क्या! तहाँ कहते हैं कि) स्मरण करते ही वे सकुच के साथ भक्तजन की रुचि समझ लेते हैं (भाव—जो भक्त की इच्छा हो सो देते हैं और वे देकर सकुचाते हैं कि हमने इसे कुछ नहीं दिया)॥ ५॥ जिस पर रीझते हैं उसके तो वश हो जाते हैं और जिस पर कोप करते हैं उसे अपना धाम देते हैं (जैसे हनुमान पर रीझे तो उन्हें अपना दास बनाकर उनके वश हुए और रावण पर कोपे तो मारकर उसे अपना धाम दिया)।

उनका नाम कल्पवृक्ष है जिसमें सब तरह के फल फलते हैं ( भाव—स्वर्ग में जो कल्पवृक्ष है वह तीन ही फल देता है; मोक्ष नहीं देता। और यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों देता है )॥ ६॥ ( अब उनकी कृपालुता का प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं कि ) खोटे मनुष्य को बेचो तो दाम न मिलें ( क्योंकि निठल्ले को लेकर कोई क्या करे ) और रक्खो तो कुछ काम न करे ( और खाने को माँगे-ऐसे ) उस तुलसी को भी उन्होंने निहाल कर दिया। ऐसे राजा रामचन्द्रजी हैं॥ ७॥

शब्दार्थ—चार = नौकर। राँड़ = बेकाम का। रोर = ( रोड़ा ) पत्थर का टुकड़ा।

[ ७२ ]

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई।
हौंतो साँइ द्रोही पै सेवकहित साँई॥ १॥
राम सों बड़ो है कौन मोसों कौन छोटो।
राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोटो॥ २॥
लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावों।
एतो बड़ो अपराध भौ न मन वावों॥ ३॥
पाथ माथे चढ़े तृन तुलसी ज्यौं नीचो।
बोरत न वारि ताहि जानि आपु सींचो॥ ४॥

रघुनाथजी ने अपनी भलाई से मेरा भला कर दिया। मैं तो स्वामी से द्रोह करने वाला हूँ परन्तु स्वामी सेवक के हितकारी ही हैं॥ १॥ रामजी सरीखा तो बड़ा कौन है और मेरे समान छोटा कौन है और रामजी सरीखा अच्छा कौन है और मेरे समान खोटा कौन है॥ २॥ तो भी संसार मुझे राम का गुलाम कहता है और मैं भी ( राम नामी वेष बना कर ) कहलवाता हूँ ( भाव—नीच होकर अच्छा बनता हूँ यह रामजी का बड़ा अपराध कर रहा हूँ ) पर इतना बड़ा अपराध होने से भी ( रामजी का ) मन टेढ़ा नहीं हुआ॥३॥ हे तुलसी! जैसे तृण बड़ा नीच होने पर भी जल के माथे पर चढ़ता है ( अर्थात् उसके ऊपर तैरा करता है ) परन्तु जल उसे अपना ही सींचा हुआ जानकर नहीं डुबोता है ( अर्थात् मैंने तो इसे सींचकर बड़ा ही किया, मैं इसे क्या डुबोऊँ—ऐसे ही रामजी समझते हैं )॥ ४॥

शब्दार्थ—भौ = हुआ। वावों ( बायाँ ) = टेढ़ा। पाथ = जल।

[ ७३ ]

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी।
देह गेह नेह जानि जैसे घनदामिनी ॥ १ ॥
सोवत सपनेहू सहै संसृति संताप रे।
बूडौ मृग-वारि खायो जेवरी को साँप रे ॥ २ ॥
कहै वेद बुध तू तो बूझि मन माँहिरे।
दोष दुख सपने के जागेही पै जाहिं रे ॥ ३ ॥
तुलसी जागे ते जाइ ताप तिहुँ तायरे।
रामनाम सुचि रुचि सहज स्वभाइ रे ॥ ४ ॥

अरे जीव! तू बड़ा मूर्ख है (अपनी हानि लाभ नहीं देखता। मोह-निद्रा में बहुत सोया अब तो) जाग जाग और संसार जो रात्रि के समान है उसे (ज्ञानदृष्टि से) देख। (जैसे अँधेरी रात में चोर, उचक्के माल लूट ले जाते हैं ऐसे ही इस संसाररूपी रात्रि में तेरे पीछे काम, क्रोध आदि चोर गठकटे लगे हुए हैं सो तेरा अमूल्य राम नाम रूपी रत्न छिनावेंगे; होशियार हो जा, और जागता हुआ राम राम रटता रह जिससे ये तेरे पास न फटकें और इस संसाररूपी रात्रि में) शरीर और घर के स्नेह को ऐसा जान जैसे मेघ में बिजली (छिन छिन में चमकती है, छिन छिन में बन्द होती है, इसी भाँति ये कभी मिलते हैं कभी नाश हो जाते हैं, इनका झूठा स्नेह है, आँख मिचने पर फिर कुछ भी नहीं है) ॥१॥ अरे! जब तू सोता है तो सपने में संसार के (जन्म, मरण, दुःख आदि) बड़े बड़े ताप सहता है (परन्तु जैसे जब तक सोता है तबही तक वे सच्चे हैं जागने पर सब झूठे हैं। ऐसे ही इस संसार के सब कार्य जब तक मनुष्य मोहनिद्रा में सो रहा है तब तक सच्चे दीखते हैं परन्तु जब मोहनिद्रा जाती रही और ज्ञान के नेत्र खुले सो ही यह संसार झूठा प्रतीत होने लगता है। सुपने में) कभी तू मृग-तृष्णा के पानी में गोते खाता है और कभी तुझे जेवरी का सर्प खा लेता है (भला यह कब सत्य हो सकता है? इसी भाँति संसार को सत्य मानना कोरा भ्रम है वहाँ रज्ज में न पानी है और न जेवरी सर्प है) ॥२॥ वेद और पण्डित कहते हैं कि अरे तू अपने मन में समझ तो सही कि सपने के दोष और दुख जागने पर ही जाते हैं ॥३॥ हे तुलसी! जागने से तीनों तापों की जलन जाती रहती है और सहज-सुभाव से राम-नाम में पवित्र रुचि होती है ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—जामिनी = रात । दामिनी = बिजली । संसृत = संसार । तिहुँ = तीन । ताय = ताप ( भूमि, दैव और शरीर से उत्पन्न हुए ) । ताप = जलन ।

## राग विभास ।

[ ७४ ]

जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव जागि त्यागि मूढ़ताऽनुराग श्रीहरे ।

करि विचार तजि विकार भजु उदार रामचन्द्र भद्रसिंधु दीनबंधु वेद वदत रे ॥ १ ॥

मोहमाय कुहु निसा विसाल काल विपुल व्याल, सोयो खोयो सो अनूप रूप स्वप्न जो परे ।

अब प्रभात प्रगट ज्ञान भानु के प्रकास वासना सराग मोह द्वेष निबिड़ तम टरे ॥ २ ॥

भागे मद मान चोर, भोर जानि जातुधान काम कोह लोभ छोभ निकर अप डरे ।

देखत रघुवर-प्रताप बीते संताप पाप, ताप त्रिविध प्रेम आप दूर ही करे ॥ ३ ॥

स्रवन सुनि गिरा गँभीर जागे अति धीर वीर, वर विराग तोष सकल संत आदरे ।

तुलसिदास प्रभुकृपाल निरखि जीवजन विहाल भंज्यो भवजाल परम मंगलाचरे ॥ ४ ॥

रामचन्द्रजी की कृपा ज्ञानी पुरुष को जगाती है ( इसलिए ) मूढ़ता ( अर्थात् अज्ञान रूपी निद्रा) को त्याग कर जाग और श्री भगवान् में प्रेम कर और विचार कर, तथा विकार (अर्थात् अनेक प्रकार की वासनाओं) को छोड़कर उदार रामजी का भजन कर। वे कल्याण के समुद्र और दीनों के बन्धु हैं—ऐसा वेद कहते हैं ॥१॥ अविद्या सोही अमावस की रात्रि

है ( और रात्रि ४ पहर की होती है पर यह अज्ञानरूपी रात्रि बड़ी भारी है इसमें जो ) बहुत सा काल है सो ही बड़ा सर्प है जो कोई स्वप्न में पड़ कर सोया उसने अनूपरूप ( अर्थात् आत्मस्वरूप ) को खो दिया । अब ( जब ) सवेरा प्रकट हुआ और ज्ञान के सूर्य का चाँदना हुआ तो वासना, राग, मोह और द्वेषरूपी घना अँधेरा जाता रहा ॥ ३ ॥ फिर तो सवेरा जान कर मद और मानरूपी चोर भागे और काम, क्रोध, लोभ क्षोभरूपी राक्षसों के समूह दूर जा पड़े और रामजी के प्रताप को देखते ही सन्ताप और (संचित) पाप नाश हो गये और जो तीन प्रकार के ताप रह गये उन्हें (रामजी के) प्रेमरूपी जल ने दूर ही कर दिया अर्थात् बुझा दिया ॥ ४ ॥ इस प्रभाव युक्त वाणी को कानों से सुन कर ( संसार के जीतने में ) जो बड़े धीर वीर सन्त थे सो जागे और उन्होंने सुन्दर वैराग्य, सन्तोष, आदि सब का आदर किया । हे तुलसीदास ! कृपालु रामजी ने जीवजन अर्थात् प्राणी मात्र का बेहाल देख कर संसाररूपी जाल को तोड़ डाला और बड़ा आनन्द किया ॥५॥

सन्धि-विभाग—मूढ़ता + अनुराग । मंगल + आचरे ।

शब्दार्थ—उदार = दाता । कुहु = अमावस की रात्रि । व्याल = सर्प । वासना = संसार के सुख की इच्छा । सराग = रागसहित (राग कहते हैं संसारी वस्तुओं में प्रीति करना) । निविड़ = घना । यातुधान = राक्षस । छोभ = घबराहट । तापत्रिविध = गूढार्थ कोश में देखो । निकर = समूह । आप = जल ।

## राग ललित ।

### [ ७५ ]

खोटो खरो रावरो हौं रावरे सों झूठ क्यों कहोंगो जानौ सब हीके मन की ।
करम वचन हिये कहौं न कपट किये ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की ॥ १ ॥
दूसरो भरोसो नाहिं वासना उपासना की वासव विरंचि सुर नर मुनिगन की ।
स्वारथ के साथी मेरे हाथी स्वानलेवा देई काहू तो न पीर रघुवीर दीन जन की ॥ २ ॥
साँप सभा साबर लबार भये देव दिव्य दुसह साँसति कीजै आगेही या तन की ।

**साँचे परौं पाऊं पान पंचन में पन प्रमान तुलसी चातक आस राम स्याम घन की ॥ ३ ॥**

मैं बुरा भला जैसा हूँ तुम्हारा ( गुलाम ) हूँ और तुमसे मैं झूँठ क्यों कहूँगा क्योंकि तुम सब ही के मन की जानते हो । मैं कपट से नहीं कहता हूँ । मैं अपने हृदय में ( कर्म और वचन से तुम्हारे गुलाम होने की ) ऐसी हठ किये हूँ कि जैसी पानी में पड़ी सन की गाँठ होती है ( अर्थात् जैसे वह नहीं खुल सकती ऐसी ही मेरी गुलामी नहीं छूट सकती ) ॥ १ ॥ न तो मुझे दूसरे का भरोसा है न मुझे इन्द्र, ब्रह्मा, देवता, मनुष्य और मुनियों के समूह की उपासना की इच्छा है क्योंकि वे (देवता आदि) स्वारथ के साथी हैं ( अर्थात् जब तक पूजूँगा तब तक सुख देंगे, न पूजूँगा कष्ट देंगे सो मेरी उनकी नहीं पटेगी) और उनकी मेरी लेवा देई हाथी और कुत्ते के समान है (अर्थात् जब जन्म भर उनकी हाथी के समान बड़ी सेवा करूँगा तब कुत्ते के समान स्त्री पुत्र आदि का सुख देंगे ) सो हे राम ! जैसी दीन जन की पीर तुमको है ऐसी किसी को भी नहीं है ॥ २ ॥ और जो मैं साँप की सभा में सावर ( १ ) लवार ( अर्थात् सावरी मन्त्र के न जानने वाले ) की भाँति झूँठा होऊँ तो ( जैसे उसे साँप काट खाय और वह मर जाय सो ) हे देव ! तुम तो दिव्य दृष्टि हो ( मेरे मन की जान कर ) अपने आगे ही इस शरीर को ऐसा दंड दो जो सहा न जाय और जो मैं सच्चा ठहरूँ ( अर्थात् मेरे हृदय में तुम्हारी गुलामी पक्की हो ) तो उस प्रण की पकावट का एक बीड़ा पाँच पंचों में पाऊँ ( जिससे मेरा भी भक्तों में नाम हो क्योंकि ) मुझ तुलसीरूपी चातक को रामरूपी श्याम मेघ की ही आशा है ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—वासव = इन्द्र । विरंचि = ब्रह्मा । सावर = सावरी मन्त्र । लवार = झूँठा । साँसति = दण्ड । प्रमान = पकावट ।

[ ७६ ]

**राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यौ राम काम एहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं ।**

---

( १ ) भाव यह है जो साँप पकड़ने का सावरी मन्त्र जानता होगा सो तो उसे पकड़ लेगा और जो सभा में जाकर झूँठ कहेगा कि मैं सावर जानता हूँ और साँप को पकड़ने लगेगा तो साँप उसे काट दंड देगा ऐसे ही जो तुम्हारे सामने मैं झूँठा सेवक बनता होऊँ तो मुझे दंड दो ।

रोटी लूँगा नीके राखै आगेहू की वेद भाषै भलो ह्वै है तेरो ताते आनँद लहत हौं ॥ १ ॥
बाँध्यो हौं करम जड़ गरब गूढ़ निगड़ सुनत दुसह हौं तो सासति सहत हौं।
आरत अनाथ नाथ कौसल कृपाल पाल लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं ॥ २ ॥
बूझ्यौ ज्योहीं कह्यौ मैं हूँ चेरो ह्वै हौं रावरो जू मेरो कोऊ कहूँ नाहिं चरन गहत हौं।
मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि सेवक सुखद सदा विरद बहत हौं ॥ ३ ॥
लोक कहैं पोचु सो न सोच न सँकोच मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज काज रामही के रीझे खीझे प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥ ४ ॥

मैं राम का गुलाम हूँ और (गुरु ने) मेरा राम-बोला नाम रक्खा है और मैं रामजी का यही काम करता हूँ कि कभी कभी नाम के दो अक्षर कह लेता हूँ। अच्छी तरह रक्खेंगे तो रोटी लूँगा (और कुछ नहीं चाहता) यह तो इस लोक की बात हुई और आगे की वेद कहते ही हैं कि (राम-नाम लेने से) तेरा भला होगा (सो पूरी आशा है कि परलोक में भी मुझे सुख मिलेगा) इससे आनन्द पाता हूँ अर्थात् सदा प्रसन्न रहता हूँ ॥१॥ (अब राम के गुलाम होने से पहले की दशा कहते हैं कि) जड़ कर्म ने मुझे अहंकाररूपी पक्की बेड़ी से बाँध लिया यह सुनते ही मैं तो ऐसी पीड़ा सहने लगा कि जो सही न जाय। (फिर मैंने पुकारा कि) हे दुखी अनाथों के नाथ! हे कृपाल कोशलपाल (रामजी)! मेरी रक्षा करो (यह वाणी सुन कर वे आये) और जब उन्होंने मुझ ग़रीब को देखा कि मैं पापों से जला जाता हूँ तो मुझे (पापों से) छुड़ा लिया ॥ २ ॥ और ज्योंही पूछा (कि तू कौन है तो) मैंने कहा कि हे स्वामी! मैं तुम्हारा चेला हूँगा, मेरा कोई कहीं नहीं है, मुझे तुम्हारे चरणों का ही सहारा है। तो गुरु (रामजी) ने मेरी

पीठ ठोकी और बुला कर बाँह पकड़ अपनाया। तबसे सेवक को सुख देनेवाला यह (माला-कंठी तिलक आदि) वैष्णव का बाना सदा धारण किये रहता हूँ ॥ ३ ॥ लोग (भले ही) कहें कि यह नीच है (गुलामी करता है) सो इसका मुझे सोच और शरम नहीं है क्योंकि मुझे अब अपना व्याह सगाई थोड़ेई करना है और न मैं जाति, पाँति को चाँहता हूँ (अर्थात् मुझे जातवालों के साथ भी नहीं खाना है) तुलसी का काज अकाज तो रामजी के रीझने खीजने में है (अर्थात् रीझेंगे सुख देंगे, गुस्सा होंगे दुःख पाऊँगा पर मुझे उनके चरणों में अपनी) प्रीति की प्रतीति है (कि वे मुझे अवश्य तारेंगे इसलिए) मन में प्रसन्न रहता हूँ ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—निगड़ = बेड़ी। साँसति = पीड़ा। दुरित = पाप। जू = स्वामी। बरेखी = सगाई, व्याह की बात-चीत।

[ ७७ ]

जानकीजीवन जगजीवन जगतहित जगदीस रघुनाथ राजीव-लोचन राम।

सरदविधुवदन सुखसील श्रीसदन सहज सुंदरतनु सोभा अगनित काम ॥ १ ॥

जग-सुपिता सुमातु सुगुरु सुहित सुमीत सबको दाहिनो दीनबंधु काहू को न बाम।

आरतिहरन सरनद अतुलितदानि प्रनतपाल कृपाल पतितपावन नाम ॥ २ ॥

सकलविस्ववंदित सकल सुरसेवित आगम निगम कहैं रावरेई गुनग्राम।

एही जानि कै तौ तुलसी तिहारो जन भयो न्यारो कै गनिवो जहाँ गने गरीब गुलाम ॥ ३ ॥

हे राम! तुम जानकीजी के जीवन, जगत् को जिलानेवाले,, संसार के हितकारी, जगत् के स्वामी, रघुकुल के नाथ, कमल समान नेत्रवाले हो और तुम्हारा मुँह शरद-

काल के चन्द्रमा के समान है, तुम्हारा सुख देने का स्वभाव है, तुम लक्ष्मी के स्थान हो और स्वभाव से ही तुम्हारे सुन्दर शरीर की शोभा अनगिनती कामदेवों के समान है ॥ १ ॥ तुम जगत् के सुन्दर पिता, माता, गुरु, हितू, मित्र, और सबको दाहने अर्थात् सुख दाई, ग़रीबों के बन्धु और किसी को टेढ़े नहीं हो । तुम विपत्ति के हरनेवाले, शरण के दाता, अतोल दान देनेवाले, भक्तों के रक्षक और कृपालु हो और तुम्हारा नाम पतित-पावन है ॥ २ ॥ सब संसार तुमको प्रणाम करता है, तुम सब देवताओं से सेवा किये गये हो और वेद, शास्त्र सब तुम्हारा ही गुण-समूह गाते हैं । यही जान कर तुलसी तुम्हारा भक्त हुआ है इसे अलग ( बड़े बड़े हनुमान आदि सेवकों में ) गिनोगे या जहाँ ( केवट आदि ) ग़रीब ग़ुलाम गिन रक्खे हैं ( उनमें रक्खोगे ) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—आगम = शास्त्र । निगम = वेद । ग्राम = समूह ।

## राग टोडी ।

[ ७८ ]

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।
जासों दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ ॥ १ ॥
सुर नर मुनि असुर नाग साहेब तौ घनेरे ।
तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥ २ ॥
त्रिभुवन तिहुँकाल विदित वदत वेद चारी ।
आदि अंत मध्य राम साहबी तिहारी ॥ ३ ॥
तोहिं माँगि माँगनो न माँगिनो कहायो ।
सुनि सुभाउसील सुजस जाचन जन आयो ॥ ४ ॥
पाहन पसु विटप विहग अपने करलीन्हें ।
महाराज दसरथ के रंक राय कीन्हें ॥ ५ ॥
तू गरीब को निवाज हौं गरीब तेरो ।
वारक कहिये कृपालु तुलसिदास मेरो ॥ ६ ॥

हे देव ! ग़रीबों पर कृपा करनेवाला और दानी ( तुझ सरीखा ) दूसरा कोई नहीं है ( क्योंकि ) जिससे अपनी ग़रीबी कहता हूँ उसे भी मैं ग़रीब देखता हूँ ( अर्थात् तेरे

समान किसी का ऐश्वर्य नहीं ) ॥ १ ॥ मुनि, देवता, मनुष्य, नाग और दैत्य स्वामी तो बहुत से हैं, पर तभी तक हैं कि जब तक तेरे थोड़े से भी नेत्र नहीं फिरते ( अर्थात् ज्योंहीं तूने निगाह टेढ़ी की त्योंहीं सबका स्वामीपना निकल जायगा ) ॥ २ ॥ तीनों भुवनों और तीनों कालों में यह ( बात ) प्रगट है और चारों वेद भी कहते हैं कि आदि, अन्त और मध्य में ( अर्थात् सदा तो ) हे राम ! तेरी ही साहबी है ॥ ३ ॥ तुझसे भीख माँग कर ( कोई ) मंगता फिर मंगता नहीं कहाया ( अर्थात् एक ही बार में तूने उसे निहाल कर दिया ) यही शील सुभाव और सुन्दर यश सुन कर यह जन भी भीख माँगने आया है ॥ ४ ॥ ( जो कहो किन किन याचकों को हमने निहाल किया तहाँ कहते हैं कि ) तूने पत्थर ( अहिल्या ), पशु ( रीछ बन्दर ), वृक्ष ( यमलार्जुन ) और पक्षी ( जटायु ) इनको अपना कर लिया। और हे महाराज दशरथ के पुत्र ! तूने उन्हें कंगाल से राजा कर दिया। ( अर्थात् जो महानीच थे उन्हें भी मुक्त कर दिया ) ॥ ५ ॥ तू ग़रीब को निहाल करनेवाला है और मैं तेरा ग़रीब हूँ। हे कृपालु ! ( कुछ संपत्ति आदि नहीं चाहता हूँ केवल यह चाहता हूँ कि तू ) एक बार ( अपने मुख से ) यह कह दे कि तुलसीदास मेरा है ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—माँगनों = मँगता, भिखारी। पाहन = पत्थर। विटप = वृक्ष। विहंग = पक्षी। रंक = कंगाल। हौं = मैं।

[ ७९ ]

तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तु पापपुंजहारी ॥ १ ॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं आरतहर तोसो ॥ २ ॥
ब्रह्म तू हौं जीव हौं तू ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हित मेरो ॥ ३ ॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानियै जो भावे।
ज्यौं त्यौं तुलसी कृपाल चरन सरन पावे ॥ ४ ॥

हे देव ! तू दयाल है मैं ग़रीब हूँ, तू दानी है मैं भिखारी हूँ। मैं नामी पापी हूँ तू पापों के पुञ्ज का नाशक है ॥ १ ॥ तू अनाथों का नाथ है और मुझ सरीखा अनाथ कौन

है। मेरे समान तो कोई दुखी नहीं और तेरा सा कोई दुखभंजन नहीं ॥ २ ॥ तू ब्रह्म है मैं जीव हूँ, तू ठाकुर है मैं तेरा चेला हूँ, और सब तरह से तू मेरा पिता, माता, गुरु, सखा और हितू है ॥ ३ ॥ तुझसे मेरे अनेक नाते हैं, जो ( मन में ) भावे उसे मान ले। हे कृपाल ! ( प्रयोजन तो इतना ही है कि यह ) तुलसी जैसे बने वैसे तेरे चरणों की शरण को पावे ॥ ४ ॥

[ ८० ]

और काहि माँगिये को माँगिबो निवारै।
अभिमतदातार कौन दुखदरिद्र दारै ॥ १ ॥
धर्मधाम राम कामकोटिरूप रूरो।
साहब सबविधि सुजान दान खडग सूरो ॥ २ ॥
सुसमें दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजै।
कुसमें दसरथ के दानि तैं गरीब निवाजै ॥ ३ ॥
सेवा विनु गुन विहीन दीनता सुनाये।
जेजे तैं निहाल किये फूले फिरत पाये ॥ ४ ॥
तुलसिदास जाचक रुचि जानि दानि दीजै।
रामचंद्र चंद्र तू चकोर मोहिं कीजै ॥ ५ ॥

( जो कहो कि और किसी से क्यों नहीं माँगता तहाँ कहते हैं कि ) हे राम ! और किससे माँगूँ और कौन मेरी याचना को दूर कर सकता है। ऐसा कौन सा मनोरथ का दाता है कि जो मेरे दुःख और दरिद्र को दूर करे ॥ १ ॥ हे राम ! तू धर्म का मन्दिर और करोड़ों कामदेवों के रूप से सुन्दर है, सब प्रकार से स्वामी है, सुजान ( अर्थात् हृदय के जाननेवाला) और दानरूपी तलवार ( चलाने ) में शूर है, अर्थात् बड़ा दानी है ॥ २ ॥ ( जो कहो कि दानी तो और भी बहुत हैं तहाँ कहते हैं कि और तो ऐसे हैं कि जब किसी का ) सुन्दर ( अर्थात् बढ़ती का ) समय होता है तब सबके द्वार पर दो दिन नगाड़े बजते हैं पर हे दशरथ के (नन्दन !) तू ऐसा दानी है कि (कुसमय में भी) तूने ग़रीबों को निहाल कर दिया है ( अर्थात् राज्य गया, वनवास हुआ ऐसे बुरे बुरे समय में भी तूने केवट, गिद्ध, शवरी, सुग्रीव, विभीषण आदि को निहाल कर दिया ) ॥ ३ ॥ सेवा के

बिना ही जिस जिस महागुणहीन ने तुझे अपनी ग़रीबी सुनाई उसी उसी को तूने निहाल कर दिया और (वे अपनी मनोकामना) पाकर फूले फिरते हैं॥ ४॥ तुलसीदास भिखारी की भी (भीतरी) रुचि जान कर उसे दे क्योंकि तू दानी है, और हे रामचन्द्र! (मैं कुछ धन संपत्ति नहीं चाहता हूँ; केवल यह माँगता हूँ कि) तू चन्द्रमा है मुझे चकोर बना ले। (भाव यह है कि जैसे चकोर इकटक चन्द्रमा को देखा करता है वैसे ही मैं तेरे दर्शन करता रहूँ)॥ ५॥

शब्दार्थ—अभिमत = मनोरथ। रूरौ = सुन्दर। तै = तू।

[ ८१ ]

दीनबंधु सुखसिंधु कृपाकर कारुनीक रघुराई।
सुनहु नाथ मनु जरत त्रिविधज्वर करत फिरत बौराई॥ १॥
कबहुँ जोगरत भोगनिरत सठ हठ विजोग वस होई।
कबहुँ मोहवस द्रोह करत बहु कबहुँ दया अति सोई॥ २॥
कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर कबहुँ भूप अभिमानी।
कबहुँ मूढ़ पंडित बिडंबरत कबहुँ धरमरत ज्ञानी॥ ३॥
कबहुँ देव जग धनमय रिपुमय कबहुँ नारिमय भासै।
संसृति सन्यपात दारुनदुख विनु हरिकृपा न नासै॥ ४॥
संजम जप तप नेम धरम ब्रत बहु भेषज समुदाई।
तुलसिदास भवरोग राम पद प्रेम हीन नहिं जाई॥ ५॥

हे रामचन्द्र! तुम दीनों के बन्धु, सुख के समुद्र, कृपा करनेवाले हो, और तुम्हारे भीतर बड़ी करुणा है। सो हे नाथ! सुनो। मेरा मन तीन प्रकार के तापों से जलता है (अर्थात् मुझे त्रिदोष हो गया है और जैसे त्रिदोषवाला पागल की तरह बकता है ऐसे ही मेरा मन) पागलपन करता फिरता है॥ १॥ कभी योग में प्रीति करता है, कभी भोग में लगता है, कभी यह मूर्ख हठ से (स्त्री, पुत्र आदि के) वियोग के वश हो जाता है (अर्थात् उनसे जुदा हो जाता है), कभी मोह के वश होता है, कभी बहुत सा द्रोह करने लगता है और कभी बड़ी दया करने लगता है॥२॥ कभी दीन, कभी बुद्धिहीन और कभी अधिक कंगाल होता है, कभी राजाओं का सा घमंड करने लगता है,

कभी मूर्ख और कभी पण्डित बनता है, कभी पाखंड में प्रीति और कभी धर्म में प्रीति करता है, कभी ज्ञानी बनता है ॥ ३ ॥ हे देव! कभी (धन की चाह हुई तो) जगत् को धन से भरा (जब किसी से लड़ाई होती है तो) जगत् शत्रुओं से भरा और कभी (काम की इच्छा हुई तो जगत्) स्त्रियों से भरा भासने लगता है, (कोई एक बात हो तो कहूँ) सो संसाररूपी सन्निपात बड़ा कठिन दुःख है, हे भगवन्! बिना तुम्हारी कृपा के इसका नाश नहीं होता ॥ ४ ॥ संयम, जप, तप, नेम, धर्म, व्रत (इत्यादि) बहुत सी ओषधियों का समूह है पर हे राम! तुलसीदास का संसाररूपी रोग तुम्हारे चरणों के प्रेम बिना नहीं जा सकता ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—विडंब = पाखंड। संसृत = संसार। त्रिदोष = कफ, वात, पित्त तीनों का मिल जाना।

[ ८२ ]

मोहजनित मल लाग विविधविध कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई ॥१॥
नैन मलिन परनारि निरखि मन मलिन विषय सँग लागे।
हृदय मलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे ॥ २ ॥
परनिंदा सुनि स्रवन मलिन भये वचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथचरन बिसराये ॥ ३ ॥
तुलसिदास व्रत दान ज्ञान तप सुद्धिहेतु स्रुति गावै।
रामचरन अनुराग नीर बिनु अति मल नास न पावै ॥ ४ ॥

अज्ञान से उत्पन्न हुआ अनेक प्रकार का जो पाप लगा रहता है (कि जिसने जीव को दुखी कर रक्खा है) वह करोड़ों उपायों से भी नहीं छूटता। (कारण यह कि) जन्म जन्म में चित्त को उससे प्रीति करने का अभ्यास पड़ रहा है, इसलिए (वह पाप) अधिक अधिक लिपटता चला जाता है ॥ १ ॥ (अनेक प्रकार का पाप कौन सा है सो कहते हैं) दूसरे की स्त्री को देख कर नेत्र धुँधले हो गये और विषयों के साथ लगने से मन मलिन हो गया और हृदय (विषय) वासना, मान, मद से मलिन हो गया और जीव अपने सहज सुख (अर्थात् आत्मस्वरूप) के त्यागने से मलिन हो गया ॥ २ ॥ पराई निन्दा सुनते सुनते कान मैले हो गये और पराया दोष बार बार कहने से वचन मैला हो गया। सो सब तरह से अपने स्वामी के चरणों को भूल जाने से यह मल का भार

( मेरे पीछे ) लगा फिरता है ॥३॥ हे तुलसीदास ! शुद्धि हेतु ( अर्थात् उस पाप के धुलने के लिए ) वेद तो व्रत, दान, ज्ञान, और तप ( आदि उपाय ) बता रहा है परन्तु रामचन्द्रजी के चरणों के प्रेमरूपी जल बिना यह भारी पाप नहीं धुल सकता ॥ ४ ॥

## राग जयतश्री ।

[ ८३ ]

कछु ह्वै न आय गयो जनम जाय ।
अति दुर्लभ तन पाइ कपट तजि भजे न राम राम वचन काय ॥१॥
लरिकाईं बीती अचेत चित चंचलता चौगुने चाय ।
जोवन ज्वर जुवती कुपथ्यकरि भयो त्रिदोष भारि मदन बाय ॥२॥
मध्य बयस धनहेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय ।
राम विमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ निसि वासर तपो तिहुँ ताय ॥३॥
सेये नहिं सीतापतिसेवक साधु सुमति भले भगति भाय ।
सुने न पुलकि तनु कहे न मुदित मन किये जे चरित रघुवंसराय ॥४॥
अब सोचत मनि बिनु भुजंग ज्यौं विकल अंग दले जरा धाय ।
सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर कोउ न मीत हित दुसह दाय ॥५॥
जिन्ह लगि निज परलोक बिगास्यौ ते लजात होत ठाढ़े ठाँय ।
तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहि तस्यो गयंद जाके एक नायँ ॥ ६ ॥

कुछ लाभ नहीं है और जन्म वृथा जा रहा है। बड़ी दुर्लभ ( मनुष्य ) देह पाकर तू कपट छोड़ कर तन, वचन से राम राम नहीं भजता है ॥ १ ॥ लड़कपन तो अज्ञान में बीत गया, ( उस समय ) चित्त में चौगुनी चंचलता और ख़ुशी थी ( ख़ूब खेले कूदे )। और जब युवावस्थारूपी ज्वर चढ़ा तब स्त्रीरूपी कुपथ्यकर ( अर्थात् स्त्री के साथ संभोग करने पर ) कामरूपी वायु से भारी त्रिदोष हो गया ॥ २ ॥ बीच की उम्र धन के लिए खेती, व्यापार और अनेक उपायों में गवाँई और रामजी से विमुख होने के कारण सुपने में भी सुख नहीं पाया और रात दिन तीनों तापों (१) से तपता रहा ॥३॥ और

(१) गूढ़ार्थ कोष में देखो।

रामजी के सेवक और सुन्दर बुद्धिवाले साधुओं की भी अच्छी भक्ति भाव से सेवा नहीं की और रामचन्द्रजी ने जो चरित्र किये थे उन्हें भी न तो शरीर में पुलकायमान होकर सुने और न प्रसन्न मन से कहे ॥ ४ ॥ अब ऐसा शोक करता है कि जैसे मणि के बिना सर्प विकल होता है। और वृद्धा अवस्था दौड़ दौड़ कर अंग को पीसे डालती है और (अब तू) सिर धुन धुन कर और हाथ मींज मींज कर पछताता है (पर इस) दुःसह दावानल के (शांत करने के) लिए कोई हितकारी मित्र नहीं (आता) ॥ ५ ॥ और जिनके लिए तू ने अपना परलोक बिगाड़ा था वे सब पास खड़े होने में शरमाते हैं (अर्थात् कोई बात नहीं पूछता)। हे तुलसी! अब भी तू (उन) रघुनाथजी का ही स्मरण कर कि जिनका नाम एक बार लेने से गजेन्द्र तर गया था ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—आय = लाभ। चाय = ख़ुशी। त्रिदोष = ८२ वें भजन में देखो। ताय = ताप। दाय = दावानल, वन की अग्नि। ठाँव = पास। नांय = नाम।

[ ८४ ]

तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ।
भयो है सुगम तोको अमर अगम तन समुझधौं कत खोवत अकाथ ॥
सुखसाधन हरिविमुख वृथा जैसे स्रमफल घृतहित मथै पाथ।
यह विचारि तजि कुपथ कुसंगति चलिसुपंथ मिलि भले साथ ॥ २ ॥
देखु रामसेवक सुनि कीरति रटहिं नाम करि गान गाथ।
हृदय आनु धनुबान पानि प्रभु लसै मुनिपट कटि कसे भाथ ॥ ३ ॥
तुलसिदास परिहरि प्रपंचसब नाउँ रामपदकमल माथ।
जनि डरपहि तोसे अनेक खल अपनाये जानकीनाथ ॥ ४ ॥

(अब यहाँ गुसाईंजी अपने लिए कहते हैं कि जो तू राम-भजन नहीं करेगा) तो तू हाथ मल मल कर मन में पछतावेगा। क्योंकि देवताओं को भी कठिन ऐसी मनुष्य देह तुझे सुगम होगई। (अर्थात् सहज में मिल गई है) उसे अब वृथा क्यों खोता है, समझ तो सही ॥ १ ॥ भगवान् के विमुख होकर सुख का साधन ऐसे वृथा है कि जैसे घी के लिए पानी मथने से श्रम का फल (वृथा) हो। यह विचार कर बुरा मार्ग और कुसंगति को छोड़ और सुन्दर मार्ग में चल और भलों के साथ

मिल ॥ २ ॥ राम के भक्तों के दर्शन कर (उनसे भगवान् का) यश सुन, नाम को रट, कथा का गान कर। और हाथ में धनुष, बाण लिये और मुनियों के वस्त्र कटि में पहिरे और तरकस को कसे ऐसे प्रभु को हृदय में ला (अर्थात् उनका ध्यान कर) ॥ ३ ॥ हे तुलसीदास! सब प्रपंच को छोड़कर रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में माथा नवा, और तू डरे मत, तुझ सरीखे अनगिनती नीचों को रघुनाथजी ने अपना बनाया है ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—धों = सो, अब। अकाथ = वृथा। पाथ = जल। गाथ = कथा।

## राग धनाश्री ।

[ ८५ ]

मन माधो कौ नेकु निहारहि ।
सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों छिन छिन प्रभुहि सँभारहि ॥१॥
सोभासील ज्ञानगुनमंदिर सुंदर परम उदारहि ।
रंजनसंत अखिलअघगंजन भंजन विषयविकारहि ॥ २ ॥
जो विनुजोग जज्ञ व्रत संजम गयो चहै भवपारहि ।
तौ जनि तुलसिदास निसि वासर हरिपदकमल विसारहि ॥ ३ ॥

हे मन! भगवान् को नेक निहार अर्थात् उनके दर्शन कर। हे मूर्ख! सुन जैसे कंगाल अपने धन को सदा छिन छिन में सँभालता है ऐसे ही तू प्रभु को सँभाल ॥ १ ॥ वे शोभा, शील, ज्ञान और गुण के स्थान, सुन्दर और बड़े दानी हैं। संतों को प्रसन्न करनेवाले, सब पापों के नाशक और विषय के विकारों को तोड़ने वाले हैं ॥ २ ॥ जो तू बिना योग, यज्ञ, व्रत और संयम के संसार (रूपी समुद्र) के पार जाया चाहे तो हे तुलसीदास! रात दिन भगवान के चरण-कमलों को मत भूल ॥ ३ ॥

[ ८६ ]

इहै कह्यो सुत वेद नितचहूँ ।
श्रीरघुवीरचरनचिंतनताजि नाहिन ठौर कहूँ ॥ १ ॥
जाके चरन विरंचि सिधि पाई सेइ संकरहूँ ।
सुकसनकादि मुक्त विचरत तेउ भजन करत अजहूँ ॥ २ ॥

जद्यपि परमचपलश्री संतत थिर न रहति कतहूँ।
हरिपदपंकजपाइ अचलभइ कर्म वचन मनहूँ ॥ ३ ॥
करुनासिंधु भक्तचिंतामनि सोभा सेवतहूँ।
और सकल सुर असुर ईस सब खाये उरग छहूँ ॥ ४ ॥
सुरुचिकह्यौ सोइ सत्य तात अति परुष वचन जबहूँ।
तुलसिदास रघुनाथविमुख नहिं मिटै विपति कबहूँ ॥ ५ ॥

(सुनीति (१) नाम ध्रुवजी की माता उन्हें उपदेश करती है)। हे पुत्र! चारों वेदों ने सदा यही बात कही है कि श्रीरघुनाथजी के चरणों का स्मरण छोड़ (दूसरे उपायों से) कहीं जगह नहीं है ॥१॥ जिनके चरणों की सेवा कर ब्रह्मा और शंकर ने भी सिद्धि पाई। और शुक, सनकादि भी (जिनकी सेवा से) जीवन-मुक्ति हुए विचरते हैं और अब तक उनका भजन करते हैं ॥ २ ॥ यद्यपि लक्ष्मी बड़ी चंचल है और सदा कहीं भी स्थिर नहीं रहती परन्तु भगवान् के चरण-कमलों को पाकर मन, कर्म और वचन से अचल होगई है ॥३॥ (भगवान्) करुणा के समुद्र, भक्तों को चिन्तामणिरूप हैं उनकी सेवा से (मनुष्य की) शोभा है (क्योंकि) और सब देवता तथा राक्षसों में जो स्वामी कहाते हैं उन सबको (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य) छः सर्पों ने डस लिया है ॥ ४ ॥ हे प्यारे! (यद्यपि यह) बड़ा कठोर वचन है तब भी सुरुचि ने जो कहा है सोई सत्य है। हे तुलसीदास! रघुनाथजी से विमुख होने पर कभी विपत्ति नहीं मिटती है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—संतत = सदा। उरग = सर्प। परुष = कठोर।

[ ८७ ]

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरिपदविमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझ सबेरो ॥ १ ॥

---

(१) राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं। बड़ी सुनीति और छोटी सुरुचि। सुनीति से ध्रुव हुए और सुरुचि से उत्तम। राजा छोटी रानी के पुत्र से अधिक स्नेह करता था। एक दिन राजा छोटी रानी सहित सिंहासन पर बैठा था और गोद में उत्तम को खिला रहा था इतने में ध्रुव आया और उसने चाहा कि मैं भी राजा की गोद में खेलूँ पर राजा ने न आने दिया। यह देख सुरुचि ने कहा कि जो तू पूर्व जन्म में भगवान् का तप करता तो राज हासन पर बैठता सो तू जाकर तप कर। जब ध्रुव ने आकर यह सब हाल सुनीति से कहा तो उसने भी पुत्र को तप की शिक्षा दी और ध्रुव तप करने चला गया।

बिछुरे ससि रवि मन नैननि तें पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महँ, तहँ रिपुराहु बड़ेरो ॥२॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँपुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिवो ताहू केरो ॥ ३ ॥
मिटै न विपति भजे विनु रघुपति स्रुति संदेह निवेरो ।
तुलसिदास सब आस छाँडि करि होहु रामकर चेरो ॥ ४ ॥

हे मूर्ख मन ! मेरी सीख सुन । हरि के चरणों से विमुख होकर किसी ने सुख नहीं पाया सो हे शठ ! यह समझ ले कि अभी सबेरा ही है ( अर्थात् सिदौस है अब तक कुछ बिगड़ा नहीं है ) ॥१॥ हे मन ! सूर्य, चन्द्रमा ( भगवान् के ) नेत्रों से अलग हुए तब से बहुतेरा दुख पा रहे हैं; रात-दिन आकाश में घूमते घूमते थक जाते हैं और वहाँ राहु उनका बड़ा शत्रु है ॥ २ ॥ और यद्यपि गंगाजी बड़ी पवित्र हैं और तीनों पुर में उनका बहुत सा सुन्दर यश फैल रहा है परन्तु ( भगवान् के ) चरण छोड़ देने से उनका नित्य बहना अब भी नहीं रुकता है ॥ ३ ॥ बिना रघुनाथजी के भजे विपत्ति नहीं छूटती यह संदेह वेद ने निपटा दिया है सो हे तुलसीदास ! सब आशा को छोड़कर रामजी का चेला हो जा ॥ ४ ॥

[ ८८ ]

कबहूँ मन विस्राम न मान्यौं ।
निसि दिन भ्रमत विसारि सहज सुख जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यौं ॥१॥
जदपि विषयसँग सह्यो दुसह दुख विषमजाल अरुझान्यौ ।
तदपि न तजत मूढ़ ममता वस जानतहूँ नहिं जान्यौं ॥ २ ॥
जनम अनेक किये नाना विधि कर्म कीच चित सान्यौं ।
होइ न विमल विवेक नीर विनु वेद पुरान बखान्यौं ॥ ३ ॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरिसों हरषि हृदय नहिं आन्यौं ।
तुलसिदास कब त्रिषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यौं ॥४॥

हे मन! तैने कभी विश्राम नहीं माना (अर्थात् तू कभी निचला होकर न बैठा), अपने सहज सुख (अर्थात् ब्रह्मानन्द सुख) को भूल कर रात-दिन (विषय-वासना में) घूमता है और जहाँ तहाँ इन्द्रियों ने तुझे खैंच रक्खा है, अर्थात् जिधर जो इन्द्रिय जाती है उधर ही तू जाता है ॥ १ ॥ यद्यपि (इन्द्रियों के) विषय-संग से दुःसह दुख सहता है और कठिन जाल में फँस गया है तो भी तू उसे नहीं छोड़ता और हे मूढ़! ममता के वश जान बूझ कर भी अनजान सा हो रहा है ॥ २ ॥ (ममता होने का कारण लिखते हैं) हे चित्त! तू अनेक जन्मों में नाना प्रकार के किये हुए कर्मरूपी कीच में सन गया है सो बिना निर्मल ज्ञानरूपी जल के साफ़ नहीं हो सकता; यह वेद पुराणों ने वर्णन किया है ॥ ३ ॥ जैसा हित अपने स्वामी, पिता और गुरु से होता है वैसा प्रसन्न होकर भगवान् से भी करता पर तू उनको तो अपने हृदय में भी न लाया (अर्थात् उनका स्मरण भी न किया, प्रीति तो दूर रही), हे तुलसीदास! ऐसे तालाब से कब प्यास जा सकती है कि जिसके खोदते खोदते ही जन्म बीत गया ॥ ४ ॥

[ ८९ ]

मेरो मन हरि जू हठ न तजै।
निसिदिन नाथ देउँ सिष बहुविधि करत सुभाउ निजै ॥ १ ॥
ज्यों युवती अनुभवति प्रसवअतिदारुन दुखउपजै।
ह्वै अनुकूल विसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै ॥ २ ॥
लोलुप भ्रमत गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै ॥ ३ ॥
हौं हार्‍यो करि जतन विविधविध अतिसय प्रबल अजै।
तुलसिदास वस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥ ४ ॥

हे भगवान्! मेरा मन हठ नहीं छोड़ता। रात-दिन बहुत भाँति से सीख देता हूँ पर हे नाथ! अपने स्वभाव के ही अनुसार करता है ॥ १ ॥ जैसे स्त्री प्रसव का अनुभव करती है कि उसमें बड़ा कठिन दुःख होता है (और पति से बिगड़ जाती है कि किसी तरह यह दुख मिटे तो अब उसका मुख न देखूँगी) परन्तु वह मूर्खा (पहले) दर्द को भूलकर और प्रसन्न होकर फिर दुष्ट पति को भजती है (अर्थात् उसके साथ

संभोग करती है ) ॥२॥ फिर जैसे कुत्ता लालच का मारा जहाँ जाता है वहीं उसके सिर पर जूता बजता है तो भी नीच फिर उसी रास्ते में घूमता फिरता है और वह मूर्ख कभी नहीं लजाता ॥ ३ ॥ मैं अनेक प्रकार के उपाय कर कर के हार गया पर वह ( मन ) बड़ा बली और अजित है ( अर्थात् किसी से जीता नहीं जाता परन्तु ) वह इस तुलसीदास के वश में तबही हो सकता है कि जब प्रेरणा करनेवाले आप भगवान् ही उसे मना करें ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—अनुकूल = प्रसन्न । गृहपसु = कुत्ता । पदत्रान = जूता । अजै ( अजय ) ।

[ ९० ]

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि रामभक्ति सुरसरिता आस करत ओसकन की ॥ १ ॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यौं तृषित जानि मति घन की ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की ॥ २ ॥
ज्यों गच काँच विलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की ।
टूटत अतिआतुर अहार वस छति विसारि आनन की ॥ ३ ॥
कहँलौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति जन की ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निजपन की ॥४॥

(फिर मन की गति को दिखाते हैं ) इस मन की ऐसी मूर्खता है कि, रामभक्तिरूपी गंगाजी को छोड़कर ओस के कण की आशा करता है ॥ १ ॥ ( वर्षाकाल में ) जैसे चातक धुयें के ग़ुब्बारे को ( आकाश में देखकर ) प्यास के मारे अपनी बुद्धि से उसे मेघ जानता है । ( परन्तु ) न तो वहाँ शीतलता है और न पानी है वरन् और नेत्रों की हानि होती है ( अर्थात् धुएँ की ओर देखने से दृष्टि मन्द पड़ जाती है ) ॥२॥ और जैसे मूर्ख बाज़ शीशे की गच में अपने शरीर की परछाईं देखकर और अपने मुख ( चोंच ) की हानि को भूल कर भोजन के वश बड़ी शीघ्रता से टूटता है ( पर वहाँ भोजन कहाँ है वरन् और चोंच की भी हानि है ऐसे ही भगवान् को छोड़ और की उपासना करने में हानि ही है लाभ कुछ नहीं ) ॥ ३ ॥ हे कृपा के सागर ! इस कुचाल को मैं कहाँ तक कहूँ, तुम तो इस जन कहिए दास की दशा को जानते हो । हे भगवन् ! तुलसीदास का दुसह दुख हरो और अपने पन की लाज रक्खो (क्योंकि तुम पतितपावन कहाते हो) ॥४॥

[ ९१ ]

नाचतही निसि दिवस मस्यौ ।
तबहीं ते न भयो हरि थिर जबते जिव नाम धस्यौ ॥ १ ॥
बहु वासना विविध कंचुकि भूषन लोभादि भस्यौ ।
चर अरु अचर गगन जल थल में कौन न स्वाँगु कस्यौ ॥ २ ॥
देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबस्यौ ।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तौ न हस्यौ ॥ ३ ॥
थके नयन पद पानि सुमति बल संग सकल बिछुस्यौ ।
अब रघुनाथ सरन आयो जन भवभयविकल डस्यौ ॥ ४ ॥
जेहि गुनते बस होहु रीझि करि सो मोहिं सब बिसस्यौ ।
तुलसिदास निज भवन द्वार प्रभु दीजै रहन पस्यौ ॥ ५ ॥

रात-दिन नाचता नाचता ( अर्थात् जन्म लेता ही लेता ) मरा । हे भगवन् ! जब से तुमने "जीव" नाम धरा तब से ही यह स्थिर नहीं हुआ ॥ १ ॥ ( अब नाच को स्पष्ट करके दिखाते हैं ) अनेक प्रकार की बहुत सी वासना तो हुए वस्त्र और लोभ आदि में पड़ना हुए भूषण, इनको पहिर करके और चर अचर का रूप धर कर आकाश और जल थल में ऐसा कौन स्वाँग है जो न किया ॥ २ ॥ देवता, दैत्य, मुनि, नाग, मनुज कोई भी याचना से नहीं बचा ( अर्थात् मैंने सबसे भीख माँगी परन्तु) मेरे दुसहदरिद्र, दोष और दुःख इनको किसी ने दूर नहीं किया ॥ ३ ॥ नेत्र, पैर, हाथ, सुन्दर बुद्धि और बल ये सब थक गये और ( इन्द्रियों का ) संग सब बिछुड़ गया । और हे रघुनाथजी ! अब यह जन संसार के भय की व्याकुलता से डर कर तुम्हारी शरण आया है ॥ ४ ॥ जिस गुण से तुम रीझ कर वश होते हो वह तो मैं सब भूल गया ( अब अपनी ओर देखकर ) हे प्रभो ! इस तुलसीदास को अपने घर के द्वार पर पड़ा रहने दीजिए ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—कंचुक = स्वाँग के वस्त्र । भरयौ = धारण किया । गगन = आकाश । पानि = हाथ ।

[ ९२ ]

माधव जू मोसम मंद न कोऊ ।
जद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहिं नहिं पूजै ओऊ ॥ १ ॥

रुचिर रूप आहार वस्य उन पावक लोह न जान्यो।
देखत विपति विषय न तजत हौं ताते अधिक अयान्यो ॥ २ ॥
महामोहसरिता अपार महँ संतत फिरत बह्यो।
श्रीहरिचरनकमल नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यो ॥ ३ ॥
अस्थिपुरानों छुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकरै।
निज तालूगत रुधिर पान करि मन संतोष धरै ॥ ४ ॥
परमकठिन भवव्यालग्रसित हौं त्रसित भयो अति भारी।
चाहत अभय भेक सरनागत खगपतिनाथ बिसारी ॥ ५ ॥
जलचर वृंद जाल अंतरगत होत सिमिटि इक पासा।
एकहि एक खात लालचवस नहिं देखत निज नासा ॥ ६ ॥
मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत पार नहिं पावै।
तुलसीदास पतितपावन प्रभु यह भरोस जिय आवै ॥ ७ ॥

हे माधोजी! मेरे समान मूर्ख कोई नहीं है। यद्यपि मछली और पतंग मतिहीन हैं परन्तु वे भी मुझे नहीं पूजतीं (अर्थात् मेरी मूर्खता की बराबरी नहीं कर सकतीं) ॥ १ ॥ सुन्दररूप और आहार के वश उन दोनों ने अग्नि और लोहे को जाना नहीं। (अर्थात् पतंग अग्नि का सुन्दर रूप देखकर उसमें गिर कर मरी और मछली चारे के लालच से काँटे में फँसकर मरी) और मैं विषय की विपत्ति को देखकर भी उसे नहीं छोड़ता हूँ इसीसे मैं बड़ा मूर्ख हूँ ॥ २ ॥ महामोहरूपी अपार नदी में बराबर बहता फिरता हूँ और श्रीभगवान् के चरण-कमलरूपी नौका को छोड़कर बार बार झागों को पकड़ता हूँ ॥ ३ ॥ जैसे बड़ा भूखा कुत्ता पुरानी हड्डी को मुख में भर कर पकड़ता है और अपने तालुये में अड़ जाने से जो लोहू निकलता है उसे पीकर मन में संतोष करता है। ४ ॥ (फिर दूसरी मूर्खता दिखाते हैं कि) बड़े कठिन संसाररूपी सर्प के डसने से तो मैं बड़ा भारी डरा हुआ हूँ और गरुड़नाथ भगवान् को भूलकर मेढ़क की शरण में जाकर अभय चाहता हूँ (इससे अधिक मूर्खता क्या होगी क्योंकि मेढ़क को तो साँप स्वयं खा जायगा, वह मेरी रक्षा क्या करेगा; उससे तो भगवान् ही बचा सकते हैं। क्योंकि उनकी आज्ञा से उस सर्प को गरुड़ खा जायगा) ॥ ५ ॥ जैसे जल के जीवों के

समूह जाल के भीतर सिमट कर पास पास हो जाते हैं। और लालच के वश एक को एक खाता है, और अपना नाश नहीं देखते ( कि हम भी थोड़ी देर में मारे जायँगे ऐसा अज्ञान ! ) ॥ ६ ॥ मेरे पापों को सरस्वती अनेक युगों तक विचारती रहे तो भी पार नहीं पा सकती पर तुलसीदास के जी में यह भरोसा है कि हे प्रभो ! तुम पतितों के पवित्र करनेवाले हो, सो मुझे भी अवश्य पवित्र करोगे ) ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—ओऊ = वे भी। पावक = अग्नि। संतत = बराबर। खगपतिनाथ ( गरुड़ के स्वामी ) = भगवान्।

[ ९३ ]

कृपा सो धौं कहां बिसारी राम।
जेहि करुना सुनि स्त्रवन दीन दुख धावत हौ तजि धाम ॥१॥
नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन्ह।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलंब न कीन्ह ॥२॥
दितिसुतत्रास त्रसित निसि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी।
अतुलितबल मृगराजमनुजतनु दनुज हत्यौ स्त्रुति साखी ॥३॥
भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कह्यौ नर नारी।
वसनपूरि अरिदर्प दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी ॥ ४ ॥
एक एकतें रिपुत्रासित जन तुम राखो रघुवीर।
अब मोहिं देत दुसह दुख बहुरिपु कस न हरहु भवभीर ॥५॥
लोभग्राह दनुजेस क्रोध कुरुराजबंधु खल मार।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु रामउदार ॥ ६ ॥

हे राम ! अब तुम उस करुणा को कहाँ भूले कि जिस करुणा को कानों से सुन कर दीन दुखियों के लिए अपना धाम छोड़ कर दौड़ते थे ॥१॥ (जो कहो कि कहाँ दौड़े तो ) गजेन्द्र ने जब अपने बल को विचारा ( कि मैं ग्राह से कैसे जीतूँ गा तो ) हृदय में हार कर तुम्हारे चरणों में चित्त लगाया (अर्थात् तुम्हारा स्मरण किया) सो उसके दुख की वाणी को सुनते ही तुमने गरुड़ को छोड़ कर जाने में देरी नहीं की (अर्थात् पैदल ही भागे) ॥२॥ प्रहलाद

जो कि हरिण्यकशिपु के क्लेश से रात-दिन दुखी रहता था उसका प्रण रक्खा । बड़े भारी बली सिंह ( का सा मुख) और मनुष्य का सा शरीर धारण करके उस दैत्य को मारा, इसका वेद साक्षी है । राजा ( दुर्योधन ) की सभा में जब ( द्रौपदी का चीर खिंचने लगा तब उसने ) राजाओं की ओर देखा और ( जब भीष्म, कर्ण आदि कोई भी न बोला तो) अर्जुन की स्त्री ( द्रौपदी ) पुकारी कि हे कृष्ण ! (मेरी लाज) रक्खो तो हे भगवन् तुमने वस्त्र से ( उसकी देह को ) ढाँक कर, और शत्रुओं का (भारी) घमंड दूर कर बड़ी कृपा की ॥ ४ ॥ हे राम ! (गजेन्द्र आदि) शत्रुओं से दुखी जनों की तो तुमने एक एक शत्रु से ही रक्षा की ( अर्थात् ग्राह से गजेन्द्र की, हिरण्यकशिपु से प्रह्लाद की इत्यादि ) और मुझे तो अब बहुत से शत्रु कठिन दुःख दे रहे हैं सो मेरे संसाररूपी भय को क्यों नहीं हरते हो ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! लोभरूपी ग्राह, क्रोधरूपी हिरण्यकशिपु, कामरूपी दुष्ट दुश्शासन मुझ तुलसीदास को बड़ा कठिन दुःख देते हैं उनका नाश करो ( क्योंकि ) हे राम ! तुम बड़े दाता हो, ( इतना माँगा ) मुझे दो ॥ ६ ॥

शब्दार्थ— दिति-सुत = हिरण्यकशिपु । दनुजारी = दनुज ( दैत्यों ) के वैरी भगवान् । दनुजेस = हिरण्यकसिपु । कुरुराज-बंधु = दुर्योधन का भाई दुश्शासन । मार = काम । नर = अर्जुन ।

[ ९४ ]

काहे ते हरि मोहिं बिसारो ।<br>
जानत निज महिमा मेरे अघ तदपि न नाथ सँभारो ॥ १ ॥<br>
पतितपुनीत दीनहित असरन सरन कहत स्रुतिचारो ।<br>
हौं नहिं अधम सभीत दीन किधौं वेदन मृषा पुकारो ॥ २ ॥<br>
खग गनिका गज ब्याध पाँति जहँ तहँ होहूँ बैठारो ।<br>
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो फारो ॥ ३ ॥<br>
जो कलिकाल प्रबल अति हो तो तुव निदेस ते न्यारो ।<br>
तौ हरि रोष भरोस दोष गुन तेहि भजते तजि गारो ॥ ४ ॥<br>
मसक बिरंचि बिरंचि मसक सम करहु प्रभाउ तुम्हारो ।<br>
यह सामरथ अछत मोहि त्यागहु नाथ तहाँ कछु चारो ॥ ५ ॥

नाहिन नरक परत मोकहँ डर जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो ॥ ६ ॥

हे राम! मुझे क्यों भूल गये। हे नाथ! अपनी महिमा और मेरे पापों को जानते हो तो भी मुझे नहीं सम्भालते हो ॥ १ ॥ तुम पापियों को पवित्र करनेवाले, ग़रीबों के हितू और जिसको किसी की शरण नहीं उसको शरण देनेवाले हो, यह बात चारों वेद कहते हैं (परन्तु तुम कृपा नहीं करते इससे मुझे मन में सन्देह होता है कि) क्या मैं पापी, भयभीत, और दीन नहीं हूँ (जो होता तो कृपा करते और यदि मैं पापी हूँ और तुम दया नहीं करते तो) क्या वेद ,झूँठ (ठकुरसुहाती) बक रहे हैं (कि तुम पतित-पावन इत्यादि हो और यदि वेद सच्चे हैं तो) ॥ २ ॥ खग, (जटायु) गणिका, गजराज, व्याध (वाल्मीकि) इनकी पंगति जहाँ हो वहाँ मुझे भी बैठाओ (जो कहो कि वे तो सब उत्तम समय में हुए थे और तू कलि का जीव है, तुझे उनके साथ बैठाने में हमें शरम आती है तो जब उन महानीचों के तारने में शरम न आई तो) हे कृपानिधान! अब किस बात की शरम है जो परसी हुई पत्तल को फाड़ते हो ॥ ३ ॥ जो कलिकाल तुमसे अधिक बली होता और तुम्हारी आज्ञा से अलग होता (अर्थात् तुम्हारे कहने पर भी मुझे दुःख देना नहीं छोड़ता) तो हे हरे! तुम्हारा जो भरोसा करते हैं और गुण गाते हैं और क्रोध कर उसके दोष कहते हैं सो हम इस झंझट को छोड़ उसी को भजते (अर्थात् उसका भरोसा कर उसी के गुण गाते कि जिस से वह बाधक नहीं होता) ॥ ४ ॥ तुम तो मच्छर से ब्रह्मा और ब्रह्मा से मच्छर कर सकते हो, ऐसा तुम्हारा प्रभाव है। तुम्हारी इतनी सामर्थ्य होने पर भी जो मुझे त्यागते हो, तो हे नाथ! इसमें मेरा क्या चारा है अर्थात् मेरा कुछ वश नहीं है ॥ ५ ॥ और यद्यपि मैं (सब भाँति) हारा हूँ और नरक में पड़ने का भी मुझे डर नहीं है (क्योंकि करोड़ों जीव वहाँ होंगे) परन्तु मुझ तुलसीदास को यह बड़ा दुःख है कि प्रभु के नाम ने भी मेरे पापों को भस्म नहीं किया। (इसमें तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी और वेद झूँठे पड़ेंगे सो मैं तो तुम्हारा यश बढ़ाने के लिए पुकारता हूँ, आगे तुम्हारी इच्छा हो सो करो) ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—अघ=पाप= । मृषा=झूँठ। पनवारो=पत्तल। निदेस=आज्ञा। गारा=झगड़ा टंटा। अच्छत=होते हुए।

[ ९५ ]

तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं।
जो जमराज काज सब परिहरि इहै ख्याल उर अनि हैं ॥१॥

चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनि हैं।
देखि खलल अधिकार प्रभू सों मेरी भूरि भलाई भनि हैं ॥२॥
हँसि करिहैं परतीति भक्त की भक्त सिरोमनि मनि हैं।
ज्यों त्यों तुलसिदास कौसलपति अपनाएहि परि बनि हैं ॥३॥

(हे राम! जो तुम नरक में भी भेजोगे तो) मेरे इतने पाप और औगुन हैं कि जो यमराज अपना सब काम छोड़कर इन्हीं का ख्याल मन में लावेंगे (अर्थात् हिसाब करेंगे) तो भी नहीं गिन सकेंगे ॥१॥ (और एक दूसरी बात भी होगी कि जब तक मेरा लेखा करेंगे तब तक) पापियों के झुंड के झुंड छूट कर भाग जायँगे और फिर उनके जी में बड़ा सोच फैलेगा (कि अब क्या करें) और अपने अधिकार में खलल देख कर (कि भगवान् मुझे कहीं मौक़ूफ़ न कर दें सो मुझसे पीछा छुड़ाने के लिए) हे प्रभो! तुमसे मेरी बड़ी बड़ाई करेंगे (अर्थात् जब तुम पूछोगे कि महापापी तुलसीदास को तुमने क्या दंड दिया तब उन्हें यही कहना पड़ेगा कि तुलसी तुम्हारा भक्त है, तुम्हारे नाम के प्रभाव से उसके सब पाप बट्टेखाते कर दिये) ॥ २ ॥ फिर तुम हँस कर मुझ भक्त की प्रतीत करोगे और मुझे भक्तों का शिरोमणि मानोगे (क्योंकि पहले भी तुम वाल्मीकि, शबरी, श्वपच आदि नीचों को भक्त-शिरोमणि कर चुके हो) सो हे अयोध्यापति राम! जैसे हो वैसे तुलसीदास को तो अपना बनाये पर ही बनेगी ॥ ३ ॥

[ ९६ ]

जो पै जिय धरिहो अवगुन जन के।
तौ क्यों कटत सुकृत नख ते मो पै विपुल वृंद अघ वन के ॥१॥
कहि है कौन कलुष मेरे कृत कर्म वचन अरु मन के।
हरिहैं अमित सेष सारद स्रुति गिनत एक इक छिन के ॥२॥
जो चित चढ़ै नाम महिमा निज गुन गन पावनपन के।
तौ तुलसिहि तारिहौ विप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के ॥ ३ ॥

(जो भगवान् कहें कि हम कुछ नहीं करेंगे; तू शुभकार्य कर, उसीसे तेरे पाप दूर हो जायँगे तहाँ गुसाईं जी कहते हैं कि) हे राम! जो इस जन के औगुनों को जी में

धरोगे अर्थात् लाओगे तो पुण्यरूपी नख से पापरूपी वन के बहुत से समूह मुझसे कैसे कटेंगे (भाव यह है कि मेरा पुण्य तो नाखून की बराबर है और मेरे पापों के वन के वन खड़े हैं सो उससे वे कैसे कट सकते हैं अर्थात् नहीं कट सकते ) ॥ १ ॥ कर्म, वचन और मन से किये हुए मेरे पापों को कौन कह सकता है। एक एक छिन के ( पापों को ) गिनते गिनते अनगिनती शेषनाग, सरस्वती और वेद भी हार जायँगे। ( सो मेरे पुण्य का तो तुम भरोसा मत करो ) ॥ २ ॥ जो तुम्हारे चित्त पर अपने नाम (१) की महिमा का और पवित्र करने के गुण-समूह का प्रण चढ़ेगा तो यमदूतों के दाँत तोड़ कर तुलसीदास को ऐसे तार दोगे कि जैसे ( अजामेल ) ब्राह्मण को तार दिया था ॥ ३ ॥

[ ९७ ]

जो पै हरि जन के औगुन गहते ।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि वैर बिसहते ॥ १ ॥
जो जप जाग जोग व्रत वरजित केवल प्रेम न चहते ।
तौ कत सुर मुनिवर विहाय ब्रज गोपगेह बसि रहते ॥ २ ॥
जो जहँ तहँ प्रन राखि भक्त को भजन प्रभाउ न कहते ।
तौ कलि कठिन करम मारग जड़ हौं केहि भाँति निबहते ॥ ३ ॥
जो सुतहित लिय नाम अजामिल के अघ अमित न दहते ।
तौ जमभट साँसति हर हम से वृषभ खोजिखोजि नहते ॥ ४ ॥
जो जगविदित पतितपावन अति बांकुर विरद न वहते ।
तौ बहुकल्प कुटिलतुलसी से सपनेहुँ सुगति न लहते ॥ ५ ॥

( गुसाईं जी ने पहिले पद में कहा है जो जन के औगुन धारण करोगे इत्यादि इस पर जो रामजी कहें कि हम भक्तों के गुण धारण करते हैं, अवगुण धारण नहीं करते उसी का फिर उत्तर देते हैं )—हे राम ! जो तुम ( भक्त ) जनों के गुणों को ही ग्रहण करते

---

(१) पद्मपुराणे—"सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम् । शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥ सरलार्थः ।

ते इन्द्र, (१) दुर्योधन, (२) और बालि (३) से क्यों हठ करके वैर बिसाते ॥ १ ॥ जो जप, यज्ञ, योग, और व्रत, इन्हें छोड़ कर केवल प्रेम नहीं चाहते तो देवता और श्रेष्ठ मुनियों को त्याग कर व्रज में गोपों के घर में क्यों वास करते ॥ २ ॥ और जो जहाँ तहाँ अपना प्रण रख कर भक्त के भजन के प्रभाव को नहीं कहते, तो कलियुग में (यज्ञ, तप आदि) कर्म-मार्ग तो बड़ा कठिन है (हो नहीं सकता फिर) हम सरीखे जड़ किस भाँति निभते ॥ ३ ॥ जिस ने पुत्र को बुलाने के लिए "नारायण" नाम लिया था ऐसे उस अजामेल (४) के अनगिनती पापों को जो तुम नहीं जलाते, तो यम के दूत हम सरीखे बैलों को ढूँढ ढूँढ कर यमदंडरूपी हल में जोत देते (अर्थात् हमें पूरा पूरा दंड दिलाये बिना कभी नहीं मानते) ॥ ४ ॥ और जो तुम संसार में विदित अपने पतित पावनरूप बड़े बाँके (यश के) बाने को नहीं धारण करते, तो बहुत से कल्प तक तुलसी सरीखे कुटिल (यों तो क्या) सुपने में भी सुन्दर गति नहीं पाते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—कुरुराज = दुर्योधन। साँसति = यमपीड़ा। हर = हल। नहते = जोतते। बिरद = बाना। बाँकुर = बाँका।

[ ९८ ]

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जन के वस होत सदा यह रीति ॥ १ ॥
जिन बाँधे सुर असुर नाग नर प्रबल कर्म की डोरी।
सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी ॥ २ ॥
जाकी मायावस विरंचि सिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन सोइ नाच नचायो ॥ ३ ॥

---

(१) इंद्र से वैर यों हुआ था कि भगवान् सतभामाजी के लिए इंद्रलोक से कल्पवृक्ष उखाड़ लाये थे।

(२) दुर्योधन से वैर पांडवों के कारण हुआ था। जब इनके कहने से ५ गाँव भी दुर्योधन ने नहीं दिये तब ये पांडवों का पक्ष लेकर युद्ध में गये और युद्ध कराया।

(३) बाली से सुग्रीव के पीछे वैर हुआ था। कथा रामायण में है।

(४) अजामेल बड़ा दुष्ट दुराचारी था। जन्म भर उसने पाप किये पर मरते समय अपने पुत्र नारायण को पुकारा और पुत्र के बहाने से जो भगवान् का नाम उसके मुख से निकला उससे वह तर गया।

बिस्वंभर श्रीपति त्रिभुवनपति वेद बिदित यह लीख ।
बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगी भीख ॥ ४ ॥
जाको नाम लिये छूटत भव जन्म मरन दुखभार ।
अंबरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जनम्यों दस बार ॥ ५ ॥
जोग बिराग ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनि ज्ञानी ।
बानर भालु चपल पसु पाँवर नाथ तहाँ रति मानी ॥ ६ ॥
लोकपाल जम काल पवन रबि ससि सब आज्ञाकारी ।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंतकरधारी ॥ ७ ॥

( भगवान् भक्ति के अधीन हैं सो ही कहते हैं ) भगवान् दासों पर ऐसी प्रीति करते हैं कि अपनी प्रभुता को भूल कर भक्तजन के वश हो जाते हैं यह सदा की रीति है ॥ १ ॥ जिस ( ब्रह्म ) ने देवता, असुर, नाग और नरों को बड़ी पक्की कर्म की डोरी से बाँध रक्खा है उसी अविच्छिन्न (अंश, कलादि रहित ) परब्रह्म ( भगवान् ) को यशोदाजी ने हठ करके ( ऐसी रस्सी से ) बाँध दिया कि जिसे छुड़ा न सके ॥ २ ॥ जिसकी माया के वश होकर ब्रह्मा और शिवजी नाचते फिरे और पार नहीं पाया, उसी ने हथेली पर ताल बजा बजा कर गोपियों को नाच नचाया ॥ ३ ॥ और वह विश्व का पालन करनेवाला, लक्ष्मी का पति और तीनों लोक का स्वामी है यह लिखावट वेद में लिखी है पर यह सुन्दर प्रभुता राजा बलि (१) से कुछ नहीं चली (वहाँ तो प्रेम के कारण) वामन बन कर ही भीख माँगनी पड़ी ॥ ४ ॥ जिसके नाम लिये से संसार के जन्म, मरण और दुःख का भार छूट जाता है, उसी कृपा के समुद्र ने अम्बरीष ( सरीखे भक्तों ) के लिए दश बार जन्म लिया ॥ ५ ॥ योग, विराग, ध्यान, जप, तप कर के जिसको ज्ञानी मुनीश्वर ढूँढते हैं उस नाथ ने वहाँ चंचल रीछ-बन्दर नीच पशुओं में प्रीति मानी अर्थात्

---

( १ ) जब राजा बलि त्रिलोकी का स्वामी हुआ तब इन्द्र घबरा कर विष्णु के पास गये, उन्होंने धीरज देकर राज्य दिलाने की प्रतिज्ञा की और आप वामनरूप धर कर बलि के पास गये और जाकर तीन चरण भूमि मांगी। और जब राजा ने इनको दान दिया तब दो चरण में ब्रह्मलोक पर्यन्त नाप कर तीसरे चरण से पृथ्वी मांगी । उस समय राजा ने कहा कि मेरी पीठ नाप लीजिए । इतना कहने पर भगवान् उससे प्रसन्न हुए और इन्द्र की कामना पूरी की ।

उनसे प्रीति करी ॥ ६ ॥ लोकपाल, यम, काल, पवन, सूर्य, और चन्द्र ये सब जिसके आज्ञाकारी हैं हे तुलसीदास ! वही प्रभु उग्रसेन के द्वार पर हाथ में लकुटिया लिये खड़ा है ( इसलिए भगवान् से प्रेम करना अवश्य चाहिए) ॥ ७ ॥

[ ९९ ]

विरद गरीबनिवाज राम को ।
गावत वेद पुरान संभु सुक प्रगट प्रभाउ नाम को ॥ १ ॥
ध्रुव प्रहलाद विभीषन कपिपति जड़ पतंग पांडव सुदाम को ।
लोक सुजस परलोक सुगति इन्हमें को है राम काम को ॥२॥
गनिका कोल किरात आदि-कवि इन्हते अधिक बाम को ।
बाजिमेध कब कियो अजामिल गज गायो कब साम को ॥ ३ ॥
छली मलीन हीन सबही अँग तुलसी सो छीन छाम को ।
नाम नरेस प्रताप प्रबल जग जुगजुग चालत चाम को ॥ ४ ॥

रामजी का बाना ग़रीबनिवाज है । उसे वेद, पुराण, महादेव और शुक गाते हैं और उनके नाम का प्रभाव प्रकट है ॥ १ ॥ ध्रुव, प्रहलाद, विभीषण, सुग्रीव, जड़ ( यमलार्जुन ) पतंग, ( जटायु ) पांडव, और सुदामा—इनको लोक में सुन्दर यश और परलोक मेंसुगति दी न्हीं सो इनमें राम के काम का कौन है ॥ २ ॥ गणिका, कोल, किरात, आदि और कवि ( वाल्मीकि ) इनसे अधिक बुरा कौन था। और अजामेल ने कब अश्वमेध यज्ञ किया था । और गजेन्द्र ने साम वेद को कब गाया था ॥ ३ ॥ छली, पापी, और सब अंग (साधनों) से रहित तुलसी सरीखा दुबला, पतला कौन है पर ( भगवान् के ) नामरूपी राजा के प्रबल प्रताप से संसार में युग युग से चमड़े का ( सिक्का ) चलता आया है । ( भाव यह है कि नाम के प्रताप से नीच से नीच तरते चले आये हैं सो चमड़े के सिक्के के समान मैं क्या नहीं तरूँगा ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—जड़=जो चल न सके ( यमल और अर्जुन दो वृत्तों से भाव है )। पतंग=पत्ती। ( जटायु से भाव है ) । आदि-कवि=(वाल्मीकि जी) । वाम=टेढ़ा, नीच । बाजि=घोड़ा। मेध=यज्ञ । छाम=पतला ।

[ १०० ]

सुनि सीतापति सील स्वभाउ ।
मोद न मन तन पुलक नैन जल सो नर खेहर खाउ ॥ १ ॥
सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ ।
कहत राम विधुवदन रिसौहैं सुपनेहुँ लख्यौ न काउ ॥ २ ॥
खेलत संग अनुज बालक नित जुगवत अनट अपाउ ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ ॥ ३ ॥
सिला सापसंताप विगत भइ परसत पावन पाउ ।
दई सुगति सो न हेर हर्ष हिय चरन छुए को पछिताउ ॥ ४ ॥
भवधनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गए ताउ ।
छमि अपराध छमाइ पाँयपरि इतौ न अनत समाउ ॥ ५ ॥
कह्यौ राज वन दियौ नारिवस गरि गलानि गयो राउ ।
ताकुमातु को मन जुगवत ज्यौं निजतनु मरम कुघाउ ॥ ६ ॥
कपि सेवा वश भये कनौड़े कह्यौ पवनसुत आउ ।
देवे को न कछू रिनियाँ हौं धनिक तु पत्र लिखाउ ॥ ७ ॥
अपनाए सुग्रीव विभीषन तिन न तज्यौ छलछाउ ।
भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ ॥ ८ ॥
निजकरुना करतूति भक्त पर चपत चलत चरचाउ ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस वरनत सुनत कहत फिर गाउ ॥ ९ ॥
समुझि समुझि गुनग्राम राम के उरअनुराग बढ़ाउ ।
तुलसिदास अनयास रामपद पइहैं प्रेमपसाउ ॥ १० ॥

( अब रामचन्द्रजी के स्वभाव का वर्णन करते हैं । ) रामजी का शील-स्वभाव सुन कर ( जिसके ) मन में आनन्द न हो, जिसका शरीर पुलकायमान न हो, जिसके नेत्रों

में से आँसू न टपके वह मनुष्य ( भले ही ) खे खाय या धूल फाँकता फिरे ॥१॥ बालकपन से पिता, माता, भाई, गुरु, सेवक, मन्त्री और सखा कहते हैं कि रामजी के चन्द्र-समान मुख को किसी ने ( यों तो क्या ) सुपने में भी क्रोधित नहीं देखा ॥ २ ॥ उनके संग ( लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ) छोटे भाई और ( अयोध्यावासियों के ) बालक नित्य खेलते थे ( उनके आपस में ) अन्याय और हानि को वे देखते रहते थे। और अपने जीतने पर भी हार जाते और पुचकार कर प्यार करते और उनको दाव ख़ुद देते और दूसरों से दिलाते थे ॥ ३ ॥ जिनके पवित्र पाँव से छूते ही शिला कहिए अहिल्या ( गौतम के ) शाप और ( अपने ) संताप से रहित हो गई। और जिन्होंने उसे सुन्दर गति दी पर उसका मन में हर्ष न लाये ( वरन् ) चरण से छूने का पछतावा किया ( कि हमने ब्राह्मणी को पैर से छुआ ) ॥ ४ ॥ जब महादेवजी का धनुष तोड़ कर राजाओं का अनादर किया और परशुरामजी महाक्रुद्ध हो गये तब उनका अपराध क्षमा करके और ( लक्ष्मणजी ने जो दुर्वचन कहे थे उनका अपराध ) क्षमा करा कर उनके पैरों पड़े। इतनी समाई दूसरों में नहीं है ॥ ५ ॥ जिस राजा ( दशरथ ) ने राज्य देना कहा था और जिसने स्त्री के वश ( अर्थात् उसकी बातों में आकर ) वनवास दिया और ( अन्त को ) इस ग्लानि से गले अर्थात् मर गये। उसी बुरी माता का मन ( भगवान् ) ऐसे देखते रहे कि जैसे कोई अपने शरीर के मर्म स्थान में पके फोड़े को देखता हो ( अर्थात् केकयी को कहीं हमसे खेद न हो ) ॥ ६ ॥ हनुमानजी की सेवा के वश जब उपकृत हुए ( अर्थात् उनके उपकार का बदला न दे सके ) तब कहा कि हे पवन-पुत्र! यहाँ आ, मेरे पास देने को तो कुछ नहीं है पर मैं तेरा ऋणी हूँ और तू धनी है ( इस बात का चाहे तू ) काग़ज़ लिखा ले ॥ ७ ॥ सुग्रीव और बिभीषण को अपना बनाया पर उन्होंने छल ( तो क्या छल ) की छाया भी नहीं छोड़ी। ( अर्थात् बाली के मरने पर जब भगवान् ने सुग्रीव को राज्य दिया तब वह विषय में पड़ सीताजी के लाने की सुध भूल गया और पहले कहता था कि "सुखसंपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहों सेवकाई।" और इसी भाँति बिभीषण ने पहले तो कहा कि "उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।" फिर जब राज मिला तो ऐसा विषय में लिप्त हुआ कि अपनी स्त्री से क्या मन्दोदरी जो बड़े भाई की स्त्री माता के समान थी उससे कुकर्म किया ), उन्होंने सभा में भरतजी का सम्मान कर उनकी सराहना की तब भी हृदय में तृप्ति नहीं हुई अर्थात् मन नहीं भरा ॥ ८ ॥ भक्त पर जो दया और करतूत की उसकी (जब) चर्चा चली तो शरमा गये। और जिसने

एक बार भी प्रणाम किया उस भक्त का यश बखाना, सुना, कहा और फिर गाया ॥९॥ सो ऐसे रामजी के गुण-समूहों को समझ समझ कर हृदय में प्रेम बढ़ा कि (जिससे) हे तुलसीदास ! सहज में ही प्रेम के प्रसाद से रामजी के चरणों को पावेगा ॥ १० ॥

शब्दार्थ—खेहर = धूल या विष्ठा । अनट = अन्याय । अपाय = हानि । ताउ, ( ताप ) = क्रोध । समाउ ( समाई, संवाई ) = शक्ति, ताक़त । गलानि = दुख, नफ़रत । चपत = चपना, शरमाना । सकृत = एक बार । पसाउ = प्रसाद ।

[ १०१ ]

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।
काको नाम पतितपावन जग केहि अतिदीन पियारे ॥ १ ॥
कौने देव बराइ विरदहित हठि हठि अधम उधारे ।
खग मृग व्याध पषान विटप जड़ जवन कवन सुर तारे ॥२ ॥
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया विवस विचारे ।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ॥ ३ ॥

हे नाथ ! तुम्हारे चरण छोड़कर कहाँ जाऊँ ? किस दूसरे का नाम पतितपावन है और संसार में किसको ग़रीब बड़े प्यारे हैं ( अर्थात् किसी को नहीं, केवल तुमको ही हैं ) ॥ १ ॥ ( जो कहो कि बहुत से देवता हैं तो ) ऐसा कौन सा देवता है कि जिसने ( अपने पतितपावन ) बाने के लिए छाँट छाँटकर और बार बार हठ करके नीचों को तारा हो । ( क्योंकि ) पक्षी ( जटायु ), मृग (१) ( रीछ बन्दर ), व्याधा ( वाल्मीकि ), पत्थर ( अहिल्या और दंडक वन के ) वृक्ष आदि और महामूर्ख यवन इनको किस देवता ने तारा है ( अर्थात् नीचों के उद्धार करने का बाना तुम्हारा ही है ) ॥ २ ॥ ( दूसरे ) देवता, दैत्य, मुनि, नाग और मनुष्य ये तो विचारे आपही माया के वश हो ( दुःख भोग ) रहे हैं ( ये किसी को क्या तारेंगे ) । सो हे प्रभो ! यह तुलसीदास अपने को उनके हाथ क्या हारे ( अर्थात् उनकी शरण में जाकर क्या करे ) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—पतितपावन = पापियों के पवित्र करने वाले । बराइ = छाँटकर । जवन = एक महा नीच जाति ।

---

(१) संकेत—मृग का अर्थ केवल हरिण ही नहीं है, वन के जीवों को भी मृग कहते हैं इसलिए रीछ-बन्दरों का अर्थ लिया गया और व्याधा का अर्थ बहेलिया और पाषाण का अर्थ पत्थर है परन्तु प्रसंग वश से यहां व्याधे से वाल्मीकि और पाषाण से अहिल्या का अर्थ किया है ।

[ १०२ ]

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो ।
साधनधाम बिबुधदुरलभ तन मोहिं कृपा करि दीन्हों ॥ १ ॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के एक एक उपकार ।
तदपि नाथ और कछु माँगौं दीजै परमउदार ॥ २ ॥
विषय वारि मनमीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।
तेहिते सहौं विपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक ॥ ३ ॥
कृपाडोरि वनसी पदअंकुस परमप्रेम मृदुचारो ।
एहि विधि वेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो ॥ ४ ॥
है स्रुतिविदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरे ।
तुलसिदास यहि जीव मोहरजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरे ॥ ५ ॥

( अब गोसाईंजी भगवान् के उपकार को जताते हैं ) हे भगवन् ! तुमने ( मेरे ऊपर ) बड़ी कृपा की कि मुझे साधनों का मन्दिर ( अर्थात् जिससे भक्ति, ज्ञान आदि सब साधन हो सकें ) और जो देवताओं को भी कठिनता से मिल सके ऐसा ( मनुष्य) शरीर कृपा करके दिया ॥ १ ॥ यद्यपि प्रभु की एक एक भलाई ( ऐसी है कि एक मुख से तो क्या ) करोड़ों मुखों से भी नहीं कही जा सकती है तो भी हे नाथ ! कुछ और माँगता हूँ सो दीजिए क्योंकि तुम बड़े दानी हो ॥ २ ॥ ( वह यह है कि कान का विषय शब्द, त्वचा का स्पर्श, नेत्रों का रूप, जिह्वा का रस, और नाक का गंध है सो) विषयरूपी जल से मेरा मनरूपी मच्छ कभी एक पल के लिए भी अलग नहीं होता और इससे मैं अनेक योनियों में जन्म लेते लेते महा कठिन दुःख सहता हूँ ॥ ३ ॥ ( सो जैसे शिकारी वंशी के द्वारा जल में से मच्छ पकड़ते हैं ऐसे ही तुम विषयरूपी जल में से मेरे मनरूपी मच्छ को निकालो। और उसका उपाय यह है कि मेरे ऊपर जो तुम्हारी) कृपा है उसकी तो डोरी बनाओ और तुम्हारे चरण में जो अंकुश ( १ ) का

---

(१) यहाँ अंकुश के कहने का यह भाव है कि जैसे अंकुश से हाथी वश में हो जाता है ऐसे ही भगवान् के चरण में जो अंकुश का चिह्न है उसका ध्यान करने से मनरूपी मतवाला हाथी विषयों से अलग होकर अच्छे कामों में लग जाता है।

चिह्न है उसे वंशी का काँटा बनाओ फिर उसमें बड़े प्रेम का कोमल चारा ( चिपकाओ ) और इस प्रकार ( इस मनरूपी मच्छ को ) बेधकर ( अर्थात् काँटे में उलझा कर और खेंचकर ) मेरा ( जन्म मरण आदि ) दुःख दूर करदो। हे राम ! तुम्हारे लिए यह खेल है ( और मेरा मन विषयों से हटकर तुम्हारे चरणों में लग जायगा ) ॥ ४ ॥ ( यों तो ) वेद में ( यज्ञ, जप, तप आदि अनेक ) उपाय कहे हैं और ( गणेश, शिव, दुर्गा आदि ) सब देवता भी ( फलदायक ) हैं ( पर यह ) ग़रीब किस किस से निहोरा करता फिरे। तुलसीदास ( तो यह चाहता है कि ) जिसने इस जीव को मोह की रस्सी में बाँधा है वही छोड़े ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—विबुध = देवता। विषय = इन्द्रियों का कर्म। भिन्न = जुदा। दारुन = कठिन। वंशी = मछली पकड़ने का काँटा। स्रुति = वेद। रज्जु = रस्सी। मोह = अज्ञान।

[ १०३ ]

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस बिस्वास भरोसो हरु जिय की जड़ताई ॥ १ ॥
चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ो अनुदिन अधिकाई ॥ २ ॥
कुटिल करम लै मोहि जाइ जहँ तहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िये कमठअंड की नाईं ॥ ३ ॥
यह जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभुही सों होहिं सिमिटि एक ठाईं ॥ ४ ॥

( अब अपनी इच्छा को स्पष्ट कहते हैं ) हे स्वामी ! रघुनाथजी ! ( मेरी ) यह विनती है कि यह जीव दूसरे ( यज्ञ, जप आदि कर्म ) की आशा, ( मंत्र-तंत्र आदि का ) विश्वास और ( अन्य देवताओं का ) भरोसा करता है सो इसकी इस मूर्खता को दूर कर दो ॥ १ ॥ मैं मुक्ति, सुन्दर बुद्धि, ( धन धाम आदि ) सम्पत्ति, ऋद्धि, सिद्धि और ( संसार में ) बड़ी भारी बड़ाई यह कुछ नहीं चाहता, ( मैं तो यह चाहता हूँ कि ) हे राम ! तुम्हारे चरणों में मेरा प्रेम बिना किसी कारण के दिन पर दिन अधिक बढ़ता रहे ( किसी तरह घटने न पावे ) ॥ २ ॥ और मेरा खोटा कर्म मुझे जहाँ जहाँ ( जिस

योनि में ) अपनी जबरई से ले जाय वहाँ वहाँ (उस योनि में) जैसे कछुआ अपने अंडों को नहीं छोड़ता है ऐसे छिन भर भी तुम अपनी कृपा न छोड़ना ( अर्थात् मेरे ऊपर सदा कृपादृष्टि रखना ) ॥ ३ ॥ और इस संसार में जहाँ तक ( स्त्री, पुत्र आदि से ) इस शरीर की प्रीति, प्रतीति और नाता है सो सब एक जगह सिमट कर हे प्रभो ! सब तुमसे ही हो ( ऐसा करिए ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—रिद्धि, सिद्धि = गूढ़ार्थ कोश में देखो। विपुल = बड़ी। छोह = कृपा। कमठ = कछुआ। जनि = मत, न।

[ १०४ ]

जानकीजीवन की बलि जैहौं।
चितु कहै रामसीयपद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं ॥ १ ॥
उपजी उर प्रतीति सुपनेहुँ सुख प्रभुपद विमुख न पैहौं।
मन समेत या तनु के वासिन इहै सिखावन दैहौं ॥ २ ॥
स्रवनन अवर कथा नहि सुनिहौं रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नैन विलोकत औरन सीस ईसही नैहौं ॥ ३ ॥
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं।
यह छर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ॥ ४ ॥

( अब गुसाईं जी अपनी वृत्ति को कहते हैं ) मैं जानकीजी के जीवन ( प्राण ) रघुनाथजी की बलिजाऊँगा ( अर्थात् अपना तन, मन, धन, उन पर निछावर करूँगा )। मेरा मन यही कहता है कि सीतारामजी के चरणों को छोड़ अब कहीं नहीं जाऊँगा ॥१॥ ( क्योंकि ) मेरे मन में ऐसा भरोसा हुआ है कि भगवान् के चरणों से विमुख होकर ( इस संसार में तो क्या ) सुपने में भी सुख नहीं पाऊँगा। और मैं मन समेत इस शरीर में रहनेवाली ( इन्द्रियों ) को भी यही सलाह दूँगा ( कि तुम भी सब विषय भोगों को त्याग कर भगवान् के चरणों में लगी रहो ) ॥ २ ॥ मैं कानों से ( रघुनाथजी को छोड़ ) और किसी की कथा नहीं सुनूँगा और जीभ से औरों को नहीं गाऊँगा। (रामजी के सिवा ) दूसरे के देखने से नेत्रों को रोकूँगा ( अर्थात् भगवान् के ही दर्शन किया करूँगा ) और अपने शिर को रामजी के सामने ही झुकाऊँगा ( अर्थात् और किसी को प्रणाम तक नहीं करूँगा ) ॥ ३ ॥ और रामजी से ही सब

नाता और प्रेम करके ( माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि के ) सब नाते और स्नेह को बहा दूँगा (भाव—किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं रक्खूँगा। जो कहो कि ऐसा करने से संसार में बुराई होगी तो ) संसार में मैं तुलसीदास जिसका दास कहाऊँगा उसी पर यह भारी बोझा है ( अर्थात् उसी के सिर सब बुराई भलाई है )॥ ४॥

शब्दार्थ—परिहरि = छोड़ कर। स्रवण = कान। छर = भारी।

[ १०५ ]

अबलौं नसानी अब न नसैहौं।
रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं॥ १॥
पायो नाम चारु चिंतामनि उर करते न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहि कसैहौं॥ २॥
परवस जानि हँस्यो इन इंद्रिन निजवस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुपहिपनकै तुलसी रघुपतिपदकमल बसैहौं॥ ३॥

(गुसाईं जी पछताते हैं कि ) अब तक ( मेरी अवस्था रघुनाथजी के भजन बिना वृथा ) गई सो गई पर अब ( जो रही है उसका इस भाँति वृथा) नाश नहीं होने दूँगा। और श्रीरामजी की दया से संसाररूपी रात्रि बीत चुकी ( अर्थात् मैं जो संसार की माया में भूल रहा था सो राम की कृपा से दूर हुई ) अब जागने पर फिर ( पहले की भाँति उस मायारूप खाट पर ) बिछौना नहीं बिछाऊँगा ( अर्थात् अब उस माया के भ्रम में नहीं पड़ूँगा )॥ १॥ ( अब आगे क्या करना है सो कहते हैं कि मैंने जो रामजी का ) नामरूपी सुन्दर चिन्तामणि पाया है उसे हृदयरूपी हाथ से नहीं गेरूँगा ( अर्थात् अब सदा हृदय से रामनाम रटना नहीं छोड़ूँगा )। और श्रीरामजी का साँवरा पवित्र सुन्दर स्वरूप सोई कसौटी है उस पर अपने चित्तरूपी कंचन को कसूँगा ( अर्थात् जैसे सोना कसौटी पर कसा जाता है तब उसका खरापन जान पड़ता है ऐसे ही मेरे चित्तरूपी सोने में जो विषयवासनारूपी मैल मिल रहा है उसे ज्ञानरूपी अग्नि में जला कर श्यामसुन्दर रघुनाथजी में लगाऊँगा तब उसका खरापन ज्ञान पड़ेगा और जब स्मरण करने में मेरा मन किसी विषय में न जायगा तब जानूँगा कि शुद्ध हुआ। भाव यह है कि ऐसे मन से ध्यान करूँगा )॥ २॥ ( जैसे मन्त्रीजन मूर्ख राजा को अपने वश में कर उसे लूटते और उसकी हँसी उड़ाते हैं ऐसे ही नेत्र आदि ) इन इन्द्रियों ने मुझे परवश

(अर्थात् अपने वश में) जान कर मेरी हँसी उड़ाई है सो अब अपने वश में करके (अर्थात् जितेन्द्रिय होकर) उनसे अपनी हँसी नहीं कराऊँगा (अर्थात् उन्हें विषय-वासना से रोक वश में रक्खूँगा) और मैं तुलसीदास अपने मनरूपी भौंरे को (जो विषय-वासनारूपी दुर्गन्धियों पर दौड़ता रहा है) प्रण करके (कि जिसमें और जगह न जाने पावे) श्रीरघुनाथजी के चरण-कमलों में निवास कराऊँगा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—भव = संसार। निसा = रात्रि। चारु = सुन्दर। चिंतामणि = जो मणि बिचारले ही पदार्थ को दे। मधुकर = भौंरा।

## राग रामकली।

[ १०६ ]

महाराज रामादर्यौ धन्य सोई।
गरुअ गुनरासि सरवज्ञ सुकृती सूर सीलनिधि साधु तेहि सम न कोई ॥ १ ॥
उपल केवट कीस भालु निसिचर सबरि गीध सम दम दया दान हीने।
नाम लिये राम किये परमपावन सकल नर तरत तिनके गुन-गान कीने ॥ २ ॥
व्याध अपराध की साध राखी कौन पिंगलै कौन मति भक्ति भेई।
कौन धौं सोमजाजी अजामिल अधम, कौन गजराज धौं बाजपेई ॥
पांडुसुत गोपिका विदुर कुबरी सबहि सोध लिये सुद्धता लेस कैसो।
प्रेम लखि कृष्ण किये आपने तिनहुँ को सुजस संसार हरि हर को जैसो ॥ ४ ॥
कोल खस भील जवनादि खल राम कहि नीच ह्वै ऊँच पद को न पायो।
दीन दुखदमन श्रीरमन करुनाभवन पतित पावन विरद वेद गायो ॥

मंदमति कुटिल खलतिलक तुलसी सरिस भौ न तिहुँलोक तिहुँकाल कोऊ।
नाम की कानि पहिंचानि जन आपनो ग्रसत कलिव्याल राख्यौ सरन सोऊ ॥ ६ ॥

महाराज रामचन्द्रजी ने जिसका आदर किया है वही धन्य है (कैसा धन्य है कि ज्ञान, विज्ञान, क्षमा, शीलता आदि) जो बड़े बड़े गुण हैं उनकी राशि (अर्थात् बड़ा गुणी), सर्वज्ञ (तीनों काल की जाननेवाला), पुण्यात्मा, सूरमा, सुन्दर स्वभाव की खान (अर्थात् बड़ा सुशील) और सज्जन कि जिसके समान कोई भी नहीं है ॥ १ ॥ (जो कहो कि रामजी की सेवा से उसमें ये लक्षण कहाँ से आवेंगे तहाँ कहते हैं कि) पाषान (अहिल्या), केवट, बन्दर (सुग्रीव हनुमान आदि), रीछ (जामवंत), राक्षस (विभीषण आदि), शबरी और गिद्ध (ये सब) संयम, नियम, दया और दान से रहित थे (अर्थात् इन्होंने यह कुछ भी नहीं किया था पर) नाम लेते ही रामचन्द्रजी ने सबको ऐसा परम पवित्रकर दिया कि उनके गुणों का गान करने से मनुष्य (संसाररूपी समुद्र से) पार हो जाते हैं ॥ २ ॥ फिर व्याध (वाल्मीकि) ने कौन से अपराध की कसर रक्खी थी (अर्थात् हिंसा, लूट, मार, उनका काम ही था) और पिंगला (नाम वेश्या) ने अपनी मति कब भक्ति में लगाई थी (वह जन्म भर कुकर्म ही करती रही) और अजामेल पापी ने कौन सा सोम यज्ञ किया था और गजेन्द्र कौन सा वाजपेयी था ॥३॥ युधिष्ठिर आदि (एक भी अपने पिता से उत्पन्न नहीं थे और एक स्त्री के पांचों पति थे), गोपिका (पर-पति में रता थीं), विदुर (दासी के पुत्र थे), कुबरी (कंस की मालिन, दासी और कुरूपा थी) इन सब में शुद्धता का लेश कैसा? (अर्थात् किसी भाँति की पवित्रता छू नहीं गई थी) इन सबको पवित्र कर दिया। और प्रीति देख कर भगवान् ने इनको भी अपना बना लिया कि जिससे इनका सुन्दर यश इस संसार में विष्णु, महेश का सा छा रहा है ॥ ४ ॥ और कोल, खस, भील, म्लेच्छ आदि (सब ही) दुष्ट थे पर नीच होकर भी रामनाम कह कर किसने ऊँचा (१) पद नहीं पाया अर्थात् सबने पाया। ग़रीबों के दुःखनाशक, लक्ष्मी के पति, करुणा के मन्दिर, पापियों के पवित्र करनेवाले, (ऐसे रामजी)

---

(१) यन्नाम संसर्गवशाद्द्विवर्णौ नष्टस्वरौ मूर्ध्नि गतौ स्वराणाम्। तद्रामपादौ हृदये निधाय देही कथं नोर्ध्वगतिं प्रयाति ॥ अर्थात् जिसके नाम के संसर्ग से दो अक्षर "रा—म" स्वर नष्ट होते ही स्वरों के ऊपर चले जाते हैं, ऐसे रामजी के पदों को हृदय में रखने से प्राणी ऊर्ध्व गति को क्यों नहीं पहुँचेगा।

का यश वेदों ने गाया है ॥ ५ ॥ (इन पर विश्वास न हो तो अब प्रत्यक्ष प्रमाण देख लो कि ) मंद बुद्धि, कुटिल, और दुष्टों का शिरोमणि तीनों लोकों में और तीनों कालों में तुलसीदास सरीखा कोई नहीं हुआ, सो उसे भी अपने नाम के डर से ( अर्थात् कहीं पतित पावन नाम में बट्टा न लगे इस कारण ) अपना दास पहचान कर कलियुगरूपी सर्प से डसते हुए को अपनी शरण में रख लिया ॥ ६ ॥

सन्धि-विभाग—राम + आदरयो ।

शब्दार्थ—गरुअ = भारी । उपल = पत्थर । कीस = बन्दर । साध = कसर । जाजी = यज्ञ करनेवाला । वाजपेई = वाजपेय यज्ञ करनेवाला । विरद = यश । भौ = हुआ । व्याल = साँप ।

## राग बिलावल ।

[ १०७ ]

हे नीको मेरो देवता कोसलपति राम ।
सुभग सरोरुहलोचन सुठि सुंदर स्याम ॥ १ ॥
सिय समेत सोभित सदा छबि अमित अनंग ।
भुज बिसाल सर धनु धरे कटि चारु निषंग ॥ २ ॥
बलि पूजा चाहत नहीं चाहत एक प्रीति ।
सुमिरतही मानै भलो पावन सब रीति ॥ ३ ॥
देइ सकल सुख दुख दहै आरतजनबंधु ।
गुन गाहि अघ औगुन हरै असप्रभु करुनासिंधु ॥ ४ ॥
देस काल पूरन सदा वद वेद पुरान ।
सब को प्रभु सब मों वसै सब की गति जान ॥ ५ ॥
को करि कोटिक कामना पूजै बहु देव ।
तुलसिदास तेहि सेइये संकर जहि सेव ॥ ६ ॥

कोशल देश के स्वामी रामचन्द्रजी मेरे ( इष्टदेव सबसे ) अच्छे देवता हैं । सुन्दर कमल से उनके नेत्र हैं और ( जिनका शरीर ) सुन्दर से भी सुन्दर साँवला है ॥ १ ॥ सदा जानकीजी के संग शोभायमान रहते हैं और उनकी अनगिनती कामदेवों की सी

छवि है, अपनी लम्बी लम्बी भुजाओं में धनुषबाण और कमर में सुन्दर तरकस धारण किये हैं ॥ २ ॥ वे भेट पूजा कुछ नहीं चाहते केवल प्रीति चाहते हैं और ध्यान, धरते ही भला मान लेते हैं ( अर्थात् प्रसन्न हो जाते हैं ) और उनकी सब रीति पवित्र ( अर्थात् निष्कपट ) है ॥ ३ ॥ सब सुखों के दाता और दुःखों को भस्म करनेवाले हैं। दुखी भक्तों के भाई समान ( हितकारी ) और गुणों को ग्रहण कर पाप और अवगुणों को हरनेवाले ऐसे दया के समुद्र हैं ॥ ४ ॥ ( सब ) देशों में तथा ( सब ) कालों में सदा पूर्ण रहते हैं ( अर्थात् घटते बढ़ते नहीं ) यह वेद-पुराण कहते हैं ( फिर सुर, नर, नाग आदि ) सबके प्रभु ( अर्थात् उनके पालने में समर्थ ) और सब में निवास करते हैं और सबकी गति को जानते हैं ॥ ५ ॥ सो ( ऐसे स्वामी को पाकर ) कौन करोड़ों भाँति की कामना करके बहुत से देवताओं को पूजै। हे तुलसीदास ! उसी की सेवा करनी चाहिए कि जिसकी ( सेवा देवों के देव ) महादेवजी करते हैं ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—सरोरुह = कमल । सुठि = सुन्दर । अमित = बेहद । अनंग = ( नहीं है अंग जिसके ) कामदेव । निषंग = तरकस । आरत = दुखी । अघ = पाप ।

[ १०८ ]

वीर महा अवराधिये साधे सिधि होइ ।
सकल काम पूरन करै जानै सब कोइ ॥ १ ॥
बेगि बिलंब न कीजिये लीजै उपदेस ।
बीजमंत्र जपिए सोई जो जपत महेस ॥ २ ॥
प्रेमवारि तरपन भलो घृत सहज सनेहु ।
संसय समिध अगिन छमा ममता बलि देहु ॥ ३ ॥
अघ उचाट मनबस करै मारै मद मार ।
आकरषै सुखसंपदा संतोष बिचार ॥ ४ ॥
जिन्ह एहि भाँति भजन कियो मिले रघुपति ताहि ।
तुलसिदास प्रभु पथ चढ़यो जो लेहु निबाहि ॥ ५ ॥

महावीर ( रघुवीर ) की आराधना करनी चाहिए कि जिसके साधन से ( मारण, उच्चाटन, वशीकरण, आकर्षण और लोक, परलोक के सब कामों की ) सिद्धि होती है।

वे सब कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं ( इस बात को सुर, नर, मुनि ) सब जानते हैं ॥ १ ॥ सो ( उस आराधना को ) जल्दी करो, देर न करनी चाहिए और ( अच्छे गुरु से ) उपदेश लेकर उसी महा मन्त्र ( राम ) का जप करना चाहिए कि जिसे शिवजी जपते हैं ॥ २ ॥ ( मन्त्र जपने के पीछे तर्पण, हवन और बलिदान होता है सो कहते हैं ) प्रेमरूपी जल का तर्पण करे और सहज स्नेहरूपी सुन्दर घृत और संशयरूपी समिधा (इन दोनों ) का क्षमारूपी अग्नि में हवन करे और ममता का बलिदान करे ॥ ३ ॥ ( यह क्या फल करेगा कि ) पापों का उच्चाटन कर मन को वश में करेगा, मद और काम को मारेगा और सन्तोष और आत्मज्ञानरूपी सुख, संपत्ति को खींच लावेगा ॥ ४ ॥ जिसने इस रीति से भजन किया है उसे रामचन्द्रजी मिले हैं। तुलसीदास भी उसी मार्ग पर चढ़ा है जो प्रभु निबाह लें ॥ ५ ॥ ( इस भजन का भाव यह है कि पहले रामनाम जपे, फिर भगवान् को सन्तुष्ट करने के लिए उनसे प्रेम करे और धीरे धीरे स्त्री, पुत्र, माता, पिता आदि के सहज स्नेह को और संशय ( अर्थात् झूठे संसार की सत्यता ) को त्याग कर क्षमा आदि गुणों का ग्रहण करे फिर ममता को हटा कर भगवान् के चरणों में मन लगावे। इस साधन से पाप नाश हो जायँगे, मन वश में होगा और अहंकार और काम आदि भी भस्म हो जायँगे और क्षमा सन्तोष और आत्मज्ञान होने से अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा और फिर उसमें रामजी के दर्शन होंगे ) ॥

शब्दार्थ—समिध = लकड़ी। मार = कामदेव।

[ १०९ ]

कस न करहु करुना हरे दुखहरन मुरारि।
त्रिविध ताप संदेह सोक संसय भय हारि ॥ १ ॥
इक कलिकाल-जनित मल मति मंद मलिन मन।
तेहि पर प्रभु नहिं कर सँभार केहि भाँति जिवै जन ॥ २ ॥
सब प्रकार समरथ प्रभो मईं सब विधि दीन।
यह जिय जानि द्रवहु नहीं मैं करमविहीन ॥ ३ ॥
भ्रमत अनेक जोनि रघुपति पति आन न मोरे।
दुख सुख सहों रहों सदा सरनागत तोरे ॥ ४ ॥

तो सम देव न कोउ कृपालु समुझौं मनमाहीं ।
तुलसिदास हरि तोषिये सो साधन नाहीं ॥ ५ ॥

हे हरे ! तुम दुःख के नाशक और मुर के शत्रु कहिए मारनेवाले होकर मेरे ऊपर करुणा क्यों नहीं करते ( अर्थात् जैसे मुर दैत्य को मार देवों पर कृपा कर उनका दुःख दूर किया ऐसे ही कलि को मार दया कर मेरा दुख दूर करो ) तुम, तीन प्रकार के ताप, ( पाप भोगने का ) सन्देह, शोक, ( संसार के सच्चे होने का ) संशय, और ( यम पीड़ा का ) भय इनके नाशक हो ॥ १ ॥ एक तो कलियुग में उत्पन्न हुए पाप से मेरी बुद्धि तो मन्द ( अर्थात् ज्ञान और विचार से शून्य ) हो गई है और चित्त ( बुरे बुरे कामों में लगने से ) पापी हो गया है तिस पर भी हे प्रभो ! तुम सम्भाल नहीं करते तो यह दास किस भांति जिये ( यह समय तुम्हारे सम्भालने का है ) ॥ २ ॥ तुम सब भाँति समर्थ हो ( कोई बात ऐसी नहीं कि न कर सकते हो ) और हे नाथ ! मैं सब भाँति से ग़रीब हूँ मन में यह जान कर भी कृपा नहीं करते तो मैं ही भाग्यहीन हूँ ( क्योंकि जो दानी सबको दान देता हो और अपने को नहीं दे तो अपने ही भाग्य का दोष है दाता का क्या दोष ) ॥ ३ ॥ ( जो कहो कि पहले तू जिन देवताओं का भजन करता था उन्हीं से कह, वेही तेरे ऊपर कृपा करेंगे तहाँ कहते हैं कि ) हे रघुनाथजी ! मैं अनेक योनियों में भ्रमता रहा परन्तु मेरे स्वामी तो तुम्हीं रहे और दूसरा ( सुर, मुनि कोई ) नहीं रहा । और ( कर्म के अनुसार ) सुख, दुख भी सहता भोगता रहा पर रहा सदा तुम्हारी ही शरण में ॥ ४ ॥ क्योंकि तुम्हारे समान दया करनेवाला कोई देवता नहीं है यह मन में ( ख़ूब ) समझता हूँ और हे भगवन् ! जिस ( श्रवण, कीर्तन, तप, यज्ञ, आदि ) साधन से तुम्हें प्रसन्न करना चाहिए ऐसा साधन इस तुलसीदास के पास नहीं है ( मैं तो कोरा तुम्हारी शरण हूँ सो कृपा कर इस कलि के पापों से बचाइए ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तीन प्रकार के ताप = गूढ़ार्थ कोश में देखो । मंद = नीच । मलिन = मैला, पापी ।

[ ११० ]

कहु केहि कहिये कृपानिधे भवजनित विपति अति ।
इंद्रिय सकल विकल सदा निज निज सुभाउ रति ॥ १ ॥
जे सुख संपति स्वरग नरक संतत सँग लागी ।
हरि परिहरि सोइ जतन करत मन मोर अभागी ॥ २ ॥

मैं अति दीन दयालु देव सुनि मन अनुरागे।
जो न द्रवहु रघुबीर धीर काहे न दुख लागे॥ ३ ॥
जद्यपि मैं अपराधभवन दुखसमन मुरारे।
तुलसिदास कहँ आस इहै बहु पतित उधारे॥ ४ ॥

( जो कहो कि अपना दुख किसी दूसरे से क्यों नहीं कहते तहाँ कहते हैं कि ) हे कृपानिधान! कहो इस संसार से उत्पन्न हुई ( जन्म-मरण की ) भारी विपत्ति किससे कहूँ ( अर्थात् तुम्हीं उसे दूर करने को समर्थ हो क्योंकि अपने शरीर की इन्द्रियाँ तक तो साथ देती ही नहीं हैं नाक, कान, नेत्र आदि ) सब इन्द्रियाँ तो अपने स्वभाव में लगने के लिए सदा बे चैन रहती हैं ( अर्थात् अपने अपने विषयों में लगे बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता। आँखें चाहती हैं कि सुन्दर सुन्दर पदार्थ देखें, कान चाहते हैं कि रसीला गान सुनें, नाक चाहती है सुगंध सूँघूँ, जीभ चाहती है तर माल चक्खूँ और त्वचा सुन्दर मखमल के गुदगुदे तोशक, तकिये आदि को स्पर्श करना चाहती है ) ॥१॥ और वे ( इन्द्रियाँ ) सुख, संपत्ति, स्वर्ग और नरक के साथ सदा लगी रहती हैं ( अर्थात् बुरा भला सब ही काम करती हैं कि जिससे सुख, संपत्ति स्वर्ग भी मिले और नरक भी मिले )। मेरा अभागा मन भी हे हरे! तुम्हें छोड़ कर ( अर्थात् तुम्हारे चरणों में न लग कर ) वही ( इन्द्रियों का सा ) उपाय करता है ( भाव—जो मन वश में हो तो इन्द्रियाँ क्या कर सकती हैं, सबका राजा तो मन है )। सो हे देव! जब मैं बड़ा दुखी हुआ और तुम्हें ( वेद पुराण के द्वारा और भक्तों के मुख से ) दीनदयाल सुना तो तुम में मन लगाया ( फिर भी तुम ) रघुकुल के वीर और धीरजवान् होकर जो मेरे ऊपर कृपा नहीं करते तो मुझे क्यों न दुःख लगेगा ( भाव—धनी के घर से भिखारी ख़ाली हाथ जाय तो उसे बुरा लगे होगा ) ॥ ३ ॥ ( जो कहो कि तू बड़ा पापी है हम तेरे अपराध कहाँ तक दूर करें तहाँ कहते हैं कि ) यद्यपि मैं अपराधों का घर हूँ ( अर्थात् मुझमें तो पाप ही पाप भर रहे हैं ) परन्तु हे मुर दैत्य के शत्रु! तुम तो सब दुःखों के नाशक हो ( जैसे मुर दैत्य का नाश कर दिया ऐसे ही मेरे दुःखों का भी नाश कर दीजिए ) मुझ तुलसीदास को तुमसे यही आशा है क्योंकि तुम ( कोल, किरात, शवरी आदि ) बहुत से पापियों का उद्धार कर चुके हो ( फिर मेरा क्यों न करोगे ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—भव=संसार। सुभाउ=विषय। संतत=सदा। द्रवहु=कृपा करो। मुरारे=(मुर+अरि=मुरारि) मुर दैत्य के शत्रु, भगवान् ( सम्बोधन में ) हे मुरारे!

[ १११ ]

केसव कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये ॥१॥
सून भीति पर चित्र रंग नहिं तनुविनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटै न मरे भीति दुख पाइय एहि तन हेरे ॥ २ ॥
रविकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।
वदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ॥ ३ ॥
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल करि माने ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचाने ॥ ४ ॥

हे केशव ! कुछ कहा नहीं जाता क्या कहूँ ? तुम्हारी ( संसार की ) बड़ी विचित्र रचना देखकर मन ही मन में समझ कर रह जाता हूँ ॥ १ ॥ ( तुम्हारी विचित्र रचना कैसी है कि देहधारी चित्रकार तो रंग से चित्र को भीत 'अथवा किसी काग़ज़ आदि आधार पर बनाता है परन्तु ) इस संसार को बिना शरीर के ( निराकार ) चितेरे ने शून्य अर्थात् अंतरिक्ष में बिना रंग के बनाया है । ( फिर वह चित्र तो जल के धोने से मिट जाता है ) और इसका आवागमन कर्मादिरूपी जल के धोने से नहीं मिटता ( फिर उस चित्र को तो जड़ होने के कारण मृत्यु का भय नहीं है और इस संसार में ) मृत्यु का भय ( सब के पीछे ) लगा है । ( चित्र के देखने से तो सुख मिलता है, नेत्रों की तृप्ति होती है, चित्त प्रसन्न होता है पर ) इस (संसार) की ओर देखने से दुख मिलता है अर्थात् इसकी बहुत देख भाल करने से यह असत्य भासने लगता है और इससे ग्लानि हो जाती है ॥ २ ॥ ( जो कहो कि दुःख पाता है तो उससे दूर क्यों नहीं रहता है तहाँ कहते हैं कि) जैसे प्यासा मृग सूर्य की किरणों में जो लहरें उठती हैं उनको जल समझ कर पीने को जाता है पर वहाँ जल कहाँ धरा है जो उसकी प्यास मिटे वरन् वह दौड़ता दौड़ता काल के वश हो जाता है ऐसे ही यह जीव स्त्री, पुत्र, धन, धाम आदि संसाररूपी मृग-तृष्णा के जल में सुख की प्यास बुझाने जाता है पर वहाँ सच्चा सुख कहाँ धरा है उसमें तो बड़ा भयंकर कालरूपी मगर रहता है जिसका मुख नहीं दीखता पर जो चर अचर जल पीने जाता है उसे खाये चला जाता है ( भेद इतना ही है कि जो संसार के विषय-सुख, जन्म, मरण आदि को सत्य मानता है उसको वह खाता और

जो उन्हें झूठा मानकर अपने मन को अखंड सच्चिदानन्द में लगाये रहता है उसके पास वह नहीं आता। जैसे प्रलय होने पर भी काग-भुशुंड का नाश नहीं हुआ) ॥ ३ ॥ कोई (अर्थात् पूर्व मीमांसावाला) कहता है कि संसार सत्य है (क्योंकि जो जैसा काम करता है वह वैसा फल पाता है) और कोई (उत्तर मीमांसावाला संसार को) झूठा (और ईश्वर को सत्य) बतलाता है और कोई (अर्थात् योग-शास्त्री ईश्वर और संसार) दोनों को मुख्य मानता है इस पर मैं तुलसीदास कहता हूँ कि जो कोई इन तीनों भ्रमों का त्याग देगा (और केवल रघुनाथजी की भक्ति (१) का भरोसा रक्खेगा) वह अपने (आत्मस्वरूप) को पहचान सकता है ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—भीति = डर। तनु = ओर, शरीर, विस्तार। हेरना = विचारना, ढूँढ़ना, देखना। वदन = मुख। जुगल = दो।

[ ११२ ]

केसव कारन कौन गुसाईं।
जेहि अपराध असाध जानि मोहि तजेहु अज्ञ की नाईं ॥ १ ॥
परमपुनीत संत कोमलचित तिनहिं तुमहिं बनिआई।
तौ कत विप्र व्याध गनिकहि तारेहु कछु रही सगाई ॥ २ ॥
काल करम गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे।
सोइ कछु करहु हरहु ममता मम फिरहुँ न तुमहिं बिसारे ॥३॥
जो तुम तजहु भजौं न आन प्रभु यह प्रमान पन मोरे।
मन वच करम नरक सुरपुर जहँ तहँ रघुवीर निहोरे ॥ ४ ॥
जद्यपि नाथ उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाई।
तुलसिदास सीदत निसि दिन देखत तुम्हरी निठुराई ॥ ५ ॥

हे केशव! हे स्वामी! क्या कारण है जिस अपराध से मुझे दुष्ट जानकर अनजान की तरह त्यागते हो ॥ १ ॥ (जो कहो कि तू दुष्ट है, हमारी शरण योग्य नहीं, तो सुनिए कि) जो परम पवित्र और कोमल चित्तवाले संत हैं उनसे ही तुम्हारी बनी होती (अर्थात् उनको ही अपना बनाते और हमसे पापियों को छोड़ देते) तो तुमने ब्राह्मण, (अजामेल) व्याध (वाल्मीकि) और गणिका को क्यों तारा? क्या उनसे तुम्हारा कुछ

(१) सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच।

जाता था? (यदि नहीं था तो मेरे लिए क्यों चुपके हो) ॥ २ ॥ हे हरे! (अपना ऐश्वर्य तो देखो) प्राणी की मृत्यु, कर्म, सुगति और दुर्गति ये सब तुम्हारे हाथ में हैं, सो मेरी ममता को हर कर कुछ ऐसा करो कि मैं तुम्हें भूलकर भटकता न फिरूँ ॥ ३ ॥ हे हरे! जो तुम मुझे छोड़ भी दोगे तो भी मैं दूसरे देव को नहीं भजूँगा यह मेरा पक्का प्रण है (यथा—बनें सो रघुबर ते बनें जो बिगरै भरिपूर। तुलसी औरन ते बनें ता बनिबे में धूर) और तुम नरक में वा स्वर्ग में जहाँ भेजोगे वहाँ मैं मन, वचन कर्म से हे रघुनाथजी! तुम्हारी ही विनती करता रहूँगा (जो स्वर्ग में कोई मुझसे पूछेगा कि तू कौन है तो यही कह दूँगा कि रामजी का सेवक हूँ; उनकी ही कृपा से स्वर्ग भोगने आया हूँ और जो नरक में भेजोगे तो वहाँ भी कह दूँगा कि भगवान् का भेजा हुआ आया हूँ, परन्तु इसमें तुम्हारी बदनामी होगी) सो हे नाथ! यद्यपि यह उचित तो नहीं है कि स्वामी से ऐसी ढिठाई करूँ पर यह तुलसीदास तुम्हारी निठुराई देखकर रात-दिन दुःख पाता है (कहावत है–मरता, क्या न करता–सो मुझे क्षमा करना) ॥५॥

[ ११३ ]

माधव अब न द्रवहु केहि लेखे।
प्रनतपाल पन तोर मोर पन जिअउँ कमलपद देखे ॥ १ ॥
जब लगि मैं न दीनदयालु तैं मैं न दास तैं स्वामी।
तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं जद्यपि अंतरजामी ॥ २ ॥
तैं उदार मैं कृपन पतित मैं तैं पुनीत स्रुति गावै।
बहुत नात रघुनाथ तोहि मोहि अब न तजै बनिआवै ॥ ३ ॥
जनक जननि गुरुबंधु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी।
द्वैत रूप तम कूप परौं नहि अस कछु जतन विचारी ॥ ४ ॥
सुनु अदभ्र करुना वारिज-लोचन मोचन भय भारी।
तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिनु संसै टरै न टारी ॥ ५ ॥

**हे माधव! अब तुम किस हिसाब से कृपा नहीं करते! तुम्हारा प्रण (१) तो यह**

---

(१) जैसा वाल्मीकी रामायण में कहा है—सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम। अर्थात् जो एक बार भी कहता है कि मैं आपका हूँ उसे मैं सब प्राणियों से अभय कर देता हूँ। यह मेरा प्रण है।

है कि भक्त का पालन करें और मेरा प्रण यह है कि तुम्हारे चरण-कमलों का दर्शन कर जिऊँ ( नहीं तो प्राण छोड़ दूँ फिर प्रतिज्ञा पूरी क्यों नहीं करते ) ॥१॥ (जो कहो कि इतने दिन से ऐसा हठ क्यों नहीं किया तो ) जब तक मैं दीन नहीं हुआ और तुम दयालु नहीं हुए और जब तक मैं दास नहीं हुआ और तुम स्वामी नहीं हुए तब तक तो जो जो मैंने दुःख सहे सो तुम से नहीं कहे यद्यपि तुम तो घट घट की जाननेवाले हो ॥२॥ ( अब जब तुमसे नाता होगया है तब तुमसे कहता हूँ। वह नाता कैसा है सो सुनो कि ) तुम तो दानी और मैं कंगाल हूँ, ( फिर ) मैं तो पापी और तुम पवित्र हो ऐसा वेद गाता है। सो हे रघुनाथजी ! तुमसे और मुझसे ( आपस में ) बहुत से नाते हैं ( मेरे कहने से क्या होता है, जीव और ईश्वर के अनेक नाते सदा से चले आये हैं ) सो अब तुम्हें मुझे छोड़े नहीं बनेगा ( छोड़ने से बात में बट्टा लगेगा क्योंकि चाहे जैसा आपस में विरोध हो पर किसी का नातेदार किसी से नहीं छूटता ) ॥ ३ ॥ मेरे पिता, माता, गुरु, भाई, मित्र, मालिक और सब भाँति मेरा हित करनेवाले तुम ही हो सो ऐसा कुछ यत्न विचारो कि जिससे मैं द्वैतरूपी अंधे कुएँ में न गिरूँ ( अर्थात् तुम्हें ही एक परब्रह्म समझूँ, दूसरे को नहीं ) ॥ ४ ॥ हे कमलनेत्र ! सुनो—तुम्हारी बड़ी कृपा ही ( संसार के ) भारी भय ( आवागमन ) से छुड़ानेवाली है। हे प्रभो ! तुलसीदास का जो ( संसार के सच्चे झूठे होने में ) संशय है सो तुम्हारे प्रकाश बिना ( अर्थात् हृदय में तुम्हारा स्वरूप आये बिना कर्मयोग इत्यादि से ) टाला नहीं टल सकता ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—द्वैत = भेद। अदभ्र = बड़ी ( संस्कृत शब्द है )। वारिज = कमल। तम = अँधेरा।

[ ११४ ]

माधव मो समान जगमाहीं।
सब विधि हीन मलीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं ॥१॥
तुम सम हेतु रहित कृपाल आरतहित ईस न त्यागी।
मैं दुख सोक विकल कृपाल केहि कारन दया न लागी ॥ २ ॥
नाहिंन कछु औगुन तुम्हार अपराध मोर मैं माना।
ज्ञान-भवन तनु दियहु नाथ सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥ ३ ॥
वेनु करील श्रीखंड वसंत हि दूषन मृषा लगावै।

सार रहित हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहु किमि पावै ॥ ४ ॥
सब प्रकार मैं कठिन मृदुल हरि दृढ़विचार जिय मोरे ।
तुलसिदास प्रभु मोह संृखला छूटिहि तुम्हरे छोरे ॥ ५ ॥

हे माधवजी ! संसार में मेरे बराबर तो सब साधनों से रहित, महापापी, अतिग़रीब और (इन्द्रियों के) विषयों में डूबा हुआ कोई नहीं ॥ १ ॥ और तुम्हारे समान निष्कारण दया करनेवाला, दुखियों का हितकारी, स्वामी और दानी कोई नहीं पर हे कृपालु ! मैं दुःख और शोक से व्याकुल हो रहा हूँ तुम्हें किस कारण मुझ पर दया नहीं आती (सो मैं नहीं जानता हूँ) ॥ २ ॥ परन्तु तुम्हारा भी इसमें दोष नहीं है मैंने मान लिया कि मेरा ही दोष है क्योंकि तुमने मुझे जिस लिए यह ज्ञान का भंडार (मनुष्य का) शरीर दिया था सो हे नाथ ! उसे पाकर भी मैंने प्रभु को नहीं जाना (अर्थात् मनुष्य शरीर पाकर तुम्हारा भजन नहीं किया) ॥ ३ ॥ (जो कहो कि अपना दोष जानकर भी हमें दोष क्यों देता है तहाँ कहते हैं कि) बाँस और करील ये दोनों चन्दन और वसंत ऋतु को वृथा दोष लगाते हैं क्योंकि (बाँस तो) गूदारहित है (उसे चन्दन) कैसे सुगन्धि दे (भले ही मलयागिर के सब पेड़ सुगन्धित हों) और (करील) भाग्यहीन है (अर्थात् ब्रह्मा ने उसके कर्मों में पत्ते लिखे ही नहीं इसमें वसंत का क्या दोष है इसलिए) वह पत्ते कैसे पा सकता है (सारांश यह है कि जो महापापी हैं और जिनके हृदय में तुमसे प्रेम नहीं उन पर तुम्हारी कृपा कैसे हो परन्तु यह तो सदा की रीति है कि मूर्ख अपना दोष न देखकर ईश्वर को दोष लगाता है) ॥ ४ ॥ हे हरे ! (अपने पापों के कारण) मैं तो सब प्रकार से कठिन हूँ, पर तुम तो कोमल-चित्त हो सो मैंने अपने जी में पक्का विचार कर लिया है कि हे प्रभो ! इस तुलसीदास की मोहरूपी बेड़ी तुम्हारे ही छुड़ाने से छूटेगी (अन्य देवता वा साधनों से नहीं छूट सकती) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—त्यागी = दानी । श्रीखंड = चन्दन । मृषा = झूठ । सुरभि = सुगंध । सृंखला = बेड़ी ।

[ ११५ ]

माधव मोहपास क्यों टूटै ।
बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै ॥ १ ॥
घृतपूरन कराह अंतरगत ससिप्रतिबिंब दिखावै ।

ईंधन अनल लगाइ कल्पसत औंटत नास न पावै ॥ २ ॥
तरु कोटर महँ बस विहंग तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिअ विचारहीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥ ३ ॥
अंतर मलिन विषय मन अति तन पावन करिय पखारे।
मरइ न उरग अनेक जतन वलमीकि विविध विधि मारे ॥ ४ ॥
तुलसिदास हरिगुरुकरुना बिनु विमल विवेक न होई।
बिनु विवेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई ॥ ५ ॥

हे माधवजी ! मोह की फाँस कैसे टूटे ! बाहरी ( स्नान, पूजा, पाठ आदि ) करोड़ों उपाय करो पर उनसे अंतःकरण के भीतर जो ( अज्ञान की ) गाँठ पड़ी है यह ( सिवाय आत्मज्ञान के ) नहीं छूट सकती ॥ १ ॥ ( एक दृष्टान्त देते हैं कि ) कढ़ाह में भरे हुए घी के भीतर जो चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दीखता है ( उसके जलाने के लिए घी को ) ईंधन की आग लगाकर सौ कल्प तक औटाते रहो ( पर इस ऊपरी उपाय से उस चन्द्रबिम्ब का ) नाश नहीं होगा ॥ २ ॥ ( अब दूसरा दृष्टान्त देते हैं कि ) वृक्ष के कोटर में जो पक्षी रहता है वह जैसे ( वृक्ष के ) काटने से नहीं मरेगा ( वरन् कोटर से निकल कर इधर उधर उड़ता ही फिरेगा कि जब तक उसे पकड़ कर पिंजरे में बन्द नहीं करोगे ) तैसे ही ( जप, तप, यम, नियम आदि ऊपरी ) साधन भले हो करो परन्तु आत्मज्ञान के बिना मन शुद्ध नहीं हो सकता ( उस को तो जब तक पूरा वश में न करोगे तब तक विषयों में जाये बिना नहीं रहेगा ) ॥ ३ ॥ ( अब तीसरा दृष्टान्त देते हैं कि ) जो मन भीतर से विषयों के कारण महा मैला हो रहा है उसे बाहर (१) से (शरीर) धोकर साफ़ किया चाहें (सो ऐसे नहीं हो सकता कि ) जैसे अनेक भाँति साँप के बिले को ऊपर से मारने पर और बहुत से उपाय करने पर भी ( भीतर से ) साँप नहीं मरता है ) ॥ ४ ॥ सो हे तुलसीदास ! भगवान् और गुरु की कृपा बिना निर्मल ज्ञान नहीं होता और बिना ज्ञान के कोई संसाररूपी दुस्तर समुद्र का पार नहीं पा सकता। ( भाव—मोह फाँस के टूटने में आत्मज्ञान ही कारण है ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अभ्यंतर = भीतर। विचार = आत्मज्ञान। उरग = साँप। वलमीकि = साँप का बिल। निधि = समुद्र।

---

(१) आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था, सत्योदका शीलतटादयोर्मिः। तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा।

[ ११६ ]

माधो असि तुम्हारि यह माया ।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया ॥१॥
सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै ।
जेहि अनुभव विनु मोह जनित भव दारुन विपति सतावै ॥२॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै ।
तौ कत मृगजल रूपविषय कारन निसि वासर धावै ॥ ३ ॥
जेहि के भवन विमल चिन्तामनि सो कत काँच बटोरै ।
सपने परवस परै जागि देखत केहिजाइ निहोरै ॥ ४ ॥
ज्ञान भक्ति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं ।
तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोस मनमाहीं ॥ ५ ॥

( अब माया की कठिनता और राम-कृपा से उसकी निवृत्ति दिखलाते हैं ) हे भगवन् ! यह तुम्हारी माया ऐसी है ( कि जिसमें फँसकर कर्म, योग, ज्ञान आदि ) कितने ही यत्न करके पच मरो परन्तु जब तक तुम दया नहीं करते तब तक इसके पार नहीं जाया जाता ॥ १ ॥ ( क्योंकि बड़े बड़े ज्ञानियों से ) सुनता हूँ, आप विचारता हूँ और समझता हूँ ( फिर दूसरों को ) समझाता हूँ पर ( उस माया की ) दशा हृदय में नहीं आती ( अर्थात् जब मन को एकाग्र कर आत्मवृत्ति को अखंड ब्रह्म में लगाता हूँ तब उसका अनुभव होता है परन्तु मन स्थिर नहीं रहता ) और उस अनुभव बिना मोह से उत्पन्न संसार की कठिन विपत्ति ( गर्भवास, मरण आदि ) सताती है ॥ २ ॥ ( हे भगवन् ) ब्रह्मरूपी अमृत मीठा और शीतल होता है सो यदि मेरा मन उस रस को पावे तो विषयरूपी मृगजल के लिए रात-दिन क्यों भागता फिरे ( परन्तु इस जीव की गति तो तुम्हारे अधीन है नहीं तो ) ॥ ३ ॥ जिसके घर में निर्मल चिन्तामणि है वह काँचों को क्यों इकट्ठा करेगा ( अर्थात् ब्रह्मरूपी मणि को पाकर विषयरूप झूठे काँच के नगों पर क्यों मन लगावेगा । यह केवल जीव का भ्रम है ) जैसे कोई सपने में पराये वश जा पड़े और ( छूटने के लिए उससे ) निहोरा करे पर जब जग जाय और देखे (कि यह तो झूठा बन्धन है ) फिर वह किसके पास जाकर निहोरा करेगा ( भाव यह है कि जब तक जीव मोह-निद्रा में सोता है तब तक स्वप्ने के भ्रम समान संसार को सच्चा

मानता है पर जब मोह-निद्रा दूर हुई और ज्ञान का प्रकाश हुआ तब संसार-बन्धन झूठा दिखाई देने लगता है पर आपकी कृपा बिन जीव को जागने की शक्ति कहाँ है)॥ ४॥ यों तो ज्ञान, भक्ति आदि अनेक साधन सब सच्चे हैं कोई झूठा नहीं (पर सब में परिश्रम का काम है सो कलियुगी जीवों से हो नहीं सकता और जो किसी तरह करें भी तो संसार की सचाई का भ्रम दूर नहीं हो सकता सो अजामेल, केवट आदि की दशा स्मरण कर) हे हरे! इस तुलसीदास के मन में तो भरोसा है कि तुम्हारी कृपा से भ्रम मिट सकता है॥ ५॥

शब्दार्थ—दारुन = कठिन। पीयूष = अमृत। चिन्तामणि = जिससे सब मनोरथ सिद्ध हों ऐसा रत्न।

[ ११७ ]

हे हरि कवन दोष तोहि दीजै।
जेहि उपाय सपनेहुँ दुरलभ गति सोइ निसिवासर कीजै॥ १॥
जानत अरथ अनर्थ रूप तम कूप परब यहि लागे।
तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे॥२॥
भूत द्रोहकृत मोहवस्य हित आपन मैं न विचारो।
मद मत्सर अभिमान ज्ञान रिपु इनमहँ रहनि अपारो॥ ३॥
वेद पुरान सुनत समुझत रघुनाथ सकलजगव्यापी।
बेधत नहिं श्रीखंड वेनु इव सारहीन मन पापी॥ ४॥
मैं अपराधसिंधु करुनाकर जानत अंतरजामी।
तुलसिदास भवव्याल ग्रसित तव सरन उरग-रिपुगामी॥ ५॥

हे हरे! तुझे कौन सा दोष दिया जाय? (सब दोष मेरे ही हैं क्योंकि) जिस उपाय से मोक्ष का होना स्वप्न में भी दुर्लभ है उसी (विषय आदि कुकर्म) को रात-दिन करता रहता हूँ॥ १॥ और जानता हूँ कि यह (इन्द्रियों का विषयरूपी) अर्थ अनर्थ का रूप है (अर्थात् इससे कभी सुगति नहीं होगी) और इसमें लगने से अज्ञान रूपी कुए में गिरूँगा तो भी इसे नहीं छोड़ता हूँ और कुत्ते, बकरे और गधे की तरह विषयों से ही प्रीति करता फिरता हूँ॥२॥ (जब विषयों में पड़ा और सबने मने किया तो

क्रोधवश ) जीवों से वैर तो बिसाया पर मोहवश अपना भला न सोचा ( कि ये अच्छी कहते हैं, विषय को छोड़ तुम्हारा भजन करूँ वरन् ) मद, ईर्ष्या, अहंकार आदि जो ज्ञान के वैरी हैं इनमें और भी अधिक पड़ा रहने लगा ॥ ३ ॥ वेद, पुराणों को सुनता और समझता भी हूँ ( सबका सिद्धान्त यही है ) कि हे रघुनाथजी ! तुम सब संसार में व्याप्त हो ( अतएव किसी से वैर करना और किसी को सताना नहीं चाहिए ) पर सारहीन ( अर्थात् ज्ञान से शून्य ) मेरे पापी मन में यह बात ऐसे नहीं घुसती है कि जैसे चन्दन की सुगन्धि साररहित बाँस में नहीं जाती ( क्योंकि वह पोला है उसमें गूदा होता तो सुगन्ध ठहरती ) ॥ ४ ॥ हे करुणानिधान ! मैं तो अपराधों का समुद्र हूँ, तुम जानते ही हो क्योंकि घट घट निवासी हो। इस तुलसीदास को संसाररूपी सर्प निगले जाता है सो हे गरुड़गामी ! मैं तुम्हारी शरण हूँ ( भाव—जैसे तुम्हारा वाहन गरुड़ सर्प को भक्षण कर जाता है ऐसे ही तुम संसाररूपी सर्प से मेरी रक्षा करो ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अज = बकरा। मत्सर = ईर्ष्या। श्रीखंड = चन्दन। सार = गूदा, ज्ञान। उरगरिपु-गामी = साँप के वैरी गरुड़ पर जानेवाले।

[ ११८ ]

हे हरि कवन जतन सुख मानहुँ।
ज्यों गज दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु ॥१॥
जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय वत्सपद जैसे।
रहनि आनि विधि कहिय आन हरिपद सुख पाइय कैसे ॥२॥
देखत चारु मयूर बैन सुभ बोल सुधा इव सानी।
सविषउरग आहार निठुर अस यह करनी वह बानी ॥ ३ ॥
अखिल जीव वत्सल निरमत्सर चरनकमल अनुरागी।
ते तोहि प्रिय रघुवीर धीरमति अतिसय निज पर त्यागी ॥४॥
जद्यपि मम औगुन अपार संसार जोग्य रघुराया।
तुलसिदास निजगुन बिचारि करुनानिधान करु दाया ॥ ५ ॥

हे हरे ! तुम कौन से उपाय से सुख मानों ? मेरी करनी तो हाथी के दाँतों के समान है ( अर्थात् जैसे हाथी के दाँत कोरे दिखावट के ही होते हैं उनसे खाना चबाना कुछ

नहीं हो सकता ऐसे ही मेरा वेष और आचार थोथे दिखाने के ही हैं, भीतर मेरे कुटिलता भरी है ) सो तुम सब प्रकार से जानते ही हो ( क्योंकि अंतर्यामी हो ) ॥ १ ॥ जो कुछ कहता हूँ सोई करूँ तो बछड़े के पदचिह्न के समान भवसागर से तर जाऊँ परन्तु रहन तो और तरह की और कहन और तरह की है सो हे हरे! तुम्हारे चरणों का सुख कैसे पाऊँ ( भाव यह कि औरों के सामने मुख से तो राम राम कह कर धर्म, कर्म, ज्ञान आदि की बातें मारता हूँ पर आप कुछ नहीं करता और रामफटाका तिलक लगाकर और तुलसी की माला पहिर कर ऊपर से रहन तो वैष्णवों की सी बना रक्खी है और चेले मूड़ मूड़ कर भीतरी ठगई करता हूँ सो भवसागर तरने की और तुम्हारे चरणों के सुख की क्या आशा है ) ॥ २ ॥ ( मेरी रहन और करनी कैसी है कि ) जैसे मोर देखने में सुन्दर और अमृत से सनी हुई सी मधुर वाणी बोलता है पर निठुर ऐसा होता है कि विषयुक्त सर्प को चबा जाय सो ( मोर की ) वाणी तो ऐसी और करनी ऐसी ( ऐसे ही मेरी वाणी तो मधुर और वेष सुन्दर वैष्णवों का सा परन्तु मैं हृदय में कठोर ऐसा कि विषयरूपी विष भरे ऐसे संसार-सुख-रूपी सर्प को खा जाऊँ ) ॥३॥ हे रघुवीर! जो सब जीवों को प्यार करते हैं, निर्मत्सर हैं (अर्थात् किसी को देखकर नहीं जलते ) और जो तुम्हारे चरणों से प्रेम करते हैं, जो बड़े धीरजवान् हैं और निज परित्यागी हैं ( अर्थात् अपने से प्रीति और दूसरों से द्वेष नहीं करते ) ऐसे जन तुम्हें प्यारे हैं ( और मैं इनसे प्रतिकूल हूँ सो तुम्हें कैसे प्यारा लगूँ ) ॥ ४ ॥ हे रघुनाथजी ! यद्यपि मेरे अवगुण अपार हैं ( कोई गिन कर पार नहीं पा सकता ) और संसार ( ८४ योनि ) भोगने योग्य भी हूँ ( यह तो मेरे कर्मों की बात रही ) पर तुम करुणानिधान हो; अपने गुण विचार कर इस तुलसीदास पर दया करो ( अर्थात् संसार के आवागमन से छुटाओ ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—दसन = दाँत । उरग = साँप । वत्सल = प्यारा ।

[ ११९ ]

हे हरि कवन जतन भ्रम भागै ।
देखत सुनत विचारत यह मन निज सुभाउ नहि त्यागै ॥ १ ॥
भक्ति ज्ञान वैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई ।
कोउ भल कहउ देउ कछु कोउ असि वासना हृदय ते न जाई ॥२॥

जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै।
निज करनी विपरीत देखि मोहि समुझि महाभय लागै ॥ ३ ॥
जद्यपि भग्नमनोरथ विधिवस सुख इच्छित दुख पावै।
चित्रकार करहीन जथा स्वारथ विनु चित्र बनावै ॥ ४ ॥
हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इंद्रिय संभवदुख हरे बनिह प्रभु तोरे ॥ ५ ॥

हे भगवन्! ( झूठे संसार को सच्चा मान रहा हूँ यह मेरा ) भ्रम कौनसे उपाय से दूर हो। यह मेरा मन देखता है ( कि यह शरीर पानी का सा बतासा है मरे पीछे सब ठाट यहाँ हीं पड़ा रहता है ) फिर पुराणों से सुनता है ( कि बड़े बड़े रावण सरीखे जो अचल होकर बैठे थे क्षण भर में नाश हो गये फिर मैं किस गिनती में हूँ ) फिर विचारता है ( कि एक दिन संसार भर नष्ट हो जायगा ) परन्तु अपने स्वभाव को ( अर्थात् विषयों से प्रीति करने को ) नहीं छोड़ता ॥ १ ॥ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सब साधन इसी (मन) के रोकने के लिए बनाये हैं तब भी " कोई मुझे अच्छा कहै" ( कि गुसाईं जी बड़े रामभक्त हैं, बड़े महात्मा हैं ) और " कोई मुझे कुछ दे" ऐसी वासना हृदय से नहीं जाती ॥ २ ॥ जिस ( मोहरूपी ) रात्रि ( १ ) में सब जीव सोते हैं ( अर्थात् अपने को भूल इस संसार को सत्य मानते हैं ) उसी में तुम्हारे कृपापात्र भक्तजन जगते हैं ( अर्थात् संसार के सुख को झूठा मान तुम्हारे चरणों में प्रीति करते हैं ) परन्तु मुझे अपना कर्तब उलटा देख कर और ( उसका फल चौरासी योनि ) समझ कर बड़ा डर लगता है ॥ ३ ॥ यदि दैव के वश से मेरे मनोरथों का नाश हो चुका ( क्योंकि जो दैव ने कर्मों में लिखा होता तो पाता ) तिस पर भी मैं सुख की इच्छा कर ऐसे दुःख पा रहा हूँ जैसे कोई चित्र बनानेवाला हाथ तो लगावे नहीं और ( मन ही मन में ) चित्र बनावे और उससे कुछ अपना मतलब न निकले ( भाव यह है कि मुझसे सत्कर्म तो बनता नहीं कि जिससे सुख मिले बिना कुछ करे धरे मन ही मन में विषय-वासना छोड़ तुम्हारे चरणों की प्रीति और सुगति चाहता हूँ सो कैसे मिल सकती है ) ॥ ४ ॥ तुम्हारा नाम "हृषीकेश" है ( अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी ) यह सुन कर मैं

( १ ) गीतायाम्—या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ अर्थ ऊपर से मिलता है।

तुम्हारी बलैया लेता हूँ और मेरे जी में अब बड़ा भरोसा हो गया ( कि जो तुम इन्द्रियों से आज्ञा कर दोगे तो वे मुझे बुरे कर्मों से दूर रक्खेंगी ) सो हे प्रभो ! इस तुलसीदास का, इन्द्रयों से किया हुआ दुःख तो तुम्हें दूर करते ही बनेगा ॥ ५॥

शब्दार्थ—विपरीत = उलटा । भग्न = नाश हुआ । संभव = उत्पन्न ।

[ १२० ]

हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी ।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ॥ १ ॥
अरथ अविद्यमान जानिय संसृत नहिं जाइ गोसाईं ।
विनु बाँधे निज हठ सठ परवस परेउ कीर की नाँईं ॥ २ ॥
सपनेउ व्याधि विविध बाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई ।
वैद अनेक उपाय करै जागे बिनु पीर न जाई ॥ ३ ॥
स्रुति गुरु साधु स्मृति संमत यह दृस्य सदा दुखकारी ।
तेहि विनु तजे भजे विनु रघुपति विपति सकै को टारी ॥ ४ ॥
बहु उपाय संसार तरन कहँ विमल गिरा स्रुति गावै ।
तुलसिदास मैं मोर गये विनु जिउ सुख कबहुँ न पावै ॥ ५ ॥

हे हरे ! मेरे भारी भ्रम को क्यों नहीं दूर करते हो । यदिच ( संसार ) झूठा है तो भी तब तक सच्चा सा भासता है कि जब तक तुम्हारी दया न हो ॥ १ ॥ ( इस संसार में ) अर्थ (जो धन स्त्री पुत्रादि हैं सो किसी के अचल नहीं सब ) नाशवान् हैं यह जानता हूँ परन्तु हे नाथ ! संसार नहीं छुटता ( अर्थात् जान, बूझ कर झूठे को सच्चा मान रहा हूँ और इस चेतन जीव को किसी ने विषय आदि से बाँधा नहीं है पर ) बिना बाँधे ही यह मूर्ख ( १ ) अपने हठ से तोते (२) की तरह पराये (अर्थात् माया के) वश पड़ा है ॥२॥ (अब दूसरा दृष्टांत देते हैं ) कि जैसे सुपने में (ज्वर, खाँसी, सन्निपात आदि)

---

(१) जैसा योगवासिष्ठ में लिखा है " न केनचिच्च विक्रीता विक्रीता इव संस्थिताः । वत मूढ़ा वयं सर्वे जानाना अपि शाम्बरम्" अर्थात् किसी ने हमको बेचा नहीं तो भी हम बिके हुए से हैं और हम सब माया को जान बूझ कर भी मूढ़ बने हुए हैं । भाव यह है कि यद्यपि हम लोग ज्ञानी बनते हैं तथापि हम अज्ञान के फंदे में फँसे हैं और यह जान कर भी कि सब जगत् माया मात्र है, उसके हाथ बिके हुए हैं ।

(२) भाव—जैसे खेत में दो लकड़ी गाड़ कर उस पर एक लकड़ी धर के उसमें एक चौंगली पहिरा देते

व्याधियों से अनेक बाधायें ऐसी हुईं मानों मृत्यु पास आ गई और वैद्य लोग ( इस आदि देकर उसके ) अनेक यत्न करते हैं परन्तु बिना जागे दुःख दूर नहीं होता ( ऐसे ही जब तक जीव मोह-निद्रा में सोता है तब तक वह भले बुरे कर्म करता रहेगा परन्तु जब उसकी मोह-निद्रा जाती रहेगी तब उसकी संसारी विषयवासना आदि सब पीड़ा जाती रहेगी ) ॥ ३ ॥ वेद, गुरु, सन्त और धर्म-शास्त्र इन सबों का मत है कि यह संसार देखने मात्र का है और ( इस जीव को ) सदा दुखदायी है, उसके बिना छोड़े और रामजी को भजे बिना कौन दुःख को टाल सकता है ॥ ४ ॥ संसार से पार होने के लिए ( यज्ञ, व्रत, जप, होम आदि ) बहुत से उपाय हैं जिन्हें वेद निर्मल वाणी से गाता है परन्तु हे तुलसीदास! मैं और मेरा के गये बिना तू जी में कभी भी सुख नहीं पावेगा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—मृषा = झूठ। संसृत = संसार। स्रुति = वेद।

[ १२१ ]

हे हरि यह भ्रम की अधिकाई।
देखत सुनत कहत समुझत संशय संदेह न जाई ॥ १ ॥
जो जग मृषा तापत्रय अनुभव होहि कहहु केहि लेखे।
कहि न जाइ मृगबारि सत्य भ्रम ते दुख होइ विसेखे ॥ २ ॥
सुभगसेज सोवत सपने वारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुँ नाव न पार पाव सो जबलगि आपु न जागै ॥ ३ ॥
अनविचार रमनीय सदा संसार भयंकर भारी।
सम संतोष दया विवेक ते व्यवहारी सुख कारी ॥ ४ ॥
तुलसिदास सब विधि प्रपंच जग जदपि झूठ स्रुति गावै।
रघुपति भक्ति संतसंगति विनु को भवत्रास नसावै ॥ ५ ॥

---

हैं सो तोते के ऊपर बैठते ही वह घूम जाती है और तोता उलटा टँग जाता है, ऐसे ही संसाररूपी खेत में शुभ अशुभ कर्म दो लड़कियां हैं। स्वभाव बीच की लकड़ी है और वासना चौंगली है, ज्यों ही जीव इस पर बैठा कि माया के फंदे में पड़ा।

हे हरे! यह भ्रम की अधिकता ( कैसी दृढ़ ) है। देखता हूँ, सुनता हूँ, कहता और समझता हूँ परन्तु संशय ( अर्थात् झूठे संसार को सच्चा मानना ) और संदेह ( कहिए संसार झूठा है वा सच्चा ) दूर नहीं होता ॥ १ ॥ ( जो कहे कि ) संसार मृषा कहिए झूठा है तो कहो तीन प्रकार के तापों का अनुभव किस हिसाब से होता है ( अर्थात् झूठे संसार का दुःख इस जीव को क्यों भोगना पड़ता है इससे तो सच्चा जान पड़ता है तहाँ कहते हैं कि नहीं संसार को सच्चा मानना कोरा भ्रम है देखो ) मृग-तृष्णा के जल को सत्य नहीं कह सकते ( क्योंकि वहाँ झूठे को भी जल नहीं है परन्तु मृग उसे ) भ्रम से सत्य जान विशेष दुःख सहता है ( भाव यह है कि संसार मृग-जल के समान बिलकुल झूठा है. जो लोग अज्ञान से इसे सत्य मानते हैं वे अंत में महादुख पाते हैं ) ॥ २ ॥ ( संसार के झूठे होने का और दृष्टांत लो ) जैसे ( कोई मनुष्य ) सुन्दर सेज पर सो रहा है और सुपने में मानों अपने को समुद्र में डूबा जान भय खा रहा है तो तब तक वह करोड़ों नावों से भी पार नहीं पा सकता कि जब तक आप न जाग पड़े ॥ ३ ॥ सो बिना ज्ञान के यह संसार सदा सुन्दर दीखता है पर ( विचार से देखो तो ) बड़ा भारी भयङ्कर है। केवल सब में समान-भाव, सन्तोष, दया और ज्ञान इनसे व्यवहार करनेवाले को (संसार) सुख देनेवाला है ॥ ४ ॥ हे तुलसीदास! यदि च संसार का प्रपंच (अर्थात् धन, धाम, स्त्री, पुत्र आदि ) सब प्रकार से झूठा है ऐसा वेद गाता है परन्तु राम भक्ति और सन्तों की संगति को छोड़ ( इस जीव को ) संसार के भय से कौन छुड़ा सकता है ( अर्थात् राम भक्ति और सत्संग ये ही संसार से छूटने में कारण हैं ) ॥ ५ ॥

[ १२२ ]

मैं हरि साधन करइ न जानी।<br>
जस आमय भेषज न कीन्ह तस दोष कहा दिरमानी ॥ १ ॥<br>
सपने नृप कहँ घटै विप्रवध विकल फिरै अघ लागे।<br>
वाजिमेधसत कोटि करे नहिं सुद्ध होइ बिनु जागे ॥ २ ॥<br>
स्रग महँ सर्प विपुल भयदायक प्रगट होइ अविचारे।<br>
बहु आयुध धरि बल अनेक करि हारहि मरइ न मारे ॥ ३ ॥<br>
निज भ्रमते रविकरसंभवसागर अतिभय उपजावै।

अवगाहत बोहित नौका चढ़ि कबहुँ पार न पावै ॥ ४ ॥
तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निरमूल न जाई।
तब लगि कोटि कलप उपाय करि मरिय तरिय नहिं भाई ॥ ५ ॥

हे हरे! मैंने (संसार त्यागने के लिए) उपाय करना ही नहीं जाना। जैसा रोग था वैसी दवाई नहीं की इसमें सुन्दर हिकमत का क्या दोष है (भाव यह है कि संसार-त्याग के लिए जप तप आदि देह के साधन तो किये पर असल दवा जो अन्तःकरण की शुद्धि है सो नहीं की) ॥ १ ॥ (इसमें दृष्टांत देते हैं कि) जैसे सुपने में किसी राजा को ब्राह्मण मारे की हत्या लगे और वह पाप लगने से घबराता फिरे पर बिना जागे वह सौ करोड़ अश्वमेधयज्ञ करने से भी शुद्ध नहीं हो सकता (ऐसे ही जब अन्तःकरण शुद्ध होने से आत्मज्ञान होगा तब संसार स्वयं छूट जायगा) ॥ २ ॥ (अब दूसरा दृष्टांत देते हैं कि अँधेरे में) जैसे अज्ञान से माला में बड़े भारी भयदायक सर्प का धोखा हो जाता है और उसे बहुतेरे आयुध लेकर और अनेक बल करके हार जाओ पर वह मारा नहीं मरता (ऐसे ही संसार झूठा है उसे भ्रम से सच्चा मान कर उसके नाश के लिए अनेक साधन करने से क्या होगा) ॥ ३ ॥ (अब तीसरा दृष्टांत देते हैं कि) जैसे अपने भ्रम से, सूर्य की किरणों से उत्पन्न हुआ (मृग-तृष्णा का) सागर बड़ा भय उत्पन्न करता है, उसमें डूब जाने से जहाज़ या नाव पर चढ़ कर कभी कोई पार नहीं पा सकता (क्योंकि वहाँ सागर है कहाँ जो कोई पार पावे वह तो झूठा भ्रम है ऐसे ही जब तक संसार को सच्चा मान रक्खा है तब तक भय है, जब आत्मज्ञान हो जायगा और संसार झूठा प्रतीत हो जायगा तब स्वयं भ्रम जाता रहेगा) ॥४॥ हे तुलसीदास! जब तक अहंकार सहित संसार का जड़ से नाश न होगा तब तक करोड़ों कल्प तक उपाय कर के मर जाओ पर हे भाई! तर नहीं सकते ॥ ५ ॥

(इस भजन का भाव यह है कि करोड़ों उपाय करो पर ज्ञान हुए बिना इससंसार का पार नहीं पाओगे। दृष्टान्तों पर विचार करो। भ्रम से ही ब्रह्महत्या लगी। भ्रम से ही अँधेरे में माला पड़ी थी उसे सर्प मान लिया। भ्रम से ही मृग-तृष्णा के समुद्र में डूबने से भय हुआ सो जिस झूठे भ्रम से ये बातें हुई हैं वह जब ज्ञान से दूर हो जायगा तब अपने आप संसार झूठा प्रतीत होगा और उसके आवागमन से छूट जाओगे इसके लिए केवल ज्ञान की आवश्यकता है) ॥

शब्दार्थ—आमय = रोग। भेषज = दवा। दिरमानी = इलाज, हिकमत (अरबी भाषा का शब्द है) घटै = लगे। अघ = पाप। बाजि = घोड़ा। मेध = यज्ञ। स्रग = माला। अवगाहन = डूबना। बोहित = नाव।

[ १२३ ]

असकछु समुझि परत रघुराया।
बिन तव कृपा दयाल दासहित मोह न छूटै माया॥ १॥
वाक्यज्ञान अत्यंतनिपुन भवपार न पावै कोई।
निसि गृहमध्य दीप की बातन्ह तम निवर्त नहिं होई॥ २॥
जैसे कोउ इक दीन दुखित अति असनहीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावै॥ ३॥
षटरस बहुप्रकार, भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै।
बिन बोले संतोष जनित सुख खाइ सोइ पै जानै॥ ४॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास अरु विषयत्रास मनमाहीं।
तुलसिदास तब लगि जगजोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं॥ ५॥

हे रघुनाथजी! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारी कृपा बिना न मोह छूटता है न माया छूटती है, तुम कृपालु और दासों के हित करनेवाले हो॥ १॥ (तत्वमसि-अहं ब्रह्मास्मि-इत्यादि महा) वाक्यों में और ज्ञान (की कोरी बातें मारने) में अत्यन्त चतुर होने से कोई संसार का पार नहीं पा सकता (अर्थात् वेदान्त पढ़े भी हैं और दूसरों को शिक्षा भी देते हैं परन्तु ज्ञान के वाक्यों पर चलते नहीं तो संसार कैसे छूट सकता है) जैसे रात्रि को घर में दीपक की बातें करने से अँधेरा दूर नहीं हो सकता (भाव यह है कि अविद्यारूपी रात्रि फैलने पर हृदयरूपी घर में आत्मज्ञानरूपी दीपक बालने से अज्ञानरूपी अन्धकार मिटेगा)॥ २॥ (अब दूसरा दृष्टान्त देते हैं) जैसे कोई एक बड़ा ग़रीब बिना भोजन के दुख पा रहा है उसके घर में कामधेनु और कल्प वृक्ष की तसवीर लिखने से उसका दुख नहीं जा सकता। (भाव यह है कि यदि कोई मनुष्य अज्ञान से विषयवासना में लगा दीन दुखी हो रहा है तो उसका अज्ञान दूर करने के लिए उसके घर में गणेश, सरस्वती आदि की तसवीरें टाँग दो तो क्या हो सकता है) ॥ ३॥ (अब तीसरा दृष्टान्त देते हैं) जैसे कोई बहुत तरह के षटरस भोजनों का नाम रात दिन रटा करे (कि लड्डू, कचौड़ी, इमरती, जलेबी, खुरमा आदि वह क्या उमदा है पर ऐसा करने से क्या हो सकता है) और बिना बोले (अर्थात् बिना नाम लिये) भी सन्तोष (अर्थात् पेट भरने) से उत्पन्न हुआ सुख तो जो खाता है सो ही जानता है (भाव—

पाखंड करके ऊपर से भले ही रामनाम रटा करो। भीतर की तृप्ति तो तब ही होगी जब निर्मल अन्तःकरण में आत्मज्ञान होगा) ॥ ४ ॥ सो जब तक अन्तःकरण में (आत्मज्ञान का) उजेला नहीं होगा और ( इन्द्रियों के ) विषय से भय नहीं होगा तब तक हे तुलसीदास! तू संसार की ( चौरासी लाख ) योनियों में भ्रमता ही रहेगा और तुझे स्वप्न में भी सुख नहीं मिलेगा ॥ ५ ॥

[ १२४ ]

जो निज मन परिहरै विकारा ।
तौ कत द्वैतजनित संसृति दुख संसय सोक अपारा ॥ १ ॥
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हे बरिआई ।
त्यागन गहन उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं ॥ २ ॥
असन वसन पसु वस्तु विविध विधि सब मनिमहँ रह जैसे ।
स्वरग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे ॥ ३ ॥
विटप मध्य पुतरिका सूत महँ कंचुक बिनहिं बनाए ।
मनमहँ तथा लीन नाना तन प्रगटत अवसर पाए ॥ ४ ॥
रघुपति भक्ति वारिछालित चित.विनु प्रयासही सूझै ।
तुलसिदास कह चिद विलास जग बूझत बूझत बूझै ॥ ५ ॥

( अब मन के द्वारा जीव के बंधन का मोक्ष दिखाते हैं ) जो तू अपने मन के विकारों को छोड़ दे ( अर्थात् विषय आदि की इच्छा न करे ) तो तुझे ( रागद्वेष आदि ) द्वैत भाव से उत्पन्न संसारी दुख, भ्रम और अपार शोक क्यों हों, ( भाव—जो तू मन स्थिर करके रामनाम में लगावे तो संसारी दुख, सुख कुछ नहीं व्यापे ) ॥ १ ॥ शत्रु, मित्र और मध्यस्थ इन तीनों को भी मन ने ही हठ से उत्पन्न किया है ( अर्थात् जिससे मन मिला वह मित्र, जिससे हटा वह शत्रु और जिसने बुरा-भला नहीं किया उसे तू ने मन से मध्यस्थ कहिए न शत्रु, न मित्र मान लिया) और सर्प, सोना और तृण के समान (अर्थात् जैसे मार्ग में सर्प देखा, प्राणघातक होने से शत्रु जान त्याग दिया, सोना देखा लाभकारी होने से मित्र समान जान कर उठा लिया, तृण देखा मध्यस्थ के समान चाहना हुई उठा लिया बरन् त्याग दिया ऐसे ही शत्रु का ) त्याग (मित्र का) ग्रहण और ( मध्यस्थ की ) उपेक्षा की ( अर्थात् उसे न छोड़ा और न ग्रहण किया ) ॥२॥ (अब दूसरा

दृष्टान्त देते हैं कि) जैसे भोजन, वसन, पशु और अनेक प्रकार की सब वस्तुएँ मणि में रहती हैं वैसे ही स्वर्ग, नरक, चर, अचर और बहुत से लोक मन में बसते हैं (भाव यह है कि मणि है तो छोटा पर उसका मोल बड़ा होने से जो वह किसी अच्छे जौहरी के हाथ पड़ा तो अच्छा मोल मिलने से भोजन आदि सब वस्तु आ सकती हैं पर जो वह हाथ से गिर दूसरे के हाथ पड़ गया तो जैसे सब वस्तुओं का नाश हो जायगा, ऐसे ही जो मनरूपी मणि राम नाम जौहरी के हाथ पड़ा तो उसके मोल से परम सुख, आत्मज्ञान और मोक्ष मौजूद हैं और जो संसार के हाथ पड़ा तो चौरासी योनि धरी हैं अर्थात् जीव चर, अचर की योनि धर लोकों में घूमता फिरेगा) ॥ ३ ॥ (अब तीसरा दृष्टान्त देते हैं कि) जैसे वृक्ष के बीच में कठपुतली, सूत में वस्त्र बिना बनाये रहते हैं ऐसे ही मन के भीतर अनेक प्रकार के (सुर, नर, मुनि, कीट, पतङ्ग आदि के) शरीर छिपे रहते हैं सो समय समय पर प्रकट होते हैं (भाव यह है कि जैसे समय पर पुतली काठ से बढ़ई द्वारा बन जाती है, कपड़ा सूत से कोली द्वारा बुन जाता है ऐसे ही यह जीव मन के द्वारा शुभ अशुभ कर्म से नर आदि का शरीर बन जाता है) ॥ ४ ॥ (अब मन के विकार छूटने की युक्ति कहते हैं कि) रामजी की भक्तिरूपी जल से जब चित्त धुल जायगा (अर्थात् अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा) तब अनायास ही (विषय-वासना आदि मैल धुलने से आत्म और परमात्म स्वरूप) सूझ पड़ेंगे परन्तु हे तुलसीदास! चिद्, विलास (अर्थात् सदा चैतन्य अखंड आनन्द स्वरूप) को तो (जीव) संसार में समझते समझते ही समझेगा (एक साथ नहीं समझ सकता। पहले मन को विषय-वासना से हटा कर और भजन, पूजन आदि करके अन्तःकरण शुद्ध होना चाहिए) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—संसृति = संसार। संसय = झूठे को सच्चा मानना। उपेच्छनीय = न लेने योग्य, न त्यागने योग्य। हाटक = सोना। अहि = साँप। पुतरिका = कठपुतली। कंचुक = वस्त्र। लीन = छुपा। चित्त = चैतन्य। विलास = आनन्द।

[ १२५ ]

मैं केहि कहौं विपति अति भारी। श्रीरघुवीर धीर हितकारी ॥१॥
मम हृदै भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥ २ ॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं विनय निहोरा ॥३॥
तम मोह लोभ अहँकारा। मद क्रोह बोधरिपु मारा ॥ ४ ॥
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहिं जान अनाथा ॥५॥

मैं एक अमित बटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥ ६ ॥
भागेहु नहि नाथ उबारा । रघुनायक करहु सँभारा ॥ ७ ॥
कह तुलसिदास सुनु रामा । लूटहिं तसकर तव धामा ॥ ८ ॥
चिंता यह मोहि अपारा । अपजस नहिं होइ तुम्हारा ॥ ९ ॥

मैं किस से अपनी बड़ी भारी विपत्ति कहूँ । हे रघुनाथजी ! तुम ही भला करने में धोर हो ॥ १ ॥ हे प्रभो ! मेरे हृदय में तुम्हारा निवास है ( अर्थात् मेरा हृदय तुम्हारे रहने का मन्दिर है ) उसमें बहुत से चोर आकर बसे हैं ॥ २ ॥ वे कठोर मुझसे बड़ी ज़बरदस्ती करते हैं और मेरी विनती और निहोरे को नहीं मानते ॥ ३ ॥ ( जो कहो कि नाम बताओ वे कौन हैं तहाँ कहते हैं कि वे ) अविद्या, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध, अज्ञान और काम ( ये आठ ) हैं ॥ ४ ॥ सो हे नाथ ! वे बड़ा ऊधम मचाते हैं ( अर्थात् मेरा ज्ञान विरागरूपी धन लूटे लेते हैं ) और मुझे अनाथ अर्थात् लावारसी जान कुचले डालते हैं ॥ ५ ॥ मैं अकेला हूँ और चोर बहुत हैं ( सो उनके कोलाहल में ) मेरी पुकार कोई नहीं सुनता (भाव—अन्य देवताओं के पेट में तो इन डाकुँओं के मारे आप ही पानी हो रहा है वे सुनें भी तो मुझे क्या बचावेंगे ) ॥ ६ ॥ ( जो कहो कि और जगह भाग जाओ तो ये वे डाकू नहीं हैं जो अपने ही शहर में लूटें ये तो जहाँ जाऊँगा वहाँ ही पहुँचेंगे ) सो हे नाथ ! इनसे भागने पर भी पीछा नहीं छूटेगा । हे रघुनाथजी ! तुम ही रक्षा करो ॥ ७ ॥ ( जो कहो कि घर तो हमारा लूटते हैं तुझको क्या पड़ी है, तो ) हे राम ! सुनो तुलसीदास का तो इतना ही कहना है कि चोर तुम्हारे घर को लूटे लेते हैं ॥ ८ ॥ और मुझे तो ( केवल ) यही बड़ी चिन्ता है कि तुम्हारी बदनामी न हो ( अर्थात् लोग यह न कहें कि चोर भगवान् के घर को भी लूट ले गये । इस सब का यह भाव है कि काम, क्रोध आदि से मुझे बचाओ कि जिससे आपके भजन में बाधा न हो ) ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—बोधरिपु = ( ज्ञान का वैरी ) अज्ञान । मार = काम । बटपार = उठाईगीरे । उबारा = बचाव । तसकर = चोर, डाकू ।

[ १२६ ]

मन मेरे मानैं सिख मेरी । जो निज भक्ति चहै हरि केरी ॥१॥
उर आनहिं प्रभु कृत हित जेते । सेवहि तजे अपनपौ चेते ॥२॥
दुख सुख अरु अपमान बड़ाई । सब सम लेखहिं विपति विहाई ॥३॥

सुनु सठ कालग्रसित यह देही । जनि तेहि लागि विदूषहि केही ४
तुलसिदास बिनु असि मति आए । मिलहिं न राम कपट लौ लाये ॥

(मन ही को जीव के सुख दुख का कारण जान शिक्षा देते हैं ) हे मेरे मन ! तू मेरी सीख मान, जो अपने में भगवान् की भक्ति करना चाहे ॥ १ ॥ भगवान् ने तेरे जितने भले कर्म किये हैं ( अर्थात् गर्भ में रक्षा की, फिर मनुष्य-तन देकर पाल-पोस कर बड़ा किया ) सो उनको याद कर। और अपनी देह का जो अभिमान है उसे छोड़कर आपे में आकर उनकी सेवा कर ॥ २ ॥ तू सुख दुख, अनादर और बड़ाई सब को समान जान तब तेरा संकट दूर होगा ॥ ३ ॥ अरे शठ ! सुन ले कि इस शरीर को काल ने ग्रस रक्खा है ( पल भर का ठिकाना नहीं है ) उसके लिए किसी को दोष मत दे (भाव—सब में ईश्वर मान, किसी का अपमान मत कर)। ४। हे तुलसी-दास ! ऐसी बुद्धि के बिना आये कपट की लौ लगाने से रामजी नहीं मिलते । ( भाव—संसारी विषय-वासना से हट कर और सुख, दुख आदि को समान जान बेखटके हो राम-भक्ति कर ) ॥ ५ ॥

[ १२७ ]

मैं जानी हरिपदरति नाहीं । सपनेहुँ नहि विराग मन माहीं ॥१॥
जे रघुवीरचरन अनुरागे । तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे ॥२॥
कामभुअंग डसत जब जाही । विषय नींब कटु लगै न ताही ॥३॥
असमंजस अस हृदय विचारी । बढ़त सोच नित नूतन भारी ॥४॥
जब कब रामकृपा दुख जाई । तुलसिदास नहिं आन उपाई ॥५॥

( अब अपने में भगवत अनुरागहीनता का लक्षण कहते हैं ) मैंने जान लिया कि मेरी प्रीति भगवान् के चरणों में नहीं है क्योंकि मेरे मन में सुपने में भी विराग नहीं है ॥ १ ॥ जो रामचरणों के प्रेमी हैं उन्होंने ( धन, धाम, स्त्री पुत्रादि के ) सब भोगों को रोगों के समान त्याग दिया है ॥ २ ॥ पर जब जिसको कामरूपी सर्प डसता है तब उसे विषयरूपी नीम कड़वा नहीं लगता ( अर्थात् जैसे सर्प के काटे को नीम कड़ुआ नहीं लगता ऐसे ही जिसको सुन्दर स्त्री का चसका पड़ गया है उसे विषय बुरा नहीं लगता पर ये नाश की निशानी है । न साँप का काटा बचे और न विषयी भवसागर से तरे) ॥ ३ ॥ ऐसा विचारने से मन में यही दुविधा बनी रहती है ( कि विषय-वासना छोड़ूँ

या राम-भजन करूँ ) और दिन पर दिन नया सोच बढ़ता जाता है ( कि यदि मनुष्य देह पाकर रामभजन कर अब भी संसार से न छूटूँगा तो कब छूटूँगा ) ॥ ४ ॥ ( यज्ञादि तो मुझसे हो नहीं सकते पर इतनी आशा है कि भगवान् तरन-तारन हैं ) जब कभी रामजी की कृपा होगी तब यह दुःख चला जायगा (भाव—वे मुझे अवश्य आवागमन से छुड़ावेंगे ) हे तुलसीदास ! दूसरा उपाय नहीं है ॥ ५ ॥

[ १२८ ]

सुमिरु सनेह सहित सीतापति ।
रामचरन तजि नाहिंन आन गति ॥ १ ॥
जप तप तीरथ जोग समाधी ।
कलि मति विकल न कछु निरुपाधी ॥ २ ॥
करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रक्तबीज जिमि बाढ़त जाहीं ॥३॥
हरनि एक अघ असुर जालिका। तुलसिदास प्रभु कृपाकालिका ॥

( हे जीव ! ) प्रीति से सीतापति ( रघुनाथजी ) का स्मरण कर। रामजी की चरणों को छोड़ और गति नहीं है ॥ १ ॥ जप, तप, तीरथ, योग, और समाधि ये कलियुग में बुद्धि ठिकाने न रहने से कोई भी उपाधिरहित नहीं है ( भाव—सबके करने में खटका लगा है ) ॥ २ ॥ और ( जप, तप आदि ) सुन्दर काम करने से भी तो पाप दूर नहीं होते बरन् रक्तबीज (राक्षस) की भाँति बढ़ते ही जाते हैं (भाव—पुण्य से एक पाप छूटा नहीं कि और पाप होगये और पुण्य बनता नहीं और न कोई ऐसा देवता है कि पापों का नाश करता रहे ) हे तुलसीदास ! पापरूपी असुरों के समूह को नाश करनेवाली तो एक रघुनाथजी की कृपारूपी कालिका ही है ( जो संसाररूपी रक्तबीज का भक्षण कर सकती है ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—निरुपाधी = बेखटके । अघ = पाप । जालिका = समूह । रक्तबीज = एक राक्षस था जिसकी जितनी रुधिर की बूदें धरती पर गिरती थीं उतने ही राक्षस हो जाते थे। काली ने उसका नाश किया था। यह कथा मारकण्डेयपुराण में है।

[ १२९ ]

रुचिर रसना तू राम राम राम क्यों न रटत ।
सुमिरत सुख सुकृत बढ़त अघ अमंगल घटत ॥ १ ॥

बिनु स्रम कलिकलुसजाल कटु कराल कटत ।
दिनकरके उदय जैसे तिमिर तोम फटत ॥ २ ॥
जोग जाग जप विराग तप सुतीरथअटत ।
बाँधिवे को भवगयंद रेनु कि रजु बटत ॥ ३ ॥
परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत ।
लालच लघु तेरो लखि तुलसि तोहि हटत ॥ ४ ॥

(अब सबसे सुगम उपाय बतलाते हैं) तू सुन्दर जीभ से राम राम क्यों नहीं रटता। जिस (राम नाम) के सुमिरन से सुख और पुण्य बढ़ते हैं और पाप और विघ्न घटते हैं॥ १ ॥ और बिना ही परिश्रम कलियुग में किया पापों का समूह जो कड़वा और भयङ्कर है सो ऐसे कट जाता है जैसे सूर्य के उदय होने से अँधेरे का समूह फट जाता है॥ २ ॥ योग, यज्ञ, जप, वैराग्य, तप और सुन्दर तीर्थाटन ये कर्म ऐसे हैं जैसे संसार रूपी हाथी के बाँधने को धूल की जेवड़ी बटना (भाव—जैसे हाथी लोहे की संकल से बँधता है न कि धूल की रस्सी से; ऐसे ही मनरूपी हाथी राम-नाम की रस्सी से बँध सकता है उसके लिए जप, तप, तीर्थाटन वृथा हैं)॥ ३ ॥ चिन्तामणि के समान सुन्दर (राम) नाम को छोड़कर (जप, तपरूपी) चिरमिटी को देखकर ललचाता है सो तेरी इस तुच्छ इच्छा को देखकर तुलसीदास तुझसे हटता है॥ ४ ॥

शब्दार्थ—तोम = समूह । अटत = फिरता । गयंद = हाथी । गुंजा = घुंघची । लटत = ललचाता है।

[ १३० ]

राम राम राम राम राम राम जपत ।
मंगल मुद उदित होत कलि मल छल छपत ॥ १ ॥
कहु के लहे फल रसाल बबुर बीज बपत ।
हारहि जनि जनम जाय गालगूल गपत ॥ २ ॥
काल करम गुन सुभाउ सब के सीस तपत ।
रामनाम महिमा की चरचा चले चपत ॥ ३ ॥

साधन विनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत ।
कलिजुग वर बनिज विपुल नाम नगर खपत ॥ ४ ॥
नाम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत ।
पावन किये रावन रिपु तुलसिहु से अपत ॥ ५ ॥

राम-नाम जपने से आनन्द-मंगल उत्पन्न होता है। और कलियुग का पाप और कपट छिपता फिरता है ॥ १ ॥ कहो किसने बबूर के बीजों को बोकर आम के फल पाये हैं ( अर्थात् बुरा काम करके किसने अच्छा फल पाया है ) सो तू गाल बजा बजा कर जो गप्पें मारता है सो अपने जन्म को वृथा मत खोवे ( भाव—कोरी बातों में वृथा समय मत बितावे; राम-नाम का भजन कर जिससे काम चले ) ॥ २ ॥ काल, ( बुरे ) कर्म ( सत, रज, तम, आदि ) गुण और स्वभाव ये सबके मस्तकों को सताते हैं (अर्थात् सबको अपना फल दिये बिना नहीं मानते ) पर श्रीरामजी की महिमा की चरचा चलने पर चप जाते हैं ( अर्थात् शरमा कर दब जाते हैं ) ॥ ३ ॥ लोग ( जप, तप आदि साधनों की मेहनत से ) घबराकर बिना साधन के ही सिद्धियों को लपका चाहते हैं (सो कैसे हो सकता है)। कलियुग का सुन्दर बहुत सा सौदा (जो अधर्म) है सो रामचन्द्रजी के नाम रूपी नगर में बिक जाता है (भाव यह है कि जैसे बड़े शहर में भली बुरी वस्तु सब बिक जाती हैं उसी तरह राम का नाम लेने से कलियुग के पाप भी नाश हो जाते हैं ) ॥४॥ नाम का विश्वास और उसमें प्रीति करने से मन स्थिर हो जाता है। रामचन्द्रजी ने रावण सरीखे शत्रु और तुलसीदास से पापी को भी पवित्र कर दिया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ— रसाल=आम। गूल ( गुल )=शब्द, शोर ( अरबी शब्द है ) । गपत=गप्पें मारना। लपत=लपकना। बनिज=सौदा। थपत=रहता है। अपत=अपवित्र।

[ १३१ ]

पावन प्रेम रामचरनकमल जनम लाहु परम ।
रामनाम लेत होत सुलभ सकल धरम ॥ १ ॥
जोग मख विवेक विरति वेद विदित करम ।
करिबे कहँ कटु कठोर सुनत मधुर नरम ॥ २ ॥

तुलसी सुनि ज्ञान बूझि भूलहि जनि भरम ।
तेहि प्रभु की तू सरन होहि जेहि सब की सरम ॥ ३ ॥

रामजी के चरणों में पवित्र कहिए निष्काम प्रेम होना जन्म का बड़ा लाभ है। रामजी का नाम लेने से सब धर्म सहज में मिल जाते हैं ॥ १ ॥ यों तो योग, यज्ञ, ज्ञान और वैराग्य ये वेद में प्रकट हैं कि जो सुनने के ही मीठे और कोमल हैं (अर्थात् उनका सुन्दर फल सुनकर उनका करना सहज जान पड़ता है) पर करने में कठिन होने से वे कडुये लगते हैं (अर्थात् उनके करने में मन नहीं लगता फिर उनसे अपना भला होने की क्या आशा है) ॥२॥ सो हे तुलसीदास! (इन साधनों के फल को) सुन और ज्ञान से समझ कर भूल करके भ्रम में मत पड़े (कि यज्ञ आदि साधन जो वेद में कहे हैं वे अवश्य फल देंगे) तू तो उस प्रभु का हो ले कि जिसको सब की लाज है ॥ ३ ॥

[ १३२ ]

राम से प्रीतम की प्रीतिरहित जीव जाय जियत ।
जेहि सुख सुख मानि लेत सुख सो समुझ कियत ॥ १ ॥
जहँ तहँ जेहि जोनि जनम महि पताल वियत ।
तहँ तहँ तू विषय सुखहि चहत लहत नियत ॥ २ ॥
कत विमोह लट्यौ फट्यौ गगन मगन सियत ।
तुलसी प्रभु सुजस गाइ क्यों न सुधा पियत ॥ ३ ॥

रामजी सरीखे प्रीतम की प्रीति बिना यह जीव वृथा जीता है। जिस (विषय के) सुख को तू सुख मानता है उस सुख को समझ तो कि कितना है (अर्थात् थोड़ी देर का है और उसके फल से ८४ योनि भुगतनी पड़ेंगी) ॥ १ ॥ तैने पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग में जहाँ जहाँ जिस जिस योनि में जन्म लिया वहाँ (उसी उस योनि में) जिस सुख को चाहा वही तुझे भाग्य के अनुसार मिला ॥ २ ॥ अब महा अज्ञान से लटकर (अर्थात् विषय-वासना में पड़कर) फटे आकाश को सीने के लिए क्यों ख़ुश हो रहा है (अर्थात् जैसे फटा आकाश सिलना असंभव है ऐसे ही तुझे संसारी विषयों से परमानन्द सुख मिलना असंभव है और जो तू सुख को चाहता ही है तो)

हे तुलसी ! तू भगवान् का सुन्दर यश गाकर क्यों नहीं अमृत पीता है ( कि जिससे अमर हो जाय ) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—वियत = आकाश । नियत = भाग्य ।

[ १३३ ]

तोसों हौं फिरि फिरि हित प्रिय पुनीत सत्य वचन कहत ।
सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत ॥ १ ॥
छोटो बड़ो खोटो खरो जग जो जहँ रहत ।
अपने अपने को भलो कहु जो न चहत ॥ २ ॥
विधिलगि लघुकीटअवधि सुख सुखी दुख दहत ।
पसुलौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत ॥ ३ ॥
विषय मुद निहार भार सिर को काँधे ज्यों वहत ।
यौंही जिय जानि मानि सठ तू साँसति सहत ॥ ४ ॥
पायो केहि घृत विचार हरिनवारि महत ।
तुलसी तकु ताहि सरन जाते सब लहत ॥ ५ ॥

रे जीव ! मैं तुझसे बार बार हित के प्यारे पवित्र अर्थात् निष्कपट, और सत्य वचन कहता हूँ । सो तू इन्हें सुनकर, मन में विचार कर और समझ कर भी सीधे रास्ते को क्यों नहीं ग्रहण करता ( अर्थात् रामजी की शरण क्यों नहीं होता ) ॥ १ ॥ संसार में छोटा ( पशु आदि ) बड़ा ( ब्रह्मादिक ) बुरा और भला जो जहाँ पर रहता है कहो तो वह कौन सा है जो अपना अपना भला न चाहता हो ( सो रामजी भी अपने शरणागत का भला चाहते हैं ) ॥ २ ॥ ब्रह्मा से लेकर छोटे से छोटे कीड़े तक ( सब ) सुख से सुखी होते और दुख से तचते हैं । और जैसे ग्वाला पशु को ( रात्रि में ) बाँधता है, ( सवेरे चरने के लिए ) छोड़ता है और जुए में जोतता है, वैसे ही ईश्वर भी ( जीव को अविद्यारूपी रात्रि में मोह आदि बन्धन से ) बाँधता है, ( ज्ञानरूपी सवेरा होने पर ) छोड़ता है और ( वह जैसे कर्म करने योग्य हो उसे वैसेही ) कर्म में लगा देता है ॥ ३ ॥ विषय के आनन्द को देख ले वह सिर के बोझ को कंधे पर धरने के समान है ( अर्थात् जब सिर बोझ के मारे दुख उठता है तब मनुष्य उसे कंधे पर धर लेता है इसमें थोड़ा

सा सुख तो हुआ पर दुख नहीं छूटा ) ऐसा मन में समझ कर मान जा। हे मूर्ख! क्यों क्लेश सहता है॥ ४॥ समझ तो सही, मृग-तृष्णा को मथ कर किसने घी पाया है (अर्थात् किसी ने नहीं पाया। जैसे घृत दुग्ध ही से निकलता है ऐसे ही सुख रामजी के प्रेम से निकलेगा; विषय में कहाँ धरा है ) सो हे तुलसीदास! तू उसकी शरण ले कि जिससे सब सुख पाते हैं॥ ५॥

शब्दार्थ—पुनीत = पवित्र। गुनि = गुनना, विचारना। अवधि = तक। पसुपाल = ग्वाला। ईस = ईश्वर। नहत = जोतता है। सासति = दुख। महत = मथना।

[ १३४ ]

ताते हों बार बार देव द्वार परि पुकार करत।
आरति नति दीनता कहे प्रभु संकट हरत॥ १॥
लोकपाल सोक विकल रावन डर डरत।
का सुन सकुचे कृपालु नरसरीर धरत॥ २॥
कौसिल मुनि तीय जनक सोक अनल जरत।
साधन केहि सीतल भये सो न समुझि परत॥ ३॥
केवट खग सबरि सहज चरन कमल न रत।
संमुख तोहिं होत नाथ कुतरु सुफल फरत॥ ४॥
बंधुवैर कपि विभीषन गुरु गलानि गरत।
सेवा केहि रीझि राम किये सरिस भरत॥ ५॥
सेवक भयो पवनपूत साहेब अनुहरत।
ताको लिये राम नाम सब को सुढर ढरत॥ ६॥
जाने बिन राम रीति पचि पचि जग मरत।
परिहरि छल सरन गये तुलसिहु से तरत॥ ७॥

हे देव! इसलिए मैं बार बार तुम्हारे द्वार पर पड़ कर पुकारता हूँ कि दुखियों के नवकर ग़रीबी कहते ही हे प्रभो! तुम संकट को दूर कर देते हो॥ १॥ ( यह कैसे जान पड़ा कि जब इन्द्रादिक ) लोकपाल रावण के डराने से डरने लगे और शोक से घबराये

तब हे कृपालु! ( उनका दुख ) सुनते ही क्या तुम नर-तन धारण करने में रुके (अर्थात् नहीं रुके ) ॥ २ ॥ विश्वामित्र, (१) ( मारीच आदि से ) मुनि की स्त्री (अहिल्या पति शाप से ) और जनक ( धनुष न टूटने से ) सोचरूपी अग्नि में भस्म हुए जाते थे सो वे किस उपाय से शान्त हुए नहीं जान पड़ता ॥ ३ ॥ निषाद, पक्षी, (जटायु) और शवरी (भीलनी) इनकी प्रीति तुम्हारे चरणों में स्वभाव ही से नहीं थी । परन्तु हे नाथ! तुम्हारे सामने होते ही ( अर्थात् तुम्हारे दर्शन करते ही ऐसा हुआ मानों ) बुरे बुरे ( बबूल, थूहर आदि ) वृक्षों में ( अंगूर, आम आदि ) सुन्दर सुन्दर फल लटक पड़े ( भाव यह है कि ये महानीच थे, बिना किसी साधन के केवल तुम्हारी कृपा से तर गये ) ॥ ४ ) फिर भाइयों के वैर से सुग्रीव और विभीषण बड़े भारी दुःख से गले जाते थे ( अर्थात् दुःख से मरे जाते थे, कहीं बैठने को ठिकाना नहीं था ) सो हे राम! किस सेवा से रीझ कर ( उन्हें राजतिलक दे ) भरतजी के बराबर कर लिया ( भाव—सेवा तो पीछे करी थी पर पहले राज क्यों दिया यह भी तुम्हारी कृपा है ) ॥ ५ ॥ ( अब यह जानना चाहिए कि सुग्रीव विभीषण ने तो मतलब से सेवा करी पर जिन हनूमान् ने बिना कारण सेवा करी उन्हें क्या दिया सो ही कहते हैं ) हनूमान्जी दास होने पर भी स्वामी के समान हो गये। हे राम! उन्हीं का नाम लेते हो तुम सब पर अच्छी तरह ढलते हो ( अर्थात् कृपा करते हो ) ॥ ६ ॥ हे रघुनथजी! तुम्हारी रीति ( कृपा, सुशीलता आदि ) बिना जाने संसार ( अन्य साधानों में ) पच पच कर मरता है पर कपट को छोड़ कर तुम्हारी शरण जाने से तुलसीदास सरीखा भी तर जाता है ॥ ७ ॥

[ १३५ ]

राग सूहो बिलावल।

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो।
अगम जो अमरनिहूँ सो तनु तोहिं दियो॥

छंद।

दियो सुकुलजनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चार को।
जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को॥

---

(१) कौशिक, अहल्या, केवट, गिद्ध, शवरी और विभीषण की कथा पुस्तक के अंत में देखो।

यह भरतखंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली ।
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहति है विष फल फली ॥ १ ॥

अजहूँ समुझि चित दै सुनु परमारथ ।
है हित सो जगहूँ जाहिते स्वारथ ॥
स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो कातैं कौन वेद बखानई ।
देखु खल अहिखेल परिहरि सो प्रभुहि पहिचानई ॥
पितु मातु गुरु स्वामी अपनपै तिय तनय सेवक सखा ।
प्रिय लगत जाके प्रेम सो विन हेत हित नहिं तैं लखा ॥ २ ॥

दूरि न सो हितू हेर हियेही है । छलहिछाँड़ि सुमिरे छोह किये ही है ॥
किये छोह छाया कमल कर की भक्त पर भज तेहि भजै ।
जगदीस जीवन जीव को जो साज सब सब को सजै ॥
हरिहि हरिता विधिहि विधिता सिवहि सिवता जो दई ।
सोइ जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई ॥ ३ ॥

ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि ।
ध्यान अगम सिवहूँ भेंट्यो केवट उठि ॥
भरि अंक भेट्यो सजलनयन सनेह सिथिल सरीर सो ।
सुर सिद्ध मुनि कवि कहत कोउ न प्रेमप्रिय रघुवीर सो ॥
खग सबरि निसिचर भालु कपि किए आपुते वंदित बड़े ।
तापर तिन्ह कि सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े ॥४॥

स्वामी को सुभाव कह्यो सो जब उर आनि हैं ।
सोच सकल मिटिहैं राम भलो मनमानि हैं ॥
भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइ है ।
तत्काल तुलसीदास जीवन जन्म को फल पाइ है ॥

जपि नाम करहिं प्रनाम कहि गुनग्राम रामहिं धरि हिये ।
विचरहिं अवनि अवनीस चरनसरोज मन मधुकर किये ॥ ५ ॥

रे मन ! तूने राम सरीखे स्नेही से प्यार नहीं किया । उन्होंने देवताओं को भी दुर्लभ ऐसा मनुष्य का शरीर तुझे दिया है ॥ १ ॥ सुन्दर कुल में जन्म और सुन्दर शरीर ( कि जो धर्म, अर्थ, काम मोक्ष ) चारों पदार्थों का कारण है । जिसको पाकर पण्डित जन महादेव और विष्णु का बड़ा पद पाते हैं । फिर यह गंगाजी के पास भरतखंड सुन्दर स्थान है और वहाँ संगति भी अच्छी है । परन्तु हे कायर तेरी दुष्ट बुद्धिरूपी कल्प वेल ज़हर के फल (अर्थात् जन्म-मरणरूपी फल) फला चाहती है ( उसमें तो सुन्दर धर्म, अर्थ आदि फल लगने चाहिएँ ) ॥ १ ॥ अब भी समझ कर चित्त लगा और परमार्थ की बात सुन । वह बात इस लोक में भला करने वाली है और संसार में भी उससे अपना स्वार्थ निकलता है ( अर्थात् ऐश्वर्य आदि मिलते हैं ) और जो स्वार्थ ही प्यारा है ( परमार्थ नहीं है ) तो वह स्वार्थ किससे मिलेगा, वह कौन है कि जिसको वेद गाते हैं, ( अर्थात् रघुनाथजी ही हैं ) अरे दुष्ट ! देख सर्प के साथ खेलना छोड़ दे ( नहीं तो वह काटे बिना नहीं छोड़ेगा और वृथा शरीर जायगा । भाव यह है कि संसार सर्प के समान है और विषय विष के समान है, जो तू संसारी विषयवासना में पड़ेगा तो ८४ लाख योनि अवश्य भुगतनी पड़ेंगी ) सो उन प्रभु को पहचान । पिता, माता, गुरु, स्वामी, देहाभिमान, स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र जिसके प्रेम से ये सब अपने प्यारे लगते हैं उस निष्कारण हित करने वाले को तूने नहीं पहचाना ॥२॥ (जो कहो कि वह कहाँ है तहाँ कहते हैं कि) वह हित करनेवाला दूर नहीं है, ढूंढ़, वह हृदय में ही है ( जो कहो कि हृदय में है तो मिलता क्यों नहीं, तहाँ कहते हैं कि जीव ईश्वर से छल कर विषयों में आसक्त हो उसे भूल गया है इससे वह नहीं मिलता ) सो छल को छोड़ कर प्रीति से स्मरण कर, वह कृपा करता हुआ ही मिलेगा । वह कृपा करके अपने करकमलों की छाया भक्तों पर करता है और जो उसे भजता है उसे वह भी भजता है । ( अर्थात् भक्त जो चाहता है सो वह करता है, देखो शतरूपा के कहने से पुत्ररूप धारण किया ) । वह जगत् का स्वामी, जीवों का जिलाने वाला है और जो सब का सब ( अर्थात् ब्रह्मादिकों के भी ऐश्वर्य की बराबर ) सामान तैयार करता है और जिसने विष्णु को हरिता, ( पालन की शक्ति ) ब्रह्मा को विधिता ( उत्पत्ति की शक्ति ) और शिवजी को शिवता ( संहार की शक्ति ) दी है । यह वही आनन्द मंगल भरी ऐसी जानकीपति (रामजी) की माधुरी मूर्ति है ॥३॥

और यह स्वामी बहुत ही बड़ा है (अर्थात् ब्रह्मादिकों का भी स्वामी है परन्तु) उसका स्वभाव बड़ा सुन्दर और सीधा है। क्योंकि जिसको ध्यान में लाना महादेवजी को भी दुर्लभ है वह निषाद से उठ कर मिला है और बाँह से बाँह और छाती से छाती मिला कर मिलते में उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसका शरीर प्रेम से शिथिल हो गया। देवता, सिद्ध, मुनीश्वर और कवि लोग कहते हैं कि रामजी के समान प्रेम प्रिय ( अर्थात् प्रेम करनेवाले से प्रीति मिलानेवाला ) कोई नहीं है। जटायु, भीलनी, विभीषण, जाम्बवन्त, और हनुमान् इनको उसने अपने से भी अधिक पूजनीय कर दिया, तिस पर भी इनकी सेवा याद करके मन में मारे सकुच के गड़ा जाता है कि (मैंने इनका कुछ उपकार नहीं किया ) ॥ ४ ॥ जिस स्वामी का स्वभाव मैंने कहा है उसे जब तू अपने मन में लावेगा ( अर्थात् उसका स्मरण करेगा ) तो तेरी संपूर्ण चिन्ता मिट जायगी और रामजी भी मन में भला मानेंगे। रामजी इतने में ही भला मानेंगे कि जो तू उनको हाथ जोड़ कर माथा नवावेगा। और हे तुलसी! उसी समय तू अपने जन्म के जीने का फल पावेगा। उनका नाम जप और उनको नमस्कार कर और उनके गुणों के समूह का गान कर और रामजी को ही हृदय में धारण कर। राजा रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में अपने मन को भौंरा बना कर पृथ्वी भर में विचरता फिर ( भाव—फिर तुझे संसार का डर नहीं है वरन् तू जीवन्मुक्त है ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अमर = देवता। पुरारि = महादेव। मुरारी = विष्णु। कायर = डरपोक, नीच। हेरना = ढूँढ़ना, स्मरण करना। अहि = सर्प। छोह = कृपा। सुठि = सुन्दर। अवनीस = राजा। मधुकर = भौंरा।

[ १३६ ]

जिय जब ते हरि बिलगान्यो। तब ते देह गेह निज जान्यो ॥
मायावस स्वरूप विसरायो। तेहि भ्रम से दारुन दुख पायो ॥
पायो जो दारुन दुसह दुख सुख लेस सुपनेहु नहिं मिल्यौ।
भवसूल सोग अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो ॥
बहुजोनि जनम जरा विपति मतिमंद हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु विस्राम मूढ़ विचार लखि पायो कहीं ॥ १ ॥
आनँदसिधु मध्य तव वासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मृगभ्रमवारि सत्य जियजानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी ॥

तहँ मगन मज्जसि पानकरि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल भूलि अब आयो तहाँ॥
निरमल निरंजन निरविकार उदार सुख तैं परिहस्यो।
निहकाज राज बिहाइ नृप इव सपनकारागृह पस्यौ॥ २॥

तैं निज कर्मडोरि दृढ़ कीन्ही। अपने करन गाँठि गहि दीन्ही॥
ताते परवस पस्यो अभागे। ताफल गरभवास दुख आगे॥
आगे अनेक समूह संसृति उदरगत जान्यो सोऊ।
सिर हेठ ऊपर चरन संकट बात नहिं पूछै कोऊ॥
सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवई।
कोमलसरीर गँभीर वेदन सीसधुनि धुनि रोवई॥ ३॥

तू निज करमजाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तजो नहिं तेरो॥
बहुविधि प्रतिपालन प्रभुकीन्हों। परम कृपालु ज्ञान तोहि दीन्हो॥
तोहि दियो ज्ञान विवेक जनम अनेक की तब सुधि भई।
तेहि ईस की हौं सरन जाकी विषम माया गुन मई॥
जेहि किये जीव निकाय वस रसहीन दिन दिन अति नई।
सो करौ वेगि सँभार श्रीपति विपति महँ जेहि मति दई॥ ४॥

पुनि बहुविधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजों चक्रपानी॥
ऐसहि करि विचार चुप साधी। प्रसव पवन प्रेरेउ अपराधी॥
प्रेरेउ जो परमप्रचंड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यौ।
सो ज्ञान ध्यान विराग अनुभव जातना पावक दह्यौ॥
अति खेदव्याकुल अल्पबल छिन एक बोलि न आवई।
तब तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हराषित गावई॥ ५॥
बाल दसा जेते दुख पाये। अति अनयस नहिं जाहिं गनाये॥

छुधा व्याधि बाधा भइ भारी । वेदन नहिं जानै महतारी ॥
जननी न जानै पीर सो केहि हेतु सिसु रोदन करै ।
सोइ करै विविध उपाय जाते अधिक तुव छाती जरै ॥
कौमार सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै ।
वितरेक तोहि निरदय महाखल आन कहु को सहि सकै ॥६॥

जौवन जुवती सँग रँग रात्यो । तब तू महा मोहमद मात्यो ॥
ताते तजी धरममरजादा । बिसरे तब सब प्रथम विषादा ॥
बिसरे विषाद निकाय संकट समुझि नहि फाटत हियो ।
फिरि गर्भगत आवर्त्त संसृति चक्र जेहि होइ सोइ कियो ॥
कृमि भस्म विट परिनाम तनु तेहि लागि जगु वैरी भयो ।
परदार परधन द्रोहपर संसार बाढ़ै नित नयो ॥ ७ ॥

देखतही आई विरुधाई । जो तैं सुपनेहुँ नाहिं बुलाई ॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं । सो अब प्रगट देखु तन माहीं ॥
सो प्रगट तन जरजर जरावस व्याधि सूल सतावई ।
सिरकंप इन्द्रियसक्ति प्रतिहत वचन काहु न भावई ॥
गृहपालहू ते अति निरादर खान पान न पावई ।
ऐसिहु दसा न विराग तहँ तृष्णा तरंग बढ़ावई ॥ ८ ॥

कहि को सकै महाभव तेरे । जनम एक के कछुक गनेरे ॥
चारि खानि संतन अवगाही । अजहुँ न कर विचार मनमाहीं ॥
अजहूँ विचार विकार तजि भजु राम जनसुखदायकं ।
भवसिंधु दुस्तर जलरथं भजु चक्रधर सुरनायकं ॥
विनुहेतु करुनाकर उदार अपार माया तारनं ।
कैवल्यपति जगपति रमापति प्रानपति गतिकारनं ॥ ९ ॥

रघुपति भक्ति सुलभ सुखकारी। सो त्रय ताप सोकभयहारी ॥
बिनु सतसंग भक्ति नहिं होई। ते तब मिलैं द्रवै जब सोई ॥
जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये।
जेहि दरस परस समागमादिक पापरासि नसाइये ॥
जिन्हके मिले सुख दुख समान अमानतादिक गुन भए।
मद मोह लोभ विषाद क्रोध सुबोधते सहजहि गए ॥१०॥
सेवत साधु द्वैत भये भागै। श्रीरघुवीर चरनलय लागै ॥
देहजनित विकार सब त्यागै। तब फिरि निजस्वरूप अनुरागै ॥
अनुरागसो निजरूप जो जगते विलच्छन देखिए।
संतोष सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिए ॥
निर्मल निरामय एकरस तेहि हर्ष सोक न व्यापई।
त्रैलोकपावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई ॥११॥
जो तेहि पंथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होइँ सहाई ॥
जो मारग स्रुति साधु दिखावै। तेहि पथ चलत सबै सुख पावै ॥
पावै सदा सुख हरिकृपा संसार आसा तजि रहै ॥
सपनेहुँ नहीं दुख द्वैत दरसन बात कोटिक को कहै ॥
द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पाइए।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गाइए ॥१२॥

हे जीव! जब से तू भगवान् से अलग हुआ है तब से तूने शरीर को अपना घर समझ लिया है। तू माया के अधीन होकर अपना जो स्वरूप (अर्थात् सत्, चित्, आनन्द-रूप) उसे भूल गया और उसी के भूलने से तूने महा कठिन दुःख पाया है। तूने ऐसा कठिन दुःख पाया जो सहा न जाय और तुझे सुख का लवलेश स्वपने में भी नहीं मिला। संसार के शूल (अर्थात् जन्म, मरण आदि का दुःख) और बहुत से शोक (अर्थात् स्त्री पुत्रादिकों के मरने के जो शोक) हैं उनके मार्ग में तू अड़ अड़ करके चला। और बहुत सी योनियों में जन्म लेकर अरे मूर्ख! तूने बुढ़ापे की विपत्ति पाई (फिर भी)

भगवान् को नहीं जाना। अरे मूर्ख! विचार कर देख तो सही श्रीरामजी के बिना कहीं ( किसी ने ) भी विश्राम पाया है॥ १॥ तेरे रहने का स्थान आनन्द के समुद्र के बीच में है। तब भी तू उसे बिना जाने कैसा प्यासा मरता है। मृग-तृष्णा के जल को ( अर्थात् विषयादिकों को तू मन में ) सच्चा समझता है और वहाँ तू सुख मान कर ( आनन्द में ) मगन रहता है। जहाँ पर ( आनन्द में ) मगन होकर स्नान करता है और पानी पीता है ( अर्थात् विषय का सुख भोगता है ) वहाँ तीनों काल में जल नहीं है और तू अपने सहज अनुभव ( सच्चिदानन्द ) स्वरूप को भूल कर अरे दुष्ट! अब वहाँ आया है। और आकर उज्ज्वल ( अर्थात् विषयों से रहित ) निरंजन ( कहिए अज्ञानरूपी माया से रहित ) निर्विकार ( अर्थात् शरीर के जन्म, मरण आदि विकारों से रहित ) जो बड़ा भारी सुख है ( अर्थात् जिस सुख के सामने और कोई सुख अच्छा न लगे ) उसे तूने छोड़ दिया। और वृथा राजा की भाँति राज छोड़ कर ( अर्थात् उस आनन्दस्वरूप को भूल कर ) स्वपनेरूपी बन्दीख़ाने में पड़ा है॥ २॥ तूने ( अपने आप ) अपनी कर्मरूपी रस्सी को पक्का किया है और अपने हाथों से ही पकड़ कर उसमें गाँठ दे दी है। अरे अभागे! इसीसे तू पराये वश पड़ा है। उसका फल यह होगा कि तू माता के पेट में पड़ कर आगे दुःख पावेगा। और आगे जो संसार में अनेक ( क्लेशों के ) समूह हैं उन्हें जो माता के पेट में पड़ा है वही जानता है। नीचे को सिर और ऊपर की ओर पाँव और ऐसा कष्ट कि कोई बात नहीं पूछता। लोहू, विष्ठा, मल-मूत्र, कीड़े और कीच इनसे ढका हुआ सोता है। कोमल शरीर में जब ( माता के खाये, पिये से ) बड़ी भारी पीड़ा होती है तब माथे को धुन धुन कर रोता है॥ ३॥ तू अपने कर्मरूपी जाल में जहाँ जहाँ घिरा वहाँ वहाँ श्रीभगवान् ने तेरा साथ नहीं छोड़ा। बहुत भाँति से भगवान् ने तेरा प्रतिपालन किया और परम कृपालु ने तुझे ज्ञान दिया। जब तुझे ज्ञान और विचार दिया तब तुझे अनेक जन्मों की याद आई। ( तब तो तू कहने लगा कि ) मैं उसी ईश्वर की शरण हूँ जिसकी महा कठिन माया गुण (अर्थात् सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण) से भरी है। और जिस ( माया ) ने जीवों के समूह को अपने वश करके दिन पर दिन रसहीन कहिए दुखी कर दिया है और आप नित्य नई बनी रहती है। ( सो जिसकी ऐसी माया है ) और जिसने विपत्ति में बुद्धि दी है वह लक्ष्मीपति भगवान् जल्दी हमारी सँभाल करें ( अर्थात् हमारे दुःख को दूर करें )॥ ४॥ फिर ( दूसरे जन्म लेने के समय ) मन में बहुत सी ग्लानि समझी और ( विचारा कि ) अबके संसार में जन्म लेकर भगवान् का भजन करूँगा पर ऐसे ही विचार कर फिर चुपका हो गया

तो फिर पापी के जन्म की हवा को ( भगवान् ने ) इशारा किया । ज्यों ही इशारा किया त्योंहीं बड़ी तेज़ हवा से तूने भाँति भाँति के दुःख सहे और ( उस दुःख के सहने से पूर्व जन्म के जो ) ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और अपने स्वरूप का अनुभव ( आदि कर्म किये थे वे ) जन्मकाल के दुःखरूपी अग्नि में भस्म हो गये । तब तू बड़े खेद से बेचैन हो गया, तुझ में थोड़ा बल रह गया और तुझसे एक क्षण भर भी नहीं बोला गया । तब उस कठिन कष्ट को तो किसी ने भी नहीं जाना और ख़ुश हो हो कर सब लोग गाने लगे ॥ ५ ॥ जितने दुःख तूने बाल अवस्था में पाये वे बहुत और सामर्थ्य से बाहर हैं , गिनाये नहीं जाते । भूख और रोग का बड़ा भारी दुःख हुआ कि जिसकी पीड़ा को माता भी नहीं जानती । माता भी उस पीड़ा को नहीं जानती कि किस कारण बालक रोता है । उसने भी ऐसे ही तरह तरह के उपाय करे कि जिससे तेरी छाती अधिक अधिक जले । और कुमार, शिशु और किशोर इन अवस्थाओं में जो तूने अनगिनती सब पाप किये उनको कौन कह सकता है और हे निर्दयी ! हे महा मूर्ख ! तेरे सिवा कहो दूसरा कौन है जो इन्हें सह सकता है ॥६॥ और जब जवानी में स्त्री के साथ (विषयरूपी) रंग में रँग गया तब तो तू बड़े मोह और मद में मतवाला हो गया । और उससे धर्म (१) की मर्यादा छोड़ दी । और तब पहले सब दुःख भूल गया । दुःखों के समूह को भूल गया और ( फिर आगे के जन्म में वही होगा ) इस संकट को समझ कर तेरी छाती नहीं फटती है । और फिर जिससे संसाररूपी चरक पर चढ़ कर घूमता हुआ माता के गर्भ में आवे उसी उसको करने लग गया । कीड़े, राख, विष्ठा यही गति शरीर की अन्त में होती है ( अर्थात् किसी जन्तु के खा लेने से विष्ठा, गाड़ देने से कीड़े और जला देने से राख हो जाती है ), सो उसके लिए संसार का वैरी हुआ और पराई स्त्री, पराया धन, दूसरों से वैर यही संसार में नित्य नया बढ़ता गया ॥ ७ ॥ और देखते देखते ही बुढ़ापा आगया जिसको तूने स्वप्न में भी नहीं बुलाया था । उसके जो गुण हैं वे कुछ कहे नहीं जा सकते । उनको अब तू शरीर में प्रत्यक्ष देख ले । और प्रत्यक्ष में उस शरीर के जीर्ण होने से बुढ़ापे के बस रोग, शूल आदि सताने लगे । सिर हिलने लगा ( दशों ) इन्द्रियों की ताक़त घट जाने से उसकी बात किसी को अच्छी नहीं लगने लगी । कुत्ते से भी अधिक तेरा अपमान होने लगा और तू खाने, पीने को भी नहीं पाता है । ऐसी दशा होने पर भी तुझे वैराग्य नहीं आता और वहाँ ( उस

(१) इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा । अलोभ इति मार्गोयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ( इज्या = यज्ञ ) सरलार्थः ।

दशा में ) तृष्णा की तरङ्गों को बढ़ाता जाता है ॥ ८ ॥ ऐसे तेरे बड़े भारी जन्मों को कौन कह सकता है । अरे ! यह तो एक जन्म की ही थोड़ी सी गिनती है। सदा चार खानों में घूमना होता है । अब भी तू अपने मन में विचार नहीं करता । अब भी तू समझ और ( विषय ) विकार को छोड़ दे और भक्तों को सुख देनेवाले रामजी का भजन कर। जो संसाररूपी दुस्तर समुद्र के लिए जहाज़रूप हैं ऐसे सुदर्शनचक्र को धारण करनेवाले और देवताओं के स्वामी का भजन कर। जो बिना कारण ही दया करनेवाले और बड़े दानी हैं और जिसका पार नहीं ऐसी माया से तारनेवाले हैं और मोक्ष, संसार, लक्ष्मी और जीव इनके पति और गति कहिए शरण के कारण अर्थात् देनेवाले हैं ॥ ९॥ रामजी की भक्ति सहज में मिलने वाली और सुखदाई है। और वह तीनों ताप, शोक और भय इनको हरनेवाली है परन्तु बिना संतों के संग किये वह भक्ति नहीं होती । और वे ( सन्त ) तब मिलते हैं जब वह ( रामचन्द्रजी ) कृपा करते हैं । जब दीनदयाल रामजी कृपा करें तब संतों की संगति मिले और उनके दरसन, परसन और सत्संग आदि से पाप के समूह का नाश करना चाहिए । उनके मिलने से सुख, दुख का समान होना, और मान त्याग आदि गुण होते हैं । और फिर सुन्दर आत्मज्ञान के होने से मद, मोह, लोभ, दुःख और क्रोध ये सहज में ही चले जाते हैं ॥ १० ॥ साधुओं की सेवा करने से द्वैत-भाव ( अर्थात् ब्रह्म, जीव में भेद का ) भय मिट जाता है और श्रीरघुनाथजी के चरणों में ध्यान लग जाता है । शरीर से उत्पन्न सब विकार छूट जाते हैं तब फिर अपने स्वरूप में प्रीति होती है । ( अर्थात् जीव अपने आत्मस्वरूप को पहचानता है ) और जो अपने स्वरूप में प्रीति हुई अर्थात् उसे पहचाना तो वह संसार से अनोखा दीख पड़ेगा । सन्तोष करना, सबको समान समझना सदा शीतल ( अक्रोध ) रहना और इन्द्रियों का साधन करना, इत्यादि शरीर के धर्म उस प्राणी में नहीं दीख पड़ते । तब तो वह उज्ज्वल, नीरोग, और एक रस (अर्थात् बुरी भली वस्तु को समान समझनेवाला अथवा रामजी में ही प्रीति रखनेवाला, परब्रह्म में लीन) ऐसा हो जायगा और उसको हर्ष, शोक नहीं व्यापेगा । और जिसकी ऐसी दशा हो गई वह तीनों लोकों में सदा पवित्र है ॥११॥ जो कोई उस मार्ग में मन लगा कर चलता है तो भगवान् उसके सहायक क्यों नहीं होते अर्थात् होते ही हैं । जिस मार्ग को वेद और सन्त दिखलाते हैं उस मार्ग में पाँव रख कर चलने से ( जीव ) सब सुख पाता है । सदा भगवान् की कृपा से सुख पाता है और संसार की आशा को छोड़ देता है । उसको स्वप्न में भी द्वैत भाव का दुःख नहीं दीख पड़ता है और

योंं तो करोड़ों बातें हैं उन्हें कौन कहता रहे। ब्राह्मण, देवता, गुरु, भगवान् और सन्त इनके बिना संसार का पार नहीं पाया जाता। यह जान कर तुलसीदास भी (संसार के) भय को दूर करनेवाले लक्ष्मी के पति का गुण गाता है॥ १२॥

संधि-विग्रह—कर्दम (कीचड़) + आवृत (ढका हुआ)।

शब्दार्थ—जरा = बुढ़ापा। विहाय = छोड़कर। कारागृह = जेलख़ाना। हेठ = नीचे। अनयस = अनगिनती। व्यतिरेक = सिवाय। संसृत = संसार। आवर्त = घूमना। विट = विष्ठा। परिनाम = अंत में। प्रतिहत = जाते रहना। गृहपाल = कुत्ता। अवगाहना = फिरते रहना। कैवल्य = मोक्ष। सोनित = लोहू। पुरीष = विष्ठा। निकाय = समूह।

[ १३७ ]

राग बिलावल।

जोपै कृपा रघुपति कृपालु की वैर और के कहा सरै।
होइ न बांको बार भक्त को जो कोउ कोटि उपाय करै॥१॥
तकै नीच जो मीच साधु की सोइ पामर तेहिं मीच मरै।
वेदविदित प्रहलादकथा सुनि को न भक्तिपथ पाउँ धरै॥२॥
गज उधारि हरि थप्यो विभीषन ध्रुव अविचल कबहूँ न टरै।
अंबरीष की साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै॥३॥
सो धों कहा जु न कियो सुजोधन अबुध आपने मान जरै।
प्रभुप्रसाद सौभाग विजय जस पांडव ने बरिआइ बरै॥४॥
जोइ जोइ कूप खनैगो परकहँ सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहुँ सुख न संतद्रोही कहँ सुरतरु सोउ विष फरन फरै॥५॥
हैं काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीँव चरै।
तुलसिदास रघुवीर बाँहबल सदा निडर काहू न डरै॥६॥

जिस पर कृपालु रामचन्द्रजी की कृपा है उसका और के वैर करने से क्या हो सकता है। उनके भक्त का बाल भी बाँका नहीं होता (भले ही) कोई करोड़ों उपाय किया करे॥ १॥ जो दुष्ट संत की मृत्यु तकता है वह नीच उसी मृत्यु में मरता है। वेद में प्रगट जो (१) प्रहलाद की कथा है उसे सुनकर ऐसा कौन है जो भक्ति मार्ग में पैर

(१) प्रह्लाद, गजेन्द्र, विभीषण, ध्रुव, अंबरीष की कथा भक्तमालसार में पीछे देखो।

नहीं रखता ॥ २ ॥ भगवान् ने गजेन्द्र को तार कर विभीषण को लंका का राज देकर रख लिया और ध्रुव को ऐसा अचल कर दिया की किसी का हटाया न हटे । अंबरीष के शाप की याद कर अब तक महामुनि ( दुर्वासा ) दुख में गले जाते हैं ( अर्थात् लाज के मारे मरे जाते हैं ) ॥ ३ ॥ वह कौन सी ( बुरी करनी ) है जो दुर्योधन ने पाडवों के लिए न करी हो ( अर्थात् उनके नाश के लिए सब ही किया; कपट से जुआ खिलाया, द्रौपदी का चीरहरण कराया इत्यादि । पर अंत में कुछ नहीं हुआ ) और वह अज्ञानी अपने घमंड में आपही जलता रहा और यहाँ भगवान् की प्रसन्नता से सुन्दर भाग्य, जय और यश इन्होंने पांडवों को ही हठपूर्वक स्वीकार किया ॥ ४ ॥ जो कोई दूसरे के लिए कुआँ खोदेगा वह दुष्ट फिर उसी कुए में पड़ेगा । संतों के वैरी को सुपने में भी सुख नहीं होगा । उसके लिए कल्पवृक्ष भी ज़हर के फलों से फलेगा ॥ ५ ॥ किसके दो शिर हैं जो कि हठ से भगवान् के भक्त की मर्यादा चरेगा ( अर्थात् तोड़ेगा ) हे तुलसीदास ! जिसको रामजी की भुजाओं का बल है वह सदा निडर है और वह किसी से नहीं डरता ॥६॥

शब्दार्थ—पाँवर = नीच । मीच = मृत्यु । ग्लानि = दुख । बरिआई = जोराबरी । सीम = मर्यादा ।

[ १३८ ]

कबहूँ सो करसरोज रघुनायक धरिहौ नाथ सीस मेरे ।  
जेहिकर अभय किये जन आरत बारक विवस नाम टेरे ॥१॥  
जेहिकर कमल कठोर संभुधनु भंजि जनक संसय मेट्यो ।  
जेहि करकमल उठाय बंधु ज्यों परम प्रीति केवट भेट्यो ॥ २ ॥  
जेहिकर कमल कृपालु गीधकहुँ उदक देइ निज धाम दियो ।  
जेहिकर वालि विदारि दासहित कपिकुलपति सुग्रीव कियो ॥३॥  
आयो सरन सभीत विभीषन जेहि करकमल तिलक कीन्हों ।  
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभयदान देवन्ह दीन्हों ॥४॥  
सीतल सुखद छाँह जेहि करकी मेटति पाप ताप माया ।  
निसि वासर तेहि करसरोज की चाहत तुलसिदास छाया ॥५॥

हे स्वामी रघुनाथजी ! अपने उस कमल समान हाथ को कभी तो मेरे शिर पर धरोगे जिस (हाथ) से तुमने जिन्होंने पराधीनता से एक बार तुम्हारा नाम लेकर तुम्हें पुकारा

था उन दुखी भक्तों को अभय कर दिया था ॥ १ ॥ और जिस कमल समान हाथ से शिवजी के बड़े कठिन धनुष को तोड़कर राजा जनक का संदेह दूर किया था। और जिस कमल समान हाथ को उठाकर भाई की तरह बड़े प्रेम से निषाद से मिले थे ॥२॥ और, हे कृपालु! जिस कर-कमल से गिद्ध को पानी (पिंडदान) देकर अपना लोक (वैकुंठ) दिया था। और जिस हाथ से अपने दास के लिए वालि को मार कर सुग्रीव को बन्दरों के कुल का राजा बनाया था ॥ ३ ॥ और जिस कर कमल से (रावण से) डरे हुए शरणागत विभीषण को (लंका का) राज-तिलक दिया था। और जिस हाथ से धनुष बाण चढ़ाकर और राक्षसों को मार देवताओं को अभयदान दिया था ॥ ४ ॥ और जिस हाथ की शीतल और सुख देने वाली छाया, पाप, (तीनों) संताप और माया को नाश करती है उसी तुम्हारे कर-कमल की छाया को तुलसीदास रात-दिन चाहा करता है ॥ ५ ॥

सन्धि-विग्रह—बारक = (बार + एक) = एक दफ़े।

[ १३९ ]

दीनदयालु दुरित दारिद दुख दुनी दुसह त्रैताप तई है।
देव दुआर पुकारत आरत सबकी सब सुखहानि भई है ॥१॥
प्रभु के वचन वेद बुधसंमत मम मूरति महिदेव मई है।
तिन्हकी मति रिस राग मोह मद लोभ लालची लीलि लई है ॥
राज समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है ॥२॥
आस्रम बरन धरम विरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजापतित पाखंड पापरत अपने अपने रंग रई है ॥ ४ ॥
सांति सत्य सुभरीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति खल विलसति हुलसति खलई है ॥
परमारथ स्वारथ साधनभये अफल सकल नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि गोमर विवस विकल जामति न वई है ॥
कलि करनी वरनिये कहाँलों करत फिरत विनु टहल टई है।

तापर दाँत पीसि कर मींजत को जाने चित कहा ठई है ॥७॥
त्यों त्यों नीच बढ़त सो चढ़त सिर ज्यों ज्यों सीलवस ढील दई है ।
सरुष वरजि तरजिये तरजनी कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है ॥८॥
दीजै दादि देखि नातो वलि मही मोद मंगल रितई है ।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवधि चितवनि चितई है ॥
विनती सुनि सानंद हेरि हँसि करुनावारिभूमिभिजई है ।
रामराज भयो काज सकुन सुभ राजा राम जगत विजई है ॥
समरथ बड़ो सुजान सुसाहब सुकृत सैन हारत जितई है ।
सुजन सुभाउ सराहत सादर अनायास साँसति बितई है ॥११॥
उथपे थपन उजारि बसावन गई बहोरि विरद सदई है ।
तुलसी प्रभु आरत आरति-हर अभय बाँह केहि केहि न दई है ॥

हे दीनदयाल ! दुनियाँ ( इस कलियुग में ) पाप, दरिद्रता के दुःख और दुःसह तीनों ताप इनसे तची जाती है । सो हे देव ! मैं तुम्हारे द्वार पर दुखी होकर पुकारता हूँ क्योंकि सबको सब सुखों की हानि हो गई है ॥ १ ॥ ( कैसे सब दुखी हैं और क्या हानि हो गई है सो कहते हैं ) प्रभु के वचन हैं कि ब्राह्मण साक्षात् मेरी मूर्त्ति हैं ( अर्थात् सुर असुर सबसे बड़े हैं ) । और यह बात वेद और पण्डितों ने भी स्वीकार की है ( सो उनके सन्तोष, दया आदि धर्म और आचार-विचार आदि कर्म उत्तम चाहिएँ पर ) उनकी बुद्धि को क्रोध, राग, मोह, मद, लोभ और लालच निगल लिया है ॥ २ ॥ ( फिर इनसे नीचे क्षत्रिय हैं उन्हें शूर-वीर और प्रतापी होना चाहिए सो ) राजा और उनका समाज ( मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि ) कुसाज ( अर्थात् वेद से रहित, वृथा दण्ड देनेवाला, पर-धन हारी और अनीतियों से भरा ) है । और वे करोड़ों तरह की कटु कहिए बुरी बुरी पाप की बातें मन से जोड़ कर (सज्जनों के साथ) करते हैं यह एक नई चाल चल गई है । और राजनीति वा धर्म-शास्त्र, ( वेदों पर ) विश्वास, ( देवता, ब्राह्मण, साधु और गुरु से ) प्रीति और परम्परा की रीति ( अर्थात् वर्णाश्रमधर्म ) इन सबकी पति कहिए प्रतिष्ठा का हेतुवाद अर्थात् नास्तिक मत ने हठ से ढूँढ़ ढूँढ़ कर संपूर्ण नाश कर दिया है ॥ ३ ॥ संसार वर्णाश्रम

धर्म से विशेष रहित हो गया और लोक तथा वेद की मर्याद उठ गई और दुनिया भ्रष्ट होकर पाखण्ड और पाप में प्रीति कर अपने अपने रङ्ग में रङ्ग गई ) अर्थात् जो अच्छा लगा वही करने लगी ) ॥ ४ ॥ शान्ति ( संतोष ) और सत्य की अच्छी अच्छी रीतियाँ घट गईं ( अर्थात् लोग असंतोषी और झूठे हो गये ) और कुरीति ( अर्थात् चोरी, जुआ, शराबख़ोरी आदि ) बहुत सी फैल गई और ( सब बातों में ) छल की कलई हो गई ( अर्थात् बिना छल के कोई बात नहीं रही ), संत दुखी होने लगे और साधुता शोक करने लगी, दुष्ट आनन्द उड़ाने लगे और दुष्टता भी आनन्द मनाने लगी ॥ ५ ॥ परमार्थ के बदले स्वार्थ होने लगा ( अर्थात् जो करता है दिखाने के लिए और मंत्र, यंत्र, तंत्र आदि ) सब साधन निष्फल हो गये । सिद्धियाँ सच्ची नहीं रहीं ( अर्थात् सब झूठी पड़ गईं ) । और कामधेनुरूपी पृथ्वी कलियुगरूपी कसाई के वश पड़ने से ऐसी घबरा रही है कि बोया हुआ (नाज) उसमें नहीं जमता ॥ ६ ॥ कलियुग की करनी कहाँ तक बखानी जाय । वह बिना काम के काम करता फिरता है (अर्थात् धर्म में अधर्म करा देता है ) और तिस पर भी दाँतों को पीस पीस कर हाथों को मलता है ( कि क्या कहूँ अभी मेरा पूरा अधिकार नहीं हुआ) कौन जाने उसने मन में क्या ठान रक्खा है ॥७॥ और, ज्यों ज्यों तुम अपने शीलस्वभाव के वश इसे ढील देते जाते हो ( अर्थात् इसका कुल ख़्याल नहीं करते ) त्यों त्यों वह नीच बढ़ता और शिर पर चढ़ता जाता है ( सो तुम इसे ) क्रोध करके मना कर दो और अपनी तर्जनी उँगली से डाट दो तो वह ऐसे दब जायगा जैसे कोहड़ा की बतिया ( तर्जनी उँगली दिखाने से ) मुरझा जाती है ॥ ८ ॥ तुम्हारी बलिहारी जाऊँ देखिए और इन्साफ़ कीजिए ( अर्थात् न्याय करिये ) नहीं तो यह पृथ्वी आनन्द मङ्गल से ख़ाली हो जायगी । ( सो तुम ऐसा करो जिसमें ) लोगों का भाग भरे अर्थात् खुले और वे प्रेम से कहें कि रामजी ने हमें पूरी कृपा दृष्टि से देखा ॥ ९ ॥ मेरी विनती सुन कर वे बड़े प्रसन्न हुए और देखकर हँसे और करुणारूपी जल से पृथ्वी को तर कर दिया ( भाव—पृथ्वी पर जो भक्तजन तीनों तापों से तच रहे थे उनको कलि की ओर से शान्ति हो गई ) राम के राज्य होने से काम बन गया और सुन्दर शकुन होने लगे क्योंकि राजा रामचन्द्रजी संसार का विजय करनेवाले हैं ॥ १० ॥ वे बड़े समर्थ, बड़े ज्ञाता, और अच्छे स्वामी हैं, उन्होंने सुकृतरूपी फ़ौज को हारने से जिता दिया । अच्छे भक्तजन स्वभाव से ही बड़े आदर के साथ उनकी सराहना करते हैं कि जिन्होंने सहज में पीड़ा को दूर कर दिया ॥ ११ ॥ उजड़े को बसाना और बसे हुए को उजाड़ना और गई वस्तु को फिर दिलाना यह सदा से उनका बाना

है। हे तुलसी! भगवान ने दुखियें। का दुख दूर कर किस किस को अभयबाँह नहीं दी है (अर्थात् सबका भय दूर कर दिया है)॥ १२॥

शब्दार्थ—दुरित=पाप। हेतुवाद=नास्तिकमत। गोमर=गऊ को मारनेवाला। हई=नाश की। टई=करना। जई=बतिया। साँसति=पीड़ा। विरद=बाना। दादि=इन्साफ़। सदई=सदा का। आरत=दुखी। आरति=दुख।

[ १४० ]

ते नर नरकरूप जीवत जग भवभंजन पदविमुख अभागी।
निसि वासर रुचि पाप असुचि मन खल मति मलिन निगम-पथत्यागी॥ १॥
नहिं सतसंग भजन नहिं हरि को स्रवन न राम कथा अनुरागी।
सुत वित दार भवन ममता निसि सोवत अति न कबहूँ मति जागी॥ २॥
तुलसिदास हरिनाम सुधा तजि सठ हठि पियत विषय विष माँगी।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन जनमत जगत जननिदुख लागी॥

वे मनुष्य संसार में नरक रूप होकर जीते हैं और अभागे हैं कि जो संसार (अर्थात् जन्म, मरण) का नाश करने वाले (रामजी) के चरणों से विमुख हैं। रात-दिन उनकी रुचि पाप में रहती है और उन दुष्टों का मन अपवित्र और बुद्धि मैली है। और वे वेद के मार्ग को छोड़नेवाले हैं॥ १॥ न तो वे साधुओं का सङ्ग करते हैं और न भगवान् का भजन करते हैं और न उनके श्रवण (कान) रामजी के कथा के प्रेमी हैं (अर्थात् न वे रामकथा को सुनते हैं), वे तो पुत्र, धन, स्त्री और घर इनकी ममतारूपी रात्रि में ख़ूब सोते हैं और कभी उनकी बुद्धि नहीं जागती (अर्थात् वे यह चेत नहीं करते कि यह बेटा, स्त्री, धन आदि मेरी क्या रक्षा करेंगे)॥ २॥ हे तुलसीदास! भगवत् नामरूप जो अमृत है उसे छोड़ कर वे दुष्ट अड़कर विषयरूपी ज़हर माँग माँग कर पीते हैं। ऐसे मनुष्य शूकर, कुत्ता और गीदड़ के समान संसार में (केवल) अपनी माता को दुःख देने के लिए जन्म लेते हैं॥ ३॥

[ १४१ ]

रामचन्द्र रघुनायक तुम सों हौं विनती केहि भाँति करौं ।
अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं ॥ १ ॥
परदुखदुखी सुखी परसुख ते संतसील नहिं हृदै धरौं ।
देखि आन की विपति परम सुख सुनि संपति विनु आगि जरौं ॥
भगति विराग ज्ञान साधन कहि बहुविधि डहँकत लोग फिरौं ।
सिव सरबस सुखधाम नाम तव बेंचि नरकप्रद उदर भरौं ॥३॥
जानत हौं निज पाप जलधि जिय जल सीकरसम सुनत लरौं ।
रजसम पर औगुन सुमेरु करि गुन गिरि सम रजतें निदरौं ॥
नाना वेष बनाइ दिवस निसि पर वित जेहि तेहि जुगुति हरौं ।
एकौ पल न कबहुँ अलोल चित हित दै पदसरोज सुमिरौं ॥५॥
जो आचरन विचारहु मेरो कलप कोटि लगि औटि मरौं ।
तुलसिदास प्रभु कृपा विलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं ॥६॥

हे रघुकुल के नायक रामचन्द्रजी ! मैं तुमसे किस भाँति बिनती करूँ। मैं अपने तो अनेक पाप देख कर और तुम्हारे नाम को पापरहित अनुमान करके डरता हूँ ( अर्थात् जो पापरहित होगा वह पापी से क्या मतलब रक्खेगा वरन और दण्ड देगा ) ॥ १ ॥ जो औरों के दुःख से ( आप ) दुखी होते हैं और औरों के सुख से ( आप ) सुखी होते हैं ऐसे संतों के स्वभाव को मैं हृदय में नहीं धारण करता हूँ ( अर्थात् मेरा स्वभाव संतों का सा नहीं है ) मुझे तो औरों की विपत्ति देख बड़ा सुख होता है और उनकी ( धन, सवारी आदि ) सम्पति को सुन कर बिना ही आग के मैं जल जाता हूँ ॥ २ ॥ और भक्ति, वैराग्य और ज्ञान के साधन कह कह कर मैं लोगों को बहुत भाँति से ठगता फिरता हूँ। और शिवजी का ( १ ) सरवस्व और सुख का धाम ऐसे तुम्हारे नाम को बेंच बेंच कर नरक को देनेवाले अपने पेट को भरता हूँ ( अर्थात् तुम्हारा नाम पेट के लिए जपता हूँ जिसमें लोग मुझे राम-भक्त जान कर खाने के लिए लावें )॥ ३ ॥

( १ ) कूर्म-पुराण में पार्वतीजी से शिवजी का वाक्य है:—
गोप्याद् गोप्यतमं भद्रे सर्वस्वं जीवनं मम । रामनाम परंब्रह्म कारणानां च कारणम् ॥१ ॥ (गोप्य = गुप्त रखने योग्य ) सरलार्थः ।

मन में अपने पाप को समुद्र के बराबर जान कर भी ( निष्पापी कैसा बनता हूँ कि औरों के मुख से उस पाप को ) पानी की बूँद की बराबर भी सुन कर लड़ मरता हूँ। और दूसरों के धूल के कण की बराबर औगुन को तो सुमेरु पर्वत के समान और पर्वत के समान गुण को धूलि के समान निरादर करता हूँ ( अर्थात् अपने गुण के सामने दूसरे के बड़े गुण को धूल समझता हूँ ) ॥ ४ ॥ और ( कभी धोता पागड़ा बाँध पण्डित का, कभी राम-फटाका तिलक लगा कर वैष्णव का ) ऐसे भाँति भाँति के भेस बना कर रात दिन पराये धन को जिस जुगत से हो उससे हरता हूँ। कभी एक पल भी मेरा चित्त स्थिर नहीं रहता कि तुम्हारे चरण-कमलों का ध्यान देकर स्मरण करूँ ॥ ५ ॥ जो तुम मेरे आचरण का विचार करोगे तो करोड़ों कल्प तक ( संसाररूपी कढ़ाव में ) औट औट कर मर जाऊँगा ( और अपने पापों से नहीं छूटूँगा )। हे प्रभो ! मैं तुलसीदास तो तुम्हारी कृपा-दृष्टि से ही गऊ के खुर के समान ( अर्थात् जिस भाँति मनुष्य गऊ के खुर को सहज में उलाँघ जाता है उसी भाँति ) संसाररूपी समुद्र को तर जाऊँगा ॥ ६ ॥

[ १४२ ]

सकुचत हौं अति राम कृपानिधि क्योंकरि विनय सुनावों ।
सकल धरम विपरीत करत केहि भाँति नाथ मन भावों ॥१॥
जानत हौं हरि रूप चराचर मैं हठि नैन न लावों ।
अंजनकेस सिखा जुवती तहँ लोचन सलभ पठावों ॥२॥
स्त्रवनन्हि को फल कथा तिहारी यह समुझों समुझावों ।
तिन्ह स्त्रवनन्हि परदोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावों ॥३॥
जेहि रसना गुनगाइ तिहारे विनु प्रयास सुख पावों ।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावों ॥४॥
करहु हृदय अति विमल बसहिं हरि कहि कहि सबहि सिखावों ।
हौं निज उर अभिमान मोह मद खलमंडली बसावों ॥५॥
जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन सो बिनु काज गवावों ।
हाटक घट भरि धस्यो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावों ॥६॥

मन क्रम वचन लाइ कीन्हें अघ ते करि जतन दुरावों ।
पर प्रेरित इरषा वस कबहुँक कियो कछु सुभ सो जनावों ॥७॥
विप्रद्रोह जनु बाँट पर्‌यो हठि सबसों वैर बढ़ावों ।
ताहू पर निजमति विलास सब संतन माँझ गनावों ॥८॥
निगम सेस सारद निहोरि जो अपने दोष कहावों ।
तौ न सिराहिं कलपसत लगि प्रभु कहा एक मुख गावों ॥९॥
जो करनी आपनी बिचारौं तौ कि सरन हौं आवों ।
मृदुल सुभाउ सील रघुपति को सो बल मनहिं दिखावों ॥१०॥
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहुँ तुमहिं रिझावों ।
नाथ कृपा भवसिंधु धेनुपद सम जो जानि सिरावों ॥११॥

हे राम ! हे कृपानिधान ! मैं बड़ा शरमाता हूँ कि तुम्हें कैसे अपनी विनती सुनाऊँ। क्योंकि मैं सब धर्म से उलटा करता हूँ। हे नाथ ! मैं किस भाँति तुम्हारे मन को अच्छा लगूँ ॥१॥ मैं जानता हूँ कि चराचर सब भगवान् के रूप हैं ( अर्थात् भगवान् सब में व्यापक हैं ) पर मैं अड़ कर उन पर आँख ही नहीं लगाता। मैं तो स्त्रीरूपी अग्निशिखा के पास अपनी आँखरूपी पतङ्ग को ( मरने के लिए ) भेजता हूँ ॥ २ ॥ फिर कानों के होने का यही फल है कि तुम्हारी कथा सुनें, इसे मैं समझता हूँ और दूसरों को समझाता भी हूँ ( कि भाई राम-कथा सुना करो ) परन्तु उन्हीं कानों से पराये दोष लगातार सुन सुन कर और ( हृदय में ) भर भरकर धरता जाता हूँ ॥ ३ ॥ और जिस जीभ से तुम्हारे गुणों को गाकर सहज में ही सुख पा सकूँ उसी मुख से दूसरों की निन्दा कर मेढ़क की तरह रट रट कर अपना जन्म बिगाड़ता हूँ ॥ ४ ॥ और यह कह कह कर सब को तो सिखाता हूँ कि "अपने हृदय को निर्मल करो तो भगवान् उसमें वास करेंगे" परन्तु मैं अपने हृदय में अभिमान, मोह और मद इन दुष्टों की मण्डली को बसाता हूँ ॥ ५ ॥ जिस शरीर को धारण करके भक्तजन भगवान् के चरणों का साधन करते हैं उसे मैं वृथा खोता हूँ। सोने का कलसा अमृत से भरा घर में धरा है उसे छोड़ कर आकाश में कुआं खुदवाता हूँ। ( भाव यह है कि मनुष्य का शरीर सोने के घड़े के समान है उसमें सच्चिदानन्दरूप अमृत धरा है उसे छोड़ संसार जो आकाश के तुल्य है उसमें सुखरूप जल के लिए उपाय करता हूँ भला कहीं आकाश में भी कुआँ खुद कर पानी

मिल सकता है ! इस जीव को सुख तो भगवत् भजन में और संसारी विषय को छोड़ने ही में मिल सकता है ) ॥ ६ ॥ मन, वचन, कर्म से जो पाप किये हैं उनको उपाय करके छिपाता हूँ। और दूसरों के इशारे से ईर्ष्या के अधीन होकर ( अर्थात् दूसरा करता है मैं उससे बढ़ कर करूँ इस भाँति ) कभी कभी जो कुछ शुभ काम बन भी जाता है तो ) उसे औरों को जतलाता फिरता हूँ ॥ ७ ॥ ( धर्म की बात तो यह है कि सब को समान जानूँ और ब्राह्मणों का अधिक मान करूँ पर ) ब्राह्मणों से ऐसा वैर करता हूँ मानो उनसे ( वैर करना ) मेरे बाँट में ही आ गया है और अड़कर सबसे वैर बढ़ाता हूँ । तिस पर भी अपनी बुद्धि की चेष्टा से सब संतों के बीच में ( अपने को उत्तम रामभक्त ) गिनाता हूँ । वेद, शेष और सरस्वती की हा-हा खाकर भी जो अपने औगुनों का बखान कराऊँ तो भी तो हे प्रभो ! वे सौ कल्प तक पूरे न हों; फिर मैं एक मुख से उन्हें कहाँ तक गाऊँ ॥ ९ ॥ जो मैं अपनी करनी का विचार करूँ तो क्या मैं तुम्हारी शरण में आ सकता हूँ ( अर्थात् नहीं आ सकता और जब मेरा मन तुम्हारी शरण जाने में हिचकता है तब ) हे राम ! तुम्हारे कोमल शील स्वभाव (१) का बल अपने मन को दिखाता हूँ (कि भगवान् बड़े कृपालु हैं। तू क्यों डरता है, कैसा ही पापी शरण में जाय उसको क्षमा कर अपनालेते हैं तब वह तुम्हारी ओर जाता है) ॥१०॥ हे प्रभो ! तुलसीदास के पास वह गुण नहीं है कि जिससे तुम्हें सुपने में भी प्रसन्न कर सके परन्तु हे नाथ ! तुम्हारी दया से संसाररूपी समुद्र गौ के खुर के समान है यह जानकर अपने को ठण्डा कर लेता हूँ ( भाव यह है कि मुझ में तो कोई शम, दम आदि गुण संसार से पार जाने का है नहीं पर जो तुम दया करोगे तो आवागमन से सहज में छूट जाऊँगा ) ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—अंजनकेस = काजल वा धुआं है बाल जिसके अर्थात् अग्नि वा दिया। सलभ = तीतरी। स्रवन = कान। तावना = धरना, कसना। रसना = जीभ। हाटक = सोना। विलास = आनन्द, चेष्टा॥

[ १४२ ]

## सुनहु राम रघुवीर गुसाईं मन अनीतिरत मेरो।
## चरनसरोज बिसारि तिहारे निसिदिन फिरत अनेरो ॥१॥

---

(१) वाल्मीकीय में रामजी ने कहा हैः—

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम" ॥ जो एक बार भी कहे कि मैं तुम्हारा हूँ तो मैं उस शरणागत को सब प्राणियों से अभय कर देता हूँ यह मेरा व्रत है।

मानत नाहिं निगम अनुसासन त्रास न काहू केरो ।
भूल्यो सूल करम कोलुन्ह तिल ज्यों बहु बारनि पेरो ॥२॥
जहँ सतसंग कथा माधव की सपनेहुँ करत न फेरो ।
लोभ मोह मद काम कोहरत तिन्ह सों प्रेम घनेरो ॥३॥
परगुन सुनत दाह परदूषन सुनत हरष बहुतेरो ।
आप पाप को नगर बसावत सहि न सकत पर खेरो ॥४॥
साधन फल स्रुति सार नाम तव भव सरिता कहुँ बेरो ।
सोइ परकर काकिनी लागि सठ बेंचि होत हठि चेरो ॥५॥
कबहुँक हौं संगति सुभाउ ते जाउँ सुमारग नेरो ।
तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भट भेरो ॥६॥
इक हौं दीन मलीन हीनमति विपति जाल अति घेरो ।
तापर सहि न जाइ करुनानिधि मन को दुसह दरेरो ॥७॥
हारि पर्‌यो करिजतन बहुत विधि तातें कहत सबेरो ।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ॥८॥

हे राम ! हे रघुवीर गुसाईं ! सुनो । मेरा मन अनीति में लगता है ( वह अनीति क्या है कि ) तुम्हारे चरण-कमलों को छोड़ कर रात दिन और और जगह फिरा करता है ॥ १ ॥ यह वेद की आज्ञा को नहीं मानता और इसे किसी का डर नहीं । ( जो कहो कि इसे कभी दण्ड नहीं मिला । दण्ड मिलता तो आज्ञा मानता तहाँ कहते हैं कि ) यह बहुत बार कर्मरूपी कोल्हू में तिलों के समान पेला गया ( अर्थात् बुरे कर्म करने से बार बार नरक भोग आया ) पर उस पीड़ा को भूल गया ॥ २ ॥ जहाँ संतों का संग है और भगवान् की कथा होती है वहाँ तो सुपने में भी फेरा नहीं करता और लोभ, मोह, मद, काम और क्रोध में मगन रहता है उन्हीं से बड़ा प्रेम करता है ॥ ३ ॥ दूसरों के गुणों को सुनकर तो जल जाता है और दूसरों के अवगुण सुनकर बड़ा प्रसन्न होता है । आप तो पाप के नगर बसाता है और दूसरे के छोटे से गाँव को नहीं सह सकता ( अर्थात् आप महापापी होने पर भी दूसरे का थोड़ा सा भी पाप नहीं देख सकता, देखते ही उसकी धूल उड़ाता है ) ॥ ४ ॥ सब साधनों का फल और वेद

का सार ऐसा तुम्हारा नाम संसाररूपी नदी के लिए बेड़ा है सो दूसरे के हाथ की कौड़ी के लिए यह दुष्ट इसे बेचकर अड़ करके गुलाम होता है ( अर्थात् पैसे के लालच से तुम्हारा नाम सुनाता फिरता है ) और कभी मैं संगति के स्वभाव से (अर्थात् प्रभाव से ) सुन्दर मार्ग के पास जाता हूँ (अर्थात् धर्म कार्य्य करने को तैयार होता हूँ ) तो संग कहिए इन्द्रियों के विषय क्रोध कर ( उस मन को फिर स्त्री-विषय आदि ) कुमनोरथरूपी धक्का दे देते हैं ( कि जिससे फिर वह कुमार्ग में जा लगता है ) ॥ ६ ॥ एक तो मैं ग़रीब पापी और बुद्धिहीन हूँ फिर विपत्तिरूपी जाल ने ख़ूब घेर रक्खा है। तिस पर भी हे करुणानिधान ! मन का कठिन धक्का नहीं सहा जाता ॥ ७ ॥ मैं बहुत भाँति के उपाय करके हार गया इससे मैं पहले से ही कहे देता हूँ, कि यह मेरा संसार का भय तभी दूर होगा कि जब तुम इस तुलसीदास के हृदय में डेरा करोगे ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अनेरा = और और जगह, अंत । खेड़ा = छोटा सा गांव । बेरा = बाँस की टट्टी । काकिनी = कोड़ी । दरेरा = धक्का । संग = इन्द्रियों के विषय । सवेरा = सिदोसी, पहिले से ॥

[ १४४ ]

सो धों को जो नाम लाजते नहिं राख्यौ रघुवीर ।
कारुनीक बिनु कारन ही हरि हरहि सकल भवभीर ॥१॥
वेदविदित जगविदित अजामिल विप्र बंधु अघधामा ।
घोर जमालय जात निवार्‌यौ सुतहित सुमिरत नामा ॥२॥
पसु पाँवर अभिमान सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह ।
सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु हर्‌यौ दुसह उर दाह ॥३॥
व्याध निषाद गीध गनिकादिक अगनित औगुनमूल ।
नाम ओटते राम सबनि की दूरि करी सब सूल ॥४॥
केहि आचरन घाटि हौं तिन्हतें रघुकुलभूषन भूप ।
सीदत तुलसिदास निसि बासर पर्‌यौ भीमतमकूप ॥५॥

जो कहो कि तेरा हृदय अपवित्र है उसमें डेरा कैसे करें तहाँ कहते हैं कि:— )

हे राम ! वह कौनसा है कि जिसको तुमने अपने नाम की लाज से ( शरण में ) नहीं रक्खा । हे भगवान् ! तुम तो बिना कारण ही दयावान् हो, सब संसाररूपी भय

(जन्म, मरण) को दूर करो ॥१॥ वेद में प्रकट है और संसार जानता है कि अजामेल था तो ब्राह्मण-भाई परन्तु पाप का घर था। उसे यमराज के कठिन स्थान में जाते हुए रोका ( अर्थात् नहीं जाने दिया )। उसने ( किया क्या था कि केवल ) बेटे के लिए अर्थात् उसके बहाने से तुम्हारे नाम का सुमरन किया था ॥ २ ॥ पशु और नीच घमंडी हाथी को जब समुद्र में ग्राह ने आकर पकड़ लिया तब उसके एक बार याद करने पर तुरन्त ही हे प्रभो ! तुम आये और उसके हृदय की दुःसह तपन दूर कर दी ॥ ३ ॥ व्याध ( वाल्मीकि ) निषाद, गिद्ध और गणिका आदि अनगिनती औगुणों की जड़ थे। परन्तु हे राम ! केवल नाम के सहारे से तुमने इन सब के ( जन्म-मरणरूपी ) सब दुःखों को दूर कर दिया ॥ ४ ॥ हे रघुकुल के भूषण ! हे पृथ्वीनाथ ! मैं किस आचरण में उनसे कम हूँ और मैं तुलसीदास रात-दिन भयानक अज्ञानरूपी कुएँ में पड़ा हुआ दुःख पा रहा हूँ। ( भाव—सबको निकाला है तो मुझे भी निकालो ) ॥ ५ ॥

संन्धि-विभाग—यम + आलय ( घर )।

शब्दार्थ—अघ = पाप। हित = लिए। सकृत = एक बार। सपदि = शीघ्र।

[ १४५ ]

कृपासिन्धु जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे।
जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत तब तिन्हके दुख दाहे ॥१॥
गज प्रहलाद पांडुसुत कपि सबको रिपु संकट मेट्यो।
प्रनत बंधुभय विकल विभीषन उठि सो भरत ज्यों भेट्यो ॥२॥
मैं तुम्हरो लेइ नाम ग्राउँ एक उर आपने बसावों।
भजन विवेक विराग लोग भले मैं क्रम क्रम करि ल्यावों ॥३॥
सुनि रिसभरे कुटिल कामादिक करहिं जोर बरिआई।
तिन्हहिं उजारि नारि अरि धन पुर राखहिं राम गुसाँई ॥ ४ ॥
सम सेवा छल दान दंड हौं रचि उपाय पचि हार्यौ।
बिनु कारन को कलह बड़ो दुख प्रभु सों प्रगटि पुकार्यौ ॥५॥
सुर स्वारथी अनीस अलायक निठुर दया चित नाहीं।
जाउँ कहाँ को विपति निवारक भवतारक जगमाहीं ॥ ६ ॥

तुलसी जदपि पोच तौ तुम्हरो और न काहू केरो ।
दीजै भक्ति बाँह बैरक ज्यों सुवस बसै अब खेरो ॥ ७ ॥

हे कृपासागर ! तुम्हारा ग़रीबदास तुम्हारे द्वार पर न्याय क्यों नहीं पाता (अर्थात् तुम उसका इन्साफ़ क्यों नहीं करते ), जब और जहाँ दुखियों ने तुमसे पुकार मचाई है तभी ( तुमने उनके ) दुःख जला दिये हैं। गजेन्द्र, प्रह्लाद, पाण्डु के पुत्र ( युधिष्ठिर आदि ), बन्दर ( सुग्रीव ) इन सबों के शत्रु से किये क्लेशों को तुमने दूर कर दिया ॥१॥ और जब भाई के डर से घबराये हुए विभीषण ने तुम्हें प्रणाम किया तो उठ कर उससे ऐसे मिले जैसे भरतजी से मिलते हो ॥ २ ॥ मैं तुम्हारा नाम लेकर ( अर्थात् तुम्हारे नाम से रामनगर ) एक गाँव अपने हृदय ( रूपी धरती ) में बसा रहा हूँ और उस नगर में भजन, ज्ञान, वैराग्य-रूपी अच्छे अच्छे लोगों को एक एक करके लाता जाता हूँ ॥ ३ ॥ इसे सुन कर दुष्ट काम, क्रोध आदि रिस में भर कर उनसे ज़बरदस्ती हाथा पाँई करते हैं (अर्थात् उन्हें धक्के दे देकर निकालते हैं ) और निकाल कर हे रामगुसाईं ! स्त्री, वैरी और धन को पुर में बसाते हैं ॥ ४ ॥ साम, दान, दण्ड, भेद और सेवा ये उपाय रच रच कर और पचि पचि कर जब मैं हार गया तब हे प्रभो ! इस बिना कारण की लड़ाई के बड़े दुःख को प्रभु के सामने पुकारता हूँ ( भाव—तुमसे रपट कर दी है ) ॥ ५ ॥ ( जो कहो कि और देवताओं से पुकार करो तो ) और देवता तो मतलबी हैं, स्वामी होने योग्य नहीं हैं ( अर्थात् वे कुछ करने लायक नहीं हैं ), बड़े कठोर हैं और उनके चित्त में दया नहीं है। सो मैं कहाँ जाऊँ ? जगत् में विपत्ति को दूर करने-वाला और संसार से तारनेवाला कौन है। ( अर्थात् कोई नहीं है ) ॥ ६ ॥ तुलसीदास यद्यपि नीच है पर है तो तुम्हारा ही और किसी का तो नहीं है। एक बार तुम भक्ति-रूपी बाँह ( का निसान ) दे दो ( तो उसमें खड़ा कर दूँ ) कि जिससे अब वह नगला अच्छी भाँति से बस जाय ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—दादि = इन्साफ़। साम = ख़ुशामद। छल = भेद, फूट करा देना। अनीस = असमर्थ। बैरक ( बेर + एक ) एक बार। खेड़ा = नगला, छोटा सा गाँव।

[ १४६ ]

हौं सब विधि राम रावरो चाहत भयो चेरो ।
ठौर ठौर साहबी होत है ख्याल काल कलि केरो ॥ १ ॥
काल कर्म इंद्रिय विषय गाहक गन घेरो ।

हौं न कबूलत बाँधिकै मोल करत ककेरो ॥ २ ॥
बंदि छोर तेरो नाम है विरुदैत बड़ेरो।
मैं कह्यो तब छल प्रीति कै माँगे उर डेरो ॥ ३ ॥
नाम ओट अबलगि बच्यों मलजुग जग जेरो।
अब गरीब जन पोषिये पाइबो न हेरो ॥ ४ ॥
जेहि कौतुक वक स्वान को प्रभु न्याय निबेरो।
तेहि कौतुक कहिए कृपाल तुलसी है मेरो ॥ ५ ॥

हे राम! मैं तो सब भाँति तुम्हारा ग़ुलाम हुआ चाहता हूँ। पर यहाँ जगह जगह पर साहबी हो रही है (अर्थात् इन्द्रियों के विजयरूपी साहब अपनी अपनी साहबी दिखा कर मुझे ग़ुलामी के लिए लिया चाहते हैं सो यह) खेल कलियुग के समय का है। काल-कर्म और (देखना, सूँघना आदि) इन्द्रियों के विषयरूपी गाहकों ने मिल कर मुझे घेर रक्खा है और जब मैं (उनकी बात) कबूल नहीं करता तब वे मुझे बाँध कर (अर्थात् वश में करके) मेरा कड़ा मोल करते हैं (अर्थात् मोल बढ़ाते हैं। भाव यह है कि हर एक विषय लालच दिखा कर मुझे अपने वश में किया चाहता है) ॥ २ ॥ इनके बंधन से छुड़ानेवाला तुम्हारा नाम और बड़ा (प्रणत-पालक) बाना है। सो जब मैंने उनसे कहा (कि मैं तो रामचन्द्रजी के हाथ बिक कर उनका ग़ुलाम हुआ चाहता हूँ) तब उन्होंने कपट कर प्रीति से मेरे हृदय में अपने लिए डेरा माँगा (अर्थात् जो तुम हमारे हाथ न बिको तो हमें अपने हृदय में ही बसा लो। सो पहले प्रीति कर घुसेंगे फिर कपट कर मेरे हृदय का नाश करेंगे) ॥ ३ ॥ मैं अब तक तो तुम्हारे नाम के सहारे से बचा रहा था पर अब इस कलियुग ने मुझे संसार में जेरबार कर दिया। सो अब इस ग़रीब जन का पालन कीजिए, (जो न करोगे तो फिर) यह ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगा ॥ ४ ॥ हे हरे! जिस लीला से बगुले (१) और

---

(१) किसी वन में उल्लू और गिद्ध एक घर में रहते थे। एक दिन गिद्ध के मन में पाप आया तो वह उल्लू से कहने लगा कि यह घर मेरा है और जो तू न माने तो चल हम अपने श्रेष्ठ राजा रामचन्द्रजी से न्याय करा लें। इस पर दोनों राज़ी होकर रामजी के पास गये और पहले गिद्ध ने प्रणाम करके कहा कि आप हमारे श्रेष्ठ न्यायवान् राजा हैं यह उल्लू मेरा बनाबनाया घर छीने लेता है सो न्याय करके मेरा घर मुझे दिलाइए। रामजी ने उल्लू से पूछा कि यह क्या बात है? तू सत्य सत्य कह। उल्लू ने कहा हे प्रभो!

कुत्ते ( १ ) का न्याय तुमने किया था उसी लीला से हे कृपालु ! तुम ( इस कलियुग से ) कह दो कि ( सदा से ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध होने के कारण यह ) तुलसीदास मेरा है ( तू उसे सतावेगा तो दण्ड पावेगा ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—गन = समूह, मिल कर । ककेरो = कड़ा । बन्दि = बन्धन । विरुदैत = बाना । मल-युत = कलियुग । जेरो = जेरबार । हेरो = ढूँढ़ने पर । बक = बगुला ।

[ १४७ ]

कृपासिंधु ताते रहौं निसि दिन मनमारे ।
महाराज लाज आपुहि निज जाँघ उघारे ॥ १ ॥
मिले रहैं मार्‍यो चहैं कामादि सँघाती ।
मो बिनु रहैं न मेरि ये जारैं छल छाती ॥ २ ॥
बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली ।

---

यह झूठ बकता है । वह घर सदा से मेरा है । इस विवाद को सुन रामजी ने पहले गिद्ध से पूछा कि तू कब से इस घर में रहता है ? गिद्ध ने उत्तर दिया कि जब से इस पृथ्वी पर मनुष्य-सृष्टि हुई । फिर उल्लू से पूछा कि तू कब से रहता है ? उल्लू ने कहा हे अन्नदाता ! मैं तो जब से पृथ्वी पर वृक्षों की सृष्टि हुई है तब से रहता हूँ । यह सुन कर रामजी ने गिद्ध से कहा कि मनुष्यों की सृष्टि से वृक्षों की सृष्टि पहले हुई है इस-लिए यह घर उल्लू का है, तेरा नहीं । यह न्याय करके गिद्ध से उल्लू का पीछा छुड़ा दिया । वाल्मीकि० उ० का० ७१ स० ।

( १ ) रामराज्य में एक कुत्ते ने आकर रामजी से विनय की कि हे दीनानाथ ! एक तीर्थ-सिद्ध नाम ब्राह्मण ने बिना अपराध लकड़ी से मेरा सिर फोड़ दिया है । रामजी ने ब्राह्मण को बुलवाया और उससे कुत्ते के मारने का वृत्तान्त पूछा । ब्राह्मण ने कहा मैं भीख माँगता फिरता था इसको मार्ग में से मैंने हटाया पर जब यह न हटा तब मैंने इसे लकड़ी मार दी । यह सुन भगवान् विचारने लगे कि ब्राह्मण को कैसे दण्ड दूँ । बड़ा अधर्म है । इतने में कुत्ता बोला कि हे महाराज ! आप मुझपर प्रसन्न हैं तो इस ब्राह्मण को कालञ्जर का महन्त बना कर इसे दण्डित कर दीजिये । यह सुन रामजी ने ऐसा ही किया और कुत्ते से पूछने पर उन्हें विदित हुआ कि पहले वह वहाँ का महन्त था और उसने उसी कर्म से इस योनि को पाया था । यों बदला देकर रामजी ने ब्राह्मण से कुत्ते का पीछा छुड़ाया ।

इसकी पूरी कथा वाल्मीकि के उ० का० में ७० वें सर्ग में है ।

**संकेत—गुसाईं जी ने बगले और कुत्ते का न्याय लिखा है परन्तु वाल्मीकि-रामायण में उल्लू और कुत्ते का है । बगले का कदाचित् किसी अन्य रामायण में हो ।**

किया कथिक को दंड हौं जड़करम कुचाली ॥ ३ ॥
देखी सुनी न आजुलौं अपनायत ऐसी।
करहिं सबै सिर मेरेई फिरि परै अनैसी ॥ ४ ॥
बड़े अलेखी लखिपरे परिहरे न जाहीं।
असमंजस मों मगन हौं लीजै गहि बाहीं ॥ ५ ॥
वारक बलि अवलोकिए कौतुक जन जी को।
अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी को ॥ ६ ॥

हे कृपासिन्धु! मैं अपने मन को रात-दिन इसलिए मारे रहता हूँ कि हे महाराज! अपनी जाँघ उघाड़ने से अपने का ही लाज होती है (अर्थात् अपना पाप कहने से अपने को ही शरम आती है) ॥ १ ॥ ये काम आदि (क्रोध, लोभ, मोह) बड़े दुष्ट हैं, मिले रहने पर भी मुझे मारा चाहते हैं (जो कहो कि इन्हें छोड़ क्यों नहीं देते तहाँ कहते हैं कि मैं तो इन्हें बहुतेरा छोड़ूँ पर) ये मेरे बिना रहते तो नहीं। और ये छल करके मेरी ही छाती जलाते हैं ॥ २ ॥ मैंने अपना भला जान कर और इनको अपने हृदय में बसा कर इन सब की रुचि पूरी कर दी। (अर्थात् काम की रुचि के लिए स्त्री से सम्भोग किया, क्रोध की रुचि रखने को सबसे बैर किया, लोभ की रुचि के लिए ठग-विद्या करता हूँ, मोह के लिए अहङ्कार करता हूँ) पर इन दुष्ट-कर्म करानेवाले कुचालियों ने मुझे कत्थक की लकड़ी बना रक्खा है (अर्थात् जैसे गानेवाला एक लकड़ी में घूँघरू बाँध कर लड़के को नाचना सिखाता है और लड़का उस लकड़ी के अनुसार नाचता है वैसे ही ये मुझे लकड़ी बना कर मेरे मन को नचाते हैं) ॥ ३ ॥ मैंने ऐसी आपनधाप न तो आज तक देखी और न सुनी कि ये (कामादि) सब करते तो आप हैं और फिर मेरे सिर पर सब खोट पड़ती है (अर्थात् पहले तो मन के द्वारा नेत्र आदि इन्द्रियों से बुरे बुरे कर्म कराते हैं और जब उनका फल मिलता है तब जीव को भोगना पड़ता है) ॥४॥ (हे प्रभो!) ये (कामादि) बड़े अलेखी हैं (अर्थात् अज्ञान-दृष्टि से) देखने में नहीं आते और जो (ज्ञान-दृष्टि से) दीख भी पड़ें तो छोड़े नहीं जाते। सो मैं इस दुविधा (रूपी समुद्र) में डूब रहा हूँ (न तो मैं उनको सङ्ग रखना चाहता हूँ और न वे मुझे छोड़ते हैं इसलिए उनमें से) तुम मुझे बाँह पकड़ कर निकाल लो ॥ ५ ॥ तुम्हारी बलैया लूँ तुम एक बार दास के जीव का तमाशा तो देख लो (तुम्हारे देखने मात्र से) सहज ही में तुलसी का संकट मिट जायगा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—दण्ड = लकड़ी । अनैसी = खोट, बुराई । अलेखी = जो दीखे नहीं । असमंजस = दुबधा । वारक ( बार + एक ) = एक बार ।

[ १४८ ]

कहौं कौन मुँह लाइकै रघुवीर गुसाईं ।
सकुचत समुझत आपनी सब साइँ दोहाईं ॥ १ ॥
सेवत वस सुमिरत सखा सरनागत सोहौं ।
गुनगन सीतानाथ के चित करत न हौं हौं ॥ २ ॥
कृपासिंधु दीनबंधु के आरत हितकारी ।
प्रनतपाल विरुदावली सुनि जानि विसारी ॥ ३ ॥
सेइ न धेइ न सुमिरि के पद प्रीति सुधारी ।
पाइ सुसाहिब राम सों भरिपेट बिगारी ॥ ४ ॥
नाथ गरीबनिवाज हैं मैं गही न गरीबी ।
तुलसी प्रभु निज ओरते बनि परै सो कीबी ॥ ५ ॥

हे रघुवंश के वीर ! हे गुसाईं ! कौन सा मुँह लाकर मैं तुमसे कहूँ । स्वामी की सौगन्द मैं अपनी सब ( करनी ) को समझ कर आप ही सकुचाया जाता हूँ ( अर्थात् लाज के मारे सामने नहीं हो सकता ) ॥ १ ॥ तुम सेवा करने से वश में होते हो, स्मरण करने से मित्रभाव रखते हो और ( दीन के ) शरण होने पर सामने होते हो ( अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन देते हो ) परन्तु हे राम ! तुम्हारे ऐसे गुण-गणों को मैं कभी चित्त में भी नहीं लाता ॥ २ ॥ तुम दया के समुद्र, दीनों के बन्धु, दुखियों के हित करनेवाले, और दीनों के पालनकर्त्ता हो, मैं तुम्हारी विरुदावली को सुन कर और जान कर भी भूल गया ॥ ३ ॥ सेवा नहीं की, ध्यान नहीं किया और न स्मरण करके तुम्हारे चरणों में सुन्दर प्रीति की ( वरन् ) राम सरीखा मालिक पाकर भी ( बुरे कर्म करके जीव के नाश के लिए ) पेट भर कर बिगाड़ कर दिया ॥ ४ ॥ हे नाथ ! तुम तो ग़रीबों के ऊपर कृपा करनेवाले हो और ( मैं ऐसा नीच हूँ कि ) मुझे ग़रीबी भी नहीं ग्रहण करती, सो हे प्रभो ! अपनी ओर से जो बन पड़े सो इस तुलसी के लिए करिये ॥ ५ ॥

संधि-विभाग—विरुद ( बाना ) + अवली ( पंक्ति ) ।

[ १४९ ]

कहाँ जाउँ कासों कहौं और ठौर न मेरे।
जनम गवायों तेरेही द्वार किंकर तेरे ॥ १ ॥
मैं तो बिगारी नाथ सों आरति क लीन्हें।
तोहिं कृपानिधि क्यों बनै मेरी सी कीन्हें ॥ २ ॥
दिन दुरदिन दिन दुरदसा, दिन दुख दिन दूषन।
जौलौं तू न विलोकि है रघुवंसविभूषन ॥ ३ ॥
दई पीठ विनु डीठ हौं तू विस्वविलोचन।
तोसो तुही न दूसरो नत सोचविमोचन ॥ ४ ॥
पराधीन देव दीन हौं स्वाधीन गुसाँई।
बोलनिहारे सों करै बलि विनय कि झाईं ॥ ५ ॥
आपु देखि मोहिं देखिये जन मानिय साँचो।
बड़ी वोट राम नाम की जेहि लयो सो बाँचो ॥ ६ ॥
रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है।
ज्यों भावै त्यों कर कृपा तेरो तुलसी है ॥ ७ ॥

मैं कहाँ जाऊँ और किससे कहूँ मेरे दूसरी जगह है ही नहीं। तेरे दास ने तो तेरे ही द्वार पर जन्म बिता दिया ॥ १ ॥ मैंने जो तुझ स्वामी से बिगाड़ किया सो दुःख के वश ( क्योंकि दुखी को बुराई भलाई का ज्ञान नहीं रहता ) परन्तु तू तो कृपा का समुद्र है, तुझे मेरी सी करना कैसे बन सकता है ॥ २ ॥ तब तक दिन पर दिन खोटे दिन, दिन दिन खोटी दशा, दिन दिन दुःख और दिन दिन बदनामी ही होती रहेगी कि जब तक हे रघुवंश के आभूषण! तू नहीं देखेगा ॥ ३ ॥ ( जो कहो कि हमसे तो दृष्टि करने को कहता है आप पीठ फेरे रहता है तहाँ कहते हैं कि मैंने जो तुझे ) पीठ दे रक्खी है ( अर्थात् तुझसे विमुख हो रहा हूँ ) सो मैं तो अन्धा हूँ ( अर्थात् मेरे ज्ञान-दृष्टि नहीं ) पर तू तो संसार भर का देखने वाला है ( भाव—सबके बाहर भीतर का प्रकाशक है ) तुझ सरीखा तूही है, ग़रीबों के सोच को दूर

करने वाला दूसरा नहीं है॥ ४ ॥ हे देव ! मैं ग़रीब हूँ और (तिस पर भी) पराये अधीन हूँ और तू तो अपने अधीन और इन्द्रियों को वश में करने वाला है। मैं तेरी बलैयाँ लूँ क्या बोलने वाले से (अर्थात् चैतन्यरूप से) उसकी परछाईं विनती कर सकती है? (अर्थात् नहीं कर सकती। चैतन्य जड़ परछाईं से जो चाहे सो करा सकता है)॥ ५॥ सो तू अपनी ओर देख कर मुझे देख, तब दास को सच्चा मानना। हे राम ! बड़ा सहारा तेरे नाम का है जिसने उसे लिया है वही बचा है। हे राम ! तेरी रहनि और रीति मेरे हृदय में नित्य फूली नहीं समाती। जैसे तुझे अच्छा लगे वैसे दया कर क्योंकि तुलसीदास तेरा है (किसी और का नहीं है)॥ ६॥

[ १५० ]

राम भद्र मोहिं आपनो सोच है अरु नाहीं।
जीव सकल संताप के भाजन जगमाहीं॥ १॥
नातो बड़े समर्थ सों एक ओर किधौं हूं।
तोको मोसे अति घने मोको इक तो हूं॥ २॥
बड़ि गलानि हानि है हिये सरवज्ञ गुसाईं।
कूर कुसेवक कहत हौं सेवक की नाईं॥ ३॥
भलो पोच कहैं राम को मोहिं सब नर नारी।
बिगरे सेवक स्वान ज्यों साहब सिर गारी॥ ४॥
असमंजस मन को मिटै सो उपाय न सूझै।
दीनबंधु कीजै सोई बनिपरै जो बूझै॥ ५॥
विरदावली विलोकिए तिन्ह में कोई हो हौं।
तुलसी प्रभु को परिहर्‍यो सरनागत सोहौं॥ ६॥

हे राम ! हे कल्याण की मूर्ति ! मुझे अपना सोच है भी और नहीं भी है। (सोच तो यों नहीं है कि) संसार में सब जीव सन्ताप के पात्र हैं (अर्थात् सब को शुभ अशुभ कर्मों का भोग भोगना पड़ता है फिर मुझे क्यों न भोगना पड़े)॥ १॥ (और सोच इस बात का है कि) क्या तुझ (सरीखे) बड़े समर्थ से केवल मेरी तरफ़ से ही नाता है (तू मुझ से नहीं मानता कारण) तुझे तो मुझसे बहुत से हैं और मुझे तो तू

एक ही है ॥ २ ॥ इस हानि से मेरे मन में बड़ा भारी दुःख यों है कि स्वामी तो सर्वज्ञ (भीतर बाहर की सब जानने वाला) है और मैं कुटिल और बुरा (नमकहराम) सेवक (होने पर भी) सेवक की सी बातें मारता हूँ (सो सर्वज्ञ के सामने कहाँ तक छिपेगा और कैसे बनेगी) ॥ ३ ॥ और मैं बुरा हूँ या भला हूँ (लोग इसे क्या जाने) सब स्त्री पुरुष कहते तो मुझे राम का ही हैं (सो मेरी बुराई से तेरी भी बुराई होगी जैसे) नौकर और कुत्ते के बिगड़ने से मालिक के सिर गालियाँ पड़ती हैं (भाव—कटखने कुत्ते को तो कोई गाली नहीं देता, पालने वाले को गाली देते हैं कि अमुक मनुष्य ने अच्छा कुत्ता पाला। ऐसे ही मैं तेरा सेवक बाजता हूँ। खोटे कर्म करूँगा तो तेरी बात में भी अवश्य बट्टा लगेगा) ॥ ४ ॥ (जो कहो कि अच्छे सेवक होने का उपाय क्यों नहीं ढूँढ़ता तहाँ कहते हैं कि) मुझे वह उपाय नहीं सूझता कि जिससे मन की दुविधा मिटे सो हे दीनबन्धु! जो तुझे सूझे और तुझसे बन पड़े सो तूही कर ॥ ५ ॥ (जो कहो कि तू आपही कुसेवक बनता है हम क्या कृपा करें तहाँ कहते हैं कि) तू अपनी विरदावली कहिए यश की पाँति को देख (अर्थात् भक्तवत्सल, प्रणतपाल, दीनबन्धु, पतितपावन, इत्यादि जो तेरे बाने हैं उनके चिट्ठे में देख) उनमें से मैं (भक्त, प्रणत, दीन, पतित) कोई हूँ या नहीं (इनमें से कोई तो होऊँगा इस नाते से कृपा कर नहीं तो) प्रभु का त्यागा हुआ तुलसी सामने शरणागत होकर पड़ेगा। (और जब तुझे छोड़ कर कहीं नहीं जायगा तब तू स्वयं कृपा करेगा) ॥ ६ ॥

[ १५१ ]

जो पैं चेराई राम की करतो न लजातो।
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो ॥१॥
जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो।
बाजीगर के सूम ज्यों खल खेह न खातो ॥२॥
जो तू मन मेरे कहे राम नाम कमातो।
सीतापति संमुख सुखी सब ठाँव समातो ॥३॥
राम सुहातो तोहि जो तू सबहिं सोहातो।
काल कर्म कुल कारनी कोऊ न कोहातो ॥४॥
रामनाम अनुरागही जिय जो रतिआतो।

स्वारथ परमारथ पथी तोहिं सब पतिआतो ॥५॥
सेई साधु सुनि समुझिकै पर पीर पिरातो।
जनम कोटि को काँदलो हृद हृदै थिरातो ॥६॥
भवमग अगम अनंत है विनु स्रमहि सिरातो।
महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो ॥७॥
अमर अगम तनु पाइ सो जड़ जाय न जातो।
होतो मंगलमूल तू अनुकूल विधातो ॥८॥
जो मन प्रीति प्रतीति सों राम नामहि रातो।
तुलसी रामप्रसाद सो तिहुँ ताप न तातो ॥९॥

(रे मन!) जो तू राम की चाकरी करने में नहीं लजाता तो तू दाम (कहिए सोने का खरा माल) होकर भी कुदाम (कहिए कांसे पीतल) की तरह हाथ हाथ नहीं बिकता डोलता (भाव यह है रामजी की सेवा करता तो सब जगह तेरा आदर होता जैसे जिस सोने के पासे पर सरकार की मोहर होती है उसे सब आदर से लेते हैं और जिस पर नहीं है उस पर लोग बट्टा माँगते हैं) ॥ १ ॥ जो तू जीभ से रघुनाथजी के नाम को जपने में आलस्य नहीं करता (भाव—नाम लेने में सूमपना न करता) तो हे मूर्ख! बाज़ीगर के सूम की तरह धूल नहीं फाँकनी पड़ती (अर्थात् जैसे बाज़ीगर कपड़े वा काठ का पुतला बना रखते हैं और जब कहीं तमाशा होता है और सूम आदमी कुछ नहीं देता है तब उस पुतले को सूम कह कर और उसके मुँह में धूल भर कर उसे गाली देते हैं सो तेरा वैसा हाल न होता। भाव यह है कि तू घट में ही ब्रह्मानन्द-सुख पाता और विषयादि में नहीं लगता) ॥ २ ॥ हे मन! जो तू मेरे कहने से राम नाम कमाता तो रामजी के सामने जाकर सुखी होता और सब जगह (कहिए लोक परलोक में) समा सकता (अर्थात् तेरा आदर होता) ॥ ३ ॥ जो तुझे रघुनाथजी अच्छे लगते तो तूभी सबको अच्छा लगता। और काल, कर्म जो सब कारण हैं (अर्थात् बुरे भले काम करने की प्रेरणा करने वाले हैं इनमें से) कोई भी तुझ पर रोस नहीं करता ॥ ४ ॥ हे मन! जो तू जी में राम नाम से ही प्रेम और प्रीति लगाता तो स्वारथ (इस लोक के) और परमार्थ (परलोक) के रास्तेगीर सब तेरा पतयारा करते (अर्थात् तेरे स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध होते) ॥ ५ ॥ जो तू साधुओं की सेवा

करता और दूसरों का दुःख सुनकर और समझकर दुखी होता तो तेरे हृदयरूपी तालाब में करोड़ों जन्म का मैल नीचे बैठ जाता (अर्थात् तेरा अन्तःकरण निर्मल हो जाता) ॥६॥ और संसार का मार्ग ऐसा कठिन है कि जिसका अन्त नहीं सो बिना ही श्रम के पूरा हो जाता (क्योंकि) भगवान् के उलटे नाम लेने की महिमा ने (वाल्मीकि को) किरात से मुनि कर दिया ॥ ७ ॥ और हे मूर्ख ! तूने जो अमर और दुर्लभ शरीर पाया था सो यह वृथा नहीं जाता । और तू आनन्द की जड़ (अर्थात् ब्रह्मस्वरूप) हो जाता और विधाता (तुझ पर) प्रसन्न होता (कि मेरा बनाना सफल हुआ) ॥ ८ ॥ हे मन ! जो तू प्रीति और विश्वास से रामनाम में लगता तो तुलसीदास रामजी के प्रसाद से (संसार के) तीनों तापों से नहीं तचता (अर्थात् सदा आनन्द में रहता) ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—कोहातो = गुस्सा होता । बिरातो = दुखी होता । कांदला = कीचड़, मैल जाय = वृथा । रातौ = प्रीति करता ।

[ १९२ ]

राम भलाई आपनी भल कियो न काको ।
जुग जुग जानकीनाथ जग जागत साको ॥१॥
ब्रह्मादिक विनती करी कहि दुख वसुधा को ।
रविकुलकैरवचन्द भो आनन्द सुधा को ॥२॥
कौसिक गरत तुषार ज्यों ताकि तेज तिया को ।
प्रभु अनहित हित को दियो फल कोप कृपा को ॥३॥
हृत्यो पाप आप जाइकै संताप सिला को ।
सोचमगन काढ्यो सही साहिब मिथिला को ॥४॥
रोषरासि भृगुपति धनी अहमिति ममता को ।
चितवत भाजन कर लियो उपसम समता को ॥५॥
मुदित मानि आयसु चले वन मातु पिता को ।
धर्म्मधुरंधर धीर गुन सीलजिता को ॥६॥
गुह गरीब गत ज्ञातिहू जेहि जिउ न भखा को ।

पायो पावन प्रेमते सनमान सखा को ॥७॥
सदगति सबरी गीध की सादर करता को।
सोचसींव सुग्रीव को संकट हरता को ॥८॥
राखि विभीषन को सकै तेहि काल कहाँ को।
आजु विराजत राज हो दसकंठ जहाँ को ॥९॥
बालिस वासी औध के बूझिये न खाको।
ते पाँवर पहुँचे तहाँ जहँ मुनि मन थाको ॥१०॥
गति न लहै रामनाम सों विधि सो सिरजा को।
सुमिरत कहत प्रचारि कै वल्लभ गिरिजा को ॥११॥
अकनि अजामिल की कथा सानन्द न भा को।
नाम लेत कलिकालहूँ हरिपुरहि न गा को ॥१२॥
रामनाम महिमा करै कामभूरुह आको।
साखी वेद पुरान हैं तुलसीतन ताको ॥१३॥

राम ने अपनी भलाई से किसका भला नहीं किया ( अर्थात् सब का ही किया )। जुग जुग में जो काम जानकीनाथ ने किया सो संसार में प्रगट है॥ १ ॥ ब्रह्मादि देवताओं ने पृथ्वी का दुःख कह कर ( उसका भार उतारने के लिए ) विनती की थी। सो सूर्य्यकुलरूपी कुमुदवन को ( खिलाने के लिये ) चन्द्ररूप और अमृत समान आनन्द-दायक ( रामजी ) उत्पन्न हुये॥ २ ॥ विश्वामित्र, स्त्री ( ताड़का ) के तेज को देख कर ( सूर्य्य के तेज से ) ओले की तरह गले जाते थे ( सो उसे मार कर ) प्रभु ने शत्रु को भी मित्र का फल दिया और क्रोध करके भी कृपाही की ( भाव—ताड़का को शत्रु मान क्रोध कर नरक भेजना चाहिए था परन्तु कृपाकर उसे स्वर्ग दिया )॥३॥ और आपही जाकर शिला (अहिल्या) का पाप और संताप दूर किया। और मिथिला का राजा (जनक धनुष-भंग और जानकीजी के विवाह के ) सोच ( समुद्र ) में डूब रहा था सो ( धनुष को तोड़ उसे सोच-समुद्र से ) जीता जागता बाहर निकाल लिया॥ ४ ॥ और परशु-रामजी जो क्रोध की मूर्त्ति और अहंकार तथा ममता के धनी थे ( अर्थात् धन की जगह उनके पास यही था और बड़े भारी अहंकारी थे कि मेरे समान कोई पृथ्वी का

जीतने वाला नहीं—मेरे समान कोई माता पिता में ममता करने वाला नहीं सो) उनको देखतेही शान्ति और समता का पात्र कर लिया ( अर्थात् उन्हें शान्त करके ऐसा कर दिया कि सब को समान देखने लगे ) ॥ ५ ॥ माता पिता की आज्ञा मान प्रसन्न होकर वन को चल दिये । सो धर्म्म के भार को धारण करने वाला, धीर और गुण तथा शील को जीतने वाला ( उनके सिवा दूसरा ) कौन है ॥ ६ ॥ निषाद ग़रीब और नीच जाति था और ऐसा कौनसा जीव है कि जिसे उसने न खाया हो । उसने भी पवित्र ( निष्कपट ) प्रेम से मित्र का सा आदर पाया ( अर्थात् भगवान् ने उसे अपना सखा बना लिया ) ॥७॥ फिर शबरी और गिद्ध की मोक्ष आदर से कौन करता । और सोच की सीमा (अर्थात् बड़े शोच में पड़े हुए) सुग्रीव के संकट को कान दूर करता ॥८॥ और (जब रावण ने निकाल दिया था ) उस समय विभीषण को कौन कहाँ रख सकता था कि आज ( जिस समय ) जहाँ ( लंका ) का राजा रावण विराजमान था ॥ ९ ॥ अयोध्या का रहने वाला धोबी ऐसा मूर्ख था कि कुछ पूछोही मत । ( जिसने रावण के यहाँ रहने से सीताजी की निन्दा की थी ) ऐसे ऐसे नीच भी वहाँ ( परम धाम को ) पहुँच गये जहाँ पर जाने में मुनीश्वरों का मन भी थक जाता है ( अर्थात् जहाँ के लिए बड़े बड़े मुनि यत्न करते करते अपने मन में हार जाते हैं और नहीं पहुँच सकते ) ॥ १० ॥ राम नाम लेने से जिसकी मोक्ष ( १ ) न हो ऐसा ब्रह्मा ने किसको बनाया है ( अर्थात् किसी को नहीं बनाया ) जिस ( राम नाम ) का महादेवजी ( २ ) स्मरण करते हैं और ( दूसरों को ) उपदेश देकर उसका प्रचार करते हैं ॥ ११ ॥ अजामेल की कथा को सुन कर ऐसा कौन है जो आनन्द में मगन नहीं हुआ हो । और कलिकाल में भी नाम लेकर हरिपुर ( वैकुंठ ) में कौन नहीं गया ॥ १२ ॥ राम-नाम की महिमा ऐसी है कि आक के वृक्ष को भी कल्प-वृक्ष बना देती है । इसके साक्षी वेद और पुराण हैं और ( प्रत्यक्ष में देखना हो तो ) तुलसी के शरीर को देख लो ( कैसा नीच था कि मूल नक्षत्र में पैदा होने से बाप तक ने फेंक दिया था सो अब राम-भक्त कहाता है ) ॥ १३ ॥

---

(१) अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः । परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात् । सरलार्थः ।

(२) अध्यात्म में शिवजी ने राम से कहा है :—

अहो भवन्नाम जपन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मंत्रं तव राम नाम ॥ १ ॥

अर्थात् मैं आपका नाम जपता जपता कृतार्थ होकर पार्वतीजी के साथ काशी में रहता हूँ और मरते हुए प्राणी को मुक्ति के लिए हे राम ! तुम्हारे नाम मन्त्र का उपदेश करता हूँ ।

शब्दार्थ--साको (साका) = काम। कैरव = कुमुदिनी। रासि = समूह उपसम = शांति। गत = नीच। जिउ = जीव। दसकंठ = रावण। वालिस = मूर्ख। खाको ( खा = रज + क = रजक ) = धोबी। वल्लभ = पति। गिरिजा = पार्वती। अकनि = सुनकर ( संस्कृत के आकर्ण्य का अपभ्रंश है ) गा = गया। काम ( मनोरथ ) + भूरुह ( वृक्ष ) = कल्प-वृक्ष। ताको = देखो।

[ १५३ ]

मेरे रावरिए गति है रघुपति बलि जाऊँ।
निलज नीच निरधन निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाऊँ ॥१॥
हैं घर घर भव भरे सुसाहिब सूझत सबनि आपनो दाऊँ।
वानर बंधु विभीषन हित विन कोसलपाल कहूँ न समाऊँ ॥२॥
प्रनतारतिभंजन जनरंजन सरनागत पविपंजर नाऊँ।
कीजै दास दास तुलसी अब कृपासिंधु विनु मोल बिकाऊँ ॥३॥

हे रघुनाथजी! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेताहूँ, मुझे तो तुम्हारी ही शरण है। (क्योंकि) बेशरम, नीच, कंगाल और निरगुनी के लिए संसार में न तो ऐसा मालिक है और न ठिकाना है॥ १॥ (यों तो) संसार के घर घर में बहुत से अच्छे अछे मालिक भरे पड़े हैं। पर सबको अपना ही दाव सूझता है ( अर्थात् सब पूजा लेकर फल देनेवाले हैं ) सुग्रीव के बंधु और विभीषण के हितकारी ऐसे रामचन्द्रजी के बिना मैं कहीं नहीं समा सकता ( अर्थात् दूसरे देवता के यहाँ मेरी दाल नहीं गलेगी )॥ २॥ तुम भक्तों के दुःखनाशक और दासों को प्रसन्न करनेवाले हो और शरणागतों के लिए तुम्हारा नाम वज्र के पिञ्जरे के समान है ( अर्थात् जीव को फिर किसी प्रकार की बाधा नहीं होती )। सो अब तुलसीदास को अपना दास कर लीजिए ( जो कहो कि ऐसे नीच, पापी को हम मोल लेकर क्या करेंगे, तहाँ कहते हैं कि ) हे कृपासिन्धु! मैं अब बिना मोल के ही बिकता हूँ (अर्थात् बिना अपने स्वारथ के आपका दास हुआ चाहता हूँ )॥ ३॥

संधि-विभाग—प्रणत ( दास ) + आरत (दुःख)

शब्दार्थ—पवि = वज्र। पंजर = पिंजरा।

[ १५४ ]

देव दूसरो कौन दीन को दयाल।
सीलनिधान सुजान सिरोमनि सरनागत प्रिय प्रनतपाल ॥१॥

को समर्थ सर्वज्ञ सकल प्रभु सिव सनेह मानस मरालु ।
को साहब किये मीत प्रीतिवस खग निसिचर कपि भील भालु॥२॥
नाथ हाथ माया प्रपंच सब जीव दोष गुन करम काल ।
तुलसिदास भल पोच रावरो नेकु निरखि कीजिय निहाल ॥३॥

हे देव! दीनों पर दया करनेवाला दूसरा कौन है। तुम शील के स्थान अर्थात् बड़े सुशील सुजान कहिए आत्मज्ञानियों के शिरोमणि, शरणागतों के प्यारे और भक्तों की रक्षा करनेवाले हो॥१॥ तुम्हारे समान कौन समर्थ है; तुम सब जाननेवाले और सब (ब्रह्मा आदि) के भी प्रभु हो। और शिवजी के स्नेहरूपी मानसरोवर के हंसरूप हो (अर्थात् सदा शिवजी के स्नेह के कारण उनके हृदय में ऐसे वास करते हो कि जैसे हंस मानसरोवर पर रहता है) कौन सा स्वामी है कि जिसने प्रीति के वश होकर खग (जटायु) निशिचर (विभीषण) कपि (सुग्रीव) निषाद और रीछ (जाम्बवन्त) को मित्र बनाया हो॥२॥ हे नाथ! तुम्हारे ही हाथ माया का प्रपंच (कहिए, करना, धरना) और सब जीवों का दोष, गुण, कर्म और काल है। तुलसीदास भला बुरा तुम्हारा ही है; नेंक देख कर इसे निहाल कर दो॥३॥

[ १५५ ]

राग सारंग।

विस्वास एक राम नाम को ।
मानत नहीं प्रतीति अनत ऐसोई सुभाउ मन बाम को ॥१॥
पढ़िबो पर्‌यो न छठी छमत रिग जजुर अथरवन साम को ।
व्रत तीरथ तप सुनि सहमत पचि मरै करै तन छाम को ॥२॥
करमजाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को ।
ज्ञान विराग जोग जप तप भय लोभ मोह कोह काम को ॥३॥
सब दिन सब लायक भव गायक रघुनायक गुनग्राम को ।
बैठे नाम कामतरु तर डर कौन घोर घन घाम को ॥४॥

को जानै को जैहै यमपुर को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥५॥

मुझे एक राम नाम का ही भरोसा है। मेरे कुटिल मन का ऐसाही स्वभाव है कि वह दूसरे का पतयारा नहीं करता ॥ १ ॥ छः मत (कहिए छत्रों शास्त्र) और ऋक्, यजु, साम और अथर्वण इनका पढ़ना मेरी छठी में ही नहीं पड़ा (अर्थात् विमाता जो छठी के दिन भाग्य में लिखती है उसने पढ़ना, लिखना लिखा ही नहीं अब रहे) तीरथ, व्रत और तप सो इनके सुनते ही (कठिनता के कारण) मन घबरा जाता है कि कौन पचि पचि कर मरे और शरीर को दुबला करै ॥ २ ॥ और कलियुग में (यज्ञ आदि) कर्म-जाल कठिन है और उसका अच्छा साधन होना दामों के आधीन है (अधिक द्रव्य हो तो हो सकें) और ज्ञान, वैराग, जोग, जप, तप (इनके करने) में काम, क्रोध, लोभ, मोह का डर लगा हुआ है (न ये छुटेंगे और न ज्ञान, योग आदि होंगे) ॥ ३ ॥ सब दिन सब (देने के) लायक़ और शिवजी भी जिसे गाते हैं ऐसा रामजी के गुण-गण के समान कौन है (अर्थात् कोई नहीं है) और जो राम-नामरूपी कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हैं उनको (संसाररूपी) बादल और (तीन प्रकार के संतापरूपी) कड़ी धूप का क्या डर है ॥ ४ ॥ यह कौन जानता है कि यमपुरी को कौन जायगा और कौन स्वर्ग और वैकुण्ठ को जायगा (यहाँ तो देह को कष्ट भोगना पड़ता है, इसलिए) तुलसीदास को तो संसार में राम का ग़ुलाम होकर जीना बहुत अच्छा लगता है।

शब्दार्थ—वाम = टेढ़ा। सहमना = घबरा जाना। छाम (क्षाम) = दुबला। भव = शिवजी। ग्राम = समूह। परधाम (परम धाम) = वैकुंठ।

[ १५६ ]

कलि नाम कामतरु राम को।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को ॥ १ ॥
नाम लेत दाहिनो होत मन वाम विधाता वाम को।
कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को ॥ २ ॥
भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित ललाम को।
तुलसी जग जानियत नामते सोच न कूँच मुकाम को ॥ ३ ॥

कलियुग में राम का नाम ही कल्पवृक्ष है। वह दरिद्रता, अकाल, दुःख और दोष-रूपी महा कड़ी तपन को नाश करने के लिए मेघरूप है ॥ १ ॥ (देखो जब विधाता रोस कर अपने मन को हटा लेता है तब सब काम उलटे होने लगते हैं, परन्तु) राम-नाम लेने से टेढ़े विधाता का टेढ़ा मन सीधा हो जाता है (अर्थात् वह प्रसन्न होकर मनुष्य को भाग्यवान् बना देता है)। सो उलटे-सीधे नाम के महातम को मुनीश्वर (बाल्मीकि) और महादेवजी कह सकते हैं (अर्थात् शिवजी ने सीधा नाम जपा सो हलाहल विष पी गये और काशी में मुक्ति के दाता हो गये और बाल्मीकि ने उलटा जपा सो बहेलिये से मुनीश्वर हो गये) ॥ २ ॥ उसका भला लोक और परलोक दोनों में होता है कि जिसको सुन्दर से भी सुन्दर (राम नाम) का बल है। हे तुलसी ! राम-नाम से संसार में कूच (अर्थात् आवागमन) और मुकाम (गर्भवास) का सोच जाना नहीं जाता (अर्थात् मुक्ति हो जाती है) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—ललित, ललाम = दोनों शब्दों का अर्थ सुन्दर है।

[ १५७ ]

सेइय सुसाहब राम सो।
सुखद सुसील सुजान सूर सुचि सुंदर कोटिक काम सो ॥ १ ॥
सारद सेस साधु महिमा कहैं गुन गन गायक साम सो।
सुमिरि सप्रेम नाम जासों रति चाहत चन्द्र-ललाम सो ॥ २ ॥
गमन विदेस न लेस कलेस को सकुचत सकृत प्रनाम सो।
साखी ताको विदित विभीषन बैठो है अविचल धाम सो ॥ ३ ॥
टहल सहल जन महल महल जागत चारिउ जुग जाम सो।
देखत दोष न खीझत रीझत सुनि सेवक गुनग्राम सो ॥ ४ ॥
जाके भजे तिलोक तिलक भये त्रिजग जोनि तनु ताम सो।
तुलसी ऐसे प्रभुहि भजै जो न ताहि विधाता वाम सो ॥ ५ ॥

राम सरीखे सुन्दर स्वामी की सेवा करनी चाहिए। वे सुख के देने वाले, सुन्दर स्वभाव वाले, बड़े चतुर, सूरमा, पवित्र और करोड़ों कामदेवों से भी सुन्दर हैं ॥ १ ॥

उनकी महिमा को सरस्वती, शेषनाग और साधु बखानते हैं और सामवेद सरीखा उनके गुण-समूहों को गाता है। और प्रेम से नाम का स्मरण करके शिवजी सरीखे भी उनसे प्रीति चाहते हैं॥ २॥ उनको विदेश (वन) जाने में दुःख का लेश भी नहीं हुआ और जो कोई एक बार (१) भी प्रणाम करे तो वे सकुचा जाते हैं (कि मैं इसका क्या भला करूँ जो करूँ, सो थोड़ा है)। इसका गवाह विभीषण विख्यात है कि जो किसी से हिल न सके ऐसे धाम लङ्का में बैठा है॥ ३॥ उनकी सेवा सीधी है और वे (भक्तजनों के हृदयरूपी) महल महल में चारों युग और चारों प्रहर में जागते रहते हैं। और उन्हें दोष के देखने पर भी रोष नहीं होता है (वरन् वे) सेवक के गुणसमूहों को सुनकर प्रसन्न होते हैं॥ ४॥ उनका भजन करने से तिर्यक् योनिवाले (रीछ, बन्दर, जटायु) और तामसी शरीरवाले (कोल किरात आदि) तीनों लोकों में उत्तम हो गये। हे तुलसी! जो ऐसे प्रभु को नहीं भजता है उस पर विधाता उलटा है॥ ५॥

शब्दार्थ—चन्द ललाम = चन्द्र है आभूषण जिनका ऐसे शिव। सकृत् = एक बार। जुग = चार। त्रिजगजोनि = पशु, पत्ती, रीछ, बन्दर आदि। तिलक = श्रेष्ठ॥

[ १५८ ]

राग नट।

कैसे देउँ नाथहि खोरि।
काम लोलुप भ्रमत मन हरिभक्ति परिहरि तोरि॥ १॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि।
देउ सिष सिखयो न मानै मूढ़ता असि मोरि॥ २
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखत चोरि।
संग वस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि॥ ३॥
करों जो कछु धरों सचि पचि सुकृत सिला बटोरि।
पैठि उर वरवस दयानिधि दंभ लेत अजोरि॥ ४॥

---

(१) पद्मपुराण में कहा है:—

सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम्। शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति। सरलार्थः।

लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा डोरि।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों बरबिराग निचोरि ॥ ५ ॥
एतेहुँ पर तुम्हरोइ कहावत लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुवर देहु तुलसिहिं छोरि ॥ ६ ॥

स्वामी को दोष कैसे दूँ। हे राम! मेरा मन तुम्हारी भक्ति को छोड़ कर काम का लोभी हुआ घूमा करता है (कि कहीं सुन्दर स्त्री मिले) ॥ १ ॥ और मेरी प्रीति अपने पुजाने में तो बहुत है (अर्थात् लोग भेट ला लाकर मुझे पूजें) पर तुम्हारे पूजने में बहुत थोड़ी है (भाव—तुम्हारा पूजन नहीं बनता)। और मैं (दूसरों को तो) शिक्षा देता हूँ पर मैं किसी की नहीं मानता ऐसी मेरी मूर्खता है ॥ २ ॥ जो बड़ी प्रीति से पाप किये हैं उनको तो मैं हिरदे में चुरा चुरा कर रखता हूँ (कि कहीं किसी को उजागर न हो जायँ जो वैष्णवपने में बट्टा लगे)। और जो (अच्छे) संगवश शुभ (काम बन पड़ते) हैं उन्हें सब दुनिया को निहोरा करके सुनाता फिरता हूँ (कि जिसमें लोग मुझे धर्मात्मा कहें) ॥ ३ ॥ और जो कुछ अच्छा धर्मकार्य्य करता भी हूँ तो उसे रचि-पचि अर्थात् बड़े यत्न से खेत में पड़े अन्न के दाने के समान बीन बीन कर धरता हूँ परन्तु हे दयानिधान! पाखंड उसे भी हृदय में धस कर बरजोरी से बाहर निकाल लेता है (अर्थात् पाखंड करने से वह थोड़ा सा सुकृत भी जाता रहता है) ॥ ४ ॥ और लोभ मेरे मन को आशारूपी डोर से ऐसा नचाता है कि जैसे बाजीगर बन्दर के गले में डोरी गेर कर उसे नचाता है (और मैं लोभ के कारण) सुन्दर बैराग के तत्त्व की बातें पण्डितों की तरह बना बना कर सुनाता फिरता हूँ ॥ ५ ॥ इतने पर भी तुम्हारा (भक्त) कहाता हूँ सो मैं शरम को तो मानों घोलकर पी गया हूँ। हे राम! मेरी इस बेशरमाई पर रीझ कर इस तुलसी को छोड़ दो (अर्थात् भव-बन्धन से मुक्त कर दो) ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—अजोरि = जोड़ना नहीं, अर्थात् निकालना। सिला = खेत में पड़े हुए अन्न के दाने। निचोड़ = तत्त्व।

( १५९ )

है प्रभु मेरोई सब दोसु।
सीलसिंधु कृपाल नाथ अनाथ आरतपोसु ॥ १ ॥
वेष वचन विराग मन अघ औगुननि को कोसु।

राम प्रीति प्रतीति पोली कपट करतब ठोसु ॥२॥
राग रंग कुसंगही सो साधु संगति रोसु।
चहत केहरि जसहि सेइ सृगाल ज्यौं खरगोसु ॥३॥
संभु सिखवन रसनहूँ नित रामनामहिं घोषु।
दंभहूं कलि नाम कुंभज सोच सागर सोषु ॥४॥
मोद मंगल मूल अति अनुकूल निज निरजोषु।
राम नाम प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम संतोषु ॥५॥

हे प्रभो! यह सब मेरा ही दोष है। तुम तो शील के समुद्र, कृपालु और अनाथों के नाथ हो, सो मुझ दुखिया का तुम ही पालन करो ॥ १ ॥ मेरे भेस में और मेरी बातों में तो वैराग है ( अर्थात् तुलसी की माला पहिर, और रामफटाका तिलक की छाप लगा कर वेदांत की बातें मारा करता हूँ ) परन्तु मेरा मन पाप और औगुनों का ख़ज़ाना है ( अर्थात् जब देखो तब पाप और ठगविद्या में लगा रहता है ) और ( वह मन ) रामजी की प्रीति और प्रतीति के लिए तो पोला है ( भाव—उसके भीतर न तो राम की प्रीति है न पतयारा है कोरा ऊपर का दिखावा ही दिखावा है ) और कपट के कामों से ठोस है ( अर्थात् कपटों से भरा है ) ॥ २ ॥ वह बुरे संग से प्रीति करके तो प्रसन्न और साधु-संगति से ग़ुस्सा रहता है। सो ( ऐसे है कि ) जैसे खरगोश गीदड़ की सेवा करके सिंह का यश चाहै, ( भाव—जैसे खरगोश गीदड़ के बल से हाथी को मार के सिंह का सा यश चाहै सो गीदड़ तो आप ही खरगोश को खा जाता है फिर उसके बल से यश मिलना तो दूर रहा, जान भी नहीं बचेगी तैसे ही मैं कुसंग के द्वारा रामभक्त का यश चाहता हूँ सो यश तो दूर रहा वह मेरे थोड़े से गुन को भी नाश कर देगा ) ( ३ ) शिवजी की शिक्षा जीभ से यही है कि सदा राम नाम की रटना किया कर ( जो कहो कि चित्त शुद्ध नहीं है तो बाहर से राम-नाम रट कर क्या होगा, तहाँ कहते हैं कि ) कलियुग में पाखण्ड से भी राम का नाम शोकरूपी समुद्र के सोखने को अगस्त्यरूप है ( अर्थात् इससे लोक, परलोक सबका शोक मिट जाता है ) ॥ ४ ॥ वह (राम-नाम) आनन्द-मङ्गल की जड़ (और अपने भक्तों पर) ऐसा भारी प्रसन्न रहता है कि जिसकी तुलना नहीं हो सकती। और राम-नाम का प्रभाव सुन कर तुलसी को भी बड़ा संतोष होता है (भाव—मैं भी नाम के सहारे हूँ, मेरा भी वह उद्धार कर देगा) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—कोसु = ख़ज़ाना । दंभ = पाखण्ड । निरजोपु = निर = नहीं है जोपु ( जोखु ) = तोल जिसकी अर्थात् अतोल ।

[ १६० ]

मैं हरि पतितपावन सुने ।
हम पतित तुम पतितपावन दोउक बानक बने ॥१॥
व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने ।
और अधम अनेक तारे जात का पै गने ॥२॥
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक यमपुर मने ।
दासतुलसी सरन आयो राखिये अपने ॥३॥

हे राम ! मैंने सुना है कि तुम पापियों को पवित्र करनेवाले हो । सो मैं तो पापी हूँ, और तुम पापियों के तारनेवाले हो, दोनों का बानक बन गया ( अर्थात् तुम मेरे गाहक हो और मैं तुम्हारा गाहक । अच्छा मेल मिला ) ॥१॥ (मैंने क्या सुना था सो कहता हूँ कि ) व्याध ( वाल्मीकि उलटा नाम लेते ही महामुनि हो गये ), गणिका ( वेश्या थी, बड़ा पाप करती थी पर अपने पाले हुए तोते से रामनाम सुन कर तर गई ), गजराज ( जब उसे ग्राह ने पकड़ा और उसने तुम्हारा स्मरण किया तब तुमने उसे भी तारा ), अजामेल ( महापापी था पर मरते समय अपने पुत्र नारायण को पुकारने से वह भी तरा) इनकी गवाही वेद कह रहे हैं अर्थात् दे रहे हैं । ( इनको छोड़ ) और अनेक नीचों को तुमने तारा है वे किससे गिने जा सकते हैं ॥ २ ॥ जिन्होंने जान कर या बे जाने तुम्हारा नाम लिया है उनके लिए नरक और यमपुर में जाने की मनाई हो गई ( अर्थात् वहाँ कोई नहीं जा सकता । यही सुन कर ) तुलसीदास तुम्हारी शरण आया है । इसे भी अपना करके रखिए ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—बानक = काम । निगम = वेद । अधम = नीच ।

[ १६१ ]

राग मलार ।

तोसो प्रभु जोपै कहुँ कोउ होतो ।
तौ सहि निपट निरादर निसि दिन रटि लटि ऐसो घटि को तो ॥

कृपासुधा जलदानि माँगिबो कहौं सो साँच निसोतो।
स्वाति सनेह सलिल सुख चाहत चित चातक को सो पोतो ॥२॥
काल करम वस मन कुमनोरथ कबहुँ कबहुँ कछु भो तो।
ज्यों मुदमय बसि मीन वारि तजि उछरि भभरि लेतो गोतो ॥३॥
जितो दुराउ दासतुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो।
तेरे राज राय दसरथ के लयो बयो बिनु जोतो ॥४॥

(हे राम!) जो तुझ सा कहीं और कोई समर्थ होता तो ऐसा नीच कौन था जो ऐसे बड़े निरादर को सह कर और रात दिन (तेरा नाम) रटते रटते दुबला होता (अर्थात् जब दुनिया भर में कोई दूसरा नहीं है तब तो द्वार पर पड़ा अनादर सह रहा हूँ) ॥ १ ॥ मैं जो कृपारूपी अमृतजल का दान माँगने को कहता हूँ वह (माँगना) सचों ही निराला है। (उसमें निरालापन क्या है कि) मेरा चित्तरूपी चातक का बच्चा स्नेहरूपी स्वाति के सुखरूपी जल को चाहता है (सो चातक तो थोड़े दिन ठहर सकता है पर मेरा चित्त बच्चा है ठहर नहीं सकता सो जल्दी कृपा करो) ॥ २ ॥ काल तथा कर्म के वश कभी कभी मेरे मन में बुरे काम की कुछ इच्छा हुई भी तो (वह उससे ऐसा भागता है) जैसे मछली आनन्द से जल में रहती है और कभी कभी उसमें से उछल कर फिर भड़भड़ा कर गोता ले जाती है ॥ ३ ॥ तुलसीदास के हृदय में जितना कपट है उतना कैसे कहने में आ सकता है (अर्थात् मेरी तो बड़ी भारी नीचता है और मुझे संसार से तरने में सन्देह है पर मुझे तेरा भरोसा है क्योंकि) हे राजा दशरथ के लाड़ले! तेरे राज्य में (खेत) बिना जोते बोये (सब लोगों ने नाज) पाया है। (अर्थात् तेरे प्रभाव से प्राणियों ने बिना ही जप, तप, तीर्थ-यात्रा आदि साधनों के मुक्ति पाई है) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ निपट=बड़ा। वटि=नीच। भो=हुई। निसोतो=निराला। पोत=बच्चा। ओतो=उतना।

[ १६२ ]

राग सोरठा।

ऐसो को उदार जगमाहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर रामसरिस कोउ नाहीं ॥१॥

जो गति जोग विराग जतनकरि नहिं पावत मुनि ज्ञानी ।
सो गति दई गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥२॥
जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पह लीन्ही ।
सो संपदा विभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही ॥३॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥४॥

संसार में ऐसा कौन दाता है जो बिना सेवा किये दास पर प्रसन्न हो जाता हो, ऐसा रामचन्द्रजी के बराबर कोई भी नहीं है ॥ १ ॥ जिस गति (अर्थात् मोक्ष) को मुनि और ज्ञानी योग और वैराग (अनेक) यत्न करने से भी नहीं पाते हैं उस मोक्ष को गीध और भीलनी को देने में रामजी ने अपने जी में बहुत नहीं समझा, (अर्थात् थोड़ा ही समझा कि मैंने इन्हें कुछ नहीं दिया) ॥ २ ॥ जिस सम्पत्ति को रावण ने अपने दश शिर भेंट करके शिवजी से पाया था, उसी सम्पति को रामजी ने विभीषण को बहुत शरमा कर दीनी (कहने लगे हमने इसे क्या दिया यह तो इसका हक़ ही था) ॥ ३ ॥ (तुलसीदास कहते हैं कि) हे मेरे मन! जो तू भाँति भाँति के सब सुख पाना चाहता है तो रामचन्द्रजी का भजन कर। वे कृपानिधान तेरी सब इच्छाओं को पूरा करेंगे ॥ ४ ॥

[ १६३ ]

एकै दानि सिरोमनि साँचो ।
जिहि जांच्यो सो जाचकतावस फिरि बहु नाच न नाचो ॥१॥
सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कोउ न देत विनु पाए ।
कोसलपाल कृपाल कल्पतरु द्रवत सकृत सिर नाए ॥२॥
हरिहुँ और अवतार आपने राखी वेद बड़ाई ।
लै चिउरा निधि दई सुदामहिं जद्यपि बाल मिताई ॥३॥
कपि सबरी सुग्रीव विभीषन को नहिं कियो अयाची ।
अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि दारुन आस पिसाची ॥४॥

हे राम! दाताओं का एक तूही शिरोमणि सच्चा है। जिसने तुझसे माँगा फिर वह (प्राणी) माँगने के लिए बहुत सा नाच नहीं नाचा (अर्थात् तूने एक ही बार उसे ऐसा निहाल कर दिया कि उसे अन्य देवताओं से माँगने की इच्छा नहीं रही)॥ १॥ देवता, दैत्य, मनुष्य और मुनीश्वर ये सब स्वार्थी हैं कोई बिना (भेंट-पूजा) लिये नहीं देता। पर हे राम! तू ऐसा दयावान् और कल्पवृक्ष, कि एक ही बार शिर नवाने पर कृपालु हो जाता है॥ २॥ (और दूसरे देवताओं की क्या कहें विष्णु भगवान् के किसी अवतार में भी यह गुण नहीं है क्योंकि) विष्णु भगवान् ने अपने और और अवतारों में वेद की बड़ाई तो रक्खी (अर्थात् अपने चलाये वेद-धर्म की यह रक्षा तो करी कि शङ्खासुर वेद चुरा ले गया था उसे मच्छरूप धारण करके वेद ले आये। वाराहरूप धर के पृथ्वी लाये, नरसिंहरूप से प्रह्लाद भक्त की रक्षा की इत्यादि पर ये अवतार प्रयोजन मात्र करके तुरन्त लोप हो गये, अब रह गया कृष्णावतार सो उसमें भी श्रीकृष्ण ने दर्शन मात्र से किसी को ऐश्वर्य्य नहीं दिया जो कहो कि सुदामा को निहाल कर दिया सो भी नहीं, क्योंकि) यद्यपि सुदामा से लड़कपन की मित्रता थी तो भी उससे चिरुआ लेकर सम्पत्ति दी। (यह कुछ उदारता नहीं, और मुक्ति तो उद्धव आदि साथियों को भी नहीं दी। फिर दर्शनमात्र से क्या देते) ॥ ३॥ और हे राम! तूने कपि हनुमान्, शबरी, सुग्रीव और विभीषण इनमें से किसको याचनारहित नहीं किया (तेरे दर्शनमात्र से जिसने जो चाहा सो पाया और मुक्ति को तो तूने कौड़ी की तरह बाँटा) हे दयानिधान! अब तुलसी को कठिन आशारूपी पिशाचिनी दुःख देती है (सो इससे छुड़ा कर इसकी याचना भी पूरी कर)॥ ४॥

शब्दार्थ—द्रवत=कृपा करते हो। सकृत्=एक बार। निधि=संपत्ति। दारुन=कठिन।

[ १६४ ]

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई॥१॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसेहुँ पितु ते अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई॥२॥
तियबिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन पर्यो बंधु बिभीषन ही को सोच हृदै अधिकाई॥३॥

घर गुरु-गृह प्रिय-सदन सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई ।
तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई ॥४॥
सहज सरूप कथा मुनि वरनत रहत सकुचि सिरनाई ।
केवट मीत कहे सुख मानत वानर बंधु बड़ाई ॥५॥
प्रेम कनौड़ौ राम सों प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई ।
रिनी तोर हौं कह्यो कपिसों ऐसी मानिहि को सेवकाई ॥६॥
तुलसी राम सनेह सील लखि जो न भक्ति उर आई ।
तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़ तनु तरुनता गँवाई ॥७॥

रामजी ही प्रीति (१) की रीति को जानते हैं। सब नातों को छोड़ कर रामजी केवल प्रेम का नाता रखते हैं ॥ १ ॥ जिन दशरथजी ने प्रेम निभा कर और शरीर को छोड़ कर अचल यश फैलाया ऐसे पिता से भी अधिक उन्होंने गिद्ध पर ममता करी (अर्थात् उसका पिण्डदान किया) और उसका बड़ा गुन माना (अर्थात् सीताजी के लिए उसने अपने प्राण दिये थे और वह शुद्ध स्नेह रखता था, इसलिए भगवान् ने उसको दिव्य देह से अपने धाम भेज दिया) ॥ २ ॥ अपने मित्र सुग्रीव की स्त्री के विरह में देख कर अपने प्राणों से प्यारी (सीता जी) को भूल गये, (अर्थात् पहले जब वाली को मार के सुग्रीव को स्त्री का सुख करा दिया तब चार मास पीछे उससे सीताजी के लिए उपाय कराया) फिर युद्ध में (शक्ति लगने से) भाई (लक्ष्मण) तो (घायल) पड़े (उनका तो सोच नहीं किया) और हृदय में विभीषण का ही बड़ा सोच हुआ (कि यदि लक्ष्मण न रहेंगे तो मेरे प्राण भी जायँगे और फिर वानर-भालु तो अपने अपने घर जा रहेंगे पर विभीषण बेचारा कहाँ जायगा) ॥ ३ ॥ अपने घर, गुरु के घर, प्यारों के घर और सासरे में जब जहाँ मिहमानी हुई तब (किसी से भोजन की सराहना न की) वहाँ यही कहा कि शवरी के बेरों का सा स्वाद और मिठास मुझे कहीं नहीं आया (भाव—औरों को अपनी श्रेष्ठता का घमण्ड था और शवरी ने सच्ची भक्ति से अमान होकर बेर भेंट किये थे) ॥ ४ ॥ जब मुनिजन (भगवान् के)

---

(१) प्रीति का यह लक्षण है "ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति । भुंक्ते भोजयते चैव षडविधं प्रीतिलक्षणम् ।" अर्थात् देना, लेना, गुप्त बात कहनी और पूछनी, जीमना और जिमाना ये छः प्रीति के लक्षण हैं।

सहज स्वरूप (सच्चिदानन्द परब्रह्म) की कथा वर्णन करते हैं यथा (रामस्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धिवर । अविगत अगम अपार नेति नेति नित निगम कह) तब भगवान् शरम के मारे नीचा सिर करके रह जाते हैं ( कि हमको तो ऐश्वर्य्य छिपा कर नर-लीला करनी है ये हमारा भेद क्यों खोलते हैं ) और निषाद का मित्र कहने से तो सुख और बन्दरों का भाई कहने से अपनी बड़ाई मानते हैं ॥ ५ ॥ हे भाई ! प्रेम से दबाव माननेवाला रघुनाथजी के समान समर्थ कोई तीनों लोकों और तीनों कालों में नहीं है । जिन्होंने हनूमानजी से कहा कि "मैं तेरा ऋणी हूँ" उनके समान सेवा को कौन मानेगा ॥ ६ ॥ हे तुलसीदास! रामजी का प्रेम और स्वभाव देख कर जो हृदय में भक्ति नहीं हुई तो हे मूर्ख ! माता ने तुझे वृथा जन कर अपने शरीर की जवानी खोई ॥ ७ ॥

[ १६५ ]

रघुवर रावरि इहै बड़ाई ।
निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई ॥१॥
थके देव साधन अनेक करि सपनेहुँ नहिं दिये दिखाई ।
केवट कुटिल भालु कपि को नृप कियो सकुल सँग भाई ॥२॥
मिलि मुनिवृंद फिरे दंडकवन सो चरचौ न चलाई ।
बारहि बार गीध सबरी की वरनत प्रीति सुहाई ॥३॥
स्वान कहेते कियो पुर बाहर जती गयंद चढ़ाई ।
तियनिंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई ॥४॥
येहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई ।
दीनदयाल दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई ॥५॥

हे रघुवीर ! तुम्हारी यही बड़ाई है । अभिमानियों का निरादर कर ग़रीबों पर बड़ी कृपा करते हो ॥ १ ॥ देवता अनेक साधन कर के थक गये परन्तु उनको स्वप्न में भी दिखाई नहीं दिये ( क्योंकि उनको देवतापन का घमण्ड था ) पर निषाद और दुष्ट रीछ ( जाम्बवन्त ) बन्दर ( सुग्रीव ) इनको राजा बनाया और इनके कुल के साथ भाई का सा संग दिया । ( क्योंकि ये सब मानरहित थे ) ॥ २ ॥ और दंडक-वन में विचरते

समय अनेक मुनियों से मिले उस चर्चा को तो नहीं चलाया, क्योंकि उनको योग, तप आदि का मद था ) पर बार बार गिद्ध और शवरी की सुन्दर प्रीति का बखान करते रहे ( क्योंकि ये दोनों नीच, ग़रीब और मानरहित थे ) ॥ ३ ॥ कुत्ते के कहने से संन्यासी (१) को तो हाथी पर चढ़ा कर नगर के बाहर कर दिया ( क्योंकि उसने घमण्ड से कुत्ते के सिर में लकड़ी मारी थी )। और सीताजी की निन्दा करनेवाले, महामूर्ख धोबी को अपनी प्रजा जान नीति से नगर में बसाया ( क्योंकि उसे ग़रीब और सच्चा समझा ) ॥ ४ ॥ सो इस दरबार में ग़रीब के आदर करने की रीति सदा से चली आई है पर हे दीनदयाल ! इस दीन तुलसी की याद आपको किसी ने नहीं दिलाई ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—गनी = अभिमानी वा धनी। स्वान = कुत्ता। जती = संन्यासी। गयन्द = हाथी। रज = धोबी। नय = नीति।

[ १६६ ]

ऐसे राम दीनहितकारी।
अतिकोमल करुनानिधान बिन कारन पर उपकारी ॥१॥
साधन हीन दीन निज अघवस सिला भई मुनि नारी।
गृहते गवनि परसि पद पावन घोर सापते तारी ॥२॥
हिंसारत निषाद तामस वपु पसु समान वनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमवस नहिं कुल जाति विचारी ॥३॥
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत कहि न जाइ अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोकहत सरनगये भय टारी ॥४॥
विहँगजोनि आमिष अहार पर गीध कौनव्रतधारी।
जनकसमान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ॥५॥
अधमजाति सबरी जोषित सठ लोक वेद ते न्यारी।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी ॥६॥

(१) १४६ वें भजन की टिप्पणी देखो।

कपि सुग्रीव बंधुभय व्याकुल आयो सरन पुकारी।
सहि न सके जन को दारुन दुख हत्यो वालि सहि गारी ॥७॥
रिपु को अनुज विभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी।
सरन गए आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यौ भुजा पसारी ॥८॥
असुभ होइ जिन्हके सुमिरे ते वानर रीछ विकारी।
वेदविदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी ॥९॥
कहँ लौं कहौं दीन अगनित जिन्ह की तुम विपति निवारी।
कलिमलग्रसित दासतुलसी पर काहे कृपा बिसारी ॥१०॥

रामचन्द्रजी ग़रीबों का ऐसा भला करने वाले हैं। वे बड़े कोमल, दया के स्थान और बिना प्रयोजन दूसरों का उपकार करने वाले हैं॥ १॥ (तप, जप आदि) साधनों से रहित ग़रीब और (गौतम) मुनि की स्त्री (अहिल्या) जो अपने पाप के वश शिला हो गई थी, उसे घर से जाकर और अपने पवित्र चरण से छूकर बड़े भारी शाप से तार दिया ॥२॥ हिंसा में प्रीति करनेवाला और जिसका तामसी शरीर था ऐसा निषाद पशु के समान वन में फिरता था। उससे प्रेम के वश छाती से छाती लगाकर मिले और उसकी जाति तथा कुल का कुछ भी विचार नहीं किया॥ ३॥ और यद्यपि इन्द्र के पुत्र (जयन्त) ने (सीताजी के पैर में चोंच मार कर) ऐसा भारी वैर किया था जो कहा नहीं जा सकता पर जब वह सब लोकों में (रक्षक) देख फिरा और (झख मार कर) शोक का मारा शरण में आया तब उसका भय दूर कर दिया॥ ४॥ और पक्षी की योनि और मांस के भोजी गिद्ध ने कौन सा व्रत धारण किया था। जो अपने हाथ से पिता के समान उसकी क्रिया कर सब भाँति उसकी (बात) सुधार दी॥ ५॥ नीच जाति शबरी महामूर्ख स्त्री थी कि जो संसार और वेद से अलग थी। (अर्थात् न तो कोई उसे छूता था और न उसकी जाति की वेद में बड़ाई थी) पर उसकी प्रीति समझ कर और उसे अपना दर्शन देकर कृपालु रामजी ने उसका भी उद्धार कर दिया॥ ६॥ सुग्रीव बन्दर भाई के डर से घबरा कर जब पुकारता हुआ शरण में आया तब दास का कठिन दुःख न सह सके और बाली को मार उसकी गालियाँ सहीं॥ ७॥ वैरी का भाई विभीषण राक्षस किस भजन का अधिकारी था। पर जब शरण में आया तब उसे (रामजी ने) आगे होकर लिया और भुजा पसार कर उससे मिले॥ ८॥ जिनका

स्मरण करने से बुराई हो ऐसे बुरे मुँह के जो रीछ बन्दर थे उन सबको, पवित्र कर दिया। हे नाथ! यह तुम्हारी महिमा वेद में प्रगट है॥ ९॥ मैं कहाँ तक कहूँ अनेक ग़रीब हैं जिनकी विपत्ति तुमने दूर की है। पर न जाने इस तुलसीदास पर कि जिसे कलियुग के पापों ने पकड़ रक्खा है कृपा करना क्यों भूल गये॥ १०॥

शब्दार्थ—अघ = पाप। तामस = गुस्सा। आमिष = मांस। जोषित् = स्त्री। विकारी = बुरे मुँह के।

[ १६७ ]

रघुपति भक्ति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जाने सो जेहि बनिआई॥१॥
जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी संमुख जल प्रवाह सुरसरी बहे गज भारी॥२॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकतामहँ बलते न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सुच्छम पिपीलिका बिनुप्रयासही पावै॥३॥
सकल दृस्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परमसुख अतिसय द्वैत वियोगी॥४॥
सोक मोह भय हरष दिवस निसि देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं॥५॥

रामचन्द्रजी की भक्ति करने में बड़ी कठिनता है। (पहले तो सहज कह आये हैं अब कठिन क्यों कहते हैं उसका समाधान यों है कि) कहने में तो सीधी है पर उसके करने की रीति का पार नहीं है उसे वही जानता है जिसने उसे किया है॥ १॥ जो जिस कला के करने में चतुर है उसको ही वह (कला करना) सीधा और सदा सुखकारी है (दूसरे को नहीं) जैसे गंगाजी के जल की धार के सामने (छोटी सी) मछली तो चली जाती है और बड़ा हाथी (जो पैरना नहीं जानता) बह जाता है॥ २॥ और जैसे खाँड़ रेत में मिल जाती है तो उसे कोई बल से अलग नहीं कर सकता। परन्तु बड़े भारी रस को जानने वाली छोटी सी चींटी बिना परिश्रम के ही उसे पा लेती है (अर्थात् अलग कर खा लेती है)॥ ३॥ (अब राम-भक्ति की रीति कहते हैं) जो योगी (संसार भर के) सब दीखने वाले पदार्थों को अपने पेट में

धर कर और ( अज्ञान ) निद्रा को छोड़कर सोता है ( अर्थात् आत्मस्वरूप में तन्मय हो जाता है ) और विशेष कर द्वैत से अलग रहता है ( अर्थात् किसी वस्तु में भेद-भाव न मान उसे ब्रह्ममय समझता है) वही हरि के पदों (अर्थात् परम सुख ब्रह्मानन्द) का अनुभव करता है ( इसका भाव यह है कि जो संसार में स्त्री, पुत्र, धन, धाम आदि जितने दीखने वाले पदार्थ सच्चे जान पड़ते हैं उन सब की ममता को झूठा मान उन्हें त्यागता है और संसारी वस्तु मात्र में भेद नहीं जानता है उसे आत्मज्ञान होता है ) ॥ ४ ॥ ( इसके होने से क्या होगा सो कहते हैं कि ) उसमें दुःख, मोह, भय, आनन्द, रात, दिन, देश और काल ये नहीं हैं ( भाव—इनका उसमें कुछ ज्ञान नहीं रहता ) हे तुलसीदास ! इस दशा के बिना ( जीव के ) संशय ( अर्थात् झूठे पदार्थों को सच्चा मानना इत्यादि ) जड़ से नाश नहीं होते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—सफरी = मछली । सिकता = बालू, रेत । पिपीलिका = चींटी ।

[ १६८ ]

जोपै रामचरन रति होती ।
तौ कत त्रिविधसूल निसि वासर सहते विपति निसोती ॥१॥
जो संतोष सुधा निसि वासर सपनेहुँ कबहुँक पावै ।
तौ कत विषय विलोकि झूँठ जल मन कुरंग ज्यों धावै ॥२॥
जो श्रीपति महिमा विचारि उर भजते भाव बढ़ाए ।
तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥३॥
जे लोलुप भये दास आस के ते सबही के चेरे ।
प्रभु विस्वास आस जीती जिन्ह ते सेवक हरि केरे ॥४॥
नहिं एको आचरन भजन को विनै करत हौं ताते ।
कीजै कृपा दासतुलसी पर नाथ नाम के नाते ॥५॥

जो रामचन्द्रजी के चरणों में तेरी प्रीति होती तो रात दिन तीन प्रकार के दुःख और विपत्ति के प्रवाह क्यों सहने पड़ते ॥ १ ॥ जो रात दिन में कभी सुपने में भी संतोष-रूपी अमृत पाता तो यह तेरा मनरूपी कुरंग विषय (रूपी मृगतृष्णा) के झूठे जल को देखकर क्यों दौड़ता (भाव यह है कि जो तुझे थोड़ा सा भी अमृत समान आत्मज्ञान

होता तो मृग समान तेरा मन मृगतृष्णा के जलसमान संसार के झूठे विषय-पदार्थ की ओर क्यों जाता। यहाँ दृष्टान्त देते हैं कि जिस पुरुष का उदर भगवान् के पंचामृत से भरा है वह लीद की इच्छा क्यों करेगा)॥ २॥ जो भगवान् की महिमा को हृदय में विचार कर और उनमें प्रीति बढ़ा कर भजन करता तो द्वार द्वार पर कुत्ते की तरह ख़ाली पेट क्यों दिखाता फिरता॥ ३॥ जो लोभी आशा के चेले हो गये हैं वे सबही के ग़ुलाम हैं (अर्थात् सब जाति की नौकरी करते फिरते हैं) और जिन्होंने प्रभु का भरोसा कर रक्खा है और आशा को जीत लिया है वे भगवान् के दास हैं॥ ४॥ मुझ में भजन करने का एक भी साधन नहीं है इसी लिए विनती करता हूँ। हे नाथ! तुलसीदास पर अपने नाम के नाते से दया कीजिए (अर्थात् मैं तो केवल तुम्हारा नाम लेता हूँ यही मेरा तुमसे नाता है)॥ ५॥

शब्दार्थ—त्रिविध सूल = गूढ़ार्थ में देखो। निसोती = प्रवाह। कुरङ्ग = हरिण।

[ १६९ ]

जो मोहिं राम लागते मीठे।
तौ नवरस षटरस अनरस ह्वै जाते सब सीठे॥१॥
वंचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे।
यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे॥२॥
तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल वचन कहत अति ढीठे।
नामकि लाज राम करुना करि केहि न दिये करि चीठे॥३॥

(रामजी कड़ुवे लगते हैं इसलिए विषय-भोग मीठे लगते हैं परन्तु) जो मुझे रामजी मीठे लगते तो नौ रस और छः रस सब बेरस और फीके हो जाते॥ १॥ (संसार के) विषय ठग हैं (जीव के ज्ञान आदि धन को लूटते हैं। कर्म के अनुसार) मैंने तरह तरह के शरीर धारण करके उनका अनुभव किया; उन्हें सुना और देखा। और मैं अपने हृदय में यह जानता हूँ कि सुपने में भी इनसे अघाकर नहीं उकताऊँगा॥ २॥ पर मैं तुलसीदास एक ही बल पाकर भगवान् से बड़े ढीठ वचन कहता हूँ कि हे राम! तुमने अपने नाम की लाज से करुणा करके किस किस को (भव-बन्धन से छूटने का) परवाना नहीं दिया है (अर्थात् जिसने नाम लिया उसे ही दिया है फिर मुझे भी दीजिए)॥ ३॥

शब्दार्थ—डीठे = (दीठ, दृष्टि) = देखे। नव रस और छः रस को गूढ़ार्थ में देखो। उबीठना = उकताना।

[ १७० ]

यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो ।
ज्यों छल छाँड़ि सुभाउ निरंतर रहत विषय अनुराग्यो ॥१॥
ज्यों चितई परनारि सुने पातक प्रपंच घर घर के ।
त्यों न साधु सुरसरि-तरंग निरमल गुनगन रघुवर के ॥२॥
ज्यों नासा सुगंधरसवस रसना षटरसरतिमानी ।
राम प्रसाद माल जूठन लगि त्यों न ललकि ललचानी ॥३॥
चंदन चंदवदनि भूषन पट ज्यों चह पाँवर परस्यो ।
त्यों रघुपतिपदपदम परस को तन पातकी न तरस्यो ॥४॥
ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेइ वपु वचन हियेहूँ ।
त्यों न राम सुकृतज्ञ जे सकुचत सकृत प्रनाम किये हूँ ॥५॥
चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग बागे ।
रामसीय आस्रमानि चलत त्यों भये न स्रमित अभागे ॥६॥
सकल अंग पदविमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है ।
है तुलसिहि परतीति एक प्रभु मूरति कृपामई है ॥७॥

इस रीति से मेरा मन तुमसे कभी भी नहीं लगा कि जिस रीति से मेरा स्वभाव कपट को छोड़ विषयों में सदा लगा रहता है ॥ १ ॥ और ( मेरे नेत्र ) जैसे पराई स्त्री के देखने में लगते हैं और ( मेरे कान ) जैसे घर घर के पाप और क़िस्से सुनने में लगते हैं वैसे ( नेत्र ) संत और गंगाजी की निर्मल तरंगें देखने में और ( कान ) रामजी के पवित्र गुण-गणों के सुनने में नहीं लगते ॥ २ ॥ और जैसे यह नाक सुगन्ध के रस के वश है ( अर्थात् पुष्प, इतर आदि सूँघना चाहती है ) और जीभ छः रस से प्रीति मानती है वैसेही ( यह नाक ) रामजी की चढ़ी माला के लिए और ( जीभ उनके ) प्रसाद के लिए ललक कर नहीं ललचाती ॥ ३ ॥ और जैसे यह नीच ( शरीर ) चन्दन चन्द्रवदनी और गहने कपड़े आदि को स्पर्श करना चाहता है वैसे यह पापी शरीर रामचन्द्रजी के चरण-कमलों के छूने के लिए नहीं तरसता है ॥ ४ ॥ और जैसे इस

शरीर ने सब भाँति से कुदेव ( भूतादिक ) और नीच स्वामियों की मन वचन से सेवा की वैसी पुण्य को मानने वाले और एक बार प्रणाम करने पर ही सकुचाने वाले रामजी की सेवा नहीं की ॥ ५ ॥ जैसे ये चञ्चल ( डोलू ) चरण लोभ के लिए लोभी की भाँति संसार में घर घर भागते फिरते हैं वैसेही राम सीता के ( चित्रकूट अयोध्या आदि ) आश्रमों में चल कर ये अभागे कभी भी नहीं थके ॥ ६ ॥ हे नाथ ! मेरे ( शरीर के सब ) अंग तुम्हारे चरणों से विमुख हैं केवल मेरे मुख ने तुम्हारे नाम की ओट ले रक्खी है ( क्योंकि ) इस तुलसीदास को एक ही भरोसा है कि तुम्हारी मूर्ति दया का रूप है ( अर्थात् तुम सब प्राणियों की रक्षा करते हो तो अपने नाम की लाज से मेरी भी रक्षा करोगे ) ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—निरंतर = सदा । रसना = जीभ । सकृत् = एक बार ।

[ १७१ ]

कीजै मोको जग जातनामई ।
राम तुमसे सुचि सुहृद साहिबहि मैं सठ पीठि दई ॥ १ ॥
गरभवास दस मास पालि पितु मातु रूप हित कीन्हों ।
जड़हि विवेक सुसील खलहि अपराधिहि आदर दीन्हों ॥ २ ॥
कपट करौं अंतरजामिहुँ ते अघ व्यापकहिं दुरावौं ।
ऐसहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मनवावौं ॥ ३ ॥
उदर भरों किंकर कहाइ बेच्यौ विषयनि हाथ हियो है ।
मोसे वंचक को कृपालु छल छाँड़ि कै छोहु कियो है ॥ ४ ॥
पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके ।
भिदेउ न कुलिसहुते कठोर चित कबहुँ नेह सिय पीके ॥५॥
स्वामी की सेवक हितता सब, कछु निज, सांइ दोहाई ।
मैं मति तुला तौलि देखी भइ मेरिहि दिसि गरुआई ॥६॥
एतेहुँ पर हित करत नाथ मेरो करि आए अरु करिहैं ।
तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनोड़ोइ भरिहैं ॥७॥

( गोसाईं जी अपने ऊपर भगवान् की कृपा देख कर और अपने को उनसे विमुख देख कर कहते हैं ) हे नाथ! मुझे संसार की यातना में लिप्त कर दो, ( अर्थात् मुझे जन्म-मरण आदि कर्मों में डाल दो ) हे राम! मुझ मूर्ख ने तुम सरीखे पवित्र और हितकारी स्वामी को पीठ दे रक्खी है ( अर्थात् तुमसे विमुख हो रहा हूँ ) ॥ १ ॥ गर्भ में मुझे तुमने दश महीने तक पालन कर माता-पिता की भाँति हित किया। मुझ मूर्ख को तुमने ज्ञान दिया, मुझ दुष्ट को तुमने सुशील किया, और अपराध करने पर भी तुमने मुझे आदर ही दिया ॥ २ ॥ तो भी अन्तःकरण की जाननेवाले तुमसे मैं छल करता हूँ, और घट घट के वासी तुमसे अपने पापों को छिपाता हूँ। ऐसे भी दुर्बुद्धि और बुरे सेवक पर हे राम! तुमने अपने मन को टेढ़ा नहीं किया ॥ ३ ॥ मैं तुम्हारा दास कहला कर तो अपना पेट भरता हूँ, पर मैंने अपने हृदय को विषयों के हाथ बेच रक्खा है, ( अर्थात् मेरा मन विषयों में ही लगा रहता है ) तोभी मुझ सरीखे ठग पर हे कृपालु! तुमने मेरे छल को क्षमा करके कृपा ही की है ॥ ४ ॥ तुम्हारे पल पल के उपकारों को अच्छी तरह जान कर, समझ कर और ( दूसरे से ) सुन कर भी हे जानकीपते! तुम्हारा प्रेम मेरे वज्र के समान कठोर हृदय में कभी भीतर पार नहीं हुआ ( अर्थात् कोरा सुन कर और मन में समझ कर ही रह जाता हूँ ) ॥ ५ ॥ स्वामी की सौगन्द ( खा कर कहता हूँ कि ) स्वामी मुझ सेवक पर जितना हित करते हैं उसको तो सब लेकर और अपने कुटिलपन में से थोड़ा सा लेकर मैंने अपनी बुद्धि-रूपी तराज़ू पर तोल कर देखा तो मेरी तरफ़ ही (कुटिलता का पलड़ा) भारी रहा ॥६॥ इतने पर भी हे नाथ! मुझ पर हित करते हो, ( पूर्वजन्म में ) कर आये हो और ( इसी से निश्चय होता है कि ) आगे भी करोगे। तुलसीदास अपनी ओर से जानता है कि मुझ सरीखे कनोड़े का प्रभु ही पालन करेंगे ॥७॥

शब्दार्थ—वावों ( वाम = बायाँ ) = टेढ़ा। तुला = तराज़ू। कनोड़ा = अहसान से दबा हुआ।

[ १७२ ]

कबहुँक हौं येहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपाते संत सुभाउ गहौंगो ॥१॥
जथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥२॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।

विगत मान सम सीतल मन पर गुन औगुन न कहौंगो ॥३॥
परिहरि देहजनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहौंगो ॥४॥

क्या मैं कभी इस रहन से भी रहूँगा और कृपालु श्रीरामचन्द्रजी की दया से संतों का सा स्वभाव ग्रहण करूँगा ॥ १ ॥ जो कुछ मिलेगा उसी में सन्तोष कर सदा किसी से कुछ नहीं चाहूँगा । और निरन्तर ( सदा ) पराये भले में लग कर मन, कर्म और वचन से नेम निबाहूँगा ॥ २ ॥ और कानों से बड़े कठोर और असहन वचनों को सुन कर उसकी आग से नहीं जलूँगा ( अर्थात् क्रोध नहीं करूँगा ), और अभिमान को छोड़ कर चित्त को एक सा शान्त रक्खूँगा । और पराये गुणों को कहूँगा, और दोषों को नहीं कहूँगा ॥ ३ ॥ और शरीर से उत्पन्न हुई चिन्ता को छोड़ कर सुख, दुख को समान बुद्धि से सहूँगा, ( अर्थात् सुख, दुख को एक सा जानूँगा ) और हे प्रभो ! मैं तुलसीदास भी इस मार्ग में रह कर ( कभी ) भगवान् की अचल भक्ति पाऊँगा ॥ ४ ॥

[ १७३ ]

नाहिंन आवत आन भरोसो ।
जहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम फलनि फरोसो ॥१॥
तप तीरथ उपवास दान मख जेहि जो रुचै करो सो ।
पाइहि पै जानिबो करम फल भरि भरि वेद परोसो ॥२॥
आगम विधि जप जोग करत नर, सरत न काज खरोसो ।
सुख सुपनेहु न जोग सिधि साधन, रोग विजोग धरोसो ॥३॥
काम कोह मद लोभ मोह मिलि ज्ञान विराग हरोसो ।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरोसो ॥४॥
बहुमत सुनि बहुपंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरोसो ।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज डगरोसो ॥५॥
तुलसी विनु परतीति प्रीति फिर फिरि पचि मरै मरो सो ।
रामनाम बोहित भवसागर चाहै तरन तरो सो ॥६॥

( रामनाम को छोड़ मेरे मन में ) दूसरे साधनों का भरोसा नहीं होता ( कि कर्म-योग आदि साधनों से कोई संसार पार हो सके क्योंकि ) इस कलियुग में सब साधनरूपी वृक्ष तो हैं पर श्रमरूपी फलों से फल रहे हैं ( अर्थात् सब साधनों में कोरा श्रम ही श्रम है कार्य की सिद्धि नहीं है ) ॥ १ ॥ तप, तीरथ, व्रत, दान और यज्ञ जिसको जो सुहावे वह उसे करै। पर इन कर्मों का फल मिलने पर जान पड़ेगा ( कि अमुक तप, तीरथ आदि का यह फल मिला ), यों तो वेद ने ( इन कर्मों के फल को ) ख़ूब भर भर कर परोसा है ( अर्थात् हर एक यज्ञ-व्रत आदि का यही फल लिखमारा है कि इसी से चारों पदार्थ मिलेंगे पर यह कठिन है इसलिए वृथा है ) ॥ २ ॥ मनुष्य शास्त्र की विधि से जप और योग करते हैं परन्तु उनसे ठीक ठीक काम नहीं चलता। (क्योंकि) योग सिद्धि के साधन में सुपने में भी सुख नहीं है (वरन्) उसमें रोग और ( प्यारों का ) वियोग धरा है ( जब सुख ही नहीं है तब कैसे सिद्धि होगी इसलिए इसका करना वृथा है)॥ ३ ॥ काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह ने मिल कर ज्ञान और वैराग को हर रक्खा है ( अर्थात् काम आदि के मारे ये नहीं हो सकते, ये भी वृथा गये ) और संन्यास के लेने से मन ऐसा बिगड़ता है कि जैसे पानी गेरने से कच्चा घड़ा गल जाता है ( कारण कठिनता देख नियमों का पालन नहीं हो सकता सो यह भी वृथा है) ॥ ४ ॥ और (मुनियों के बनाये ) बहुत से मत हैं ( जैसे जैमिनि की मीमांसा, गौतम का न्याय इत्यादि ) और पन्थ भी बहुत से हैं ( जैसे नानकपन्थ, दादूपन्थ आदि ) और पुराण भी बहुत से सुने हैं परन्तु जहाँ देखो वहाँ झगड़ा सा ही है ( कोई एक बात नहीं कहता, इसलिए मेरे ) गुरु ने तो मुझे राम-भजन कह दिया है (कि यह किया कर) और मुझे भी यह राम के राज्य का सीधा रास्ता अच्छा लगता है ॥ ५ ॥ और हे तुलसी! बिना पतयारे और प्रीति के ( अन्य साधनों में ) बार बार पचि पचि के मरे सो भले ही मरे ( मेरा तो पक्का सिद्धान्त यही है कि ) राम का नाम संसारसागर के लिए नाव है। जो कोई तरना चाहे सो तरे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—मख = यज्ञ। आगम = शास्त्र। आम = कच्चा। डगरा = सीधा रास्ता। बोहित = नाव।

[ १७४ ]

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरीसम जद्यपि परमसनेही ॥१॥
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषन बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत व्रज वनितनि भये जग मंगलकारी ॥२॥

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँलौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँलौं ॥३॥
तुलसी सोइ सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जातें होइ सनेह रामपद एतो मतो हमारो ॥४॥

जिसको सीता-रामचन्द्रजी प्यारे नहीं हैं उसे करोड़ों वैरियों के बराबर समझ कर छोड़ देना चाहिए। भले ही वह बड़ा प्यारा हो ॥ १ ॥ प्रहलाद ने पिता को, विभीषण ने भाई को, और भरतजी ने माता को, छोड़ दिया। राजा बलि ने गुरु को छोड़ दिया, व्रज की स्त्रियों ने पति छोड़ दिये, और ( ये सब छोड़ने वाले ) संसार में मङ्गल के करनेवाले हुए ( अर्थात् किसी की बुराई नहीं हुई ) ॥ २ ॥ जहाँ तक मित्र और सुन्दर पूज्य हों ( उन्हें अपना सम्बन्धी और मित्र ) रामचन्द्रजी के सम्बन्ध और प्रेम से मानना चाहिए। बहुत कहाँ तक कहूँ, वह अंजन किस काम का कि जिससे आँख फूट जाय (अर्थात् संबन्धी तो वही अच्छा जिससे जीव का भला हो, और जिससे हानि हो उसे लेकर क्या करें ) ॥ ३ ॥ हे तुलसीदास ! वही सब तरह से बड़ा, हितू, पूज्य और प्राणप्यारा है कि जिससे रामजी के चरणों में प्रीति हो, इतना तो हमारा मत है ॥ ४ ॥

[ १७५ ]

जो पै रहनि राम सों नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर सो जाय जियत जग माहीं ॥१॥
काम कोह मद लोभ नींद भय भूक प्यास सबहीके।
मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पीके ॥२॥
सूर सुजान सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।
विनु हरिभजन इँदारुनि के फल तजत नहीं करुआई ॥३॥
कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने ॥४॥

जो रामजन्द्रजी से प्रीति नहीं है तो मनुष्य गदहा, कूकर और शूकर के समान है और जगत् में वृथा जीता है ( भाव—विद्या पढ़ के रामनाम के प्रेम बिना गधे के समान

भार ढोनेवाला, कुत्ते के समान भौंकनेवाला, और शूकर के समान भक्ष्य अभक्ष्य खानेवाला है ) ॥ १ ॥ काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, निद्रा, भय, भूख और प्यास ये तो सब ही को होते हैं। परन्तु देवता और सन्तजन जो मनुष्य के शरीर की सराहना करते हैं सो केवल, सीतापति ( रामचन्द्रजी ) के स्नेह से करते हैं ॥ २ ॥ ( मनुष्य को ) शूर, चतुर, सपूत, सुन्दर लक्षणवाला और भारी गुणी ( भले ही ) गिन लो। परन्तु भगवान् के भजन बिना ( ये सब गुण ) इन्द्रायन के फलों के समान हैं, जो कि अपने कडुएपन को नहीं छोड़ते ( अर्थात् जैसे इन्द्रायन के फल ऊपर से अच्छे होते हैं, और भीतर से महा कडुए होते हैं ऐसे ही मनुष्य चाहे जैसा गुणी और सुन्दर हो बिना राम-भक्ति उसके भीतर की नीचता नहीं जाती ) ॥ ३ ॥ यश, कुल, कर्म, संपत्ति भी अच्छी हो और स्वभाव और रूप भी सुन्दर हो पर हे तुलसीदास ! प्रभु की प्रीति बिना उनका यश ऐसा है कि जैसे बिना नोन के शाग-भाजी हो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—गरुआई = भारीपन। सालन = भाजी वा बड़े, पकौड़ी, रायता आदि।

[ १७६ ]

राख्यो राम सुस्वामी सों नीच नेह न नातो।<br>
एते अनादर होतहूँ तै न हातो ॥१॥<br>
जोरे नए नाते नेह फोकटके फीके।<br>
देह के दाहक गाहक जीके ॥२॥<br>
अपने अपने को सब चाहत नीको।<br>
मूल दुहूँ को दयालु दूलह सी को ॥३॥<br>
जीवन को जीवन प्रान को प्यारो।<br>
सुखहू को सुख राम सो विसारो ॥४॥<br>
कियो करै करैगो तोसे खल को भलो।<br>
ऐसे सुसाहब सों तू कुचाल क्यों चलो ॥५॥<br>
तुलसी तेरी भलाई अजहूँ बूझै।<br>
राढउ राउत होत फिरिकै जूझै ॥६॥

अरे नीच ! तूने रामचन्द्रजी सरीखे सुन्दर स्वामी से प्रेम और नाता नहीं रक्खा। और इतना अनादर होने पर भी उन्होंने तुझे नहीं छोड़ा ( अर्थात् तेरे ऊपर कृपा ही करते रहे ) ॥ १ ॥ और ( तूने जो जन्म जन्म में स्त्री पुत्रादि से ) नये नये नाते और स्नेह जोड़े सो सब बिना रस के फीके थे ( अर्थात् सब वृथा थे ऐसा एक भी नहीं हुआ कि जिससे तेरा भला होता और तू भवबन्धन से छूटता इसलिए ) वे देह के जलाने वाले और तेरे शरीर के गाहक कहिए लेने वाले ही थे ॥ २ ॥ अपना और अपने (सगों) का सब भला चाहते हैं। पर दोनों की ( भले की ) जड़ अर्थात् करने वाले तो सीतापति रामजी हैं ॥ ३ ॥ वे जीवों के जीवन हैं ( अर्थात् आत्मरूप से सब में प्रकाशित हैं ) और प्राणों के प्यारे हैं ( अर्थात् पाँचों प्राणों (१) के अन्तर्यामीरूप से चैतन्य करने वाले हैं )। और सुख के भी सुख हैं ( अर्थात् भक्तों को बड़ा सुख देनेवाले हैं उनके बिना संसारी स्त्री पुत्रादि का सुख भोग नहीं हो सकता ) ऐसे रामजी को तू भूल गया ॥ ४ ॥ जिन्होंने ( पहले भी ) किया और ( फिर भी ) तुझ सरीखे दुष्ट का भला करेंगे ऐसे सुन्दर स्वामी से तू ऐसी बुरी चाल क्यों चला ( भाव—विमुख क्यों हुआ ) ॥ ५ ॥ हे तुलसी ! जो तू अब भी समझे तो तेरा भला हो सकता है क्योंकि कायर भी फिर से लड़कर सूरमा हो जाता है ( भाव—अब तक जो आयु गई उसे जाने दे और विषयों को छोड़ भगवान् का भजन कर जिससे तेरा कल्याण हो ) ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—हतौ = छोड़ा । फोकट = नीरस । सी = सीता । राढ = कायर । राउत = (रावत) = शूरवीर ।

[ १७७ ]

जो तुम त्यागो राम हौं तो नहिं त्यागों ।
परिहरि पाँय काहि अनुरागों ॥१॥
सुखद सुप्रभु तुमसों जगमाहीं ।
स्त्रवन नयन मन गोचर नाहीं ॥२॥
हौं जड़जीव ईस रघुराया ।
तुम मायापति हौं वसमाया ॥३॥

---

( १ ) गूढ़ार्थ कोश में देखो।

हौं तो कुजाचक स्वामी सुदाता।
हौं कुपूत तुमहीं पितु हित माता ॥४॥
जो पै कहुँ कोउ बूझतो बातो।
तो तुलसी बिनु मोल बिकातो ॥५॥

हे रघुनाथजी! जो तुम मुझे छोड़ भी दोगे तो मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। क्योंकि तुम्हारे चरणों को छोड़ मैं किससे प्रेम करूँगा ॥ १ ॥ तुम्हारे समान सुख का देनेवाला और सुन्दर स्वामी इस संसार में, न कान से ( सुनने में आता है ), न आँख से ( देखने में आता है ) और न मन से ( समझने में ) आता है ॥ २ ॥ हे राम! मैं तो जड़ जीव हूँ और तुम ईश्वर हो और तुम तो माया के पति हो और मैं माया के अधीन हो रहा हूँ ॥ ३ ॥ मैं तो कंगाल मँगता हूँ और तुम बड़े दानी हो ( पात्र कुपात्र बिना देखे दान देते हो। अजामेल ने भ्रम से नाम लिया उसका उद्धार कर दिया फिर मैं तो रात दिन नाम लेता हूँ मेरा उद्धार क्यों न करोगे ) मैं तुम्हारा कपूत हूँ और तुम मेरे माता पिता हो ( और मैं सपूत होता तो हर कोई रख लेता कपूत को तो माँ बाप ही रखते हैं सो मेरा पालन करो ) ॥ ४ ॥ ( हे प्रभो! ) जो कोई भी कहीं ( दुनिया में ) मेरी बात पूछता तो तुलसीदास बिना मोल बिक जाता ( भाव—कोई मुझसे नीच और निठल्ले को लेकर क्या करे इसलिए सिवाय तुम्हारे मेरा कोई गाहक नहीं है, तुम्हीं अपनी शरण में रक्खो ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—स्रवन = कान। गोचर = इन्द्रियों का काम, देखना, सुनना आदि। बातो = बात।

[ १७८ ]

भयेहूँ उदास राम मेरे आस रावरी।
आरत स्वारथी सब कहैं बात बावरी ॥१॥
जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिये।
प्रेम नेम को निबाहे चातक सराहिये ॥२॥
मीनते न लाभु लेस पानी पुन्य पीन को।
जलबिनु थल कहा मीचु बिनु मीन को ॥३॥
बड़े ही की ओट बलि बाँचि आये छोटे हैं।

चलत खरे के संग जहाँ तहाँ खोटे हैं ॥४॥
जहिदरबार भलो दाहिनोई बाम को।
मोको सुभदायक भरोसो राम नाम को ॥५॥
कहत नसानी ह्वैहै हिये नाथ नीकी है।
जानत कृपानिधान तुलसी के जीकी है ॥६॥

हे रघुनाथजी! तुम मुझ पर उदासीन होगे तो भी मुझे तो तुम्हारी ही आशा है (भाव—जो तुम न देखोगे तोभी तुम्हारे द्वार पर आशा लगाये पड़ा ही रहूँगा क्योंकि) जो दुखी और स्वारथी होते हैं वे सब पागलों की सी बातें कहा करते हैं (उन पर दृष्टि न कर मेरी कामना पर ध्यान दो) ॥ १ ॥ पानी के देनेवाले मेघ को क्या चाहिए (वह बिना स्वारथ चातक को स्वाति जल देता है) परन्तु प्रीति और नेम के निबाहने से चातक की सराहना होती है (कि वह मेघ से प्रेम कर नेम से स्वाति का ही जल पीकर जीता है सो तुम्हारी उदारता से मेरी भी सराहना होगी) ॥ २ ॥ और पवित्र और पुष्ट करने वाले जल को मछली से कुछ भी लाभ नहीं है पर मछली को बिना जल के कौन सी जगह मृत्यु-रहित है (अर्थात् जहाँ उसकी मृत्यु न हो। सो जैसे मछली का जीवन आधार जल है ऐसे ही तुम्हें मुझ सरीखे पापी से कुछ लाभ नहीं पर तुम्हारी शरण बिना मेरा कल्याण नहीं हो सकता) ॥ ३ ॥ मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ। बड़ों के सहारे से ही छोटे बचते आये हैं (जैसे अजामेल तुम्हारे नाम के सहारे से यमयातना से बच गया) और खरे (रुपयों) के साथ में खोटे (रुपये) भी इधर उधर चल जाते हैं (भाव—जैसे रुपये पर राजा का नाम देखकर कोई खोट नहीं देखता ऐसे ही जहाँ तुम्हारे अनेक अच्छे अच्छे भक्त हैं उनमें वैसाही भेस बनाये एक मैं भी खोटा पड़ा रहूँगा) ॥ ४ ॥ (मुझे अपनी नीचता का संदेह नहीं है क्योंकि) इस राम-दरबार में भले बुरे दोनों के लिए ही भलाई होती है (अर्थात् जो भजन करते हैं उनकी भी और जो शत्रुता कर मरते हैं उनकी भी) और हे राम! मुझे तो शुभदायक तुम्हारे नाम का भरोसा है (कि जिससे सब पापी तर गये) और हे नाथ! कहने से तो बात बिगड़ जायगी (भाव—भीतर का भरम खुल जायगा इसलिए) हृदय में ही रखना अच्छा है और तुम तो तुलसीदास के मन की जानते ही हो ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—जीवन = जल। पीन = पुष्ट करने वाला।

[ १७९ ]

राग विलावल।

कहाँ जाउँ कासों कहौं कौन सुने दीन की।
त्रिभुवन तुहीं गति सब संगहीन की ॥१॥
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधार को अधार गुनगन तेरे हैं ॥२॥
गजराज काज खगराज तजि धायो को।
मोसे दोष कोष पोसे तोसे माय जायो को ॥३॥
मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध को।
कियो बडे मोल तैं करैया गीधस्राध को ॥४॥
तुलसी की तेरे ही बनाये बलि बनैगी।
प्रभु की विलंब अंब दोष दुख जनैगी ॥५॥

हे नाथ! मैं कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ और मुझ ग़रीब की कौन सुनता है। तीनों लोकों में जिनका कोई संगी नहीं उनको तेरी ही शरण है ॥ १ ॥ संसार में जगत् के स्वामी तो घर घर में बहुत से बन बैठे हैं पर जिसको किसी का भी सहारा नहीं है उसको सहारा देनेवाले तेरे ही बहुत से गुण हैं ॥ २ ॥ (ऐसे जाना कि) गजेन्द्र के काम करने के लिए (अर्थात् उसे ग्राह से बचाने के लिए) गरुड़ को छोड़ कर कौन दौड़ा था। और तूने मुझ सरीखे दोषों के ख़ज़ाने का (अर्थात् महा पापी का) भी पालन किया सो (कौशल्या) माता ने तुझ सरीखा किस दूसरे को जना है (अर्थात् नहीं जना; तुझ सरीखा तो तू ही है) ॥ ३ ॥ और मेरे समान दुष्ट, काहिल, कपूत और जो आधी कौड़ी का है उसको हे गिद्ध के श्राद्ध करैया! तैने बड़े मोल का कर दिया (अर्थात् तेरे नाम के प्रताप से मुझे सब जगत् मानने लगा) ॥ ४ ॥ मैं तेरी बलैयाँ लूँ इस तुलसी की (बिगड़ी बात) तो तेरी ही बनाई बनेगी और जो तुझ समर्थ की ओर से देर होगी तो (देररूपी) माता दुःख और दोष को जनेगी (भाव—जो तू देर करेगा तो जाने मैं क्या पाप कर बैठूँगा कि जिससे दुःख होगा इसलिए देर करना ठीक नहीं) ॥ ५ ॥

( १८० )

बारक बिलोकि बलि कीजै मोहिं आपनो।
राय दसरथ के तू उथपन थापनो ॥१॥
साहब सरनपाल सबल न दूसरो।
तेरो नाम लेतहीं सुखेत होत ऊसरो ॥२॥
बचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं।
देखे सुने जाने मैं जहान जे ते बड़े हैं ॥३॥
कौने कियो समाधान सनमान सिला को।
भृगुनाथ सारिखे जितैया कौन लीला को ॥४॥
मातु पितु बंधु हित लोंक बेदपाल को।
बोल को अचल नत करत निहाल को ॥५॥
संग्रही सनेहवस अधम असाधु को।
गीध सबरी को कहो करिहै सराध को ॥६॥
निराधार को अधार दीन को दयालु को।
मीत कपि केवट रजनीचरभालु को ॥७॥
रंक निरगुनी नीच जेते निवाजे हैं।
महाराज सुजन समाज ते बिराजे हैं ॥८॥
साँची बिरदावली न बढ़ि कहि गई है।
सीलसिंधु ढील तुलसी की बार भई है ॥९॥

हे नाथ! मैं बलैयाँ लेता हूँ एक बार ( मेरी ओर ) देख कर मुझे अपना कर ले। हे दशरथनन्दन! तू उखड़े हुओं को फिर जमाने वाला है ( अर्थात् सुग्रीव, विभीषण जो जड़ से उखड़ गये थे उन्हें फिर राज्य पर जमा दिया ) ॥ १ ॥ और शरणागतों का पालक और ऐसा बली दूसरा स्वामी नहीं है। तेरा नाम लेते ही ऊसर खेत भी सुन्दर ( उपजाऊ ) खेत हो जाता है ( भाव—राक्षस, गणिका, कोल, किरात आदि जो ऊसर खेत के समान थे उनमें तेरे नाम लेने से भक्तिरूपी धान ख़ूब होने लगा ) ॥ २ ॥ तेरे

वचन और ( पतितपावनता, दीनदयालुता आदि ) कर्म मेरे मन में गड़ रहे हैं। और संसार में जितने बड़े बड़े हैं उनको मैंने आप देखा ( पुराणों से ) सुना और उनको समझ लिया ॥ ३ ॥ ( उनमें से ) किसने अहिल्या का समाधान किया ( अर्थात् शाप दूर कर चित्त का संशय मेटा ) और आदर किया। और लीला से परशुराम सरीखे ऋषि का ( कि जिन्होंने सहस्राबाहु तक को मारा था ) जीतने वाला कौन है ( तेरे प्रताप से ही वे हार कर वन को चले गये ) ॥ ४ ॥ और माता, पिता, भाई इनके हित के लिए लोक और वेद को पालने वाला कौन है ? और किसका वचन अचल ( सत्य ) है और प्रणाम करते ही कौन निहाल कर देता है ॥ ५ ॥ प्रेम के वश नीच और दुष्टों को कौन इकट्ठा करने वाला ( अर्थात् उनको शरण देने वाला ) है और शवरी और गिद्ध का कहो कौन श्राद्ध करेगा ॥ ६ ॥ जिनको सहारा नहीं है उनको सहारा देनेवाला और ग़रीबों पर दया करने वाला कौन है। और कपि ( सुग्रीव ), केवट, राक्षस ( विभीषण ) और रीछ ( जाम्बवन्त ) इनका मित्र कौन है ॥ ७ ॥ कंगाल, निरगुनी और नीच जितनों को तैने निवाजा है ( अर्थात् जिन जिन पर तैने कृपा की है ) हे महाराज ! वे सब सुन्दर भक्तजनों के समाज में ( ऊँचे पद पर ) विराज रहे हैं ॥ ८ ॥ यह तेरी सच्ची बड़ाई है कुछ बढ़ा कर नहीं कही है ( सब वेद पुराण गाते हैं ) पर हे शील के समुद्र ! तुलसीदास की बिरियाँ बड़ी देर हो रही है ॥ ९ ॥

[ १८१ ]

केहू भाँति कृपासिंधु मेरी ओर हेरिये।
मोको और ठौर न सुटेक एक तेरिये ॥१॥
सहस सिला ते अति जड़ मति भई है।
कासों कहौं कौने गति पाहनहिं दई है ॥२॥
पद राग जाग चाहौं कौसिक ज्यौं कियो है।
कलि मल खल दल देखि भारी भियो है ॥३॥
करम कपीस वालि बली त्रास त्रस्यो हौं।
चाहत अनाथ नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं ॥४॥
महामोह रावन विभीषन ज्यों हयो है।
त्राहि तुलसी त्राहि तुलसी तिहूँ ताप तयो है ॥५॥

हे कृपासिन्धु किसी तरह मेरी ओर देख। मुझे और जगह नहीं है, एक तेरा ही सुन्दर सहारा है ॥ १ ॥ ( तेरा ही सहारा इसलिए है कि अहिल्या पति के शाप से एक शिला हो गई थी ) और मेरी बुद्धि ( कलि के शाप से ) हज़ार शिलाओं से भी बढ़ कर जड़ हो गई है ( सो उसे शुद्ध करने के लिए ) किससे कहूँ और ( तेरे सिवाय ) किसने पत्थरों को मोक्ष दी है ( तूही उसे शुद्ध कर सकता है ) ॥ २ ॥ हे हरे! मैं तेरा पदराग कहिए चरण-प्रेमरूपी यज्ञ किया चाहता हूँ कि जैसा विश्वामित्र ने किया था। परन्तु कलियुग से प्रेरित ( काम क्रोधादि ) पापी दुष्टों को देखकर मुझे बड़ा भय हो रहा है ( भाव—उस यज्ञ की रक्षा तो तूने ताड़का, मारीच और सुबाहु आदि से की थी और इस पदरागरूपी यज्ञ की रक्षा कुमतिरूपी ताड़का और काम लोभ रूपी मारीच सुबाहु से करके इसे पूर्ण करा दे नहीं यह काहे को होगा ) ॥ ३ ॥ ( कुटिल ) कर्मरूपी वानरों का राजा बालि बड़ा बली है उसके डर से मैं ( सुग्रीव की भाँति ) डरा हुआ हूँ और हे अनाथों के नाथ! तेरी बाहु की छाया में बसना चाहता हूँ। ( भाव यह है कि जैसे बाली ने सुग्रीव को उसकी स्त्री और धन आदि छीन कर निकाल दिया था और तूने बाली को मार सुग्रीव की रक्षा की थी ऐसे ही कर्मरूपी बाली ने मेरी सुमतिरूपी स्त्री को हर कर मेरा संतोष वैरागरूपी सब धन हर के मुझे निकाल दिया है सो उसका नाश कर मुझे अपनी रक्षा में रख ) ॥ ४ ॥ जैसे रावण ने विभीषण को मारा था वैसेही महा मोह मेरा नाश कर रहा है और यह तुलसीदास तीनों तापों से तच रहा है, इसकी रक्षा कर रक्षा कर ॥ ५ ॥

[ १८२ ]

नाथ गुननाथ सुनि होत चित चाउ सो।
राम रीझिबे की जानो भगति न भाउ सो १॥
करम सुभाउ काल ठाकुर न ठाँउ सो।
सुधन न सुतन न सुमन सुआउ सो ॥२॥
जाँचो जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो।
कासों कहौं काहू सों न बढ़त हिआउ सो ॥३॥
बाप बलि जाउँ आपु करिये उपाय सो।
तेरेही निहारे परै हौरहू सुदाउ सो ॥४॥

तेरेही सुझाये सूझै असुझ सुझाउ सो।
तेरेही बुझाये बूझै अबुझ बुझाउ सो॥५॥
नाम अवलंब अंबु दीन मीन राउ सो।
प्रभु सों बनाइ कहौं जीह जरि जाउ सो॥६॥
सब भाँति बिगरी है एक सोबनाउ सो।
तुलसी सुसाहिबहि दियो है जनाउ सो॥७॥

हे नाथ! तुम्हारे गुणों की कथा सुन कर मेरे मन में आनन्द सा होता है पर हे राम! मैं तुम्हारे प्रसन्न करने के लिए उस भक्ति और भाव को (कुछ) नहीं जानता हूँ॥ १॥ क्योंकि न तो मेरा अच्छा कर्म है, न अच्छा सुभाव है, न अच्छा (सतयुग) समय है, न मेरा कोई धनी धोरी है, और न मेरा कहीं ठिकाना है (भाव—पूरा लावारसी हूँ)। फिर न बहुत सा धन है, न सुन्दर शरीर है, न सुन्दर मन है, और न बड़ी आयु है (अर्थात् थोड़ी सी रह गई है उसमें क्या हो सकता है)॥ २॥ जिससे जल भी माँगता हूँ (कि भैय्या एक लोटा जल दे दे) तो वह उलटा मुझसे कहता है कि मुझे अमृत पिला दे। (भाव—जिससे भोजन माँगता हूँ वह मुझे सिद्ध जान धन पुत्र आदि ऐश्वर्य्य माँगता है सो "देवी दिन काटे पंडे परचा मागें" यह कहावत हो रही है) पर इस बात को किससे कहूँ। किसी से कहने का हियाव नहीं पड़ता॥ ३॥ हे पिताजी! मैं तुम्हारी बलैयाँ लूँ। तुम इसका उपाय करो। क्योंकि तुम्हारे देखने से हारने पर भी सुन्दर दाँव पड़ जाता है (भाव—जो विषयी नरक के अधिकारी थे वे भी तुम्हारी दृष्टि से परम पद के भागी हो गये जैसे किरात भील आदि)॥ ४॥ तुम्हारे समझाने से असूझ पदार्थ भी सूझने लगता है सो उस (उपाय) को सुझाओ। क्योंकि तुम्हारे ही समझाने से नहीं समझने योग्य (ऐसा वेद का तत्त्व) समझा जाता है उसे समझाइए॥ ५॥ तुम्हारे नाम का आधार तो अम्बु कहिए जल है और मैं ग़रीब मच्छों का राजा (अर्थात् भारी मच्छ) हूँ (सो जैसे छोटी मछली हो तो थोड़े पानी में रह जाय और बड़ा मच्छ नहीं रह सकता ऐसे ही और लोगों का काम तो छोटे साधनों से हो सकता है और मेरा काम तो तुम से ही होगा) इसमें जो मैं प्रभु से बना कर कहता होऊँ तो मेरी जीभ जल जाय॥ ६॥ सब तरह से मेरी बिगड़ गई है पर एक सुन्दर बानक बन रहा है कि तुलसीदास ने अपने सुन्दर स्वामी को जता दिया है (कि मैं किसी लायक नहीं हूँ)॥ ७॥

[ १८३ ]

राग आसावरी ।

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत हैं ॥

बड़े की बड़ाई छोटे की छोटाई दूरि करै ऐसी विरदावलि वलि वेद मनियत हैं ॥१॥

गीध को कियो सराध भीलनी के खाये फल सोऊ साधु सभा भली भाँति भनियत है ।

रावरे आदरे लोक वेदहू आदरियत जोग ज्ञानहूते गरू गनियतु हैं ॥ २ ॥

प्रभु की कृपा कृपाल कठिन कलिहूँ काल महिमा समुझि उर अनियतु है ।

तुलसी परायेवस भये रस अनरस दीनबंधु द्वारे हरि हठ ठानियत हैं ॥ ३ ॥

हे राम ! प्रीति की रीति तुम अच्छी तरह जानते हो । मैं बलि जाऊँ वेद में तुम्हारी विरदावली ऐसी मानी गई है कि वह बड़े की बड़ाई ( घमंड ) और छोटे की छोटाई ( दरिद्रता ) दूर करनेवाली है ॥ १ ॥ तुमने गिद्ध का श्राद्ध किया, भीलनी के बेर खाये, यह बात भी सन्तजनों की मण्डली में अच्छी भाँति कही जाती है । तुम जिसका आदर करते हो उसका आदर सब लोग और वेद भी करते हैं, और उसे योग और ज्ञान से भी भारी गिनते हैं ॥ २ ॥ हे कृपालु ! प्रभु की कृपा से कठिन कलिकाल में भी तुम्हारी महिमा को ( भक्तजन ) समझ कर मन में भरोसा करते हैं ( कि भगवान् अवश्य हमारे ऊपर कृपा करेंगे ) । हे दीनबन्धु ! तुलसीदास पराये ( कहिये संसारी विषयों के ) वश हो, रस ( कहिए चरणों के प्रेम ) से अनरस नाम विमुख हो रहा है तो भी हे हरे ! तुम्हारे द्वार पर हठ ठान रहा है ( अर्थात् धन्ना देकर बैठा है बिना कृपा के नहीं हटेगा ) ॥ ३ ॥

[ १८४ ]

राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि ।

कलिकाल अपर उपायते अपाय भये जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि ॥१॥
करम कलाप, परिताप पाप साने सब ज्यों सुफूल फूले रूष फोकट फरनि ।
दंभलोभ लालच उपासना विनासि नीके सुगति साधन भई उदर भरनि ॥२॥
जोग न समाधि निरुपाधिन, विराग ज्ञान वचन विसेष,वेष, कहूँ न करनि ।
कपट कुपथ कोटि कहनि रहनि खोटि, सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥३॥
मरत महेस उपदेस है कहा करत सुरसरि तीर कासी धरम धरनि ।
रामनाम को प्रताप, हर कहैं जपैं आप, जुगजुग जानै जग वेदहूँ वरनि ॥४॥
मति रामनाम हीं सों रति रामनाम हीं सों गति रामनाम हीं की विपति हरनि ।
रामनाम सों प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि ॥५॥

रामनाम के जपने से मन की जलन मिट जाती है। कलियुग में ( यज्ञ, तप आदि ) दूसरे साधन तो ऐसे लँगड़े हो गये हैं जैसे अँधेरा दूर करने के लिए चित्र में लिखे सूर्य्य हों ( भाव—सब साधनों का पैर तो धर्म है, इसीसे सब साधन चल सकते हैं, जब कलि ने धर्म का ही नाश कर दिया तब फिर क्या हो सकता है ) ॥ १ ॥ और कर्म तो बहुत से हैं पर वे सब सन्ताप और पाप से सने हैं, ( अर्थात् अश्रद्धा-पूर्वक करने से फल न मिलने पर सन्ताप के, और बीच बीच में स्त्री विषय की चाह से उलटे पाप के दाता हो रहे हैं ) जैसे वृक्ष में सुन्दर फूल तो फूले, पर उनका फल कोरा छिलका ही

छिलका ( अर्थात् उनके भीतर कुछ भी गूदा नहीं होता इसलिए कलि में यज्ञादि साधन वृथा हैं )। और पाखंड, लोभ और लालच ने उपासना का अच्छी तरह से नाश कर डाला, क्योंकि यह मोक्ष का साधन ( लोगों के ) पेट भरने की जीविका हो गई ( अर्थात् लोग दुनिया को झूँठे झूँठे साधन दिखा दिखा कर और ठग ठग कर अपने पेट भरने लगे) ॥ २ ॥ न योग है और न समाधि उपाधि-रहित रही, (अर्थात् थोड़ी आयु के होने से उसमें अनेक खटके लगे हैं ) और विराग और ज्ञान केवल वचन और वेश में रह गये, ( अर्थात् साधुओं का सा वेश दिखा कर ज्ञान की लंबी-चौड़ी बातें चाहे जितनी करा लो ) बाक़ी करना, धरना कहीं कुछ नहीं। कपट, करोड़ों तरह के कुमार्ग, कहन और रहन ( सब ) खोटे हो गये हैं। पर तो भी सब लोग अपने अपने चलन की सराहना करते हैं ॥३॥ (सो सब धर्म का मार्ग जाता रहा है अब केवल रामनाम का प्रताप बाक़ी रहा है वह कैसा है कि) गंगाजी (१) का तो किनारा (कि स्नान करते ही पाप दूर हो) फिर काशी सी (२) धर्मभूमि ( कि मरने पर स्वयं मुक्ति हो जाय, ) फिर मरते समय शिवजी (३) क्या उपदेश करते हैं कि रामनाम का प्रताप वर्णन कर करते हैं और शिवजी (४) आप उसे रटते और जपते हैं। युगानुयुग से ( सतयुग में वाल्मीकि ने जपा सो व्याध से मुनि हुए, ऐसे ही त्रेता में शबरी, द्वापर में श्वपच, कलि में रैदास आदि हुए) संसार जानता है, और वेद बखान रहे हैं ॥ ४ ॥ कलि में ( लोगों को चाहिए कि ) रामनाम में ही अपनी बुद्धि को लगावें, रामनाम से ही प्रीति करें और रामनाम की ही शरण रक्खें यही विपत्ति को दूर करनेवाला है। रामनाम पर भरोसा और प्रीति रखने से, हे तुलसीदास ! कभी न कभी रामचन्द्रजी अपनी ढरनी से (अर्थात् अपने कारुणिक स्वभाव से) दया करेंगे ॥५॥

शब्दार्थ—तरनि (णि) = सूर्य। कलाप = समूह। फोकट = नीरस, कोरा छिलका। धरनि = पृथ्वी।

---

(१) गंगा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।

(२) काश्यां मरणान्मुक्तिः।

(३) पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्। जल्पन् जल्पन् प्रकृति-विकृतौ प्राणिनां कर्णमूले वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशी-निवासी। अर्थात् कोई काशी-निवासी जटाधारी प्राणियों के कान में गली गली यह कहता फिरता है कि, सुन्दर रामनाम बार बार सुनना चाहिए और मन में बारम्बार निरन्तर उसी का ध्यान करना चाहिए कि जो तारकमन्त्र के समान है अर्थात् साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है।

(४) आदिपुराणे—अहं जपामि देवेशि रामनामाक्षरद्वयम्। श्रीसीतायाः स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदि स्थले॥ सरलार्थः। स्कन्दपुराण में कहा है। भवन्नामामृतं पीत्वा गीत्वा च भवतां यशः। शिवोऽहं सर्वदेवानां पूजनीयो दयानिधे ॥२॥ अर्थात् हे दयानिधान राम ! आपके नामरूपी अमृत को पीकर और यश गाकर मैं शिव सब देवों का पूज्य हो गया।

[ १८५ ]

लाज न लागत दास कहावत ।
सो आचरन बिसारि सोच तजि जो हरि तुम कहँ भावत ॥१॥
सकल संग तजि भजत जाहि मुनि, जप तप जोग बनावत ।
मोसम मंद महाबल पाँवर कौन जतन तेहि पावत ॥२॥
हरि निरमल मलग्रासित हृदय, असमंजस मोहि जनावत ।
जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत ॥३॥
जाकी सरन जाइ कोविद दारुन त्रयताप बुझावत ।
तहूँ गये मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटत न सावत ॥४॥
भवसरिता कहँ नाउसंत, यह कहि औरनि समुझावत ।
हौं तिन्ह सो हरि परम बैर करि तुम सों भलो मनावत ॥५॥
नाहिंन और ठौर मो कहँ ताते हठि नातो लावत ।
राखु सरन उदार चूड़ामनि तुलसिदास गुन गावत ॥६॥

( हे राम ! तुम्हारा दास कहलाने में मुझे लाज नहीं आती । और हे हरे ! जो तुम्हें अच्छा लगता है उस आचरण को मैं सोच को भूल कर ( अर्थात् बेधड़क होकर ) छोड़ देता हूँ ( तो दास काहे का ठहरा ) ॥ १ ॥ मुनीश्वर जिसका भजन सब संग ( अर्थात् इन्द्रियों के विषय की अभिलाषा ) को छोड़ कर करते हैं, और ( जिसके लिए ) जप, तप और योग साधते हैं उन ( रामजी ) को मुझ सरीखा मूर्ख ( ज्ञान, यज्ञ आदि न करने से ) बड़ा दुबला, और नीच किस उपाय से पा सकता है ॥ २ ॥ भगवान् तो निर्मल हैं और मेरे हृदय को (विषयरूपी) पापों ने घेर रक्खा है सो मुझे यह दुविधा जान पड़ती है कि, जिस तालाब में काक, गिद्ध, बगुले और शूकर रहते हैं, वहाँ हंस क्यों आवेगा ( भाव—रामरूपी हंस तो वहाँ आवेगा कि जिसके हृदय-तड़ाग में प्रेमरूपी सुन्दर निर्मल जल भरा है, ज्ञान-विरागरूपी कमल खिल रहे हैं जिसमें सन्तोष-विवेक-रूपी मुक्ता उत्पन्न होते हैं, और मेरे हृदयरूपी तड़ाग में कि जहाँ संसारी-विषयरूपी बड़ा गँदला जल भर रहा है और कामरूपी शूकर, लोभरूपी बगुले, क्रोधरूपी काक और मोह-रूपी गिद्ध रहते हैं और चिन्ता-वासनारूपी जहाँ ख़ाली सीपियाँ पड़ी हैं वहाँ उसका

कैसे आना हो सकता है )॥ ३ ॥ जिसकी शरण में जाकर कोविद ( कहिए बड़े बड़े वेद वेदान्त के तत्त्व जाननेवाले ) बड़े कठिन तीनों तापों को बुझाते हैं, वहाँ जाने पर भी मुझे तो अधिक मद, मोह और लोभ बढ़ेगा क्योंकि स्वर्ग में भी सौत का डाह नहीं मिटता ( भाव यह है कि जैसे किसी पति की दो स्त्रियाँ होती हैं वे पति के संग स्वर्ग जाने पर भी आपस का डाह नहीं छोड़तीं, ऐसे ही जीव की प्रवृत्ति और निवृत्ति दो स्त्रियाँ हैं। जीव कहीं जाय ये उसका साथ नहीं छोड़तीं। फिर इन दोनों का बड़ा कुनबा है, प्रवृत्ति के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि पुत्र और ममता, वासना पुत्री हैं। उधर निवृत्ति के सत्य, शील, ज्ञान, वैराग्य आदि पुत्र और शान्ति, निर्लोभता आदि पुत्री हैं सो यह यम का सा लश्कर भगवान् के शरण जाने पर भी पीछा नहीं छोड़ता )॥ ४ ॥ संसाररूपी नदी के लिए संतजन ही नौकारूप हैं यह कह कह कर मैं औरों को समझाता हूँ। पर हे भगवन्! मैं उनसे भी बड़ा भारी वैर करके तुमसे अपना भला मनाता हूँ (यह तो मेरा शरणागति का हाल है फिर इस सन्तों के विरोधी पर तुम क्यों कृपा करोगे )॥ ५॥ ( जो कहो कि तू हमारे सन्तों से वैर करता है हम तुझे नहीं रखते और जगह चला जा सो ) मुझे और जगह नहीं है ( अर्थात् कोई ऐसा कृपालु नहीं है जिसकी शरण जाऊँ ) इसी लिए मैं तुमसे अड़ कर नाता लगाता हूँ। तुम तो दाताओं के शिरोमणि हो ( भला, बुरा न देख के सबको दान देते हो ) अपनी शरण में रक्खो यह तुलसीदास तुम्हारे गुण गा रहा है॥ ६॥

संधिविभाग—महा + अबल।
शब्दार्थ—कंक = गिद्ध। सावत = सौत की डाह। चूड़ा = शिर।

[ १८६ ]

कौन जतन विनती करिये।
निज आचरन विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ॥१॥
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन, सो हठि परिहरिये।
जाते विपति जाल निसि दिन दुख, तेहि पथ अनुसरिये ॥२॥
जानतहूँ मन वचन करम परहित कीन्हें तरिये।
सो विपरीत, देखि परसुख विनु कारन ही जरिये ॥३॥
स्रुति पुरान सब को मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये।

निज अभिमान मोह इरषा वस तिन्हहिं न आदरिये ॥४॥
संतत सोइ प्रिय मोहिं सदा जाते भवनिधि परिये ।
कहो अब नाथ कौन बलते संसार सोग हरिये ॥५॥
जब कब निजु करुना सुभाउ ते द्रवहु तो निस्तरिये ।
तुलसिदास विस्वास आन नहिं कत पचि पचि मरिये ॥६॥

हे राम ! किस उपाय से तुम्हारी विनती करूँ । जब अपने आचरण को विचारता हूँ और समझता हूँ तब हृदय में हार मान कर डरता हूँ ॥ १ ॥ हे हरे ! जिस साधन से तुम अपना दास जान कर कृपा करते हो उसे मैं अड़ कर छोड़ता हूँ । और जिस विपत्ति जाल से रात दिन दुःख मिलता है उसी मार्ग में जाता हूँ ॥ २ ॥ जानता भी हूँ कि जो मन, कर्म और वचन से दूसरों की भलाई करूँगा तो तर जाऊँगा, पर उससे उलटा ( करता ) हूँ कि पराये सुख को देख बिना कारण ही जला मरता हूँ ॥३॥ वेद और पुराण सब का यह मत है कि संतों का संग पक्के होकर करना चाहिए, पर मैं अपने अभिमान, मोह और ईर्ष्या के वश उनका भी आदर नहीं करता ( अर्थात् उनके पास तक नहीं फटकता हूँ ) ॥ ४ ॥ मुझे संतत अर्थात् नित्य वही अच्छा लगता है कि जिससे संसाररूपी समुद्र में ही सदा पड़ा रहूँ । हे नाथ ! अब आपही कहिए, कि किस बल से संसार का शोक दूर हो ॥ ५ ॥ जब कभी तुम अपने दयावन्त स्वभाव से प्रसन्न होगे तब मेरा निस्तारा हो जायगा । क्योंकि तुलसीदास को और का भरोसा नहीं है फिर पच पच कर क्यों मरे ( अर्थात् अन्य साधन करके क्यों परिश्रम करे ) ॥ ६ ॥

[ १८७ ]

ताहि ते आयो सरन सबेरे ।
ज्ञान विराग भक्ति साधन कछु सुपनेहु नाथ न मेरे ॥१॥
लोभ मोह मद काम कोह रिपु फिरत रैनि दिन घेरे ।
तिन्हहिं मिले मन भयो कुपथ रत फिरै तिहारेहि फेरे ॥२॥
दोष निलय यह विषय सोकप्रद कहत संत स्रुति टेरे ।
जानतहूँ अनुराग तहाँ अति, सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे ॥३॥

विष पियूष सम करहु अगिनि हिम तारि सकहु बिनु बेरे।
तुम सम ईस कृपाल परमहितु पुनि न पाइ हौं हेरे ॥४॥
जह जिय जानि रह्यौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे।
तुलसिदास यहि विपति बागुरौ तुम सों बनिहि निबेरे ॥५॥

(हे राम! मुझे किसी का भरोसा नहीं है) इसी लिए मैं तुम्हारी शरण जल्दी (अर्थात् मृत्यु के पहले) आया हूँ। हे नाथ! मेरे पास ज्ञान, वैराग, भक्ति आदि साधन (१) स्वपने में भी कुछ नहीं है ॥ १ ॥ मुझे तो लोभ, मोह, मद, काम और क्रोध-रूपी वैरी रात दिन घेरे फिरते हैं। उनके सङ्ग से मेरा मन बुरे मार्ग में लग रहा है सो वह तुम्हारे ही फेरने से फिरेगा ॥ २ ॥ क्योंकि यह विषय पाप का घर और शोक का देनेवाला है ऐसा सन्त और वेद पुकार पुकार कहते हैं। (तब भी नहीं मानता इससे) जानता हूँ कि उस (विषय) में भी जो मेरी अधिक प्रीति है वह भी आप ही की प्रेरणा से (२) है। (नहीं तो जिस बात में दुःख हो उसमें जान बूझ कर कोन पड़ता है) ॥ ३ ॥ तुम विष को अमृत समान और अग्नि को बरफ़ के समान कर देते हो और विनबेड़े (संसार-समुद्र से) तार सकते हो। तुम सरीखे दयावन्त और हितकारी स्वामी को फिर (अर्थात् जन्मान्तर में भी) ढूँढ़ने से नहीं पाऊँगा ॥ ४ ॥ इस बात को मन में जान कर और सबको छोड़ कर हे रघुकुल के वीर! मैं तुम्हारे ही भरोसे रहता हूँ। सो तुलसीदास की यह विपत्ति रूपी बेड़ी तुमसे ही दूर करते बनेगी। (अर्थात् तुम्हारे ही काटे कटेगी। भाव—तुमही संसाररूपी बन्धन से छुड़ाओगे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—निलय = घर। स्रुति = वेद। पियूष = अमृत। हेरे = ढूँढ़ने से। बागुर = फन्दा, बेड़ी।

[ १८८ ]

मैं तोहि अब जान्यो संसार।
बाँधि न सकहि मोहिं हरि के बल प्रगट कपट आगार ॥१॥

---

१ भागवते—"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेद-नम्। सरलार्थः।

(२) "जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः। केनाऽपि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि"।

देखत ही कमनीय कछू नाहिंन पुनि किये विचार।
ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ न निसरै सार ॥२॥
तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायो पार।
महामोह मृगजल सरिता महँ बोरयो हौं बारं बार ॥३॥
सुनु खलु छल बल कोटि किये वस होहिं न भक्त उदार।
सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि हृदय न नंदकुमार ॥४॥
तासों करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार।
सो परि मरै डरै रजु अहि ते बूझै नहिं व्यवहार ॥५॥
निज हितु सुनु सठ हठ न कराहि जो चहहि कुसल परिवार।
तुलसिदास प्रभु के दासन्ह तजि भजहि जहाँ मद मार ॥६॥

अरे संसार! अब मैंने तुझे जान लिया। तू सचमुच कपट का घर है पर मेरे पास भगवान् का बल होने से तू मुझे नहीं बाँध सकता (अर्थात् अपने फन्दे में नहीं ले सकता) ॥ १ ॥ तू देखने में ही सुन्दर है पर बार बार समझने से कुछ भी नहीं है (अर्थात् बिलकुल ऐसा झूँठा है) जैसे केले के वृक्ष के बीच में देख लो कभी गूदा नहीं निकलता (अर्थात् कोरे पत्ते ही पत्ते हैं सो तुझमें भी राज धन-धान्य आदि देखने मात्र का है मरने पर कुछ सङ्ग नहीं जाता) ॥ २ ॥ मैं तेरे लिए अनेक जन्म लेता फिरा परन्तु तेरा पार नहीं पाया (पार तो जब मिले कि जब तू सच्चा हो) और तूने मुझे महा-मोहरूपी मृगतृष्णा की नदी में बार बार डुबाया ॥ ३ ॥ हे दुष्ट! सुन ले, जो (भगवान् का) बड़ा भक्त है वह तेरे करोड़ों छलबल करने से भी तेरे क़ाबू में नहीं आ सकता। सो तू अब (अपने कामादि) साथियों समेत वहाँ जाकर बस, कि जिनके हृदय में नन्दनन्दन (श्रीकृष्णचन्द्र) न रहते हों ॥ ४ ॥ और उसी से अपनी चतुराई छाँट कि जो तेरे भेद को न जानता हो। क्योंकि वही (पुरुष) पड़ी हुई जेवड़ीरूपी सर्प से डर और मर सकता है कि जो उसके व्यौहार को (अर्थात् असली कारण को) न जानता हो (कि यह वही रस्सी है जो हमने पटकी थी) ॥ ५ ॥ अरे शठ! सुन, जो तू अपना भला और अपने कुनबे की ख़ैर चाहै तो हठ मत करै और तुलसीदास के प्रभु रामचन्द्रजी के भक्तों को छोड़ कर जहाँ मद और काम हों वहाँ भाग जा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—आगार = घर। कमनीय = सुन्दर। सार = गूदा। मार = कामदेव। अहि = सर्प। मद = अहङ्कार।

[ १८९ ]

राग गौरी।

राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।
नहिं तो भव बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे॥१॥
बाँस पुरान साज सब अठखठ सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करम चंद मंद मोल बिनु डोला रे॥२॥
विषम कहार मारमदमाते चलहिं न पाँव बटोरा रे।
मंद विलंद अभेरा दलकनि पाइय दुख झकझोरा रे॥३॥
काँट कुराय लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँउँ बझाऊँ रे।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे॥
मारग अगम संग नहिं संबल नाउँ गाउँकर भूला रे।
तुलसिदास भवत्रास हरहु अब होहु राम अनुकूला रे॥५॥

( अरे भाई जो हुआ सो हुआ अब ) तू राम राम कहता चल ( अर्थात् जब तक जिये तब तक राम नाम रटता रह ) नहीं तो संसार की बेगार में फिर पड़ेगा और छूटने में बड़ी कठिनता होगी ( भाव यह है कि किसी राजा के यहाँ बेगार में पकड़े जाने से तो २।४ दिन में मनुष्य छूट जाता है पर यह संसाररूपी बेगार ऐसी कठिन है कि ८४ लाख योनि भुगतने पर भी जन्म-मरणरूपी भार ढोने से छूटने में सन्देह है और इससे छूटने का यही उपाय हैं कि संसार के स्वामी रामजी का नाम ले जिससे तुझे उनका सेवक जान कर आगे कोई नहीं पकड़ेगा अर्थात् संसार से तेरा आवागमन मिट जायगा क्योंकि जो किसी राजा का मुख्य नौकर होता है और वह उसका नाम ले देता है तो कोई पुलिसवाला उसे बेगार के लिए नहीं पकड़ता। और राम नाम न लेने से जिस बेगार में तू आगे फिर पड़ेगा सो अबही वर्तमान है उसे देख ले )॥ १ ॥ (जैसे खटोले में एक नया लम्बा बाँस लगा होता है कि जिसे दोनों ओर से कहार लेकर चलते हैं और वह चार पट्टी और पायों से चौकोन तथा रस्सी से बुना होता है और बढ़ई

उसे अच्छा मज़बूत बना कर देता है वैसे ही इस शरीररूपी खटोले में अनादि काल की अविद्या अथवा विषयसुख की वासना तो ) पुराना बाँस है और इसका सब साज टेढ़ा मेढ़ा ( कारण कि यह पंचतत्त्व से बना है ) और ( नाशवान् होने से ) सरल कहिए सड़ा हुआ है ( और इसमें बाल, युवा, वृद्धावस्था की तीन पाटी हैं और सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण के इसमें तीन पाये लगे हैं और सुख दुखरूपी डोरी से बुना हुआ ) ऐसा यह तिकोना खटोला है। और दुखदाई कर्म ( रूपी बढ़ई ) ने हमें चन्द कहिए चन्द्रडोले के बहाने से यह निकम्मा डोला बना कर बिना मोल दे दिया है ( अर्थात् नाहीं करते करते मुफ़्त में इसे हमारे सिर मढ़ दिया है ) ॥ २ ॥ ( अब डोला उठाने के लिए कहार चाहिये सो कहते हैं। देखो चन्द्रडोले को तो जोड़ के २। ४ आदि कहार बिना नशा पिये उठाते हैं और पैरों को एक सा करके चलते हैं और नीची ऊँची भूमि तथा दरार दल दल आदि को छोड़ एक सी भूमि पर मनुष्य को चन्द्रडोले में बैठा कर ऐसे ले जाते हैं जिसमें उसे झटका न लगे और शरीररूपी बुरे डोले के ) कहार एक तो विषम हैं ( अर्थात् २। ४ जोड़े के नहीं हैं। नेत्र, जिह्वा, नासिका, त्वचा और कान ये पाँच हैं ) और ये कामरूपी मद में मतवाले हो रहे हैं ( अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इन अपने अपने विषयरूपी मदिरा के नशे में चूर हो रहे हैं और धुन बाँधे जीव को शरीररूपी खटोले में बैठाये अपनी अपनी ओर खींचे लिये जाते हैं ) पाँव एक सा करके नहीं चलते ( अर्थात् नेत्ररूपी कहार रूपविषय की ओर, जिह्वारूपी कहार रसविषय की ओर, नासिकारूपी कहार गंधविषय की ओर, त्वचारूपी कहार स्पर्शविषय की ओर और कानरूपी कहार शब्द विषय की ओर खींचे लिये जाता है। जैसा कहा है—

"कान निरन्तर गान तान सुनिवोही चाहत।
आँखें चाहत रूप रैन दिन रहत सराहत।
नासा अतर सुगन्ध चहत फूलन की माला।
त्वचा चहत सुख सेज सङ्ग कोमल तन बाला।
रसना हू चाहत रहत नित खाटे मीठे चरपरे।
इन पंचन इहिं परपंच सौं भूपन कौं भिच्छुक करे"॥ )

और ( इस संसाररूपी मार्ग में, पराया अपवाद, धनहरण आदि नीच कर्म की इच्छा ) नीची जगह और ( भूषण, वसन, राज्यसुख और स्वर्ग आदि ऊँचे कर्म की इच्छा ) ऊँची जगह, और ( स्त्री-पुत्रादि का वियोग ) दरार तथा ( गृहस्थाश्रम के धन्धे ) दलदल, इनके होने से (जीव को) बड़ा दुःख होता है और धक्के लगते हैं ॥३॥ (फिर वहाँ अच्छे मार्ग

में चलने से न तो पैरों में काँटे चुभते हैं न बेल लिपटती है, न भाड़ियों में कपड़े इलभते हैं और न जगह जगह रुकना पड़ता है। और इस संसाररूपी मार्ग में कुकर्म से हुए तीनों ताप रूपी ) काँटे चुभते हैं और ( स्त्री पुत्रादि की ममतारूपी ) बेल ( इन्द्रियों से ) इलभती है और ( ८४ योनिरूपी ) भाड़ियाँ ( कपड़ों से ) लिपटती हैं ( इन कारणों से ) जगह जगह रुकना पड़ता है ( अर्थात् जन्म जन्म में बन्धन होता चला जाता है। फिर सीधे मार्ग से जाने में तो जहाँ जाना हो वह जगह पास आती जाती है और रास्ते में दूसरा कोई साथी भी मिल जाता है और इस संसाररूपी मार्ग में ) ज्यों ज्यों आगे चलता जाता है ( अर्थात् विषयमार्ग में बढ़ता जाता है ) त्यों त्यों अपने पहुँचने की (आत्मरूप) जगह दूर होती जाजी है ( कारण जाना तो आत्मस्वरूप-रूपी पूर्व दिशा को है और इन्द्रियरूपी कहार अपने विषयरूपी उत्तर, पश्चिम और दक्षिण की ओर उलटे उलटे खींचे लिये जाते हैं फिर वहाँ पहुँचने की क्या आशा ) और ( कोई संतरूपी ) साथी भी नहीं मिलता ( कि जो सीधे रास्ते से साथ ले जाय ) ॥ ४ ॥ ( फिर मार्ग सीधा हो, खाने-ख़र्चने के लिए दाम पास हों और गाँव का नाम याद हो तो प्राणी खाता पीता, पूछता, हुआ चला जाय पर इस संसार का एक तो ) मार्ग बड़ा टेढ़ा ( कि जैसा पहले कह आये ) और साथ में ( ज्ञान, वैराग्यरूपी ) खान-ख़र्च नहीं ( जो हो तो खाता, ख़र्चता चला जावे और खान-ख़र्च न सही—गाँव का नाम तो याद हो, पर संसारी विषयों में पड़ने से आत्मस्वरूप ) गाँव का नाम तक भूल गया है ( इसलिए बिना हरि की कृपा से नहीं जा सकता ) सो हे राम ! अब तुम्हीं कृपालु होकर इस तुलसीदास के ( आवागमनरूपी ) संसारी भय को दूर करो ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अटखट = टेढ़ामेढ़ा। सरल = सड़ा ( मागधी बोली का शब्द है )। कुटिल = दुखदाई। करि = बनाकर। मन्द = बुरा, नीच। चन्द्र डोला = बैठने की सवारी। विषम = बिना जोड़े के। मार = काम। मद = नशा। माते = मतवाले। बटोरना = एक सा करना। मन्द = नीची। विलन्द = ऊँची ( बुलन्द फ़ारसी का शब्द है )। अभेरा = ( अ = नहीं + भेरा = भिड़ा ) दरार जो कीचड़ सूखने पर फट जाती है। दलकन = दलदल। कुराय = एक तरह की बेल। लोटन = भाड़ी। बभाऊ = रुकना। लगाऊ = साथी। सम्बल = कलेवा, खाना ख़र्च। भव = संसार। त्रास = भय।

[ १९० ]

**सहज सनेही राम सों तैं कियो न सहज सनेह।**
**ताते भव भाजन भयो सुनु अजहुँ सिखावन एह ॥ १ ॥**

जो मुख मुकुर विलोकिये अरु चित न रहै अनुहारि।
त्यों सेवतहु न आपने ये मातु पिता सुत नारि॥ २॥
दै दै सुमन तिल बासकै अरु खरि परिहरि रस लेत।
स्वारथहित भूतल भरे मनमेचक तनुसेत॥ ३॥
करिवीत्यो अब करतु है करिबेहित मीत अपार।
कबहुँ न कोउ रघुवीरसो नेह निबाहनिहार॥ ४॥
जासों सब नातो फुरै तासों न करी पहिचानि।
ताते कछू समझो नहीं कहाँ लाभ कहँ हानि॥ ५॥
साँचो जान्यो झूठ कै झूठ कै साँचो जानि।
कौन गयो को जात है कौन जैहै करि हित हानि॥ ६॥
वेद कह्यो बुध कहत हैं अरु हौहुँ कहत हौं टेरि।
तुलसी प्रभु साँचो हितू तू हिये की आँखिन हेरि॥ ७॥

तूने स्वभाव ही से स्नेह करने वाले रामचन्द्रजी से स्नेह नहीं किया। इसीसे संसार का पात्र हुआ (अर्थात् तेरा जन्ममरण नहीं छूटा) सो अब भी यह शिक्षा सुन॥ १॥ जैसे दर्पण में मुख देख पड़ता है और वह सूरत उस के चित कहिये भीतर नहीं होती (देख चुकने के पीछे जाती रहती है) वैसेहो ये माता, पिता, पुत्र, स्त्री सेवा करने पर भी अपने नहीं हैं (भाव यह है कि जैसे शीशे में मुख देख पड़ता है पर असल में उसमें नहीं होता है ऐसे ही संसार में जो स्त्री पुत्रादि (१) दीखते हैं वे सब मतलब के लिए देखने मात्र के हैं पर कोई किसी का नहीं है)॥ २॥ जैसे

---

(१) यहाँ एक दृष्टान्त देते हैं—ऋषि वाल्मीकि पहले व्याध थे और मनुष्यों को लूट मार कर कुटुम्ब पालते थे। एक बार उनको कई ऋषि मिले और जब वाल्मीकि ने उन्हें लूटना चाहा तब उन्होंने कहा कि तू पाप कर्म करके कुटुम्ब पालता है सो तेरा कुटुम्ब खाने का ही साथी है अथवा तुझे जो पाप का फल मिलेगा उसका भी साथी है। यह सुन वाल्मीकि ने अपने कुटुम्बियों से पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि हम तो खाने के साथी हैं, पाप के नहीं। फिर तो उन्होंने सब को त्याग ऋषियों के पास जाकर धर्म-विषय सुना और भगवान् का उलटा नाम मरा मरा जपते जपते वे ऐसे महामुनि हो गये कि भगवान् ने उन्हें घर बैठे दर्शन दे कृतार्थ किया।

( फुलेल के लालच से ) फूल दे देकर तिलों को सुगन्धित करते हैं ( वैसेही धन के लिए स्त्री, पुत्र आदि मनुष्य की ख़ातिर करते हैं ) और ( जैसे तिलों में से ) रस ( फुलेल ) लेकर खली को छोड़ देते हैं ( ऐसे ही घरवाले जब तक मनुष्य कमाता है तब तक उसकी ख़ातिर करते हैं और बुढ़ापे में उसको छोड़ उसका निरादर करते हैं कोई उसकी बात नहीं पूछता )। और अपने मतलबी तो धरती पर भरे पड़े हैं पर वे मन के काले और ( ऊपरी ) उजले शरीर के हैं ( अर्थात् मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे ) ॥ ३ ॥ मैं बहुत से मित्र कर चुका, अब कर रहा हूँ और आगे करने के लिए धरे हैं। पर रामचन्द्रजी के समान प्रेम का निबाहनेवाला कभी कोई हुआ ही नहीं ॥ ४ ॥ जिनसे सब नाते सच्चे प्रतीत हों उनसे तैने पहचान नहीं की। इसलिए तू कुछ नहीं समझता कि किस में क्या तो लाभ और किस में क्या हानि होती है ॥ ५ ॥ और तूने झूठे ( शरीर ) को सच्चा और सच्चे ( ईश्वर ) को झूठा जान रक्खा है। ऐसे अपने हित की हानि कर ( इस संसार से ) कौन गया, कौन जा रहा है और कौन जायगा ( भाव—यहाँ ही भूले फिरेंगे और मुक्त नहीं होंगे ) ॥ ६ ॥ इस बात को वेदों ने कहा है और बड़े बड़े वेदान्ती कहते हैं और मैं भी पुकार कर कहता हूँ कि हे तुलसी ! केवल प्रभु ही सच्चे हितू हैं तू अपने हृदय की आँखों से ( अर्थात् ज्ञान-दृष्टि से ) देख ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—मुकुर = शीशा। चित = चित्त, भीतर, बीच। अनुहार = सूरत। सुमन = फूल। खरि = खल, फोक। मेचक = काला। फुर = सच्चा।

[ १९१ ]

एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपालु।
प्रेमकनोड़ो रामसों नहिं दूसरो दयालु ॥ १ ॥
तनु साथी सब स्वारथी सुर व्यौहार सुजान।
आरत अधम अनाथहित को रघुवीर समान ॥ २ ॥
नाद निठुर समचर सिखी सलिल सनेह न सूर।
ससि सरोग दिनकर बड़ो पयद प्रेमपथ कूर ॥ ३ ॥
जाको मन जासों बिँधो ताको सुखदाइक सोइ।
सरलसील साहब सदा सीतापति सरिस न कोइ ॥ ४ ॥
सुनि सेवा सहि को करै परिहरै को दूषन देखि।

केहि दिवान दिन दीन को आदर अनुराग विसेखि ॥ ५ ॥
खग सबरी पितु मातु ज्यों माने कपि को किए मीत ।
केवट भेंट्यौ भरत ज्यौं ऐसो को कहुँ पतित पुनीत ॥ ६ ॥
देइ अभागहि भाग को को राखे सरन सभीत ।
वेद विदित विरदावली कवि कोविद गावत गीत ॥ ७ ॥
कैसेउ पाँवर पातकी जे न लई नाम की ओट ।
गाँठी बाँध्यो दाम सो परख्यो न फेरि खर खोट ॥ ८ ॥
मन मलीन कलि किलविषी होत सुनत जासु कृतकाज ।
सो तुलसी कियो आपनो रघुवीर गरीब निवाज ॥ ९ ॥

एक सच्चे सनेही केवल रामचन्द्रजी ही हैं। प्रीति से दबने वाला रामजी सरीखा दूसरा दयालु नहीं है ॥ १ ॥ शरीर के जितने (स्त्री पुत्रादि) साथी हैं वे सब मतलबी हैं (धन देखकर बात करते हैं वरन् कोई बात नहीं करता) और देवता भी व्योहार में पक्के हैं (अर्थात् सेवा पूजा करने से प्रसन्न होते हैं)। परन्तु दुखी, नीच और अनाथ का भला करने वाला रघुवीर के समान कौन है ॥ २ ॥ (देखो) बाजा तो निर्दयी है (अर्थात् उसके दया नहीं क्योंकि राग को सुन कर हरिण राग गानेवाले के पास आ जाता है और वह उसे बाँध लेता है पर राग को कुछ भाँय नहीं कि उस हरिण को बचावे) इसी चाल का दिया होता है (पतङ्ग तो उसके रूप को देख उस पर पड़ता है और जल जाता है पर दीपक को उसकी दया नहीं कि उसे बचावे) और इसी चाल का पानी है (अर्थात् मछली पानी के न रहने से मर जाती है पर पानी को कुछ परवा नहीं वह उसे बचाने का उपाय नहीं करता भाव नाद, दिया और जल ये तीनों निठुर और स्नेह में शूर नहीं हैं) ऐसे ही चन्द्रमा रोगी है (अर्थात् उसमें पीलापन और धवा है पर चकोर उसके अवगुणों को न देख उसके धोखे में अँगारे चुगता है, उसके प्रेम में मगन होता है और फिर उसे मनुष्य पकड़ लेता है पर चन्द्रमा उसे नहीं बचाता) और सूर्य और मेघ ये बड़े होने पर भी प्रेम के मार्ग में निर्दई हैं (देखो सूरज सब संसार को प्रकाशित करता है यह तो इसका बड़प्पन हुआ और निर्दयीपना यह है कि कमल सूर्य से ऐसा प्रेम रखता है कि बिना उसके नहीं खिलता तो भी सूर्य जल के बिना उसे जला कर भस्म कर देता है और

बचाता नहीं है। फिर मेघ इतना ते बड़ा कि संसार भर में वर्षा कर अन्न उत्पन्न करता है कि जिससे सब लोग जीते हैं पर उसमें निर्दयीपन ऐसा कि पपीहा उससे ऐसी ते प्रीति करता है कि उसके स्वाति जल के सिवाय और जल नहीं पीना मर भले ही जाय तोभी वह उसे ओलों की वर्षा कर मारता है और समय पर स्वाति का जल देकर नहीं बचाता इसलिए चकोर, कमल और पपीहा येही प्रीति में चतुर हैं)॥ ३॥ (जो कहो कि ये उनसे अपनी प्रीति क्यों नहीं छोड़ देते तहाँ कहते हैं कि) जिसका मन जिससे बँधा है उसको वही सुख का देने वाला है। रामचन्द्रजी सरीखा सदा सरल स्वभाववाला स्वामी कोई नहीं है॥ ४॥ सुनते ही सेवा को कौन सही करता है (अर्थात् मान लेता है) और दोष को देख कर कौन छोड़ता है (अर्थात् उसका ख़याल नहीं करता)। और किसके दरबार में ग़रीब का नित्य आदर और अधिक प्यार होता है॥ ५॥ (भगवान् ने) गिद्ध और शबरी को पिता माता के समान माना और बन्दर (सुग्रीव) को मित्र बनाया। और वे निषाद से भरतजी की तरह मिले। कहो ऐसा पापियों को पवित्र करनेवाला कौन है (अर्थात् सिवाय रामजी के कोई नहीं)॥ ६॥ अभागे को कौन भाग देता है और डरे हुए को कौन अपनी शरण में रखता है। उनका बड़ा यश वेदों में प्रगट है और उस (यश के) गीत को कवि (वाल्मीकि) और (वेद-वेदान्त-वेत्ता) पण्डित गाते हैं॥ ७॥ कैसा ही पापी और नीच (१) क्यों न हो जिसने उनके नाम का सहारा लिया है उसको (राम ने) इस तरह अपना कर लिया जिस तरह कोई (भरोसा करके किसी के दिये हुए) धन को अपनी गाँठ में बाँध लेता है और फिर उसका खरा खोटापन नहीं परखता है॥ ८॥ मैं कैसा मन का पापी हूँ कि कलियुग में जिसके किये हुए कर्मों को सुनते ही (दूसरा सुननेवाला) पापी हो जाय। ऐसे तुलसीदास को भी अपना दास कर लिया। रघुनाथजी ऐसे ग़रीब-निवाज हैं॥ ९॥

शब्दार्थ—कनौड़ा = नेकी से दबा हुआ। समचर = समान चलनेवाला। सिखी = जिसमें शिखा (लौ) हो, दीपक। पयद = पय नाम जल देनेवाला, मेघ। दिवान = दरबार। कोविद = पण्डित। किलविषी = पापी।

[ १९२ ]

## जोपै जानकीनाथ सों नातो नेह न नीच।

---

(१) अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः।
परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात्॥ सरलार्थः।

स्वारथ परमारथ कहाँ कलि कुटिल बिगोयो बीच ॥ १ ॥
धरम वरण आस्रमनि के पैअत पोथिहि पुरान।
करतब बिन वेष देखिये ज्यौं सरीर बिनु प्रान ॥ २ ॥
वेदविहित साधन सबै सुनियत दायक फल चारि।
राम प्रेम बिनु जानिबो जैसे सरसरिता बिन वारि ॥ ३ ॥
नाना पथ निरवान के नाना विधान बहुभाँति।
तुलसी तू मेरे कहे जपु रामनाम दिन राति ॥ ४ ॥

हे नीच ! जो रामजी से तेरा प्रेम और नाता नहीं है तो स्वारथ (अपना भला) और परमार्थ (पराया भला) ये कहाँ ? (अर्थात् दोनों नहीं हो सकते) और तुझे कुटिल कलियुग ने बीच में ही बिगाड़ दिया (न स्वारथ का रक्खा न परमारथ का रक्खा) ॥१॥ (कैसे जाना कि कलि ने बीच में ही बिगोया कि) वर्ण और आश्रमों (१) के धर्म (२) पुराण की पुस्तकों में ही पाये जाते हैं उन्हें करता धरता कोई नहीं कोरा भेस ही देख लो (सो वह ऐसा बेप्रयोजन का है कि) जैसा बिना प्राण के शरीर हो ॥ २ ॥ और वेदों में कथित जो (यज्ञ आदि) सब साधन हैं उनको सुनते हैं कि चारों फलों के देनेवाले हैं, पर बिना रामजी के प्रेम के उन्हें ऐसा जानो जैसा बिना पानी के (सूखे) नदी तालाब हों ॥ ३ ॥ और निर्वाण कहिए मोक्ष होने के और भी बहुत से तरह तरह के मार्ग और भाँति भाँति के अनेक साधन हैं, पर हे तुलसी ! तू तो मेरे कहने से रात दिन राम नाम को ही जपा कर (और कुछ मत कर) ॥ ४ ॥

[ १९३ ]

अजहुँ आपने रामके करतब समुझत हित होइ।
कहँ तू कहँ कोसल धनी तोको कहा कहत सब कोइ ॥ १ ॥
रीझि निवाज्यो कबहिं तू कब खीझि दई तोहिं गारि।
दरपन वदन निहारिकै सो विचार मान हिय हारि ॥ २ ॥

(१)—(२)—गूढ़ार्थ कोश में देखो।

बिगरी जनम अनेक की सुधरत लगै न पल आधु।
पाहि कृपानिधि प्रेम सों कहै को न राम कियो साधु ॥ ३ ॥
वालमीकि केवट तथा कपि भील भालु सनमान ।
सुनि सनमुख जो न राम सों तिहिं को उपदेसै ज्ञान ॥ ४ ॥
का सेवा सुग्रीव की का प्रीति रीति निरवाहु ।
जासु बंधु वध्यो व्याध ज्यों सो सुनत सोहात न काहु ॥ ५ ॥
भजन विभीसन को कहा, फल कहा दियो रघुराज ।
राम गरीबनिवाज के बड़ी बाँह बोल की लाज ॥ ६ ॥
जपहि नाम रघुनाथ को चर्चा दूसरी न चालु ।
सुमुख सुखद साहब सुधी समरथ कृपालु नतपालु ॥ ७ ॥
सजल नयन गदगद गिरा गहबर मन पुलक सरीर ।
गावत गुनगन राम के केहिकी न मिटी भवभीर ॥ ८ ॥
प्रभु कृतज्ञ सरवज्ञ हैं परिहरु पाछली गलानि ।
तुलसी तोसों राम सों कछु नइ न जान-पहिचानि ॥ ९ ॥

( अरे तुलसी ! ) अब भी अपने रामचन्द्रजी के करतबों को समझने से तेरा भला हो सकता है । कहाँ तो तू और कहाँ रघुनाथजी । तुझे सब लोग क्या कहते हैं ( अर्थात् जिनकी सेवा को ब्रह्मा आदि देवता चाहते हैं और नहीं मिलती उन राम का तू नीच होकर दास कहाता है ) ॥ १ ॥ ( देख अच्छे काम से स्वामी प्रसन्न होता है और बुरे काम से क्रोधित होकर निकाल देता है सो ) रामजी ने तुझे प्रसन्न होकर कब निहाल किया है और क्रोधित होकर कब गाली दी है तूने तो आपही सुन्दर विचाररूपी दर्पण में मुख देख कर हृदय में हार मान ली है (अर्थात् अपने कर्मों को देख आप ही डर गया है कि मैं शरण योग्य नहीं हूँ ) ॥ २ ॥ उनको अनेक जन्मों की बिगड़ी हुई को सुधारने में आधे (१) पल की भी देर नहीं लगती है । "हे कृपानिधान (२) रक्षा करो, रक्षा करो"

---

(१) सन्मुख होइ जीव मोहिं जबहीं । कोटि जन्म अघ नाशों तबहीं ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना । करौं सद्य तेहि साधु समाना ॥

(२) सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम । अर्थात् जो एक बार भी कहे कि मैं तुम्हारा हूँ उस शरणागत को मैं सब प्राणियों से अभय कर देता हूँ यह मेरा व्रत है ।

यों प्रेम से कहने पर रामजी ने किसको साधु नहीं किया ( अर्थात् जिसने कहा उसी को किया ) ॥ ३ ॥ वाल्मीकि और केवट की कथा ( प्रसिद्ध ही ) है और सुग्रीव, निषाद और जाम्बवन्त का आदर हुआ है इस (कथा) को सुनकर भी जो रामचन्द्रजी के सन्मुख नहीं हुआ उसे कौन ज्ञान का उपदेश कर सकता है ( अर्थात् उसका कल्याण कभी न होगा ) ॥ ४ ॥ सुग्रीव ने क्या सेवा की और उसने प्रीति की क्या रीति निवाही थी ( राज पाकर सीता की सुध लाना भी भूल गया ) कि जिसके भाई को रामजी ने व्याध की तरह ( छिपकर ) मारा कि जो बात सुन कर किसी को नहीं सुहाती ॥ ५ ॥ विभीषण ने क्या भजन किया था और उसे रामजी ने क्या फल दिया ( अर्थात् लङ्का का अचल राज दिया ) । सो ग़रीबनिवाज रामचन्द्रजी को तो बाँह और वचन दिये की बड़ी लाज है ॥ ६ ॥ सो तू रघुनाथजी का ही नाम जप दूसरी चरचा मत चलावे क्योंकि ये स्वामी सुन्दर मुखवाले, सुखदाई, बुद्धिमान्, समर्थ, कृपालु और भक्तों के पालन करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ आँखों में आँसू भर कर, गद्गद् वाणी से, मन में लौलीन और शरीर में पुलकायमान होकर रामजी के गुण गणों के गाने से कहो किसका संसारी भय ( आवागमन ) नहीं मिटा है ॥ ८ ॥ प्रभु ( रघुनाथजी ) उपकार मानने वाले और बाहर भीतर की जाननेवाले हैं सो पिछले पछतावे को छोड़ दे ( कि इतनी आयु तो योंही गई अब क्या करूँ ) अरे तुलसीदास ! तुझ से और रामचन्द्रजी से कुछ नई जान पहचान नहीं है ( अर्थात् परमेश्वर से तो जीव का अनादि सम्बन्ध है ) ॥ ९ ॥

[ १९४ ]

जो अनुराग न रामसनेही सों ।
तो लह्यो लाहु कहा नरदेही सों ॥१॥
जो तनु धरि परिहरि सब सुख भय सुमति राम अनुरागी ।
सो तनु पाइ अघाइ किये अघ अवगुन अधम अभागी ॥२॥
ज्ञान विराग जोग जप तप मख जग मुद मग नहिं थोरे ।
राम प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग जल जलधि हिलोरे ॥३॥
लोक विलोकि पुरान वेद सुनि समुझि बूझि गुरु ज्ञानी ।
प्रीति प्रतीति राम-पद-पंकज सकल सुमंगल खानी ॥४॥

अजहुँ जानि जिय मानि हारि हिय होइ पलक महँ नीको।
सुमिर सनेह सहित हित रामहिं मानु मतो तुलसी को ॥५॥

जो रामचन्द्रजी सरीखे प्रेमी से प्रीति नहीं है तो मनुष्य के शरीर से क्या लाभ हुआ ॥ १ ॥ जिस शरीर को धारण कर सुन्दर बुद्धिवाले ( ज्ञानी ) सब सुख और भय को छोड़ कर रामचन्द्रजी में प्रेम करते हैं उस शरीर को पाकर तूने पेट भर कर पाप किये इसलिए तू बड़ा नीच और अभागी है ॥ २ ॥ ज्ञान, वैराग्य, योग, जप, तप, यज्ञ आदि आनन्द पाने के मार्ग संसार में थोड़े नहीं हैं ( अर्थात् इनके करने से सुख मिल सकता है ), पर श्रीरघुनाथजी के प्रेम बिना ये नेम ऐसे वृथा हैं जैसे मृगतृष्णा के समुद्र में स्नान करना ( अर्थात् जहाँ जल नहीं वहाँ स्नान कैसा ) ॥ ३ ॥ संसार को देख कर, वेद पुराणों को सुन कर, और बड़े बड़े ज्ञानियों से समझ बूझ कर, रामजी के चरण-कमलों में प्रीति और भरोसा कर कि जो सब सुन्दर मङ्गलों की खान हैं ( अर्थात् उनसे सब मङ्गल हो सकते हैं ) ॥ ४ ॥ अब भी मन में समझ और अपने हृदय में हार मान ले ( कि जो हुआ सो हुआ ) तोभी पल भर में तेरा भला होगा। प्रेमसहित हितकारी रामजी का सुमिरन कर और तुलसीदास का यह मत मान ले ॥ ५ ॥

[ १९५ ]

बलि जाउँ हौं राम गुसाईं। कीजिए कृपा आपनी नाईं ॥१॥
परमारथ सुरपुर साधन सब स्वारथ सुखद भलाई।
कलि सकोप लोपी सुचाल निज कठिन कुचाल चलाई ॥२॥
जहँ जहँ चित चितवत हित तहँ नित नव विषाद अधिकाई।
रुचि भावती भभरि भागहि समुहाहिं अमित अनभाई ॥३॥
आधि मगन मन व्याधि विकल तन वचन मलीन झुठाई।
एतेहुँ पर तुम सों तुलसी की सकल सनेह सगाई ॥४॥

हे नाथ रामचन्द्रजी ! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ। तुम अपनी सी ( अर्थात् अपनी ओर देख कर ) कृपा करो ॥ १ ॥ क्योंकि मोक्ष के, स्वर्ग के और ( इस लोक में ) स्वारथ के, सुख देनेवाले और भलाई के ( जप, तप, पूजा आदि ) जितने साधन हैं उन सब की सुन्दर रीतियों का कलियुग ने रोस करके लोप कर दिया और ( झूठ कपट

पाखंड व्यभिचार आदि ) अपनी कुचालें चलाई हैं ॥ २ ॥ जहाँ जहाँ चित्त अपना भला देखता है वहाँ नित्य नये दुःख बढ़ते जाते हैं। और रुचि को अच्छी लगनेवाली ( वस्तुएं ) भड़ भड़ाकर भागती हैं और जो अच्छी नहीं लगतीं हैं वे समुहाहिं कहिए सामने इतनी चली आती हैं कि जिनका ठिकाना नहीं ॥ ३ ॥ मन चिन्ता में डूब रहा है और शरीर ( ज्वर, खाँसी आदि ) रोगों से बेचैन है और झूठ बोलते बोलते वचन मैला हो रहा है। इतना होने पर भी हे प्रभो! तुम से तुलसीदास का ( स्वामि-सेवक का ) नाता और प्रेम पूरा पूरा हो रहा है ( तुम्हें धन्य है ) ॥ ४ ॥

[ १९६ ]

काहे को फिरत मन करत बहु जतन मिटै न दुख विमुख रघुकुल वीर।

कीजै जो कोटि उपाय त्रिविध ताप न जाइ कह्यौ जो भुज उठाइ मुनिवर कीर ॥१॥

सहज टेउँ बिसारि तुहीं धौं देखु विचारि, मिलै न मथत वारि घृत बिनु छीर।

समुझि तजहिं भ्रम भजहिं पद जुगम, सेवत सुगम गुन गहन गंभीर ॥२॥

आगम निगम ग्रंथ रिषि मुनि सुर संत सब ही को एक मत सुनु मतिधीर ॥३॥

तुलसिदास प्रभु बिन प्यास मरै पसु जद्यपि है निकट सुरसरि तीर ॥३॥

अरे मन! तू क्यों बहुत से उपाय करता फिरता है। रघुकुल के वीर रामचन्द्रजी से विमुख (१) होकर दुःख नहीं मिटता। जो करोड़ों उपाय करो तोभी तीन प्रकार के ताप दूर नहीं होते यही श्रेष्ठ मुनि शुकदेवजी ने भुजा उठा कर कहा है ॥ १ ॥ अपने

( १ ) भागवते—घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिताः।
वासुदेवपरा मर्त्यास्ते कृतार्था न संशयः ॥ सरलार्थः।

स्वभाव की टेव को छोड़ कर तू ही इसे समझ देख कि बिना दूध के जल बिलोने से घी नहीं मिलता है। सो समझ कर भ्रम को छोड़ और (रामचन्द्रजी के) दोनों चरणों का भजन कर जो (भगवान्) सेवा से शीघ्र मिलते हैं और (क्षमा, शीलता आदि) गुणों के बड़े गहरे वन हैं ॥२॥ वेदशास्त्र आदि ग्रन्थ और ऋषि, मुनि, देवता और संत सब का एक मत है (अर्थात् यही सिद्धान्त है) सो बुद्धि स्थिर करके सुन। और हे तुलसीदास! यद्यपि गंगाजी का तीर पास है पर बिना स्वामी के (खोले) पशु प्यासा ही मर जाता है। (अर्थात् जैसे गंगाजी के तीर पर रस्सी से बँधा पशु बिना मालिक के खोले पानी नहीं पी सकता है वैसेही वेदशास्त्र-ग्रन्थों को पढ़ा हुआ जीव भी ब्रह्मानन्दरूपी गंगा के किनारे मायारूपी रस्सी से बँधा हुआ बिना रामजी की भक्ति के किये नरकों के दुःख से कैसे मुक्त हो सकता है) ॥ ३ ॥

त्रिविधताप + गूढ़ार्थकोश में देखो। कीर = शुकदेवजी। छीर = दूध। जुगम (युग्म) = दो। गहन = वन। आगम = शास्त्र। निगम = वेद।

[ १९७ ]

नाहिंन चरनरति ताहि ते सहौं बिपति कहत स्त्रुति सकल मुनि मतिधीर।

बसे जौ ससिउछंग सुधा स्वादित कुरंग ताहि क्यों भरम निरखि रविकर नीर ॥१॥

सुनिय नाना पुरान मिटत नहिं अज्ञान पढ़ै न समुझै जिमि खग कीर।

बूझत बिनहिं पास सेमर सुमनआस करत चरत तेइ फल बिनु हीर ॥२॥

कछु न साधन सिद्धि जानौं न निगम विधि नहिं जप तप बस मन न समीर।

तुलसिदास भरोस परम करुनाकोस प्रभु हरि हैं बिषम भव-भीर ॥३॥

मेरी प्रीति ( रामचन्द्रजी के ) चरणों में नहीं है इसीसे दुःख सहता हूँ। यही सब वेद और स्थिर बुद्धिवाले मुनि जन कहते हैं क्योंकि जो हरिण चन्द्रमा की गोद में बस कर अमृत का स्वाद लेता है उसको मृगतृष्णा के जल को देख कर क्यों भ्रम हो सकता है ( अर्थात् नहीं हो सकता वह भ्रम तो जैसे जङ्गली मृग को ही होता है ऐसे ही जो भगवान् के विमुख हैं उनको ही संसारी महा दुःख होते हैं और जो भगवान् के भक्त हैं कि जिनकी दृष्टि में देह इत्यादि संसारी पदार्थ तुच्छ हैं उन्हें दुःख क्यों सतावेगा ) ॥ १ ॥ अनेक पुराण सुनते हैं ( और उन में लिखा है कि संसार झूठा है ) पर अज्ञान नहीं मिटता जैसे सुग्गा पक्षी ( राम राम ) पढ़ता तो है पर समझता नहीं। और वह बिना समझे पाश में बँध जाता है और सेमर के पुष्पों की तो आशा करता है और उसके बिना हीर कहिए गूदे के फलों को खाता है ( भाव यह है जैसे बिना समझ के तोता सेमर के फलों में गूदे के लालच से चोंच मारता है और जब वहाँ रुई निकलती है तब पछताता है और फिर भूल जाता है ऐसे ही पुराण सुन कर भी यह जीव अज्ञान के कारण संसार के बन्धन में पड़ कर अच्छे फल की आशा कर विषय भोगता है) ॥२॥ न तो मैं ( जप, तप आदि ) साधनों की कुछ सिद्धि जानता हूँ, न वेद की विधि जानता हूँ, न मन को वश में कर जप और तप (करना जानता हूँ) और न स्वास रोक सकता हूँ ( अर्थात् समाधि भी नहीं लगा सकता ) इस तुलसीदास को तो दया के भारी ख़ज़ाने ऐसे भगवान् का ही भरोसा है। वे ही संसार के कठिन क्लेश (कहिए आवागमन ) से छुड़ावेंगे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—स्रुति = वेद । उछंग = गोद । कुरंग = हरिण । रविकर = सूर्यकिरण, मृगतृष्णा। कीर = तोता । समीर = हवा, स्वांस । कोस = ख़ज़ाना । विषम = कठिन । भीर = भय ।

[ १९८ ]

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु करम वचन अरु हीते ॥१॥
सहसबाहु दसवदन आदिनृप बचे न काल बली ते ।
हम हम करि धन धाम सँवारे अंत चले उठि रीते ॥२॥
सुत वनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबही ते ।
अंतहुँ तोहि तजैंगे पामर तू न तजै अबही ते ॥३॥

अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न कामअगनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घी ते ॥४॥

हे मन! तू अवसर बीत जाने पर पछतावेगा। सो तू दुर्लभ (मनुष्य) देह को पाकर कर्म, वचन और मन से भगवान् के चरणों का भजन कर॥ १॥ सहस्राबाहु और रावण आदि सरीखे राजा भी बली काल से नहीं बचे (अर्थात् उन्हें भी काल खा गया कि) जिन्होंने हम हम करके (अर्थात् हम यों और हम यों हमारी बराबर कौन है यों कह कर) धन और महल सँवार सँवार कर धरे थे और अन्त में खाली उठ कर चले गये (स्त्री, पुत्र, धन, धाम का संग जाना तो दूर रहा देह ने भी साथ नहीं दिया)॥२॥ पुत्र, स्त्री आदि (सब) अपने मतलब के लिए प्यार करते हैं यह जान कर तू इन सब से प्रीति मत कर। अरे नीच! (ये सब तुझे) अन्त में भी तो छोड़ देंगे (कोई तेरा साथी न होगा) सो तू अभी से ही इन्हें क्यों नहीं छोड़ देता॥ ३॥ अब तो तू अपने स्वामी (रघुनाथजी) से प्रीति कर और हे मूर्ख! जाग (अर्थात् संसार को छोड़। जो कहे कि पहले संसार का भोग भोग लूँ फिर छोड़ कर भजन करूँगा तहाँ कहते हैं कि) अपने मन से दुराशा (संसार के विषय की इच्छा) को तो छोड़ ही दे। क्योंकि हे तुलसी! कामरूपी अग्नि कहीं विषयभोगरूपी बहुत से (१) घी से नहीं बुझती है (भाव—उससे तो और भभकती है इसलिए पहले से ही भजन कर)॥ ४॥

शब्दार्थ—ही=हृदय। दसवदन=दश हैं वदन कहिए मुख जिसके अर्थात् रावण। बनिता=स्त्री।

[ १९९ ]

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो।
तजि हरिचरन सरोज सुधारस रविकर जल लय लायो ॥१॥
त्रिजग देव नर असुर अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो।
गृह बनिता सुत बंधु भये बहु मातु पिता जिन्ह जायो ॥२॥
जाते निरय निकाय निरंतर सो इन्ह तोहिं सिखायो।
तुव हित होइ कटहिं भवबंधन सो मगु तोहिं न बतायो ॥३॥
अजहुँ विषय कहँ जतन करत जद्यपि बहुविधि डहँकायो।

(१) मनु— न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।

पावक काम भोग घृत ते सठ कैसे परत बुझायो ॥४॥
विषयहीन दुख मिले विपति अति सुख सपनेहुँ नहिं पायो।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यौं धन दुखप्रद स्रुति गायो ॥५॥
छिन छिन छीण होत जीवन दुरलभ तन वृथा गँवायो।
तुलसिदास हरि भजहि आस तजि काल उरग जग खायो॥ ६॥

अरे मूर्ख मन! तू क्यों भागा भागा फिरता है। भगवान् के चरण-कमलों के अमृत-रस को छोड़ कर (संसाररूपी) मृगतृष्णा के जल में लौलीन हुआ है॥ १॥ तिर्यक्, (अर्थात् पशु, पक्षी, सर्प आदि) देवता, मनुष्य, राक्षस और संसार में जो और हैं उन सबकी योनियों में तू भ्रम आया। सो (उन योनियों में) तेरे घर, स्त्री, पुत्र, भाई और माता, पिता कि जिन्होंने तुझे उत्पन्न किया बहुत से हो चुके॥२॥ और उन्होंने तुझे वही सिखाया कि जिससे सदा बहुत से नरक भोगने पड़ें। पर जिसमें तेरा भला हो और तेरा संसार-बन्धन कटे सो मार्ग तुझे नहीं बताया॥ ३॥ और यद्यपि तू बहुत भाँति ठगाया जा चुका तब भी अब तक विषय के लिए ही यत्न करता है (भाव—एक बार आदमी धोखे में आ जाता है तो फिर धोखे में नहीं आता और तू हज़ारों बार आकर भी उसी धोखे की टट्टी संसार में गिरना चाहता है)। अरे मूर्ख! विषयरूपी अग्नि भोग-रूपी घी के डालने से कैसे बुझ जायगी (अर्थात् नहीं बुझेगी, इसलिए विषय को छोड़)॥ ४॥ क्योंकि (जिस जन्म में तू धन होने से विषय-सुख में लगा उससे तूने संसार का दुःख कमाया और जिस जन्म में धन न होने से) विषय-भोग नहीं किया तब भी (वासना पूरी न होने के कारण) तुझे दुःख मिले और तेरे ऊपर बड़ी विपत्ति पड़ी और स्वपने में भी तूने सुख नहीं पाया। इसलिए वेदों ने (मिलने को और न मिलने को) दोनों भाँति से ही इस धन को प्रेत की आग के समान दुखदाई कहा है। (जैसे प्रेत की आग दूर से दीख पड़ती है उसके पास आने पर कुछ नहीं दीखे तो भी दुःख हुआ और जो होय तो देह जलने से दुःख होगा)॥ ५॥ तेरा जीवन छिन छिन में घटता जाता है और तूने इस दुर्लभ शरीर को वृथा खो दिया। सो हे तुलसीदास! तू आशा को छोड़ भगवान् का भजन कर क्योंकि कालरूपी सर्प संसार को खाये जा रहा है (तुझे भी न जाने कब खा जाय)॥ ६॥

शब्दार्थ—निरय = नरक। निकाय = समूह, बहुत से। निरंतर = सदा। उरग = सर्प। पावक = अग्नि।

[ २०० ]

तांबे सों पीठि मनहुँ तनु पायो ।
नीच मीच जानत न सीसपर ईस निपट बिसरायो ॥१॥
अवनि रवनि धन धाम सुहृद सुत को न इन्हहिं अपनायो ।
काके भये गए सँग काके सब सनेह छल छायो ॥२॥
जिन्ह भूपनि जग जीति बाँधि जम अपनी बाँह बसायो ।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हों तू गिनती कब आयो ॥३॥
देखु बिचार सारु का साँचो कहा निगम निज गायो ।
भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेस मन लायो ॥

हे जीव! (इस पानी भरी पखाल को तूने ऐसा समझ रक्खा है) मानो तूने ताँबे से मढ़ा हुआ शरीर पाया है (भाव—न यह गलेगा, न सड़ेगा योंही अमर रहेगा) हे नीच! तू यह नहीं जानता कि मैात तेरे शिर पर खड़ी है। तू ईश्वर को बिलकुल ही भूल गया॥ १॥ पृथ्वी, स्त्री, धन, महल, मित्र और बेटे इनको किसने अपना नहीं माना, पर ये किसके हुए और किसके साथ गये। सबके स्नेह में छल भर रहा है (अर्थात् सबका स्नेह झूँठा देखने मात्र का है)॥ २॥ जिन (रावण, हिरनाकुस आदि) राजाओं ने संसार को जीत कर और यम को बाँध कर अपनी बाँह के नीचे बसाया था, उनका भी काल कलेऊ कर गया सो तू किस गिनती में है॥ ३॥ तू विचार कर देख क्या तो सार है क्या सच है और वेद ने आप क्या कहा है (भाव—ईश्वर ही सार है राम ही सत्य है) हे तुलसी! तू समझ कर अब भी उसे नहीं भजता है कि जिसका महादेवजी (१) ने मन में ध्यान किया है॥ ४॥

शब्दार्थ—पीठि=मढ़ा हुआ। निपट=बिलकुल। अवनि=पृथ्वी। रवनि (रमणी)=स्त्री। निगम=वेद।

[ २०१ ]

लाभ कहा मानुष तनु पायो ।
काय बचन मन सुपनेहुँ कबहुँक घटत न काज परायो ॥१॥

(१) शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं—अहं जपामि देवेशि रामनामाक्षरद्वयम्। श्रीसीतायाः स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदि स्थले। सरलार्थः।

जो सुख सुरपुर नरक गेह वन आवत बिनहिं बुलायो।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन समुझत नहिं समुझायो ॥२॥
परदारा परद्रोह मोहवस कियो मूढ़ मन भायो।
गर्भवास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसरायो ॥३॥
भय निद्रा मैथुन अहार सबके समान जग जायो।
सुरदुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गँवायो ॥४॥
गई न निज परबुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम लय लायो।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछितायो ॥५॥

(अरे जीव) मनुष्य का शरीर पाने से क्या लाभ हुआ। तू शरीर, वचन और मन से कभी स्वपने में भी पराया उपकार नहीं करता है॥ १॥ जो (इन्द्रियों का विषय) सुख स्वर्ग में, नरक में, घर में और वन में, बिना बुलाये आपही आ जाता है उस (इन्द्रियों के) सुख के लिए हे मन! तू बहुत से उपाय करता है और समझाने से भी नहीं समझता है (कि विषयों में लगने से जीव का नाश हो जाता है)॥ २॥ हे मूर्ख! तूने मोह के वश (अर्थात् आत्मस्वरूप को भूल कर देहाभिमान से) पराई स्त्रियों से (प्रेम) और दूसरों से मनमाना वैर किया और (पहले जन्म में जो तूने अपनी माता के) गर्भ में रहने से बहुत से दुःख, पीड़ा और कठिन विपत्ति को (भोगा था उनको) तू भूल गया (भाव—फिर उसी मार्ग में चलता है)॥ ३॥ भय, नींद, मैथुन और भोजन ये बातें संसार में सबकी एकसी पैदा होती हैं। पर जो देवताओं को भी दुर्लभ ऐसा (मनुष्य) शरीर धर के तू मद और अभिमान को छोड़ कर भगवान् का भजन नहीं करता है॥ ४॥ जिसकी अपनी, पराई बुद्धि नहीं गई है और जो (अन्तःकरण से) शुद्ध होकर रामजी में लौ नहीं लगाता है, उसको हे तुलसीदास! इस अवसर के बीतने पर (अर्थात् मनुष्य-देह पूरी होने पर) पछताने के सिवाय फिर क्या धरा है॥ ५॥

शब्दार्थ—घटत = करता है। दारा = स्त्री। जातना = पीड़ा। तीव्र = कठिन।

[ २०२ ]

काज कहा नरतनु धरि सार्‍यो।
पर उपकार सार स्रुति को सो तो धोखेहु में न बिचार्‍यो ॥१॥

द्वैतमूल भय सूल सोगफल भवतरु टरै न टास्यौ।
रामभजन तिच्छन कुठार लै सो नहिं काटि निवास्यौ ॥२॥
संसय सिंधु नाम बोहित भजि निज आतमा न तास्यौ।
जनम अनेक विवेकहीन, बहु जोनि भ्रमत नहिं हास्यौ ॥३॥
देखि आनकी सहज संपदा द्वेष अनल मन जास्यौ।
सम दम दया दीन पालन, सीतल हिय हरि न सँभास्यौ ॥४॥
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति मैं मन क्रम वचन विसास्यौ।
तुलसिदास एहि आस सरन राखिहि जेहि गीध उधास्यौ ॥५॥

( अरे जीव ! ) तूने मनुष्य का शरीर धर कर क्या काम बनाया। औरों के लिये उपकार करना वेदों का निचोड़ है उसे तूने धोखे में भी नहीं विचारा ॥ १ ॥ द्वैतभाव ( अर्थात् जीवात्मा परमात्मा में भेद मानना ) जिसकी जड़ है, भय काँटे हैं और शोक जिसके फल हैं ऐसा संसाररूप वृक्ष है कि जो हटाने से भी नहीं हटता। उसको तूने रामजी का भजनरूपी तेज़ कुल्हाड़ा लेकर उससे काट कर दूर नहीं किया ॥ २ ॥ और ( झूँठे संसार को सच्चा जानना इस) संशयरूपी समुद्र से राम-नामरूपी वोहित नाम नाव का सेवन करके अपनी आत्मा को नहीं तार दिया। और अनेक जन्म में तू अज्ञानी होकर बहुत सी योनियों में घूमता घूमता नहीं हारा ॥३॥ और दूसरों की सहज सम्पत (बढ़ती) देख कर तूने अपने मन को द्वेषरूपी अग्नि में जला दिया। शम, दम, दया और दीनों का पालन इनसे अपने हृदय को शीतल करके भगवान् को याद नहीं किया ॥ ४ ॥ स्वामी, गुरु, पिता और सखा ( इन सबके भाव ) को तू मन, कर्म और वचन से रामचन्द्रजी में रखना भूल गया ( अर्थात् रामजी को ही तू स्वामी, गुरु आदि मानता )। तो भी हे तुलसीदास ! यह आशा है कि जिन्होंने गिद्ध का उद्धार किया है वही तुझे शरण में रक्खेंगे ॥ ५ ॥

[ २०३ ]

श्रीहरिगुरुपद कमल भजु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि सुखनिधान भगवान ॥१॥

परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूरि।
जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरिपूरि ॥२॥
दुइज द्वैत मति छाँड़ि चरहि महि मंडल धीर।
विगत मोह माया मद हृदय सदा रघुवीर ॥३॥
तीज त्रिगुन पर परमपुरुष श्रीरमन मुकुंद।
गुण सुभाउ त्यागे विनु दुरलभ परमानंद ॥४॥
चौथि चारि परिहरै बुद्धि मन चित अहँकार।
विमल विचार परमपद निज सुख सहज उदार ॥५॥
पाँचइ पाँच परस रस सब्द गंध अरु रूप।
इन्ह कर कहा न कीजिये बहुरि परब भवकूप ॥६॥
छठि षडवरग करिय जय जनकसुतापति लागि।
रघुपति कृपा वारि बिनु नहिं बुताइ लोभागि ॥७॥
सातैं सप्तधातु निरमित तनु करिय विचार।
तेहि तनु केर एक फल कीजिये पर उपकार ॥८॥
आठइँ आठ प्रकृति पर निरविकार श्रीराम।
केहि प्रकार पाइय हरि हृदय बसहिं बहुकाम ॥९॥
नवमी नवद्वारपुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह।
ते नर जोनि अनेक भ्रमत दारुन दुख लीन्ह ॥१०॥
दसइँ दसहु कर संजम जो न करिय जिय जानि।
साधन वृथा होइँ सब मिलहिं न सारँगपानि ॥११॥
एकादसी एक मन वसकै सेवहु जाइ।
सोइ व्रत कर फल लहै आवागमन नसाइ ॥१२॥
द्वादसि दान देहु अस अभय होइ त्रैलोक।
पर हित निरत सो पारनहु बहुरि न व्यापइ सोक ॥१३॥

तेरसि तीन अवस्था तजहु भजहु भगवंत ।
मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनंत ॥१४॥
चौदसि चौदह भुवन चर अचर रूप गोपाल ।
भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिं जगजाल ॥१५॥
पूनो प्रेम भक्ति रस हरि रस जानहिं दास ।
सम सीतल गत मान ज्ञानरत विषय उदास ॥१६॥
त्रिविध सूल होलिय जारिय खेलिय अस फागु ।
जौं जिय चहसि परमसुख तौ यहि मारग लागु ॥१७॥
स्रुति पुरान बुध संमत चाँचरि चरित मुरारि ।
करि विचार भवतरिय परिय न कबहुँ जमधारि ॥१८॥
संसय समन दमन दुख सुखनिधान हरि एक ।
साधु कृपा बिनु मिलहिं न करिय उपाइ अनेक ॥१९॥
भवसागर कहँ नाउ सुद्ध संतन के चरन ।
तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन ॥२०॥

अरे मन ! तू अभिमान को छोड़ कर भगवत्रूपी गुरु के चरण-कमलों का भजन कर, जिनकी सेवा करने से सुख के स्थान ( अर्थात् देनेवाले ) विष्णु भगवान् मिलते हैं ॥ १ ॥ जैसे परिवा ( सबसे पहली तिथि है ) ऐसे ही रामजी से मिलने का पहला उपाय प्रेम है; बिना प्रेम के रामजी का मिलना दूर है, भलेही वे पास अपने हृदय में ही कलासहित पूर्ण (चन्द्रमा के समान) निवास करते हैं ॥२॥ (पड़वा के पीछे दूसरी तिथि) दूज है (अर्थात् दूसरी बात राम-मिलन की क्या है कि) द्वैत को छोड़ कर (अर्थात् जीवात्मा परमात्मा में भेद न समझ कर ) धीर ( ज्ञानी ) मनुष्य पृथ्वी-मण्डल में विचरता फिरे, और मोह, माया और अहङ्कार से रहित होकर अपने हृदय में सदा रामचन्द्रजी का ( स्मरण ) करे ॥ ३ ॥ तीज तिथि ( अर्थात् तीसरी बात राम-मिलन की ) यह है कि परम पुरुष लक्ष्मी के पति मुकुन्द भगवान् तीनों गुणों से परे हैं । इसलिए गुणों ( १ ) के स्वभाव को

---

यथा गीतायां—सत्वरजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः । निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् । जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

त्याग दे क्योंकि बिना छोड़े परमानन्दस्वरूप ( परमेश्वर ) का पाना कठिन है ॥ ४ चौथ तिथि ( अर्थात् चौथी बात राम-मिलन की ) यह है कि बुद्धि, मन, चित्त और अहङ्कार इन चारों को ( चौथ के चन्द्रमा की तरह ) त्याग दे। फिर निर्मल ज्ञान ( अर्थात् आत्म-ज्ञान ) से मोक्ष और अपने को वह ( ब्रह्मानन्द ) सुख होगा कि जो स्वभाव से ही बड़ा है ॥ ५ ॥ पंचमी तिथि ( अर्थात् पाँचवीं बात राम-मिलन की ) यह है कि रूप, रस, शब्द, गन्ध और स्पर्श ये पाँच हैं। इनका कहा न करना चाहिए। नहीं तो फिर संसाररूपी कुएँ में पड़ोगे ( भाव—जो इन्द्रियों को उनके रस आदि विषयों में लगाओगे तो आवा-गमन से नहीं छूटोगे ) ॥ ६ ॥ छठी तिथि ( अर्थात् छठी बात राम-मिलन की ) यह है कि जानकीपति ( रामचन्द्र के भजन ) में लग कर षड्वर्ग ( काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ) को जीतना चाहिए। क्योंकि रामजी की कृपारूपी जल के बिना लोभ-रूपी आग नहीं बुझती है ( भाव—लोभ से ही काम, क्रोध आदि होते हैं और रामजी की कृपा से लोभ का नाश होने से सब जाते रहेंगे ) ॥ ७ ॥ सत्तमी तिथि ( अर्थात् सातवीं बात राम-मिलन की ) क्या है कि, विचार देखो यह शरीर ( हाड़, चाम, लोहू, मांस, मज्जा, मेद और वीर्य ) सात धातुओं से बना है। सो इस शरीर का एक यही फल है कि दूसरों का उपकार करे ॥ ८ ॥ अष्टमी तिथि ( अर्थात् आठवीं बात राम-मिलन की ) यह है कि श्रीरामजी ( पंचभूत, मन, बुद्धि और अहङ्कार इन ) आठों प्रकृतियों से अलग हैं और उनमें ( उन प्रकृतियों का कोई ) विकार नहीं है। ( परन्तु जीव में ये सब प्रकृतियाँ हैं ) सो जब हृदय में तो बहुत सा काम (विषय) भरा पड़ा है तब भगवान् को किस प्रकार पावें (भाव—शुद्ध हृदय हो तो परमेश्वर मिले ) ॥९॥ नवीं तिथि (अर्थात् नवीं बात राममिलन की ) यह है कि इस नौ द्वार (१) वाले नगर में बस कर जिन्होंने अपना भला नहीं किया, वे मनुष्य अनेक योनि में भ्रमते फिरेंगे और अपने को कठिन दुःख देंगे ॥ १० ॥ दशवीं तिथि ( अर्थात् दशवीं बात राम-मिलन की ) यह है कि जो अपने मन में समझ कर भी दश ( २ ) ( इन्द्रियों का ) संयम नहीं करेगा, उसके (समाधि, धारणा और ध्यान) सब संयम वृथा हो जायँगे और उसे हाथ में धनुष लिये ( भगवान् ) नहीं मिलेंगे ॥११॥ एकादशी (अर्थात् ग्यारहवीं बात राम-मिलन की ) यह है कि (दशों इन्द्रियों का स्वामी ) एक मन है उसे अपने वश में करके सेवा करै। उसीसे ( संसार में विषय त्यागरूपी) व्रत के करने का फल पाता है और संसार से उसका आवागमन दूर हो जाता है ॥ १२ ॥ द्वादशी तिथि ( अर्थात् बारहवीं बात राम-

(१)—(२) गूढ़ार्थ कोश में देखो।

मिलन की ) यह है कि ऐसा दान दे कि जिससे तीनों लोकों में निडर हो जाय। और दूसरों का भला करने में लगा रहे यही ( उस एकादशी के व्रत करने का ) पारण है। फिर शोक नहीं व्यापेगा (अर्थात् स्त्री पुत्रादि के मरने का दुःख उसे नहीं होगा ) ॥ १३ ॥ तेरस तिथि (अर्थात् तेरहवीं बात राम-मिलन की ) यह है कि (जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति) तीनों अवस्थाओं को छोड़ कर भगवान् का भजन करे कि जो भगवान् मन, क्रम और वचन से परे और सब में व्यापक हैं और व्याप्य अर्थात् स्वयं ब्रह्माण्डरूप हैं और उनका अंत नहीं है ( अर्थात् किसी ने उनका पार नहीं पाया ) ॥ १४ ॥ चौदस तिथि ( अर्थात् चौदहवीं बात राम-भजन की ) यह है कि चौदहों लोक भगवान् का स्थिररूप है (अर्थात् वे सब चर-अचर में अंतर्यामी रूप से व्याप्त हैं) परन्तु भेद ( अर्थात् जीव में द्वैतबुद्धि ) के दूर हुए बिना रामचन्द्रजी इस बड़े संसार के ( मोह, ममता आदि ) जाल को दूर नहीं करते ( इसलिए भगवान् को अभेद बुद्धि से भजना चाहिए ) ॥ १५ ॥ पूनों तिथि ( अर्थात् १५ वीं बात राम-मिलन की ) यह है कि प्रेम और भक्ति के रस से भक्तजन भगवान् के रस को जानते हैं और फिर वे सब को समान समझने वाले, शांत और अहङ्कार से रहित हो जाते हैं और उनको ज्ञान प्यारा लगता है और ( संसार के स्त्री, भूषण, वसन आदि ) विषयों से वैरागी हो जाते हैं ( भाव—विषय उनके पास नहीं फटकते ) ॥ १६ ॥ ( यों तो पूनों हर मास में होती है परन्तु यहाँ भक्ति को फागुन की पूनों मान कर ) तीन प्रकार के ( दैहिक, भौतिक और दैविक ) क्लेशों को (वैरागरूपी) होली में जला कर अब फाग खेले । ( भाव यह है कि जब जीव विषयों को छोड़ देगा तो पाप न होंगे, और पाप न होने से तीन प्रकार के क्लेश स्वयं भस्म हो जाएँगे और जीव बेखटके हो जायगा ) सो जो तू अपने मन में परमानन्द सुख चाहता है तो इस मार्ग से लग ( अर्थात् यह काम कर ) ॥ १७ ॥ वेद पुराण और ज्ञानियों की यही सम्मति है कि भगवान् के चरित्र ही होली में गाने के गीत हैं ( इन का ही गान सुनना चाहिए ) ऐसा विचार कर संसाररूपी समुद्र से तरजाना चाहिये और यम की सेना के समान उस संसार की कठिन धार अर्थात् आवागमन में कभी नहीं पड़ना चाहिये ॥ १८ ॥ संशय ( अर्थात् संसार की सचाई ) के नाशक, ( रोग, वियोग, हानि आदि ) दुःख दूर करने वाले और सुख के स्थान ऐसे एक भगवान ही हैं परन्तु वे सन्तों की दया बिना ( कर्म, योग, ज्ञान, बिराग आदि ) अनेक उपाय करने पर भी नहीं मिलते हैं ॥ १९ ॥ इसलिए संसाररूपी समुद्र से तरने के लिए सन्तों के पवित्र चरण ही नावरूप हैं, और हे तुलसीदास ! ( उनकी कृपा से ) दुःख के दूर करनेवाले रामचन्द्रजी बिना परिश्रम के मिल जाते हैं ॥ २० ॥

सन्धिविभाग—लोभ + आगि ।
शब्दार्थ —बुताई = बुझावे ।

[ २०४ ]

राग कान्हरा ।

जो मन लागै रामचरन अस ।
देह गेह सुत वित कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किये जस ॥१॥
द्वन्द्व रहित गत मान ज्ञान रत विषय विरत खटाइ नाना कस ।
सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होइ वस ॥
सर्व भूतहित निर्व्यलीकचित भक्ति प्रेम दृढ़ नेम एकरस ।
तुलसिदास जह होइ तबै जब द्रवै ईस जेहि हत्यो सीसदस ॥३॥

जो रामचन्द्रजी के चरणों में ऐसा मन लगे कि जैसा बिना उपाय किये शरीर, घर, पुत्र, धन और स्त्री में मगन रहता है ॥ १ ॥ तो मनुष्य द्वन्द्वभाव ( अर्थात् गरमी, सरदी, दुख, सुख ) रहित हो जाता है, उसका अभिमान जाता रहता है और उसकी प्रीति ज्ञान में हो जाती है और वह ( संसार के ) विषयों से ऐसे अलग हो जाता है कि जैसे कस के पात्रों में धरी अनेक खट्टी वस्तुओं से ( मन फिर जाता है ) । फिर सुख के स्थान, सुन्दरचतुर ऐसे कोशलपति ( रामचन्द्रजी ) कहो क्यों नहीं प्रसन्न होकर वश में हो जायँगे ॥ २ ॥ ( वह मनुष्य ) सब जीवों का भला करने लगता है, उसका चित्त शुद्ध हो जाता है और फिर उसमें ( भगवान् की ) भक्ति, प्रेम और नेम ये पक्के और एक से हो जाते हैं। पर हे तुलसीदास ! यह बात तबही हो सकती है कि जब वह ईश्वर प्रसन्न हो कि जिसने रावण को मारा है ( अथवा यह दशा तब हो जाती है कि जब दशों इन्द्रियों का राजा मन मारा जाता है ) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—कलत्र = स्त्री कस = एक तरह की धातु--उसके पात्र में खट्टी वस्तु धरने से पितला जाती है । निर्व्यलीक = (व्यलीक = पीड़ा, दुःख ) और जिसमें ये न हों वह निर्व्यलीक अर्थात् शांत या शुद्ध । द्रवै = कृपा करै । दससीस = दश हैं शिर जिसके अर्थात् रावण ।

[ २०५ ]

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतरु ।
तौ तजि विषय विकार सार भजु अजहूँ जो मैं कहौं सोई करु ॥

सम संतोष विचार विमल अति सतसंगति ए चारि दृढ़ करि धरु ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निःसेष करि परिहरु ॥२॥
स्रवन कथा मुख नाम हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरु ।
नैननि निरखि कृपा समुद्र हरि अग जग रूप भूप सीतावरु ॥३॥
इहै भक्ति वैराग ज्ञान यह हरितोषन यह सुभ व्रत आचरु ।
तुलसिदास सिवमत मारग यहि चलत सदा सुपनेहुँ नाहिंन डरु ॥

हे मन, जो तू भगवान्‌रूपी कल्पवृक्ष को भजा चाहता है तो विषय-वासना को छोड़ कर साररूप ( भगवान ) का भजन कर और अब भी जो मैं कहता हूँ उसे कर ॥ १ ॥ और समता, सन्तोष, अत्यन्त निर्मल विचार और सत्संग इन चारों को पक्का करके धारण कर ले । ( इनसे क्या होगा कि समता से मन की विषमता जाती रहेगी; सन्तोष से मन की चाह न रहेगी; निर्मल विचार से बुद्धि शुद्ध होगी और सत्संग से अहंकार जाता रहेगा ) और (इनके दृढ़ रखने के लिए ) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, राग और द्वेष इन सब को बिलकुल छोड़ दे ॥ २॥ ( फिर तू राम-प्राप्ति के लिए ) कानों से (भगवान् की) कथा सुन, मुख से ( भगवान् का ) नाम रट, हृदय में भगवान् ( का ध्यान धर ) और माथे से ( भगवान् को ) नमस्कार कर । हाथों से ( भगवान् की ) सेवा कर और उनके पीछे पीछे चल ( अर्थात् उनकी आज्ञा मान ) । और आँखों से दया के समुद्र ऐसे भगवान् का दर्शन कर जो चर और अचर रूप ( सब संसार ) के राजा हैं और जानकीजी के पति हैं ॥ ३ ॥ यही भक्ति है, यही वैराग है, यही ज्ञान है और यही भगवान् को प्रसन्न करना है । इस शुभ व्रत का तू साधन कर । हे तुलसीदास ! शिवजी का भी यही मत है इस मार्ग में सदा चलने से सुपने में भी डर नहीं रहता ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—निःसेष = बिलकुल । स्रवन = कान । अग = जो न चले । जग = जो चले । वर = पति । आचरु = कर ।

[ २०६ ]

नाहिं न और कोऊ सरन लायक दूजो श्रीरघुपति सम विपति निवारन ।
काको सहज सुभाउ सेवक वस काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ॥

जन गुन अलप गनत सुमेरु करि औगुन कोटि विलोकि विसारन।
परम कृपाल भगति चिंतामनि विरद पुनीत पतितजनतारन ॥२॥
सुमिरत सुलभ दास दुख सुनि हरि चलत तुरत पटपीत सम्हारन।
साखि पुरान निगम आगम सब जानत द्रुपदसुता अरु वारन ॥३॥
जाको जस गावत कवि कोविद जिन्हके लोभ मोह मदमारन।
तुलसिदास तजि आस सकल भजु कोसलपति मुनिवधू उधारन ॥४

(इस संसार में) शरण के लायक़ और विपत्ति को दूर करने वाला श्रीरामचन्द्रजी के सिवा और कोई दूसरा नहीं है। और ऐसा किसका सहज स्वभाव है कि जो सेवक के वश हो और किसकी भक्तों पर अकारण प्रीति है॥ १॥ (पर भगवान् ऐसे हैं कि) दासों के थोड़े से भी गुणों को सुमेरु पर्वत के बराबर गिनते हैं और करोड़ों औगुनों को देख कर भी भूल जाते हैं। बड़े दयावान् हैं और भक्तों के लिए चिन्तामणि के समान हैं। पवित्र करने का जिनका बाना है और जो पापी जीवों का उद्धार करने वाले हैं॥ २॥ भगवान् याद करते ही सहज में मिलने वाले हैं और दास के दुःख को सुनते ही वे तुरन्त अपने पीताम्बर को सँभाल कर चलते हैं (अर्थात् भक्त का दुःख दूर करने के लिए पीताम्बर पहर तुरन्त जाने को तैयार हो जाते हैं) इस बात के गवाही सब वेद, पुराण और शास्त्र हैं और द्रौपदी तथा गजेन्द्र भी इसे जानते हैं॥ ३॥ जिनके यश को (वाल्मीकि आदि) कवीश्वर और (शुकदेवजी आदि) ज्ञानी गाते हैं और जिनके (मन में) लोभ, मोह, मद और काम नहीं है। हे तुलसीदास! सब आशाओं को छोड़ कर उन कोशलपति (रामजी) को भज कि जिन्होंने मुनिवधू (अहिल्या) को तारा है॥ ४॥

शब्दार्थ—चिन्तामनि = एक मणि जो मन माँगा देती है। आगम = शास्त्र। वारन = हाथी। कोविद = पण्डित। मार = काम।

[ २०७ ]

भजिवे लायक सुखदायक रघुनायक सरिस सरन प्रद दूजा नाहिं न।
आनँदभवन दुख दमन सोकसमन रमारमन गुन गनत सिराहिं न॥
आरत अधम कुजाति कुटिल खल पतित सभीत कहूँ जे समाहिं न।

सुमिरत नाम बिबसहु बार एक पावत सो पद जहँ सुर जाहिं न ॥
जाके पदकमल लुब्ध मुनि मधुकर बिरति जे परम सुगतिहु लुभाहिं न।
तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस कारुनीक जो अनाथहि दाहिन ॥ ३ ॥

(इस संसार में) भजन करने के लायक़, सुख देनेवाला और शरण देनेवाला रामचन्द्रजी के समान दूसरा नहीं है। वे आनन्द के मन्दिर, दुःख के दूर करने वाले, शोक के नाश करने वाले और लक्ष्मी के पति हैं जिनके गुण गिनते गिनते पूरे नहीं होते हैं ॥ १ ॥ दुखिया (सुग्रीव आदि) नीच (जटायु) बुरी जाति (शवरी) कुटिल (बानर) दुष्ट (राक्षस) पतित (यवन) जो डर के मारे कहीं नहीं समा सकते (अर्थात् बच सकते) थे वे जिन भगवान् के नाम को भूले भटके एक बार (१) याद करने से ही उस पदवी को पहुँच गये कि जहाँ देवता भी नहीं पहुँचते हैं ॥ २ ॥ जिनके चरण-कमलों में वे मुनिरूपी भौंरे लुभाये रहते हैं कि जो वैरागी हैं और जिनको परम सुन्दर गति जो मोक्ष है उसका भी लोभ नहीं है। हे मूर्ख तुलसीदास! तू उनका भजन क्यों नहीं करता है जो दया की मूर्ति हैं और अनाथों के दायें (अर्थात् उन पर कृपालु) होते हैं ॥ ३ ॥

[ २०८ ]

राग कल्याण।

नाथ सौं कौन बिनती कहि सुनावौं।
त्रिबिध अनगनित अवलोकि अघ आपने सरन संमुख होत सकुचि सिरनावौं ॥१॥
बिरचि हरिभक्त को वेष वर टाटिका कपटदल हरित पल्लवनि छावौं।

---

(१) सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम्। शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥

नाम लगि लाइ लासा ललित वचन कहि व्याध ज्यों विषय विहँगनि बझावौं ॥२॥
कुटिल सत कोटि मेरे रोम पर वारिएहि साधु गनतीमो पहि-लहिं गनावौं।
परमबर्बर खर्ब गर्व पर्वत चढ्यो अज्ञ सर्वज्ञ जन मनि जनावौं ॥३॥
साँच किधौं झूठ मोको कहत कोउ कोउ राम रावरो होहुँ तुम्हरोइ कहावौं।
विरद की लाज करि दासतुलसीहि देव लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावौं ॥४॥

हे नाथ! तुम्हें कौन भाँति विनती कह कर सुनाऊँ। अपने (मन, कर्म और वचन से) तीन प्रकार के अनगिनती पाप देख कर तुम्हारी शरण और सामने आने में शरम के मारे अपना सिर नीचे को कर लेता हूँ॥ १॥ (सामने आने में क्यों शरमाता हूँ कि कण्ठ में तुलसी की माला पहरे, रामफटाका तिलक छापा लगाये, पीताम्बर पहरे और रामायण हाथ में लिये इत्यादि) हरिभक्तों का वेष बनाये रहना सो ही तो हुई सुन्दर टट्टी और (मुँह से राम राम कहता हूँ और भीतर काम, क्रोध आदि भरा है ऐसे) कपटों के दल ही मानों हरे हरे पत्ते हैं उनसे उस टट्टी को छावता हूँ। आपका नाम (अर्थात् लोगों के सामने नाम का माहात्म्य कहना) मानों लग्गी है और (उसके साथ ही दृष्टान्त देकर) जो सुन्दर सुन्दर वचन कहता हूँ सोई लासा है उसे लगा कर व्याध की तरह (अर्थात् जैसे व्याधा पक्षी पकड़ने के लिए बाँस की टट्टी बना कर उस पर हरे हरे पत्ते छा कर उसकी ओट से लग्गी लासा लगा कर पक्षी को पकड़ता है ऐसे मैं संसारी) विषय ठहरे पक्षी उन्हें फाँस लेता हूँ (भाव यह हुआ कि कपट से हरि-भक्त का वेष बना कर मुँह से रामराम कहता हुआ नाम-माहात्म्य की कथा कह कह कर भाँति भाँति के विषय-सुख भोगता हूँ। कोई माला लाता है उसे सूँघता पहरता हूँ, कोई भोजन लाता है उसे खाता हूँ। स्त्रियाँ दर्शन को आती हैं उन्हें देखता हूँ, उनका गान सुनता हूँ इत्यादि)॥ २॥ और सौ करोड़ बुरे स्वभाव वाले (पापी) मेरे एक एक रोम पर निछावर कर दिये जायँ (ऐसा तो खोटा हूँ) तो भी मैं सन्तों की गिनती में अपने को पहले गिनता हूँ (अर्थात् सब का शिरोमणि बनता हूँ) बड़ा बक-

वादी, बौना ( तुच्छ ) होकर भी मैं घमण्डरूपी पर्वत पर चढ़ा हुआ हूँ ( अर्थात् बड़ा घमण्डी हूँ ) और मूर्ख होकर भी अपने ताईं सर्वज्ञ कहिए वेदवेदान्तों के ज्ञाताजनों का मणि जतलाता हूँ ॥ ३ ॥ ( ऐसा अज्ञानी होकर तुम्हारे सामने कुछ कह तो नहीं सकता पर ) हे राम ! यह बात जाने सच है कि जाने झूँठ है ( मेरा वेष देख कर ) कोई कोई जीव मुझे तुम्हारा बतलाते हैं ( कि यह राम का गुलाम है ) और मैं भी लोगों से तुम्हारा कहलवाता हूँ । सो हे देव ! अपने ( दीनबन्धु, पतितपावन, प्रणत-पाल आदि ) बाने की लाज करके इस तुलसीदास को अपना कर लीजिए और अब पीठ मत दीजिए ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—लग्गी = बाँस का डण्डा । लासा = चेप । बर्बर = बकवादी । खर्व = बौना, तुच्छ ।

[ २०९ ]

नाहिनै नाथ अवलंब मोहि आन की ।
करम मन वचन पन सत्य करुनानिधि एक गति राम भवदीय पदत्रान की ॥१॥
कोह मद मोह ममतायतन जानि मन बात नहिं जाति कहि ज्ञान विज्ञान की ।
काम संकल्प उर निरखि बहु बासनहिं आस नहिं एकहू आँक निरवान की ॥२॥
वेद बोधित कर्म धर्म बिनु अगम अति जदपि जिय लालसा अमरपुर जान की ।
सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन द्रवहिं हठजोग दिए भोग बलि प्रान की ॥३॥
भक्तिदुरलभ परम संभु सुकमुनि मधुप प्यास पदकंज मकरंद मधु पान की ।
पतित पावन सुनत नाम बिस्रामकृत भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रंथि अभिमान की ॥४॥

नरक अधिकार मम घोर संसारतम कूप कहि भूप मोहिं सक्ति आपान की।
दासतुलसी सोऊ त्रास नहिं गनत मन सुमिरि गुह गीध गज ज्ञाति हनुमान की ॥५॥

हे नाथ! अब मुझे और का आसरा नहीं है। हे दयानिधान! कर्म से, मन से और वाणी से हे राम! मेरा सच्चा प्रण है कि मुझे एक तुम्हारी जूतियों का ही सहारा है ॥१॥ मन को क्रोध, मद, मोह और ममता का स्थान जान कर मुझसे ज्ञान और विज्ञान के साधने की बातही नहीं कही जाती (अर्थात् मन में तो काम, क्रोध आदि होने से देहाभिमान बढ़ रहा है ज्ञान की चर्चा कैसे हो सकती है) काम के संकल्प से (अर्थात् मन में जो काम ही की लगी रहती है उससे) अपने हृदय में बहुत सी वासनाओं को देख कर मुझे एक विस्वे भी मोक्ष की आशा नहीं है (भाव यह है कि इन्द्रियों (१) के विषय में लगने से कामना बढ़ेगी और कामना पूरी न होने से क्रोध होगा फिर मोह आदि से अंत में जीव का नाश होगा) ॥ २ ॥ यद्यपि वेदों में समझाये हुए जो कर्म, धर्म हैं उनके बिना किये (स्वर्ग में जाना) बहुत ही कठिन है तो भी मेरे मन में स्वर्ग में जाने की लालसा लग रही है। (अणिमादि) सिद्धियाँ, देवता, मनुष्य, (कार्तवीर्य्य आदि) और राक्षस आदि की सेवा भी बड़ी कठिन है। क्योंकि (सिद्धियाँ) हठ योग करने से, (देवता यज्ञ का) भाग देने से और राक्षस (बकरे आदि के) प्राणों के बलि देने से प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ (जीव के कल्याण करनेवाली) भक्ति है सो (मुझ सरीखे जीवों को) बड़ी भारी कठिन है क्योंकि शिवजी और शुकदेवमुनिरूपी भौंरों को भी तुम्हारे चरण-कमलों के मीठे मकरन्द पान करने की प्यास लगी रहती है (फिर मुझ सरीखे पापी की क्या गिनती है)। सुनता हूँ कि तुम्हारा पापियों को पवित्र करनेवाला नाम विश्राम का दाता है पर चित्त में अभिमान की गाँठ पड़ी समझ फिर चित्त बैठ जाता है (अर्थात् स्थिर नहीं रहता क्योंकि जब जीव देहाभिमानी है तो विषय में लगेगा तुम्हारा नाम क्यों जपेगा) ॥ ४ ॥ हे राजन्! अपनी शक्ति अर्थात् कर्मों से मुझे अधिकार तो नरक के समान भयङ्कर संसाररूपी अंधे कुएँ में पड़ने का है, पर तुलसी-

(१) जैसा गीता में कहा है:—"ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते। संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते। क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ॥ २ ॥ सरलार्थः।

दास, अपने मन में निषाद, गिद्ध, गज और हनूमानजी की जाति याद करके उसके भय को नहीं गिनता है (भाव—ऐसों का भला किया है फिर मेरा क्यों न करेंगे)॥ ५॥

सन्धिविभाग—ममता + आयतन (घर)। दनुज + आदि।

शब्दार्थ—पदत्रान = पैरों का रक्षक, जूता। आंक = बिस्वे। निर्वान = मोक्ष। तन = बढ़ता हुआ ("तनु विस्तारे" धातु का)।

[ २१० ]

और कहँ ठौर रघुवंसमनि मेरे।
पतितपावन प्रनतपाल असरन सरन बाँकुरे विरद विरुदैत केहि केर ॥१॥
समुझि जिय दोष अतिरोष करि राम जेहि करत नहिं कान विनती वदन फेरे।
तदपि ह्वै निडर हौं कहौं करुनासिंधु क्यों बरहि जात सुनि बात बिनु हेरे ॥२॥
मुख्य रुचि होत वसिबे को पुर रावरे राम तेहि रुचिहि कामादि गन घेरे।
अगम अपवर्ग अरु स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम बल क्यों बसों जम नगर नेरे ॥३॥
कतहुँ नहिं ठाउँ कहुँ जाउँ कोसलनाथ दीन वितहीन हौं बिकल बिनु डेरे।
दास तुलसिहि वास देहु अब करि कृपा वसत गज गीध व्याधादि जेहि खेरे ॥४॥

हे रघुवंशमणि! (तुम्हारे सिवाय) मेरे और कहाँ जगह है? तुम पापियों को पवित्र करनेवाले, ग़रीबों का पालन करनेवाले, और जिसको कोई भी शरण न दे उसको शरण देने वाले हो। तुम्हारा सा बाँका बाना कहो किस बानावाले वीर का है ॥१॥ हे राम! अपने

जी में मेरे दोषों को समझ बड़ा क्रोध करते होगे इसीसे तुम मेरी बिनती को नहीं सुनते और मुँह फेर लेते हो, तो भी मैं बेधड़क होकर कहता हूँ कि हे दयासागर! मेरी बात को बिना सुने और बिना विचारे तुम क्यों बहरा जाते हो ( अर्थात् क्यों आनाकानी करते हो ) ॥ २ ॥ ( जो कहो कि तेरी क्या कामना है तहाँ कहते हैं कि कामनायें तो बहुत हैं पर ) मुख्य कामना तो तुम्हारे पुर ( अर्थात् वैकुण्ठ ) में बसने की है परन्तु हे राम! उस कामना को काम आदि के समूहों ने घेर रक्खा है ( अर्थात् ये उसे पूरी नहीं होने देंगे )। और मोक्ष का होना भी कठिन है ( क्योंकि वह पूरा आत्मज्ञान हो तब मिले ) और स्वर्ग एक बड़े पुण्य का फल है ( अर्थात् बड़े बड़े यज्ञ, दान, तप आदि पुण्य करो तब स्वर्ग मिले सो मैंने किये नहीं हैं इसलिए स्वर्ग भी नहीं मिल सकता ) मुझे तो तुम्हारे नाम का बल है (अर्थात् कभी कभी तुम्हारा नाम ले लेता हूँ ) सो उससे यमपुर के पास भी नहीं रह सकता हूँ ( नाम के प्रभाव से वहाँ यम नहीं आने देगा ) ॥३॥ सो हे कोशलनाथ! मुझे कहीं भी ( रहने का ) ठिकाना नहीं है अब मैं कहाँ जाऊँ क्योंकि मैं ग़रीब और निर्धन हूँ और बिना रहने की जगह के घबरा रहा हूँ। सो तुलसीदास को अब कृपा करके (वहाँ रहने को ) जगह दीजिए कि जिस गाँव में गजेन्द्र, गिद्ध और व्याध आदि रहते हैं। ( भाव—जैसे इन पापियों पर कृपा की है मुझ पर भी कृपा करो ) ॥४॥

शब्दार्थ—विरद = बाना। विरुदैत = बानावाला वीर। हेरे = विचारे। सुकृतैक = (सुकृत + एक) = पुण्य ही एक।

[ २११ ]

कबहुँ रघुवंसमनि सोइ कृपा करहुगे।
जेहि कृपा व्याध गज विप्र खल नर तरे, तिन्हहिं सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुगे ॥१॥
जोनि बहु जन्मि किए कर्म खल विविधविधि, अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुगे।
दीनहित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रनतपाल चित मृदुल निज-गुनानि अनुसरहुगे ॥२॥
मोह मद मान कामादि खल मंडली सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे।

जोग जप जज्ञ विज्ञान ते अधिक अति अमल दृढ़ भक्ति दै परम सुख भरहुगे ॥३॥
मंदजन मौलिमनि, सकल साधनहीन कुटिल मन मलिन जिय जानि जौ डरहुगे।
दासतुलसी वेद विदित विरदावली विमल जस नाथ केहि भाँति विस्तरहुगे ॥४॥

हे रघुवंशमणि! कभी तो उस कृपा को (मुझ पर) करोगे, कि जिस कृपा से व्याध, गजेन्द्र, ब्राह्मण (अजामेल) और दुष्ट मनुष्य (भील आदि इस संसाररूपी समुद्र से) तर गये, उन्हीं के समान मुझे समझ कर हे नाथ! मेरा भी उद्धार करोगे ॥१॥ मुझ मूर्ख ने बहुत सी योनियों में जन्म ले लेकर अनेक प्रकार के बड़े खोटे खोटे काम किये हैं (आशा है कि तुम) अपने हृदय में उन बुरे आचरणों को कुछ नहीं धरोगे। और ग़रीबों का भला करना, किसी से हारना नहीं, सब प्राणियों की इच्छा जानना, सब काम करने योग्य होना और दासों का पालन करना और कोमल स्वभाव रखना इन सब अपने गुणों के अनुसार चलोगे (अर्थात् इन गुणों से मेरा भी उद्धार करोगे) ॥ २ ॥ और मोह, मद, अभिमान और काम आदि दुष्टों की मण्डली को कुटुम्ब समेत जड़ से उखाड़ कर मेरे कठिन दुःख को दूर करोगे। और योग, जप, यज्ञ और आत्मज्ञान से भी बहुत बड़ी और निर्मूल अचल भक्ति मुझे देकर बहुत सुख से भरोगे (अर्थात् आत्मानन्द के सुख से परिपूर्ण रक्खोगे) ॥ ३ ॥ और जो तुलसीदास को, नीच जनों का शिरोमणि, सब साधनों से रहित, खोटा और मलिन मन का समझ कर अपने मन में डरोगे (कि ऐसे नीच पापी का मैं कैसे उद्धार करूँ दुनिया नाम धरेगी) तो हे नाथ! वेदों में प्रगट अपनी (पतितपावन, प्रणतपाल आदि) बाने की पंक्ति को और अपने निर्मल यश को तुम किस भाँति फैलाओगे। (बात में बिलकुल बट्टा आ जायगा) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—मौलि = शिर।

[ २१२ ]

राग केदारा।

रघुपति विपति दवन।
परमकृपालु प्रनतप्रतिपालक पतित पवन ॥१॥

क्रूर कुटिल कुलहीन दीन अतिमलीन जवन।
सुमिरत नाम राम पठए सब अपने भवन ॥२॥
गज पिंगला अजामिल से खल गनेधौं कवन।
तुलसिदास प्रभु केहि न दीनि गति जानकी रवन ॥३॥

रामचन्द्रजी विपत्ति के नाश करने वाले हैं। वे बड़े दयालु, भक्तों के पालनेवाले, और पापियों को पवित्र करने वाले हैं ॥ १ ॥ क्रूर ( व्याध ) खोटे ( कोल किरात ) नीच कुल ( शवरी ) ग़रीब ( निषाद ) और बड़े मलिन म्लेच्छों को भी नाम स्मरण करते ही रामचन्द्रजी ने अपने भवन ( वैकुण्ठ ) में सब को भेजा दिया ॥ २ ॥ और हाथी, पिङ्गला ( वेश्या ) और अजामेल ऐसे ऐसे दुष्टों को कौन गिने। हे तुलसीदास ! समर्थ जानकीजी के पति ने किस किसको मोक्ष नहीं दी ( अर्थात् इन सब को मोक्ष दी फिर तुझे क्यों न देंगे ) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—पवन = पवित्रकारक। रवन ( रमण ) = पति।

[ २१३ ]

हरि सम आपदाहरन।
नहिं कोउ सहज कृपालु दुसह दुखसागर तरन ॥१॥
गज निजबल अवलोकि कमल गहि गयो जों सरन।
दीन वचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनाभुधरन ॥२॥
द्रुपदसुता को लग्यो दुसासन नगन करन।
हा हरि पाहि कहत पूरे पट विविध बरन ॥३॥
इहै जानि सुर नर मुनि कोविद सेवत चरन।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग उद्धरन ॥४॥

भगवान् के बराबर विपत्ति का दूर करने वाला ( कौन है )। स्वभाव से कृपा करने वाला और कठिन दुःखरूपी समुद्र से तारने वाला कोई नहीं है। और जब हाथी अपने बल को देख कर और कमल पकड़ ( अर्थात् सूँड़ से कमल को भेट कर हरि की ) शरण में गया, तब सुन्दर ( कमल ) नाभि को धारण करने वाले ( भगवान् उसी

समय उसके ) दीन वचन सुन कर और गरुड़ को भी छोड़ कर ( पैदल ) चल दिये ॥२॥ ( जब दुःशासन द्रौपदी को नङ्गी करने लगा तब उसके ) हे भगवान् ! रक्षा करो रक्षा करो ऐसा कहते ही तरह तरह के रङ्ग के कपड़े बढ़ने लग गये ॥३॥ इसी को समझ कर देवता, मनुष्य (ध्रुव आदि ), मुनीश्वर और कवीश्वर सब भगवान् के चरणों की सेवा करते हैं । हे तुलसीदास ! नृग (१) राजा के उद्धार करने वाले भगवान् ने किसको अभय नहीं किया है ( अर्थात् सब को ही किया है फिर तुझे क्यों न करेंगे) ॥४॥

[ २१४ ]

राग कल्याण ।

ऐसी कौन प्रभु की रीति ।
बिरद हेत पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ॥१॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ ।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु जादौराइ ॥२॥
काममोहित गोपिकनपर कृपा अतुलित कीन्हि ।
जगतपिता बिरंचि जिन्हके चरन की रज लीन्हि ॥३॥
नेमते सिसुपाल दिन प्रति देतु गनि गनि गारि ।
कियो लीन सो आप में हरि राजसभा मँझारि ॥४॥
व्याध चित दै चरन मार्‍यो मूढ़मति मृगजानि ।
सो सदेह स्वलोक पठयो प्रगट करि निजबानि ॥५॥
कौन तिन्हकी कहै जिन्हके सुकृत अरु अघ दोउ ।
प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥६॥

प्रभु की यह क्या रीति है । अपने यश के लिए पवित्र ( जीवों ) को छोड़ कर और नीचों पर प्रीति रखते हैं ( अर्थात् ऋषियों को छोड़ कर शबरी आदि नीचों से प्रीति करते हैं ) ॥ १ ॥ पूतना (२) कुचों में कालकूट अर्थात् ज़हर लगा कर उनको मारने

---

[१] राजा नृग ने एक गाय पुण्य करके धोखे से दूसरी बार फिर वही गाय पुण्य कर दी थी इस कारण उसने गिरगट की योनि पाई । भगवान् ने उसका उद्धार किया । पूरी कथा भागवत में है ।

[ २ ] पूतना राक्षसी थी । कंस ने उसे श्रीकृष्ण को मारने भेजा था । भगवान् ने उसे मार स्वर्ग भेज दिया । पूरी कथा भागवत में है ।

गई थी सो दीनदयाल यादवों को राजा ( कृष्णचन्द्रजी ) ने उसे माता की सी गति दी ॥ २ ॥ और काम से मतवाली गोपियों के ऊपर उन्होंने ऐसी अतोल कृपा की कि, उन ( गोपियों ) के पैरों की धूल को संसार के पिता ब्रह्माजी ने ( अपने माथे पर ) लगा लिया ॥ ३ ॥ और राजा शिशुपाल (१) नेम से हर दिन गिन गिन कर गालियाँ देता था, उस ( शिशुपाल ) को भगवान् ने राजाओं की सभा में अपने में मिला लिया ।४॥ जिस मूर्ख-बुद्धि व्याध (२) ने बड़े ध्यान से मृग जान (भगवान् के) चरण में (तीर) मारा था, उसे शरीर समेत अपने लोक (वैकुण्ठ) को भेज दिया और अपनी दया की टेव को प्रकट किया ॥ ५ ॥ फिर उनकी कौन कहे कि जिनके पुण्य और पाप दोनों हैं ( अर्थात् जिन्होंने पुण्य और पाप दोनों किये थे उन्हें श्रीकृष्णचन्द्र ने वैकुण्ठ दिया तो क्या अहसान किया । रामजी ने तो ) जो प्रत्यक्ष पाप का रूप था उस तुलसीदास को अपनी शरण में रख लिया ॥ ६ ॥

[ २१५ ]

श्री रघुवीर की यह वानि ।
नीचहूं सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥१॥
परम अधम निषाद पाँवर कौन ताकी कानि ।
लियो सो उर लाइ सुत ज्यों प्रेम की पहिचानि ॥२॥
गीध कौन दयालु जो विधि रच्यो हिंसा सानि ।
जनक ज्यों रघुनाथ ताकहँ दियो जल निज पानि ॥३॥
प्रकृति मलिन कुजाति सबरी सकल अवगुनखानि ।
खात ताके दिये फल अति रुचि बखानि बखानि ॥४॥
रजनिचर अरु रिपु विभीषन सरन आयो जानि ।

---

( १ ) शिशुपाल चन्देरी का राजा था । श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणीजी के विवाह समय इसके बड़े दाँत खट्टे किये थे और फिर पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में जब इसने भगवान् को गालियाँ दीं तब उन्होंने सुदर्शन चक्र से इसका सिर काट धड़ से अलग करदिया ।

[ २ ] जब यादवों का नाश हो चुका और भगवान् की वैकुण्ठ जाने की इच्छा हुई तब व्याध ने मृग के धोखे से इनके चरणों में बाण मार दिया था । यह पूरी कथा भागवत में है ।

भरत ज्यों उठि ताहि भेटत देहदसा भुलानि ॥५॥
कौन सुभग सुसील बानर जिनहिं सुमिरत हानि ।
किये ते सब सखा पूजे भवन अपने आनि ॥६॥
राम सहज कृपालु कोमल दीन हित दिन दानि ।
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥७॥

( अब नीचों से प्रीति करने का कारण बताते हैं )

श्रीरामचन्द्रजी की यह टेव है कि वे मन में सुन्दर प्रीति को समझ कर नीच से भी प्रेम कर लेते हैं ॥ १ ॥ ( देखिए कि ) निषाद बड़ा भारी पापी और नीच था उसकी क्या इज़्ज़त थी । पर उसके प्रेम को पहचान कर ( भगवान् ने ) उसे पुत्र के समान छाती से लगा लिया ॥ २ ॥ और गिद्ध कौन सा दयावान् था जिसको विधाता ने हिंसा में सान कर बनाया था, पर रामचन्द्रजी ने पिता के समान उसे अपने हाथों से पानी दिया ॥ ३ ॥ और शबरी स्वभाव ही से मैली, नीच जाति और सब औगुनों की खान थी । ( भगवान् ने ) उसके दिये हुए ( बेर ) फल बड़े स्वाद से बड़ाई कर करके खाये ॥ ४ ॥ और जाति का राक्षस और वैरी ऐसे विभीषण को अपने शरण में आया जान कर उससे भरत की तरह उठ कर ऐसे मिले कि शरीर की दशा भूल गये ॥ ४ ॥ और बन्दर कौन से सीधे और सुन्दर स्वभाव के थे ( वरन् ) उनका नाम लेने से हानि होती है, परन्तु उन सब को मित्र बनाया और अपने घर लाकर उनका ( वस्त्र आभूषण से ) आदर किया ॥ ५ ॥ रामचन्द्रजी सहज ही कृपा करने वाले, कोमल और ग़रीबों के हितू हैं और नित्य दान देने वाले हैं । सो हे कुटिल तुलसी ! ऐसे प्रभु का भजन कपट करके मत करे ॥ ७ ॥

[ २१६ ]

हरि तजि और भजिये काहि ।
नाहिनै कोउ राम सों ममता प्रनत पर जाहि ॥१॥
कनककसिपु विरंचि को जन करम मन अरु बात ।
सुतहि दुखवत विधि न वरज्यो काल के घर जात ॥२॥
संभु सेवक जान जग बहु बार दिए दससीस ।

करतराम विरोध सोउ सुपनेहुँ न हटक्यो ईस ॥३॥
और देवन की कहा कहौं स्वारथहि के मीत।
कबहुँ काहु न राखिलियो कोउ सरन गयो सभीत ॥४॥
को न सेवत देत संपति लोकहूँ यह रीति।
दासतुलसी दीन पर एक राम ही की प्रीति ॥५॥

( अरे जीव ) भगवान् को छोड़ कर और किसका भजन करना चाहिए। रामचन्द्रजी के बराबर ऐसा कोई भी नहीं है कि जिसकी ममता दासों पर हो ॥ १ ॥ ( देखिए ) हिरण्यकश्यपु (१) कर्म, मन और वचन से ब्रह्माजी का भक्त था, पर बेटे को दुःख देने से उसे ब्रह्माजी ने मने नहीं किया ( तमाशा देखते रहे और मन में जानते थे ) कि वह काल के घर में जा रहा है ( अर्थात् मरे बिना नहीं रहेगा फिर दास पर ममता कहाँ रही ) ॥ २ ॥ सब जगत् ( रावण को ) शिवजी का सेवक जानता था और उसने भी अपने दश शिर ( काट् काट कर शिवजी की ) भेंट किये थे। वह रामचन्द्रजी से वैर करता रहा; उसे शिवजी ने सुपने में भी मने नहीं किया ( देखते देखते कुटुम्ब सहित नाश करा दिया यह दास पर कैसी ममता ) ॥ ३ ॥ और ( इन्द्र आदि ) देवताओं की क्या कहूँ सब अपने स्वारथ के ही मित्र हैं ( पूजा भेंट ले लेकर फल देते हैं और जो सेवा में चूके तो सिड़ी कर दें ) पर कभी किसी ने किसी भयभीत शरणागत को नहीं रक्खा ॥ ४ ॥ और सेवा करने से कौन धन नहीं देता है ( अर्थात् सेवा करने से सब धनी लोग धन देते हैं इसमें क्या बड़ाई हुई ) यह संसार की रीति ही है, परन्तु हे तुलसीदास! ग़रीब पर तो एक रामचन्द्रजी की ही प्रीति है ॥ ५ ॥

[ २१७ ]

जोपै दूसरो कोउ होइ।
तो हौं बारहिं बार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ ॥१॥
काहि ममता दीन पर काको पतितपावन नाम।

---

( १ ) हिरण्यकशिपु एक दैत्य था वह भगवान् से बड़ा द्वेष रखता था। अपने पुत्र प्रह्लाद को राम, नाम कहने पर बड़ा दुःख देता था। भगवान् ने प्रह्लाद भक्त की रक्षा के लिए नृसिंह अवतार लेकर उसे मार भूमि का भार दूर किया—यह कथा भागवत में है।

पापमूल अजामिलहिं को दियो अपनो धाम ॥२॥
रहे संभु विरंचि सुरपति लोकपाल अनेक।
सोकसरि बूड़त करीसहि दई काहु न टेक ॥३॥
विपुल भूपति सदसि महँ नर नारि कह्यौ प्रभु पाहि।
सकल समरथ रहे काहु न वसन दीन्हों ताहि ॥४॥
एक मुख क्यों कहों करुनासिंधु के गुनगाथ।
भक्तहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ ॥५॥
आपसे कहुँ सौंपिये मोहि जो पै अतिहिं घिनात।
दासतुलसी और विधि क्यों चरन परिहरि जात ॥६॥

हे राम! जो दूसरा कोई हो तो हे प्रभो! मैं बार बार रोकर अपना दुःख तुम्हें क्यों सुनाऊँ॥ १॥ ग़रीबों पर किसकी ममता है और किसका नाम पतित-पावन है। पाप की जड़ अजामिल को अपना धाम किसने दिया है (अर्थात् उसे वैकुण्ठ किसने भेजा है)॥ २॥ शिव, ब्रह्मा और इन्द्र आदि अनेक लोकपाल थे, पर शोक-रूपी नदी में डूबते हुए हाथियों के राजा को किसी ने भी सहारा नहीं दिया॥ ३॥ और जब बड़े बड़े राजाओं की सभा में नर कहिए अर्जुन की स्त्री द्रौपदी ने कहा था कि हे प्रभो! मेरी रक्षा करो। (उस समय) वहाँ सब ही समर्थ थे पर किसी ने भी उसे वस्त्र नहीं दिया॥४॥ हे करुणासिंधु! एक मुँह से तुम्हारे (बहुत से) गुणों की कथा कैसे कहूँ। भक्तों के भले के लिए अवतार लेकर हे राम! तुम ने क्या क्या नहीं किया (अर्थात् नीच, ऊँच सब को पार कर दिया)॥ ५॥ और जो तुम मुझसे बहुत घिनाते हो (कि यह हमारे योग्य नहीं है) तो मुझे तुम्हारे समान जो हो उसे सौंप दीजिए। (नहीं तो) तुलसीदास और भाँति तुम्हारे चरण छोड़ कर क्यों जायगा॥ ६॥

संधिविभाग—करीस (करि + ईस) हाथियों का राजा।

शब्दार्थ—विपुल = बहुत। सदसि = सभा में। नर = अर्जुन। गाथ = कथा।

[ २१८ ]

कबहिं देखाइहौ हरि चरन।
समन सकल कलेस कलिमल सकल मंगलकरन ॥१॥

सरद भव सुंदर तरुनतर अरुनवारिज वरन ।
लच्छि लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन ॥२॥
गंग जनक अनंगअरिप्रिय कपटु वटु बलि छरन ।
विप्रतिय नृग वधिक के दुख दोष दारुन दरन ॥३॥
सिद्ध सुर मुनि वृंद वंदित सुखद सबकहँ सरन ।
सुकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारनतरन ॥४॥
कृपासिंधु सुजान रघुवर प्रनत आरति हरन ।
दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥५॥

हे भगवान्! मुझे कभी अपने (उन) चरणों के दर्शन भी कराओगे कि, जो कलियुग के सब दुःखों के नाश करनेवाले और सब मङ्गलों के करनेवाले हैं॥ १॥ जिन (चरणों) का शरदऋतु में उत्पन्न हुए, सुन्दर और तुरन्त के खिले लाल कमलों का सा रङ्ग है। और जिनको लक्ष्मीजी ने सुन्दर हाथों की हथेलियों से दाबा है और जो उपमारहित शोभा को धारण किये हैं॥ २॥ और जो (चरण) गङ्गाजी के पिता हैं (अर्थात् गङ्गाजी जिनसे उत्पन्न हुई), महादेवजी के प्यारे हैं और जिन्होंने छल से ब्राह्मण का रूप धर कर राजा बलि को ठगा है। और जो ब्राह्मण की स्त्री (अहिल्या), राजा नृग और निषाद के दुःख और कठिन शाप के नाश करनेवाले हैं॥ ३॥ और सिद्ध, देवता और मुनीश्वरों के समूह जिनको नमस्कार करते हैं और जो सबको सुख और शरण देनेवाले हैं। और एक बार भी जिनको हृदय में लाने से (अर्थात् जिनका ध्यान धरने से भक्त) जन तरन-तारन (अर्थात् ख़ुद तरते हैं और पापियों को तारनेवाले) हो जाते हैं॥ ४॥ हे दया के समुद्र, बड़े चतुर, रघुकुल में श्रेष्ठ और अपने भक्तों की विपत्ति को दूर करनेवाले रामजी! तुलसीदास तुम्हारे (उन चरणों के) दर्शन की आशारूपी प्यास से मरा चाहता है (सो अब आप दर्शन कराइए)॥ ५॥

शब्दार्थ—तरुनतर=अधिक तरुन। लच्छि=लक्ष्मी। अनंगअरि=कामदेव के शत्रु, शिव। बटु=ब्राह्मण। छरन=(छलन) छलना।

[ २१९ ]

द्वारे हौं भोरही को आज ।
रटत ररिहा आरि और न कौरही ते काज ॥१॥

कलि कराल दुकाल दारुन सब कुभाँति कुसाज ।
नीच जन मन ऊँच जैसै कोढ़ में की खाज ॥२॥
हहरि हिय मैं सदय बूझ्यो जाइ साधुसमाज ।
मोहुसे कहु कतहुँ कोउ तिन कह्यो कोसलराज ॥३॥
दीनता दारिद दलै को कृपावारिधि वाज ।
दानि दसरथ राइ के सुत बानइत सिरताज ॥४॥
जनम को भूखो भिखारी हौं तू गरीबनेवाज ।
पेट भरि तुलसिहिं जेंवाइय भक्ति सुधा सुनाज ॥५॥

हे भगवान् ! मैं आज सवेरे से ही तुम्हारे द्वार पर ( पड़ा ) हूँ । (राजाओं के द्वार पर भिखारी गाली सुनते हैं, धक्का खाते हैं, घसीटे जाते हैं, पर जिस काम के लिए अड़ जाते हैं उसके लिए बिना माँगना नहीं छोड़ते ) सो यह झगड़ालू भी अड़ करके ( धन, धाम, भूषण, वसन आदि ) और कुछ नहीं ( चाहता ) केवल तुम्हारे ( एक जूँठे ) टुकड़े से ही काम रखता है ( अर्थात् थोड़ी सी भक्ति चाहता है ) ॥ १ ॥ ( जो कहो कि टुकड़ा क्यों माँगता है कुछ व्यापार कर जो पेट भर रोटी मिले तहाँ कहते हैं कि ) यह कलि बड़ा भयङ्कर है इसमें ( धर्म का ) कठिन अकाल पड़ रहा है और सब रीति और सब सामान बुरे हैं । ( अर्थात् समय पर धर्मरूपी पानी न बरसने से शुद्ध भक्ति-रूपी खेतियाँ सूखी जाती हैं । और ज्ञानरूपी धान न होने से विषय-वासनारूपी कंगाली फैल गई सो जीव का इसमें कैसे निर्वाह हो ) मनुष्य तो नीच होते हैं और उनके मन ऊँचे होते हैं ( सो ऐसे हैं कि ) जैसे कोढ़ में खुजली चलती है ( अर्थात् जैसे कोढ़ी के शरीर में खुजली चलती है और वह उसे खुजलाता है उस समय वह कोढ़ रोग का दर्द भूल खुजली के आनन्द में आकर अपने को सुखी मान लेता है पर पीछे बड़ी पीड़ा होती है वैसे ही जीव संसार के आवागमन के कोढ़रूपी दुःख को तो भूल जाता है और फिर विषयरूपी खुजली के आनन्द को पाकर महा दुःख भोगता है ) ॥ २ ॥ मैंने हृदय में भड़-भड़ा कर दयावान् साधुओं की समाज से जाकर पूछा कि कहो मुझ सरीखे को भी कहीं कोई ( शरण देनेवाला ) है उन्होंने कहा कि ( और तो कोई नहीं एक ) कोशल-देश के राजा ( रामचन्द्रजी ) हैं ॥ ३ ॥ वे ग़रीबी और दरिद्र ( रूपी पक्षियों ) के नाश

करने को बाज़रूप हैं ( जो कहो कि बाज़ तो निर्दई होता है सो नहीं ) वे दया के समुद्र हैं ( अर्थात् जीवमात्र की रक्षा करते हैं ) । वे दशरथ राजा के पुत्र ( रामचन्द्रजी ) दाताओं का बाना रखनेवालों के शिरोमणि हैं ( मैं यह सुन कर आया हूँ ) सो मैं तो जन्म का भूखा हूँ और तुम ग़रीबनिवाज हो, सो तुलसीदास को पेट भर कर भक्ति-रूपी अमृत का पकवान खिलाइए ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—ररिहा = झगड़ालू । आरि = अड़ कर । बनाइत = बाना । सुधा = अमृत ।

[ २२० ]

करिय सँभार कौशलराय ।
और ठौर न और गति अवलंब नाम विहाय ॥१॥
बूझि आपनि आपनो हित, आपु बापु न माय ।
राम राउरनाम गुरु सुर स्वामि सखा सहाय ॥२॥
राम राज न चले मानस मलिन के छल छाय ।
कापि तेहि कलिकाल कायर मुयहि घालत घाय ॥३॥
लेत केहरि सों बयर ज्यों भेक हनि गोमाय ।
त्योंहि रामगुलाम जानि निकाम देत कुदाय ॥४॥
अकनि जाके कपट करतब अमित अनय अपाय ।
सुखी हरिपुर बसत होत परीच्छितहि पछिताय ॥५॥
कृपासिंधु विलोकिये जन मन की साँसति साय ।
सरन आयो देव दीन दयाल देखन पाय ॥६॥
निकट बोलि न बरजिये बलिजाउँ हनिय न हाय ।
देखिहै हनुमान गोमुख नाहरन के न्याय ॥७॥
अरुन मुख, भ्रू विकट, पिंगल नैन, रोष कषाय ।
वीर सुमिरि समीर को घटिहै चपल चित चाय ॥८॥
विनय सुनि विंहसे अनुज सो वचन के कहि भाय ।

भलि कही कह्यौ लषन हूँ हँसि बने सकल बनाय ॥९॥
दई दीनहि दादि सो सुनि सुजन सदन बधाय।
मिटे संकट सोच पोच प्रपंच पाप निकाय ॥१०॥
पेखि प्रीति प्रतीत जन पर अगुन अनघ अमाय।
दासतुलसी कहत मुनिगन जयति जय उर गाय ॥११॥

हे कोशलराय! (रामचन्द्रजी!) मेरी सँभाल करो। तुम्हारे नाम को छोड़ कर मुझे न तो और जगह है, न दूसरे की शरण है और न सहारा है ॥ १ ॥ अपनी समझ से मेरा भला करनेवाले जैसे तुम हो वैसे माता-पिता भी नहीं हैं। हे रामचन्द्रजी! तुम्हारा नाम ही मेरा गुरु, देवता, स्वामी, मित्र और सहायक है ॥ २ ॥ हे राम! तुम्हारे राज में तो मैले मनवाले (कलियुग) के छल की छाया अर्थात् माया नहीं चलती। पर वह कायर कलिकाल कोप करके मुझ मरे हुए पर चोटें मारता है ॥३॥ जैसे गीदड़ मेढ़क को मार कर सिंह के वैर का बदला लेता है, वैसे ही मुझे रामचन्द्रजी का ग़ुलाम जान कर भी नीच दुःख दे रहा है ॥ ४ ॥ इसके छल के अनगिनती करतब और अनीति की चालें सुन कर, सुख से वैकुण्ठ में बस कर भी राजा परीक्षित (१) को पछतावा होता है ॥५॥ हे कृपासिन्धु! इस दास पर कृपादृष्टि करिए कि जिससे इस जन के मन की पीड़ा दूर हो। हे दीनदयाल! मैं ग़रीब तुम्हारे चरणों के दर्शन करने के लिए शरण आया हूँ ॥६॥ हे नाथ! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ जो तुम कलि को पास बुला कर मने न करना चाहो या उसकी हाय के मारे (ख़ुद) न मारा चाहो (कि यह हाय हाय कर रोवेगा, तो तुम हनूमानजी को इशारा कर दो) जब हनूमानजी शेर की तरह भयङ्कर मुँह करके उसकी ओर देखेंगे ॥ ७ ॥ और जब उनका लाल लाल मुँह और बाँकी भौंहें हो जायँगी और वे अपनी पीली पीली आँखों को क्रोध के मारे लाल कर लेंगे, तब पवन के पुत्र वीर (हनूमान) का स्मरण करके चंचल चित्तवाले (कलि) का चाव घट जायगा (अर्थात् वह अपनी करनी भूल जायगा) ॥ ८ ॥ इस बिनती को सुन कर (राम-

(१) पद्मपुराण में यह कथा है कि राजा परीक्षित एक बार दिग्विजय करने को जाते थे उस समय उन्होंने कलिकाल को प्रत्यक्ष देखा और उसकी अनीति देख कर उसे मारना चाहा पर कलिकाल ने उनकी शरण ली। इसलिए उसे मारा तो नहीं पर उससे यह कह दिया कि हमारे राज्य में तू अपनी प्रभुता मत करियो पर वह न माना सो अब उसकी उस कठिन कुचाल को समझ कर राजा सोच करते हैं कि ऐसे दुष्ट को क्यों छोड़ा।

चन्द्रजी ) हँसे और छोटे भाई ( लक्ष्मणजी ) को इन बातों का आशय समझाया ( कि तुलसीदास ने कैसी बात बनाई है ) फिर लक्ष्मणजी ने भी हँस कर कहा ( कि तुलसीदास ने अच्छा तो कहा ) अब सब बानक बन जायगा ॥९॥ भगवान् ने ग़रीब को दाद दी ( अर्थात् उसका इन्साफ़ किया ) यह सुन कर सज्जनों के घरों में मङ्गलाचार होने लगे। और कष्ट, सोच और नीच ( कलियुग ) का छल और पाप के समूह मिट गये ॥ ९ ॥ और निर्गुण, पवित्र और निष्कपट ( ऐसे रामचन्द्रजी ) की दास पर प्रीति और विश्वास देख कर तुलसीदास कहता है कि मुनीश्वरों के समूह जय जय कह कर हृदय में ( भगवान् का ) गुणानुवाद करने लगे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—मानसमलिन = कलि। घाय = घाव, चोट। भेक = मेढ़क। गोमाय = गीदड़। कुदाय = दुःख। अकनि ( आकर्ण्य ) = सुन कर। अनय = अनीति के। अपाय = चाल, हर्ज। साय = अंत। दादि = मदद, इन्साफ़। गोमुख = भयङ्कर मुँह। कषाय = लाल। भाय = भाव, आशय। निकाय = समूह।

[ २२१ ]

नाथ कृपाहीको पंथ चितवत दीन हौं दिन राति।
होइ धौं केहि काल दीनदयालु जानि न जाति ॥१॥
सुगुन ज्ञान विराग भक्ति सुसाधननि की पाँति।
भजे विकल विलोकि कलि अघ अवगुननि की थाति ॥२॥
अति अनीति कुरीति भइँ भुइ तरनिहूँ ते ताति।
जाउँ कहँ बलिजाउँ कहुँ ना ठाउँ मति अकुलाति ॥३॥
आप सहित न आपनो कोउ बाप कठिन कुभाँति।
स्यामघन सींचिये तुलसी सालि सफल सुखाति ॥४॥

हे नाथ! मैं ग़रीब रात दिन तुम्हारी कृपा की राह देखता रहता हूँ। पर हे दीनदयाल! ( वह कृपा ) किस समय होगी यह नहीं जानता॥ १ ॥ ( क्षमा, दया, शांति, संतोष आदि ) सुन्दर गुण, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति और सुन्दर सुन्दर साधनों की पाँति, ये तो कलियुग को देखते ही व्याकुल होकर भग गये और ( पर-स्त्री-गमन आदि ) पाप और ( वैर-विरोध आदि ) अवगुणों की स्थिरता हो गई ( अर्थात् वे रह गये ) ॥ २ ॥ और बड़ी अनीति और बुरी रीति फैल गई कि जिससे धरती तरनि नाम सूर्य्य से भी

तत्ती हो गई। तुम्हारी बलैया लूँ मैं कहाँ जाऊँ, कहीं जगह नहीं है और मेरी मति घबरा रही है॥ ३॥ और हे बाप! अपनी देह समेत अपना कोई नहीं है और जो हैं सो कठोर और बुरी भाँति के हैं (भाव—अपने मतलब के साथी हैं) इसलिए तुलसीदासरूपी धान की फली फलाई खेती सूखी जाती है उसे हे श्याम मेघ के समान शरीरवाले! तुम मेघरूप होकर सींचो॥ ४॥

[ २२२ ]

बलि जाउँ और कासों कहौं।
सदगुनसिंधु स्वामि सेवक हित कहुँ न कृपानिधि सों लहौं॥१॥
जहँ जहँ लोभ लोल लालचवस निजहित चित चाहनि चहौं।
तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु कोटर गहौं॥२॥
काल सुभाउ करम विचित्र फलदायक सुनि सिर धुनि रहौं।
मोको सकल सदा एकहिरस दुसह दाह दारुन दहौं॥३॥
उचित अनाथ होइ दुखभाजन भयो नाथ किंकर नहौं।
अब राउरो कहाय न बूझिये सरनपाल साँसति सहौं॥४॥
महाराज राजीव विलोचन मगन पाप संताप हौं।
तुलसी प्रभु जब जेहि तेहि विधि राम निबाहे निरबहौं॥५॥

मैं तुम्हारी बलि जाता हूँ और (अपने दुख को) किससे कहूँ। सुन्दर गुणों का समुद्र और दासों पर हित करने वाला ऐसा स्वामी कृपानिधान की बराबर कहीं भी नहीं पाता॥ १॥ जहाँ जहाँ लोभ और लालच के वश अपने चंचल मन में भले की कामना चाहता हूँ, वहाँ वहाँ से ही जैसे उल्लू सूरज की तरफ़ देखते ही भटक कर बुरे वृक्ष के कोटरे में घुस जाता है उसी भाँति मैं भी (जीविका के लोभ से धनवानों के पास जाता हूँ और उनका बुरा स्वभाव देख) अपनी कुटी में आ घुसता हूँ॥ २॥ काल, स्वभाव और कर्म (जो जगत् के कारण हैं) उनको अनोखे फल का देने वाला सुन कर अपने सिर को धुन धुन कर रह जाता हूँ। और मुझे तो ये सब सदा एक से हैं (अर्थात् कभी सुखदाई न हुए) इस लिए दुसह और कठिन जलन से जलता रहता हूँ॥ ३॥ सो हे नाथ! (जब तक) मैं तुम्हारा दास नहीं हुआ था और अनाथ था

( तब तक तो ) दुख का पात्र हुआ सो ठीक था, पर अब तुम्हारा कहाता हूँ और तुम शरणागतों के पालने वाले होकर मुझे नहीं पूछते और मैं दुःख सह रहा हूँ ( ऐसा नहीं चाहिए ) ॥ ४ ॥ हे महाराज कमलनयन रामजी ! मैं पाप और संताप में डूब रहा हूँ । हे राम ! तुम समर्थ हो तुलसीदास तो जब और जिस विधि से तुम निभाओगे उस विधि से ही निभेगा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तरनि = सूर्य्य । राजीव = कमल । विलोचन = नेत्र ।

[ २२३ ]

आपनो कबहूँ करि जानि हो ।
राम गरीबनिवाज राजमनि विरद लाज उर आनिहो ॥१॥
सीलसिंधु सुंदर सब लायक समरथ सद्गुन खानि हो ।
पाल्यो है पालत पालहुगे प्रनत प्रेम पहिचानि हो ॥२॥
वेद पुरान कहत जग जानत दीनदयालु दीन दानि हो ।
कहि आवत बलि जाउँ मनहुँ मेरी बार विसारे बानि हो ॥३॥
आरत दीन अनाथनि के हित मानत लौकिक कानि हो ।
है परिनाम भलो तुलसी को सरनागत भय भानिहो ॥४॥

हे राम ! कभी मुझे तुम अपना करके भी जानोगे । हे राम ! तुम ग़रीबनिवाज और राजाओं के शिरोमणि हो । अपने बाने की लाज ( कभी तो ) हृदय में लाओगे ॥ १ ॥ तुम शीलता के समुद्र, सुन्दर, सब लायक़, समर्थ और सब अच्छे गुणों की खान हो । ( इस संसार को ) पहले तुमने पाला है, अब पाल रहे हो और फिर भक्तों के प्रेम को पहिचानोगे ॥ २ ॥ वेद और पुराण कहते हैं और संसार जानता है कि तुम ग़रीबों पर दया करने वाले और ग़रीबों को दान देने वाले हो । मैं तुम्हारी बलि जाता हूँ कहने में तो आता ही है कि मेरी बिरियाँ तो तुम मानों अपनी टेव को ही भूल गये ॥ ३ ॥ ( कदाचित् ) तुम दुखी, दीन और अनाथों के हितू होने पर भी लोक की कानि ( भय ) मानते हो ( अर्थात् कोई यह न कहे कि मुझ से नीच को कैसे ग्रहण किया ) पर तुलसीदास का अन्त में भला ही होगा क्योंकि तुम शरणागत के भय को भानि कहिए दूर करने वाले हो ॥ ४ ॥

[ २२४ ]

रघुवरहि कबहूँ मन लागि है ।
कुपथ कुचाल कुमति कुमनोरथ कुटिल कपट कब त्यागि है ॥१॥
जानत गरल अमिय विमोहवस अमिय गनत करि आगि है ।
उलटी रीति प्रीति अपनी की तजि प्रभुपद अनुरागि है ॥२॥
आखर अरथ मंजु मृदु मोदक राम प्रेम पगि पागि है ।
ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामि सों, पाइ है जो मुँह माँगि है ॥३॥
तू यहि विधि सुख सयन सोइहै जिय की जरनि भूरि भागि है ।
रामप्रसाद दासतुलसी उर रामभगति जोग जागि है ॥४॥

हे मन ! तू कभी रामचन्द्रजी से भी लगेगा और बुरा मार्ग, बुरी चाल, बुरी बुद्धि, बुरी इच्छा और छल इनको हे कुटिल ! तू कब छोड़ेगा ॥ १ ॥ तू अधिक अज्ञान के वश ज़हर को अमृत समझता है और अमृत को आग के बराबर गिनता है। (अर्थात् विषय में पड़ कर रामभक्ति से मुख छिपाता है)। इस उलटी रीति को और (विषय से) अपनी प्रीति को छोड़ कर रामचन्द्रजी के चरणों में (कब) प्रीति करेगा ॥ २ ॥ (भगवान् के यश के) अक्षर और उनके अर्थ सोई भये मंजु नाम सुन्दर नरम नरम लड्डू उन्हें रामचन्द्रजी के प्रेमरूपी पाग में (कब) पागेगा । (अर्थात् प्रीति-समेत भगवान् के यश को कब गावेगा । जो कहो कि इससे क्या होगा तहाँ कहते हैं कि) ऐसे गुणों को गाकर और स्वामी को रिझा कर जो कुछ मुख से माँगेगा सोई पावेगा ॥ ३ ॥ और तू इस साधन से सुख की सेज पर सोवेगा और तेरे मन की भारी जलन भाग जायगी। और रामचन्द्रजी के प्रसाद से हे तुलसीदास! तेरे हृदय में रामचन्द्रजी की भक्तिरूपी योग जगेगा (अर्थात् देहाभिमान का नाश होकर तुझे रामचन्द्रजी की भक्ति मिलेगी) ॥ ४ ॥

[ २२५ ]

भरोसो और आइहै उर ताके ।
कै कहूँ लहै जो रामहि सो साहब कै अपने बल जाके ॥१॥

कै कलि काल कराल न सूझत मोहमार मद छाके।
कै सुनि स्वामि सुभाउ न रह्यौ चित जो हित सब अँग थाके॥२॥
हौं जानत भलिभाँति अपनपौ प्रभु सो सुन्यो न साके।
उपल भील खग मृग रजनीचर भले भये करतब काके॥३॥
मोको भयो रामनाम सुरतरु सो राम प्रसाद कृपालु कृपा के।
तुलसी सुखी निसोच राज ज्यों बालक माय बबा के॥४॥

उसके हृदय में और देवता का भरोसा आवेगा कि, जिसे या तो कहीं रामचन्द्रजी सा स्वामी मिल जाय या जिसको (साधन आदि का) अपना बल होगा॥ १॥ या जिसको कठिन कलियुग का समय नहीं सूझता हो या जो मोह और कामरूपी मद में छक रहा हो या जिसके चित्त में स्वामी का (ग़रीबनिवाज) स्वभाव सुन कर भी न रहा हो कि जो (रामचन्द्र स्वामी) सब अंग कहिए साधनों से हारे हुओं से भी हित करते हैं॥ २॥ और मैं तो अपने कर्तव्यों को अच्छी भाँति से जानता हूँ (कि मुझ से जप, तप, व्रतादि नहीं हो सकता) और ऐसा दूसरे स्वामी का (पतित पावन आदि) साका (अर्थात् बहादुरी का काम) भी नहीं सुना है (फिर किसका भरोसा करूँ। देखिए कि) पाषाण (अहिल्या), भील (निषाद), खग (गीध), मृग (मारीच), रजनीचर (विभीषण) इन में से किस के काम अच्छे हुए थे (अर्थात् किसी के नहीं हुए फिर सबको ही भगवान् ने तारा)॥ ३॥ मेरे लिए तो राम-नाम कल्प-वृक्ष हो गया सो वह भी कृपालु रामजी की कृपा के प्रसाद से हुआ है। हे तुलसी! तू उससे ऐसा सुखी और बे खटके है कि जैसा बालक मा-बाप के राज्य में होता है॥ ४॥

[ २२६ ]

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो॥१॥
करम उपासन ज्ञान वेदमत सो सब भाँति षरो।
मोहिं तो स्रावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो॥२॥
चाटत रहौं स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।

सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेषत परुसि धरो ॥३॥
स्वारथ औ परमारथ हूँ को नहिं कुंजरो नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषानन करि कपिकटक तरो ॥४॥
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरें तो माय बाप दोउ आखर हौं सिसुअरनि अरो ॥५॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीभ गरो।
अपनो भलो राम नामहिं ते तुलसिहिं समुझि परो ॥६॥

जिसको दूसरे का भरोसा हो वह करो मुझे तो कलियुग में रामचन्द्रजी का नाम कल्पवृक्ष है। वह कल्याणरूपी फलों से फला है (अर्थात् उसी से सब कल्याण मिल सकते हैं) ॥ १ ॥ कर्म, उपासना, ज्ञान ये तीनों वेद के मत से हैं (अर्थात् इनका करना वेद में लिखा है) सो सब भाँति से खरा है (खोटा नहीं)! परन्तु मुझे तो सावन के अंधे की तरह हरा ही हरा रंग दीखता है (अर्थात् जैसे जो सावन के महीने में हरी हरी घास देखते देखते अंधा हो जाता है उसे और महीनों में भी हरा ही हरा सूझता है ऐसे ही मेरा सब काम तो रामजी से हुआ है। मुझे कर्म, उपासना और ज्ञान से क्या मतलब। क़ायदे की बात है कि जिसका काम जिससे होगा उसे तो वही वह सूझेगा) ॥२॥ पहले मैं कुत्ते की तरह (जूठी) पत्तलों को चाटता रहा पर कभी मेरा पेट नहीं भरा (अर्थात् पहले मैंने तरह तरह के साधन किये परन्तु मेरी कामना कभी पूरी नहीं हुई) सो (अब) मैं रामजी का नाम स्मरण करने से अमृत रस का परोसा धरा देखता हूँ (अर्थात् अब सब कामनाओं से पेट भर रहा है) ॥ ३ ॥ यह (राम-नाम) स्वारथ और परमारथ दोनों के लिए है इसमें "हाथी या मनुष्य" की सी (झूठ सच बात) नहीं है। (अर्थात् मैं युधिष्ठिर की सी सत्य झूठ मिली नहीं कहता कि (१) हाथी मरा या मनुष्य (अश्वत्थामा)। क्योंकि राम नाम

(१) जब कौरवों की ओर से द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना का नाश करने लगे और अर्जुन इन अपने गुरु से लड़ने के लिए राज़ी नहीं हुए तब कृष्णजी की सलाह से भीमसेन ने तो अश्वत्थामा नाम के हाथी को मारा और युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य के पास जाकर "अश्वत्थामा मारे गये" यों साफ़ साफ़ ख़ूब ज़ोर से कह कर धीरे से यों भी कह दिया कि हाथी मारा गया। पहली बात तो द्रोणाचार्य ने सुन ली, पर पिछली नहीं सुनी। यों युधिष्ठिर की बात पर विश्वास कर पुत्र-शोक के कारण उनके छक्के छूट गये और इस बीच में धृष्टद्युम्न ने उनका शिर काट धड़ से अलग करदिया—इसकी पूरी कथा महाभारत में है।

के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण ) सुना जाता है कि समुद्र में पत्थरों का पुल बना कर बन्दरों की फ़ौज़ उतर गई ॥ ४ ॥ ( जो कहो कि अन्य जप, तप आदि का क्यों निरादर करते हो उससे भी तो लोगों का भला होता है तहाँ कहते हैं कि ) जहाँ जिसकी प्रीति और भरोसा है वहाँ ही उसका काम सिद्ध होता है। मेरे तो मा और बाप ये दोनों ( रा+म ) अक्षर ही हैं। और उन ही से मैं बालक की तरह हठ से अड़ करता हूँ ( अर्थात् जैसे बालक माता पिता से किसी वस्तु को लेने की हठ करता है तो लेकर पीछा छोड़ता है तैसे मैं भी जो माँगता हूँ वह राम से लेकर रहता हूँ ) ॥ ५ ॥ और जो इसमें मैं कुछ ( भेद ) रख कर अर्थात् झूठ कहता होऊँ तो शिवजी की सौगन्द है और मेरी जीभ जल कर गिर जाय। तुलसीदास को तो अपना भला राम-नाम से ही जान पड़ा है ॥ ६ ॥

[ २२७ ]

**नाम राम रावरोई हितु मेरे।**
**स्वारथ परमारथ साथिन्ह सों भुज उठाइ कहौं टेरे ॥१॥**
**जननी जनक तज्यौ जनमि करम विनु विधिहुँ सृज्यौ हौं अवडेरे।**
**मोहसे कोउ २ कहत राम को सो प्रसंग केहि केरे ॥२॥**
**फिरौं ललात बिनु नाम उदरलगि दुखउ दुखित मोंहिं हेरे।**
**नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं वबुर बहेरे ॥३॥**
**साधत साधु लोक परलोकहु सुनि गुनि जतन घनेरे।**
**तुलसी के अवलंब नाम को एक गाँठि कइ केरे ॥४॥**

हे राम! तुम्हारा नाम ही मेरा तो हित करने वाला है। ( माता पिता आदि ) स्वार्थ के और ( साधु ब्राह्मण आदि ) परमार्थ के साथियों से भुजा उठा कर पुकार कर कहता हूँ ॥ १ ॥ क्योंकि माता-पिता ने जन्म देकर और कर्महीन जान कर मुझे छोड़ दिया था और विधाता ने भी मुझे अभागा पैदा किया था, तो भी कोई कोई अज्ञान से मुझे राम का दास कहते हैं वह किसके प्रसंग से कहते हैं ( अर्थात् राम-नाम के प्रसंग से ही कहते हैं क्योंकि जिस राम के दास होने से शिवादिक देवता भी अपनी बड़ाई मानते हैं वह मुझसे अभागे को भी मिली ) ॥ २ ॥ मैं बिना राम-नाम लिये पेट के लिए ललचाता फिरता था और मुझे देख कर दुःख भी दुखी होता था। और अब उस नाम

के अनुग्रह से मैं बबूर और बहेड़े ( के वृक्षों ) से आम के फल लेता हूँ ( अर्थात् जो दुष्ट मुझे नीच जान धक्का और गाली देते थे वे राम-नाम के लेने से मेरी पूजा करते हैं ) ॥ ३ ॥ और सन्त लोग ( शास्त्रों को ) सुन कर और ( बुद्धि से ) विचार कर अनेक उपायों से इस लोक और परलोक का साधन करते हैं, पर तुलसीदास को तो राम नाम का ही भरोसा है जैसे कि ( किसी वस्तु में डोर के ) कितने ही लपेटे लगाओ पर गाँठ तो एक ही है ( उसीसे सब लपेटे पक्के रहते हैं, ऐसे ही राम-नाम से सब साधन हो सकते हैं ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—अबडेरे = ( अ नहीं बडेरे कहिए बड़ा ) भाग्यहीन । हेरे = देख कर । रसाल = आँब । फेरे = फेरे, लपेटे ।

[ २२८ ]

प्रिय राम नामते जाहि न रामो ।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य परिनामो ॥१॥
सकुचत समुझि नाममहिमा मद लोभ मोह कोह कामो ।
राम नाम जपि निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो ॥२॥
नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो ।
जो सुनि सुमिरि भागभाजन भइ सुकृत सील भीलभामो ॥३॥
वालमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो ।
उलटे पलटे नाम महातम गुँजनि जितो ललामो ॥४॥
राम ते अधिक नाम करतब जेहि किए नगर गत गामो ।
भयेउ बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदासहु से बामो ॥५॥

जिसको रामजी राम-नाम से प्यारे नहीं हैं । ( भाव—और साधनों की क्या गिनती है राम से भी अधिक जिसे उनका नाम प्यारा है ) उसका कठिन कलियुग में भी आदि, मध्य और अंत में भला होगा ॥ १ ॥ नाम की महिमा (१) को समझ कर मद, लोभ, मोह,

( १ ) हनुमद्वाक्यम्—राम त्वत्तोधिकं नाम इति मे निश्चला मतिः । त्वयातु तारितायोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम् ॥ अर्थात् हे राम ! तुमसे तुम्हारा नाम अधिक है यह मेरी निश्चल मति है क्योंकि तुमने तो अयोध्या को ही तारा और नाम ने तीनों भुवनों को तार दिया ।

क्रोध और काम ये भी शरमाते हैं ( अर्थात् अपना बल नहीं कर सकते हैं ) और राम-नाम के जप में जो लगे रहते हैं उन भक्तों पर कड़ी धूप भी छाया करती है ( अर्थात् उनको दुखरूप संसार भी सुखी करता है ) ॥ २ ॥ नाम के प्रभाव से पत्थर में कमल पैदा हुआ ऐसा कोई कहे तो भी सच है क्योंकि जिस ( राम-नाम ) को सुनने और जिसका स्मरण करने से भील की स्त्री ( शवरी ) भी शील, पुण्य और भाग्य की पात्र हो गई ( अर्थात् सुशील-पुण्यात्मा और भाग्यवती हो गई ) ॥ ३ ॥ और वाल्मीकि तथा अजामेल इन के पास साधन सामान कुछ भी तो नहीं था, परन्तु उलटे पलटे नाम के माहात्म्य से घुँघचियों ने रत्नों को जीत लिया ( अर्थात् वाल्मीकि उलटा नाम मरा मरा जपते जपते ऐसे महामुनि हुए कि सौ कोटि रामायण भविष्य रच सके । और अजामेल ने सीधा नाम नारायण कह पुत्र को पुकारा सो भी तर गया, मानों दुनिया में ये दोनों घुँघची के समान थे सो रत्नसदृश पूजने योग्य हो गये ) ॥४॥ रामचन्द्रजी से नाम का कर्तब अधिक है कि जिसने गाँवों को शहर में बसा दिया ( अर्थात् संसार के नीच जीव यवन आदि भी वैकुण्ठवासी हो गये ) और जिस ( नाम ) को जप कर तुलसीदास सरीखा टेढ़ा भी डङ्का देकर सीधा हो गया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—परिनाम = अन्त । कोह = गुस्सा । सरोरुह = कमल । भामो ( भामा ) = स्त्री । सामो = समान । गुंजन = चिरमिटी । ललाम = लाल । गामो = गाँव । वाम = टेढ़ा । दाहिना = सीधा ।

[ २२९ ]

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं ।
जानकी जीवन जनम जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं ॥
तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं ।
तुम्हसों कपट करि कल्प २ कृमि ह्वै हों नरक घोर को हौं ॥२॥
कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहि कियो भुरूट भौंर को हौं ।
तुलसिदास सीतल नित एहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हौं ॥३॥

यदि मैं कहूँ कि मैं और का हूँ तो मेरी जीभ गल जायगी । क्योंकि हे जानकी-जीवन ! इस संसार में जन्म जन्म में ( अर्थात् जब जब जन्म लिया है तब तब ) तुम्हारे ही टुकड़े का जिलाया हुआ हूँ ॥ १ ॥ मैं तीनों लोकों में और तीनों कालों में तुम्हारे जोड़ का हित करनेवाला नहीं देखता । तुमसे कपट करता होऊँ तो कल्प कल्प में मैं

घोर नरक का कीड़ा होऊँगा ॥ २ ॥ क्या हुआ जो कलियुग ने मेरे मन को मैला कर उसे भँवर का भुरूट वा भैानुवा नाम कीड़ा कर दिया ( अर्थात् मेरी कुछ हानि नहीं है जैसे काले रङ्ग का छोटा सा भुरट नाम भँवरा पानी के ऊपर ही फिरा करता है भीतर नहीं डूबता ऐसे ही मेरा मन संसार के विषयों में ऊपर से लगता है नाम के प्रताप से उन में डूबता नहीं) तुलसीदास इस बल से नित्य शीतल रहता है कि मैं बड़े ठिकाने और जगह का हूँ ( अर्थात् रघुनाथजी के दरबार का .ग़ुलाम हूँ इसलिए भवसागर में डूब नहीं सकता ) ॥ ३ ॥

[ २३० ]

अकारन को हितू और को है ।
विरद गरीबनिवाज कौन को भौंह जासु जन जोहै ॥१॥
छोटो बड़ो चहत सब स्वारथ जो विरंचि विरचो है।
कोल कुटिल कपि भालु पालिबो कौन कृपालुहि सोहै ॥२॥
काको नाम अनख आलस कहें अघ औगुननि बिछोहै ।
को तुलसी सो कुसेवकु संग्रह्यो सठ सब दिन साँई द्रोहै ॥३॥

बिना कारण ( रामजी के सिवा ) दूसरे का हित करने वाला कौन है । ग़रीबनिवाज बाना किसका है कि भक्तजन जिसकी भोंह को तकता रहे ॥ १ ॥ क्योंकि ब्रह्मा ने छोटा और बड़ा जिसे पैदा किया है सब अपना अपना मतलब चाहते हैं ( अर्थात् सब स्वारथ के साथी हैं ) । दुष्ट, भील, बन्दर, रीछ इनको पालना ( सिवाय रामजी के ) और किस दयावान् को शोभा देता है ॥२॥ और किस का नाम अनख ( क्रोध ) और आलकस से भी लेने पर पाप और औगुनों को दूर कर देता है । और किसने तुलसी सरीखे बुरे सेवक को शरण में रक्खा है जो मूर्ख सब दिन अपने स्वामी से वैर रखता है ॥ ३ ॥

[ २३१ ]

और मोहिं कोहै काहि कहिहौं ।
रंक राज ज्यों मन को मनोरथ केहि सुनाइ सुख लहिहौं ॥१॥
जमजातना जोनि संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं ।

मोको अगम सुगम तुम्हको प्रभु तउ फल चारि न चहिहौं ॥२॥
खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं ।
एहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं या विनु परमपदहु दुख दहिहौं ॥३॥
इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहि हौं ।
दीजे वचन कि हिये आनिये तुलसी को पन निरवहिहौं ॥४॥

हे रामचन्द्रजी ! मेरे दूसरा कौन है और किससे मैं कहूँगा । मैं हूँ तो ग़रीब पर मेरे मन का मनोरथ राजाओं का सा है ( अर्थात् जप, तप, उपासना आदि तो पास नहीं और चाहता हूँ यह कि तुम्हारे सेवकों का शिरोमणि कहाऊँ ) सो उस ( मनोरथ ) को किसे सुना कर सुख पाऊँगा ॥ १ ॥ यमयातना ( अर्थात् नरक आदि के दुःख ) और (गर्भवास के) कठिन क्लेश मैंने सब योनियों में सहे हैं और सहूँगा और हे प्रभो ! (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ) चारों फल मुझे तो कठिन हैं पर तुम्हें सहज हैं ( अर्थात् तुम दे सकते हो ) तो भी मैं नहीं चाहूँगा ॥ २ ॥ ( जो कहो कि कुछ तो चाहना हो ही गी ऐसा क्या जो न हो तहाँ कहते हैं कि ) हे राम ! मैं तो तुम्हारे खेलने का पक्षी, मृग, वृक्ष और सेवक होकर ही रहूँगा ( अर्थात् जो पक्षियोनि में जन्म लूँ तो तुम्हारे खेलने का मोर, चकोर, शुक, सारिका आदि होऊँ, जो मृग कहिए पशु-योनि में जन्म पाऊँ तो तुम्हारा हाथी, घोड़ा, बैल और हरिण आदि होऊँ, जो वृक्षों में जन्म लूँ तो तुम्हारे अंगूर, अनार, शन्तरे आदि का वृक्ष होऊँ और मनुष्य-योनि में जन्म लूँ तो तुम्हारा भक्त होऊँ ) । इस नाते से नरक में भी सचु ( सुख ) पाऊँगा और इसके बिना परमपद कहिए वैकुण्ठ में भी दुःख से जलूँगा । ( भाव—यह है कि तुम्हारा किंकर होने से सब जगह आनन्द पाऊँगा ) ॥ ३॥ दास के जी में जितनी लालसा है उसे कहता हूँ कि तुम्हारी जूती पकड़े रहूँगा ( अर्थात् जब कभी राज-दरबार में जाओगे तो बाहर जूतियों की रखवाली किया करूँगा ) या तो वचन दे दीजिए या इस बात को मन में ही रखिए कि तुलसीदास का हठ पूरा करूँगा ॥ ४ ॥

[ २३२ ]

दीनबंधु दूसरो कहँ पावों ।

को तुम विनु पर पीर पाइहै केहि दीनता सुनावौं ॥१॥
प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक जहँ २ चितहि डोलावौं।
इहै समुझि सुनि रहौं मौनहीं कहि भ्रम कहा गँवावौं ॥२॥
गोपद बुडिबे जोग कर्म करौं बातनि जलधि थहावौं।
अति लालची काम किंकर मन मुख रावरो कहावौं ॥३॥
तुलसी प्रभु जिय की जानत सब अपनो कछुक जनावौं।
सो कीजै जेहि भाँति छाँडि छल द्वार परो गुन गावौं ॥४॥

दूसरा दीनबन्धु कहाँ पाऊँगा। तुम बिना दूसरे के लिए कौन दुःख पावेगा। और किसको मैं अपनी ग़रीबी सुनाऊँ ॥ १ ॥ जो समर्थ हैं उनके मन में दया नहीं है और जो कृपालु हैं (अर्थात् जिनके मन में दया है) वे कुछ लायक़ नहीं हैं कि जहाँ जहाँ अपने मन को डुलाऊँ सो यह समझ कर और सुन कर चुप रह जाता हूँ क्योंकि कह कर भी अपना भरम क्यों खोऊँ ॥ २ ॥ और गऊ के खुर में डूबने लायक़ बुरे बुरे तो कर्म करता हूँ ( कि शरम के मारे चिल्लू भर पानी में डूब मरूँ ) और बातों से समुद्र की थाह लेता हूँ ( अर्थात् बड़ी लम्बी चौड़ी वेदान्त की बातें मारता हूँ )। और मेरा मन तो बड़ा लोभी और काम का ग़ुलाम है ( अर्थात् परधन-हरन और विषय में ही लगा रहता है ) और अपने मुँह से आपका ( दास ) कहाता हूँ ॥ ३ ॥ हे प्रभो! तुलसी के मन की तो तुम ( बुरी भली ) सब जानते ही हो तोभी मैं कुछ अपनी बात जतलाता हूँ कि वही करो जिससे मैं कपट को छोड़ कर ( अर्थात् झूठी संसारी विषय-वासना को छोड़ कर शुद्ध हृदय से ) तुम्हारे द्वार पर पड़ा हुआ तुम्हारे गुण गाया करूँ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—भ्रम ( भरम ) = भेद।

[ २३३ ]

मनोरथ मन को एकै भाँति।
चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल मनसा अघ न अघाति ॥१॥
करम भूमि कलि जनम कुसंगत मति विमोह मद माति।

करत कुजोग कोटि क्यों पैयत परमारथ पद साँति ॥२॥
सेइ साधु गुरु सुनि पुरान स्रुात बूझ्यो राग बाजीताँति।
तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरुसो ज्यों दरपन मुखकाँति ॥३॥

मन का मनोरथ भी एक ( अनोखी ) भाँति का है। मुनियों के मन को भी कठिन ( अर्थात् जहाँ मुनियों के मन भी नहीं पहुँच सकते ) ऐसे पुण्य के फल ( अर्थात् मुक्ति ) को तो चाहता है और पाप करने से मनसा पूरी नहीं होती ( फिर मुक्ति की क्या आशा है ) ॥ १ ॥ कर्मभूमि होने पर भी ( अर्थात् ऐसी भूमि कि जिसमें किया हुआ वृथा न जाय ) कलियुग में जन्म, बुरी संगति, बुद्धि का महा अज्ञानरूपी मद में मतवाला होना, और फिर करोड़ों बुरे बुरे काम करना इनसे परमारथ पद और शान्ति कैसे मिल सकती है ॥२॥ साधु और गुरु की सेवा करने से, वेद और पुराण के सुनने से वह ऐसी समझ पड़ती है कि जैसी (कहावत है कि) ताँत बाजी और राग पहचाना (अर्थात् जैसे सारङ्गी बजी और सुनने वालों ने जान लिया कि यह राग गावेगा वैसेही गुरु की सेवा की और पुराण सुना कि परमपद और शान्ति का मिलना निश्चय हो गया ) हे तुलसी-दास ! प्रभु रामचन्द्रजी का स्वभाव कल्पवृक्ष तो है ( अर्थात् जो माँगो सो पाओ ) पर ऐसा है जैसे दर्पण में मुँह की शोभा ( अर्थात् दर्पण में टेढ़ा मुँह कर देखो तो टेढ़ा दीखता है सीधा कर देखो तो सीधा दीखता है ऐसे ही अच्छे बुरे कर्मों का भी फल मिलता है अच्छे कर्म करो अच्छा फल मिलेगा बुरा करोगे बुरा फल मिलेगा ) ॥ ३ ॥

[ २३४ ]

जनम गयो बादिहि बर बीति।
परमारथ पाले न पर्यो कछु अनुदिन अधिक अनीति ॥१॥
खेलत खात लड़कपन गो चलि जौवन जुवतिन्ह लियो जीति।
रोग बिजोगसोक स्रम संकुल बड़ी बय बृथहि अतीति ॥२॥
राग रोष इरषा बिमोह बस रुची न साधु समीति।
कहे न सुने गुनगन रघुबर के भइ न रामपद प्रीति ॥ ३ ॥

हृदय दहत पछिताय अनल अब सुनत दुसह भवभीति।
तुलसी प्रभुते होइ सो कीजिय समुझि विरद की रीति ॥४॥

सुन्दर जन्म वृथा ही बीत गया। क्योंकि परमारथ तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा और हर दिन अधिक अधिक अनीति होती गई ॥ १ ॥ खेलते खाते लड़कपन चला गया और जवान स्त्रियों ने यौवन जीत लिया। और रोग, (पुत्र, कलत्रादि के) वियोग का शोक तथा श्रम इनमें बुढ़ापा वृथा बीत गया ॥ २ ॥ राग, रोष, ईर्ष्या और महा अज्ञान इनके वश सन्तों की सभा अच्छी नहीं लगी। रामचन्द्रजी के गुणों के समूहों को न (अपने मुँह से) कहा और न सुना और न राम के चरणों में प्रीति हुई ॥ ३ ॥ और अब संसार का कठिन भय सुन कर पछतावारूपी अग्नि से छाती जलती है। सो तुलसी के लिए अपने बाने की रीति को समझ कर जो कुछ प्रभु से हो सके सो करो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—वाद = वृथा। संकुल = व्याप्त, में। समीति (समिति) = सभा। भीति = डर।

[ २३५ ]

ऐसेहि जनम समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन विराने ॥१॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल साने।
सूखत वदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि ते अधिक करि माने ॥२॥
सुख हित कोटि उपाइ निरंतर करत न पाँय पिराने।
सदा मलिन पंथ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने ॥३॥
यह दीनता दूरि करिबे कों अमित जतन उर आने।
तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने ॥४॥

इसी भाँति बहुत से जन्म बीत गये। प्राणों के पति ऐसे रामचन्द्रजी से स्वामी को छोड़ कर और दूसरों के चरणों की सेवा करता है ॥१॥ मूरख जीव की जो खोटे, कायर, दुष्ट और निरे कलियुग के पापों से सने हुए हैं उनकी सराहना करते करते मुख सूखता है और उनको भगवान् से भी अधिक समझता है ॥ २॥ और अपने सुख के लिए रात दिन करोड़ों उपाय करते करते तेरे पाँव नहीं दुखते। और तेरा हृदय मार्ग

के जल के समान सदा मैला ही बना रहता है; कभी स्थिर नहीं होता ।।३।। इस ग़रीबी के दूर करने के लिए अनगिनती उपाय मन में विचारे हैं, पर हे तुलसी! चिन्तामणि के विना पहचाने चित्त की चिन्ता नहीं मिटती है। (भाव यह है कि जब राम-भक्ति से सन्तोष-धन मिले तब ग़रीबी की चिन्ता मिट सकती है नहीं तो १००) मिले २००) की चिन्ता होगी और ऐसे ही बढ़ती जायगी। इन्द्रासन मिलने पर भी नहीं मिटेगी) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—निरंतर = सदा। चिंतामनि = एक प्रकार का रत्न है कि जिससे जो माँगो सो मिले।

[ २३६ ]

जो पै जिय जानकीनाथ न जाने।
तौ सब करम धरम स्रमदायक ऐसइ कहत सयाने ॥१॥
जे सुर सिद्ध मुनीस जोगविद वेद पुरान बखाने।
पूजा लेत देत पलटे सुख, हानि लाभ अनुमाने ॥२॥
काको नाम धोखेहू सुमिरत पातकपुंज सिराने।
विप्र वधिक गज गीध कोटि खल कौन के पेट समाने ॥३॥
मेरु से दोष दूरि करि जन के रेनु से गुन उर आने।
तुलसिदास तेहि सकल आस तजि भजहि न अजहुँ अयाने ॥४॥

हे जीव! जो तूने जानकीनाथ को जी में नहीं जाना तो (तेरे जप, तप आदि) सब कर्म और धर्म श्रम के देनेवाले हैं (अर्थात् सब वृथा हैं) चतुर मनुष्य ऐसा ही कहते हैं ॥ १ ॥ जो देवता, सिद्ध और मुनीश्वर योग के जानने वाले हैं (उनके विषय में) वेद पुराण कहते हैं कि वे पूजा लेकर उसके बदले में (पुत्र, स्त्री, धन, धाम आदि का) सुख देते हैं, पर अपने हानि या लाभ की अटकल करते रहते हैं (अर्थात् इतना नहीं देते कि जिससे फिर पूजा भजन करना छोड़ दे) ॥ २ ॥ और किस का नाम धोखे (१)

(१) आदिपुराण में कहा है—
श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि। तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः ॥
अर्थात् जो मनुष्य पृथ्वी पर श्रद्धा से वा धोखे से भी नाम का उच्चारण करते हैं हे पार्थ! उनको राम-नाम के प्रसाद से कभी भय नहीं होता।

से भी सुमिरने से पापों के समूह दूर हो जाते हैं। विप्र ( रावण ), वधिक ( निषाद ), हाथी, गीध, ऐसे ऐसे करोड़ों दुष्ट हैं वे किसके पेट में समा गये ( अर्थात् दूसरा कौन है जो इनका उद्धार करता ) ॥ ३ ॥ ( फिर रामजी कैसे गुणग्राहक हैं कि ) भक्तों के सुमेरु पर्वत की बराबर दोषों को दूर करके बालू के कन की बराबर भी उनके गुण को अपने हृदय में रख लेते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि हे मूर्ख जीव! अब भी सब आशाओं को छोड़ कर उनको नहीं भजता है ॥ ४ ॥

[ २३७ ]

काहे न रसना रामहिं गावहि।
निसिदिन पर अपवाद वृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि ॥१॥
नरमुख सुंदर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रविकरजल कहँ धावहि ॥
काम कथा कलि कैरव चान्दिनि सुनत स्रवनदै भावहि।
तिनहिं हटकि कहि हरि कल कीरति करुन कलंक नसावहि ॥
जातरूप मति जुगुति रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहि।
सरन सुखद रविकुल सरोज रवि रामनृपहि पहिरावहि ॥४॥
वाद विवाद स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि।
तुलसिदास भवतरहि तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि ॥५॥

हे जीभ! रामचन्द्रजी को क्यों नहीं गाती है। रात दिन दूसरों की बुराई कह कह कर क्यों वृथा राग बढ़ाती है ॥ १ ॥ मनुष्य के मुखरूपी सुन्दर और पवित्र महल में रह कर उसे मत लजावे। चन्द्रमा के पास रह कर और अमृत को छोड़ कर मृगतृष्णा के पानी के लिए क्यों दौड़ती है ( अर्थात् चन्द्रसमान मुख में रह कर अमृत सम भगवत-यश को छोड़ मृगतृष्णा के समान विषय की बातें क्यों वृथा करती है ) ॥ २ ॥ विषय की बातें कलियुगरूपी कुमोदनी ( के खिलाने ) के लिए चाँदनी रूप हैं और कान लगा कर सुनने से अच्छी लगती हैं। सो उन कानों को ( उधर से ) रोक कर भगवान् की सुन्दर कीर्ति का भजन कर जो कानों के कलङ्क को नाश कर दे ( अर्थात् जिसमें उन्हें विषय की बातें सुनने का कलङ्क न लगे ) ॥ ३ ॥ और हे बुद्धि!

( जैसे मनुष्य सुवर्ण और सुन्दर मणियों का हार बना कर राजाओं की भेट करते हैं ऐसे ही ) तू ( भगवान् का यश सो ही हुआ ) सुवर्ण और ( उनका नाम हुआ ) मणि इन ( दोनों ) का अपनी युक्ति से रच रच कर सुन्दर हार तैयार कर और शरणागत के सुखदाता और सूर्यकुलरूपी कमल को ( खिलाने के लिये ) सूर्य रूप राजा रामचन्द्रजी को पहरा ( अर्थात् भगवान् के यश और नाम की सुन्दर कविता बना कर उनके अर्पण कर कि जिससे तू भी पवित्र हो जाय ) ॥ ४ ॥ और तू वाद और विवाद के स्वाद को छोड़ कर भगवान् को भज और उनके उस रसीले चरित्र में मन लगा कि जिससे तुलसीदास संसार से तर जाय और तू तीनों लोकों में पवित्र यश पावे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—रविकरजल = सूर्य की किरणों का जल—मृगतृष्णा का जल । कैरव = कुमोदनी । जातरूप = सुवर्ण और सुन्दर अक्षर जिसमें हों । जुगुति = युक्ति ( उक्ति ) । रचना = कविता ।

[ २३८ ]

आपनो हित रावरे सो जो पै सूझै ।
तौ जनु तनुपर अछत सीस सुधि क्यों कबंध ज्यों जूझै ॥१॥
निज अवगुन गुन राम रावरे लखि सुनि मति मन रूझै ।
रहनि कहनि समुझनि तुलसी की को कृपालु बिनु बूझै ॥२॥

(हे रामचन्द्रजी !) जो अपना हित अपने से ही होता सूझ पड़े, तो यह (मनुष्य अपनी) देह पर, शिर के होने की सुध भूल कर कबन्ध की तरह क्यों जूझता फिरे ( भाव यह है कि जैसे बिना शिर के भी धड़ थोड़ी देर तक युद्ध किया करता है, अपना पराया कुछ नहीं देख सकता, जो सामने आवे उसी को मारता है क्योंकि जो शिर हो तो अपने पराये, भले, बुरे का ज्ञान रहे ऐसे ही जो इस जीव को आपही अपने बुरे भले का ज्ञान होता तो भगवान् का सुमिरन छोड़ वृथा विषय की बातों में क्यों फँसता ) ॥१॥ हे राम ! अपने तो औगुन और तुम्हारे गुणों को देख कर और सुन कर मेरा मन और बुद्धि दूर भागते हैं ( अर्थात् मन, बुद्धि से बहुतेरा तुम्हारी शरण में आना विचारता हूँ पर अपने औगुन देख कर कुछ अपने भले की आशा नहीं होती ) तुलसी का रहन, कहन और समझन तुम सरीखे दयाल बिना और कौन समझ सकता है ( अर्थात् तुम ही अन्तर्यामी होने से समझ सकते हो ) ॥ २ ॥

शब्दार्थ—अछत = ( अ = नहीं । छत = नाश ) हमेशा रहने वाला । कबन्ध = धड़ । रूझना = छोड़ना ।

[ २३९ ]

जाको हरि दृढ़ करि अँग कर्‍यो।
सोइ सुसील पुनीत वेदविद विद्या गुननि भर्‍यो ॥१॥
उतपति पांडुतनय की करनी सुनि सतपंथ डर्‍यो।
ते त्रैलोक्य पूज्य पावन जस सुनि सुनि लोक तर्‍यो ॥२॥
जो निज धर्म वेद बोधित सो करत न कछु बिसर्‍यो।
बिन औगुन कृकलास कूप मज्जत कर गहि उधर्‍यो ॥३॥
ब्रह्म विसिष ब्रह्मांड दहन छम गर्भ न नृपति जर्‍यो।
अजर अमर कुलिसहुँ नाहिंन वध सो पुनि फेन मर्‍यो ॥४॥
विप्र अजामिल अरु सुरपति ते कहा जो नहिं बिगर्‍यो।
उनको कियो सहाय बहुत उर को संताप हर्‍यो ॥५॥
गनिका अरु कंदरप ते जग महँ अघ न करत उबर्‍यो।
जिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदि भवन धर्‍यो ॥६॥
केहि आचरन भलो मानै प्रभु सो तो न जानि पर्‍यो।
तुलसिदास रघुनाथ कृपा को जोवत पंथ खर्‍यो ॥७॥

भगवान् ने जिसे पक्का करके अंगीकार कर लिया वही सुशील, पवित्र, वेद का जानने वाला और विद्या तथा गुण का भरा पूरा है ॥ १ ॥ (इसका प्रमाण देते हैं कि) पाण्डु के पुत्र (युधिष्ठिर आदि) की उत्पत्ति (१) और (पाँचों का एक द्रौपदी के साथ संभोग करना इस) करनी को सुन कर धर्ममार्ग तक डर गया (भाव—उसके रोम खड़े हो गये कि ऐसे पाप-कर्मों से मैं कैसे रहूँगा) पर वे (भगवान् की कृपा से) तीनों लोक में ऐसे पूज्य और पवित्र हो गये कि जिनके यश (महाभारत) को सुन सुन कर संसार तरने लगा ॥२॥ (नृग राजा) वेदों में समझाये हुए जो अपने धर्म हैं उन्हें करने में कुछ नहीं भूला था और वह बिनाही दोष के गिरगट (२) होकर कुएँ में डूब रहा था उस

(१) पाँचों पाण्डव, धर्मराज, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमार से उत्पन्न हैं पूरी कथा महाभारत में है।
(२) राजा नृग भूल से पहली पुण्य की हुई गाय को दूसरी बार पुण्य करने के कारण ब्राह्मण के शाप से गिरगट हुए ये यह कथा भागवत में है।

को हाथ से खींच कर उसका उद्धार कर दिया ॥ ३ ॥ और ब्रह्माजी का बाण ब्रह्माण्ड के जला देने को समर्थ है उससे राजा (परीक्षित (१) माता के) गर्भ में नहीं जला। और (नमुचि दैत्य) ऐसा अजर अमर कि (इन्द्र के) वज्र से भी नहीं मरा पर वह (भगवान् की कुदृष्टि होते ही मुख से) झाग गिराकर मर गया (अस्त्र शस्त्र की क्या चलाई है) ॥ ४ ॥ और अजामेल ब्राह्मण और इन्द्र से कौन सी बात नहीं बिगड़ी ( अर्थात् अजामेल वेश्या के साथ सब भाँति के कुकर्म करता था और इन्द्र के भी पुराणों में अहिल्या आदि के साथ अनेक तरह के बुरे कर्म करना लिखा है )। उनकी भी ( भगवान् ने ) बहुत सहायता की ( अर्थात् दैत्य राक्षसों को मार इन्द्र को अभय किया और अजामेल को यमदूत नरक को लिये जाते थे सो उसे स्वर्ग भेजा ) और यों उनके मन के सन्तापों को दूर कर दिया ॥ ५ ॥ और वेश्या तथा कामदेव के मारे संसार में पाप करने से कोई भी नहीं बचा ( भाव—वेश्या भी सब को मोह कर पाप में लगाती है और कामदेव भी सब के मन को बाधा करता है ) सो उनके भी कर्मों को पवित्र समझ कर भगवान् ने अपने हृदयरूपी घर में धरा (सो काम तो उनका पुत्र ही है और वेश्या का (२) चरित्र भगवान् ने ऊधोजी को सुनाया ) ॥ ६ ॥ भगवान् किस आचरण से भला मानते हैं सो नहीं जान पड़ता। तुलसीदास तो रघुनाथजी की सुन्दर कृपा की राह देखता रहता है ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—कृकलास = गिरगट। विसिख = बाण। छम = लायक़। अजर = जो बूढ़ा न हो। कुलिस = वज्र। कन्दर्प = कामदेव। खरयौ = अच्छा।

[ २४० ]

सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि राम तुम रीझे।
गनिका गीध वधिक हरिपुर गये लै कासी प्रयाग कब सीझे ॥१॥
कबहुँ न डग्यो निगम मग ते पग नृप जग जानि जिते दुख पाये।
गज धौं कौन दीच्छित जाके सुमिरत लै सुनाम वाहन तजि धाये ॥
सुर मुनि विप्र विहाइ बड़े कुल गोकुल जन्म गोपगृह लीन्हों।

(१) जब परीक्षित गर्भवास में थे उनके नाश करने के लिए अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र मारा था पर वे भगवान् की कृपा से बच गये।

(२) पिंगला नाम वेश्या थी—पूरी कथा भक्तमालसार में देखो।

वायों दियो विभव कुरुपति को भोजन जाइ विदुर घर कीन्हों ॥
मानत भलहि भलो भक्तन ते कछुक रीति पारथहि जनाई ।
तुलसी सहज सनेह रामवस और सबै जल की चिकनाई ॥४॥

हे राम ! तुम जिस पर प्रसन्न हुए वही धर्मात्मा, पवित्र और सच्चा है । वेश्या, गिद्ध और निषाद को वैकुण्ठ में लेगये सो इन्होंने काशी और प्रयाग में कब स्नान किये थे ॥ १ ॥ राजा (नृग) का कभी वेद के मार्ग से पैर नहीं डिगा था परन्तु जग जानता है कि उसने जितने दुःख पाये थे । और हाथी ने ( यज्ञ में ) कौन सी दीक्षा ली थी कि नाम लेकर सुन्दर स्मरण करते ही तुम वाहन ( गरुड़ ) को छोड़ कर दौड़े थे ॥ २ ॥ देवता, मुनीश्वर और ब्राह्मण इन बड़े कुलों को छोड़ कर तुमने गोकुल में ग्वाल के घर जन्म लिया । और राजा दुर्योधन की सम्पत्ति का (१) अनादर करके विदुर के घर जाकर भोजन (२) किया ॥ ३ ॥ भगवान् अच्छे भक्तों से भला मानते हैं इसकी थोड़ी सी रीति तुमने अर्जुन (३) को बताई थी । हे तुलसीदास ! रामचन्द्रजी सहज प्रीति के वश हैं और सब ( जितने साधन हैं वे तो ) ऐसे हैं कि जैसे पानी की चिकनाई ( अर्थात् जैसे जब पानी शरीर पर पड़ता है तब शरीर चिकना जान पड़ता है पर धूप लगते ही सूख जाता है ऐसे ही जप, तप आदि से थोड़ी शुद्धता तो होती है पर विषय-बयार लगते ही सब मिट जाती है इससे रामजी वश में नहीं होते ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—निगम = वेद । दीच्छित = वह पुरुष जो यज्ञ में सोम बेल का रस पीता है । बाम = टेढ़ा, अनादर । कुरुपति = दुर्योधन । पार्थ = अर्जुन ।

[ २४१ ]

तो तुम मोहूँ से सठनि को हठि गति न देते ।
कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर सुनि सादर आगे ह्वै लेते ॥१॥

---

( १ ) जिस समय श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से दूत बन कर गये थे ।

( २ ) विदुर का साग प्रसिद्ध है । जब विदुर की स्त्री पैर धोने लगी तब भगवान् ने कहा कि पैरों को रहने दे भूख के मारे प्राण निकले जाते हैं सो कुछ खाने को ला । वह खाने को केले लाई और प्रेम के मारे गूदा तो ज़मीन पर गेरती गई और छिलके खाने को देती गई और भगवान् खाते रहे । जब विदुर ने आकर यह देखा तब बड़े क्रोधित हुए और आप छोल छोल कर गूदा खिलाने लगे । भगवान् ने कहा इस में छिलकों का सा स्वाद नहीं हम अब न खायँगे ।

( ३ ) अर्जुन की शुद्ध प्रीति से उसके सारथि बने उसके लिए जरासन्ध के पास जाकर ब्राह्मण बन भीख माँगी । लाख के भवन में जलने से बचाया, द्रौपदी का चीर बढ़ाया इत्यादि ।

पापखानि जियजानि अजामिल जमगन तमकि ताइ ताको भेते।
लिये छुड़ाइ चले कर मींजत पीसत दाँत गये रिसि रेते ॥२॥
गौतमतिय गज गीध विटप कपि है नाथहि नीके मालुम तेते।
तिन्ह तिन्ह काजनि साधु सभा तजि कृपासिंधु तब २ उठि गेते॥
अजहुँ अधिक आदर एहि द्वारे पतित पुनीत होत नहिं केते।
मेरे पासंगहु न पुजिहै ह्वै गएहैं होने खल जेते ॥४॥
हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवतहुतो न रावरे चेते।
अब तुलसी पूतरो बाँधि है सहि न जात मोपै परिहास एते ॥५॥

( जो तुम ने और दुष्टों को गति नहीं दी होती ) तो तुम मुझ सरीखे दुष्ट को भी अड़ कर मोक्ष न देते (इसमें मुझे कुछ बुरा लगने की बात न थी) पर तुम तो कोई नीच कैसे ही नाम लेता हो सुनते ही बड़े आदर से उसे आगे होकर लेते हो ॥ १ ॥ ( जो कहो कि हमने ऐसे कौन से पापी को तारा है तहाँ कहते हैं कि ) यम के दूतों ने मन में अजामेल को पाप की खान जान कर उसे तमक कर भयपूर्वक ताप दिया पर ( उसने जो मरते समय तुम्हारा नारायण नाम लिया था इस कारण ) तुम ने उसे ( यमगणों से ) छुड़ा लिया और वे हाथों को मसलते हुए और क्रोध में भर दाँतों को पीसते हुए ख़ाली हाथ चल दिये ॥ २ ॥ अहिल्या, हाथी, गिद्ध, ( ताल ) वृक्ष और बन्दर जैसे थे तैसे भगवान् को मालूम ही हैं, परन्तु जब जब उनका काम हुआ तब तब हे कृपा-सिंधु! तुम सन्तों की सभाओं को भी छोड़ उठ कर गये ॥ ३ ॥ अब भी इस द्वार पर पापियों का सबसे बढ़ कर आदर होता है और न जाने कितने पवित्र नहीं होते हैं। ( इस संसार में ) जितने दुष्ट हो गये और होंगे वे मेरे पासङ्ग में भी पूरे न होंगे ( अर्थात् वे सब मिल कर भी मेरी बराबर तोल में नहीं हैं) और मैं अभी तक तुम्हारे करतब की ओर देख रहा था ( अर्थात् अब भी कृपा करें ) पर तुम नहीं चेते ( अर्थात् मुझ पर अब तक कृपा नहीं की )। अब यह तुलसीदास तुम्हारा पुतला बाँधेगा ( अर्थात् तुम्हारा एक मिट्टी का पुतला बना कर बाँस में लगा कर गाँव गाँव में उठाये डोलेगा और जब कोई पूछेगा कि यह कौन है तो कह देगा कि यह अयोध्या के राजा सूम रघु-नाथजी हैं यों तुम्हारी धूल उड़ावेगा) क्योंकि मुझसे इतनी हँसी नहीं सही जाती (कि लोग मेरी ताली पीटें कि यह रामजी का बनता है वे तो इस पर कुछ भी दया नहीं करते) ॥५॥

शब्दार्थ—ताइ=ताप। भेते=भय से। रेते=रीते।

[ २४२ ]

तुम सम दीनबंधु न दीन कोउ मोसम सुनहु नृपति रघुराई।
मो सम कुटिल मौलिमनि नहिं जग तुम सम हरि न हरन कुटिलाई ॥१॥
हौं मन वचन करम पातकरत तुम कृपालु पतितनि गतिदाई।
हौं अनाथ प्रभु तुम अनाथ हित चित यह सुरति कबहुँ नहिं जाई ॥२॥
हौं आरत आरति नासन तुम कीरति निगम पुरानन गाई।
हौं सभीत तुम हरन सकल भय कारन कवन कृपा बिसराई ॥
तुम सुख धाम राम स्रमभंजन हौं अति दुखित त्रिविध स्रम पाई।
यह जिय जानि दासतुलसी कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥

हे राजा रामचन्द्रजी ! सुनो तुम सरीखा तो दीनबन्धु और मेरी बराबर ग़रीब कोई नहीं है। और मेरी बराबर तो दुष्टों का सिरताज और हे भगवान् ! तुम्हारी बराबर कुटिलता को दूर करनेवाला, संसार में नहीं है ॥ १ ॥ और मैं तो मन, वचन, कर्म से पापी हूँ और हे कृपालु, तुम पापियों को मोक्ष देने वाले हो। और मैं अनाथ हूँ और तुम अनाथों का हित करनेवाले हो। मेरे मन से यह याद कभी नहीं जाती ॥ २ ॥ और मैं दुखी हूँ और तुम क्लेशों के दूर करने वाले हो यह तुम्हारा यश वेद और पुराण गाते हैं। और मैं ( संसार से ) डरा हुआ हूँ और तुम ( संसार के ) सब भय के हरने वाले हो फिर यह कारण क्या है कि तुमने कृपा करना छोड़ दिया है ॥ ३ ॥ और हे राम ! तुम सुख के घर अर्थात् देनेवाले हो और ( जन्म-मरण के ) श्रम के नाशक हो। मैं तीन प्रकार के श्रमों से बड़ा दुखी हो रहा हूँ सो अपने मन में यह जान कर और अपनी प्रभुता को समझ कर तुम तुलसीदास को अपनी शरण में रख लीजिए ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—मौलि = शिर। त्रिविध स्रम ( ताप ) गूढ़ार्थकोश में देखो।

[ २४३ ]

यहै जानि चरनन्ह चित लायो।
नाहिंन नाथ अकारन को हित तुम समान पुरान स्रुति गायो ॥

जननि जनक सुत दार बंधुजन भये बहुत जहँ २ हौं जायो ।
सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित काहू ना हरिभजन सिखायो ॥
सुर मुनि मनुज दनुज अहि किन्नर मैं तन धरि सिर काहि न नायो ।
जरत फिरत त्रयताप पापवस काहु न हरि करि कृपा जुड़ायो ॥
जतन अनेक किये सुख कारन हरिपदविमुख सदा दुख पायो ।
अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत विपति जाल जग छायो ॥
मोकहँ नाथ बूझिये यह गति सुखनिधान निजपति बिसरायो ।
अब तजि रोष करहु करुना हरि तुलसिदास सरनागत आयो ॥

यह जान कर मैंने तुम्हारे चरणों में मन लगाया है कि हे नाथ ! बिना कारण हित के करने वाला तुम्हारे समान कोई नहीं है यह वेद और पुराणों में कहा है ॥ १ ॥ जहाँ जहाँ मैंने जन्म लिया (वहाँ वहाँ) माता, पिता, पुत्र, स्त्री और भाईबन्धु बहुत से हुए, और वे सब अपने मतलब के लिए प्यार करते रहे पर उनके मन में कपट रहा क्योंकि किसी ने मुझे भगवान् का भजन नहीं सिखाया ॥ २ ॥ और ( इन्द्र आदि ) देवता ( कश्यप आदि) मुनि ( कार्त-वीर्य्य आदि ) मनुष्य, दैत्य ( वासुकि करकोट आदि ) नाग और किन्नर इन में से किसको मैंने शरीर धर कर शिर नहीं नवाया ( अर्थात् सबको नवाया ) । और पाप के वश तीनों तापों से जलता हुआ फिरा किया परन्तु हे प्रभो ! किसी ने भी दया करके मुझे शीतल नहीं किया ( अर्थात् मेरे पाप के ताप को किसी ने नहीं मिटाया ) ॥ ३ ॥ सुख के लिए पूजा-पाठ आदि अनेक उपाय किये परन्तु हे भगवान् ! तुम्हारे चरणों के विमुख होने से सदा दुःख ही पाया किया । संसार में (जन्म, जरा, मरण आदि विपत्तिरूपी जाल को फैला हुआ देख कर मैं अब ऐसा थक गया जैसे बिना पानी के नाव थक जाती है ( अर्थात् नहीं चलती ) ॥ ४ ॥ सो हे नाथ ! समझलो मेरा यह हाल इसलिए हुआ है कि मैं सुख के स्थान अपने स्वामी को भूल गया । ( पर अब ऐसा होना उचित नहीं है ) हे हरे ! अब रोस को छोड़ कर दया करो क्योंकि यह तुलसीदास तुम्हारी शरण में आया है ॥ ५ ॥

( २४४ )

याहि ते मैं हरि ज्ञान गँवायो ।

परिहरि हृदय कमल रघुनाथहि बाहर फिरत विकल भयो धायो ॥१॥
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मरमु नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल परम सुगंध कहाँते आयो ॥२॥
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन ऊपर कछु सिवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजि हौं सठ चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।
व्यापत त्रिविधताप तनु दारुन तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपनेहिं धाम नाम सुरतरु तजि विषय बबूर बाग मन लायो॥
तुम सम ज्ञाननिधान मोहिं सम मूढ़ न आनि पुरानन गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो ॥५॥

हे भगवान्! इसीसे मैंने ज्ञान खो दिया कि अपने हृदय-कमल में जो रामचन्द्रजी हैं उन्हें छोड़ कर बाहर घबराया हुआ ऐसा दौड़ता फिरा (अर्थात् अज्ञान के कारण घट में परब्रह्म को न जान कर तीर्थ-यात्रा आदि करके उसे ऐसे ढूँढ़ता फिरा)॥ १॥ जैसे हरिण महाबुद्धिहीन होने से अपने शरीर में सुन्दर कस्तूरी के होने पर भी उसका भेद नहीं पाता। और पहाड़, वृक्ष, बेल, धरती और बिले ढूँढ़ता फिरता है कि यह बड़ी भारी सुगन्धि कहाँ से आ रही है॥ २॥ फिर जैसे तालाब निर्मल पानी से ख़ूब भरा है और ऊपर से कुछ काई और (मोथा आदि) घास छा रही है (इस कारण उसमें जल न मान) उस (तालाब) को छोड़ कर मैं दुष्ट अपने हृदय को जलाता हूँ और इस भाँति (अर्थात् ऐसे निर्मल जल के तालाब को छोड़) अपनी प्यास बुझाना चाहता हूँ। (भाव यह है कि हृदयरूपी तड़ाग में रामरूपी निर्मल जल भरा है और उस पर विषयवासनारूपी काई और कामरूपी तृण छा रहा है उसे अज्ञान से छोड़ संसारी ताप से हृदय जलाता हुआ शान्ति चाहता हूँ अर्थात् तुम्हें भूल कर सुख की इच्छा करता हूँ सो कैसे हो)॥ ३॥ एक तो शरीर में तीनों भाँति के कठिन ताप व्याप रहे हैं और तिस पर भी जो सहा नहीं जाय ऐसा दरिद्र सता रहा है। क्योंकि अपने ही

( हृदयरूपी ) घर में ( भगवान् के ) नामरूपी कल्पवृक्ष को छोड़ कर विषयरूपी बँबूरों के बाग़ में मन लगाया है ( सो वहाँ सिवा काँटों में फँसने के सुख कहाँ धरा है ) ॥४॥ पुराणों में कहा है कि तुम्हारी बराबर ज्ञान का स्थान दूसरा नहीं है और मेरे समान दूसरा मूर्ख भी नहीं है । हे नाथ ! तुम समर्थ हो इस बात को मन में समझ कर मन में जो अच्छा लगे सो इस तुलसीदास का कीजिए ( अर्थात् उसे अपना दर्शन दीजिए वा दूर कीजिए ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—रुचिर = सुन्दर । मद = कस्तूरी । सिवार = काई । त्रिविधताप = गूढ़ार्थकोश में देखो ।

[ २४५ ]

मोंहिं मूढ़ मन बहुत बिगोयो ।
याके लिए सुनहु करुनामय मैं जग जनम जनम दुख रोयो ॥१॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहिं रहत दूरि जनु खोयो ।
बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस वृथहिं मन्दमति वारि बिलोयो ॥
कर्म कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि २ विकल अकास निचोयो ॥
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो ।
डासतही गइ बीति निसा सब कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो ॥

(जो कहो कि जान-बूझ कर आत्मस्वरूप को भूल कर क्यों दुःख सहा तहाँ कहते हैं कि ) मुझे तो इस मूर्ख मन ने बहुत ख़राब किया । और हे करुणामय ! सुनिए इसके लिए संसार में मैं जन्म जन्म में दुख ही रोता रहा ॥ १ ॥ और शीतल और मीठा अमृत (कि जो जीव को अमर करने वाला है ) उसके समान सजह सुख ( अर्थात् अखण्ड आत्मानन्दसुख ) कि जो पास ( हृदय में ) रहता है उसे ( मन के कहने से ऐसे ) खो दिया मानों वह दूर चला गया । और मोह के वश बहुत भाँति का श्रम कर के मुझ मूर्ख ने वृथा पानी को बिलोया ( अर्थात् तुम्हारे दर्शनरूपी घृत पाने के लिए विषय-रूपी पानी बिलोया सो श्रम वृथा गया वहाँ त्रिकाल में भी घृत नहीं ) ॥ २ ॥ ( कैसे श्रम वृथा गया कि ) जी में जानता था कि कर्म-कीच है ( इसमें पड़ूँगा तो अवश्य फँसूँगा

और बिना फल-भोगे नहीं छूटूँगा ) तो भी चित्त को उसी में साना ( अर्थात् विषयों में गेरे बिना नहीं रहा ) और मैं खोटा ऐसा हूँ कि,मल से मल को धोया चाहता हूँ ( अर्थात् जिस पाप-कर्म से जीव मलीन हुआ उसे ही करके आत्मज्ञान चाहता हूँ सो ऐसा है कि ) जैसे कोई मूर्ख प्यास का मारा गंगाजी को छोड़ कर घबरा के बार बार आकाश को निचोड़ता फिरे ( भाव—गङ्गा सम रामभक्ति को छोड़ सुख के लिए विषयों को करता फिरे ) ॥ ३ ॥ हे प्रभु ! इसलिए अब तुम मुझ तुलसीदास पर कृपा करो क्योंकि मैंने अपना दोष तुमसे कुछ नहीं छिपाया है और मुझे बिछौना बिछाते बिछाते सब रात बीत गई पर हे नाथ ! मैं कभी पूरी नींद नहीं सोया ( अर्थात् सुख के लिए उपाय करते करते उमर बीत गई परन्तु तुम्हारी कृपा बिना सुख कभी नहीं मिला ) ॥४॥

शब्दार्थ—पीयूष = अमृत । वारि = जल । गोयो = छिपाया ।

[ २४६ ]

लोक वेदहूँ विदित बात सुनि समुझि मोहमोहित विकल मति
थिति न लहति ।
छोटे बड़े खोटे खरे मोटेऊ दूबरे राम रावरे निबाहे सबही की
निरबहति ॥ १ ॥
होती जो आपने वस रहती एकही रस, दुनी न हरष सोक
सासति सहति ।
चहतो जो जोइ जोइ लहतो सो सोइ सोइ केहू भाँति काहू की
न लालसा रहति ॥ २ ॥
करम काल स्वभाव गुन दोष जीव जग माया ते सो सभय
भौंह चकित चहति ।
ईसनि दिगीसनि जोगीसनि मुनीसनिहूँ छोड़ति छोड़ायेते जो
गहायेते गहति ॥ ३ ॥
सतरंज को सो राज काठ को सब समाज महाराज बाजी रची
प्रथम न हति ।

तुलसी प्रभु के हाथ हारिबो जीतिबो नाथ बहु वेष बहु मुख सारदा कहति ॥ ४ ॥

संसार और वेदों में जो बात विदित है उसे सुन कर और विचार कर भी मेरी बुद्धि मोह से मोहित ( अर्थात् उसके वश में होने से ) ऐसे चक्कर में पड़ी है कि स्थिरता नहीं पाती है। क्योंकि हे राम! छोटे और बड़े, बुरे और भले, मोटे और दुबले, इन सबकी तुम्हारे निभाने से निभती है ॥ १ ॥ और जो ( वह मति ) अपने वश में होती तो एक रस ( अर्थात् एक सी ) रहती और दुनिया के हर्ष, शोक और पीड़ा को नहीं सहती। और जो कोई जो जो चाहता सोई सोई पाता और किसी तरह किसी की इच्छा बाक़ी नहीं रह जाती ॥ २ ॥ संसार में जीव के कर्म, काल, स्वभाव, गुण और अवगुण सब तुम्हारी माया से हैं सो यह डरती हुई भौचक्की सी तुम्हारी भृकुटि को तकती रहती है ( अर्थात् जैसा तुम्हारा रुख़ देखती है वैसा करती है )। शिव, ब्रह्मा, और ( इन्द्र आदि आठ ) दिक्पालों को ( मार्कंडेय आदि ) योगियों को और ( वशिष्ठ आदि ) मुनीश्वरों को वह तुम्हारे छुड़ाने से छोड़ती है और पकड़ाने से पकड़ती है ॥ ३ ॥ इस ( माया ) का राज शतरञ्ज का सा (कोरा देखनेमात्र का ) है क्योंकि इसमें (हाथी, घोड़ा, प्यादा, वज़ीर, बादशाह ) सब साज काठ का है और हे महाराज! तुमने यह बाज़ी रची है पहले यह नहीं थी ( अर्थात् संसाररूपी शतरञ्ज का सब खेल तुमने बनाया है ) और हे तुलसी के नाथ! इस बाज़ी का हारना, जीतना तुम्हारे ही हाथ में है। यह बात सरस्वती बहुत से वेश और बहुत से मुखों से कहती है। (भाव—यह बात अनेक भाषाओं में अनेक प्रकार से कही गई है ) ॥ ४ ॥

[ २४७ ]

राम जपु जीह जानि प्रीति सों प्रतीति मानि रामनाम जपै जैहै जिय की जरनि।

राम नाम सों रहनि रामनाम की कहनि कुटिल कलि मल सोक संकट हरनि ॥ १ ॥

रामनाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ कियो न दुराउ कही आपनी करनि।

भवसागर को सेतु कासीहूँ सुगति हेतु जपत सादर संभु सहित घरनि ॥ २ ॥

बालमीकि व्याध हे अगाध अपराध निधि मरा मरा जपें पूजे मुनि अमरनि ।
रोक्यो विंध सोख्यो सिंधु घटजहूँ नामबल हान्यो हिय खारो भयो भूसुर डरनि ॥ ३ ॥
नाम महिमा अपार सेष सुक बार बार मति अनुसार बुध वेदहु बरनि ।
नामरति कामधेनु तुलसी को कामतरु रामनाम है विमोह तिमिर तरनि ॥ ४ ॥

हे जीभ! तू राम-नाम (१) को जप, उस ( राम-नाम ) की ही पहचान और प्रीति से उस ( राम-नाम ) का ही विश्वास मान। राम-नाम के जपने से तेरे जी की जलन मिट जायगी। रामनाम की ही शरण रहना और राम-नाम का ही कहना, कुटिल कलियुग (२) के पाप, शोक और संकट का दूर करने वाला है ॥ १ ॥ राम-नाम के प्रभाव से ही ( सब से पहले ) गणेशजी (३) पूजे जाते हैं इसमें उन्होंने कुछ छिपाव

---

( १ ) भगवान् ने कहा है—"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अर्थात् सब धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण को प्राप्त हो ।

(२) रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः। कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः ॥

अर्थात् राम इन दो अक्षरों को सदा आदरपूर्वक जपने से मनुष्य मुक्ति पाता है । इस कलिकाल में पापी मनुष्यों को और धर्म करने का अधिकार नहीं है ।

"कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः । कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥

अर्थात् दोषों के निधि ऐसे कलियुग में एक बड़ा भारी गुण है कि कृष्ण भगवान् के कीर्तन से मनुष्य मुक्ति पाता है ।

( ३ ) पद्मपुराण के रामसहस्रनाम में लिखा है कि " पहले गणेशजी ऐश्वर्य्य को पाकर बावले हो गये थे तब और ऋषियों के आश्रमों का नाश कर बहुत से ऊधम मचाने लगे । शिवजी अपने पुत्र के इस आचरण को देख कर बड़े दुखी हुए और रामचन्द्रजी का ध्यान किया और ध्यान करने से जब रामचन्द्रजी प्रकट हुए तब उन्होंने गणेशजी का सब दूषण भगवान् से कह कर विनती की और कहा कि मेरे पुत्र की निन्दा न हो ऐसा कीजिए । रामचन्द्रजी ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि राम-नाम का जप कुछ दिन करेगा तब वह योग्य होगा । यह सुन कर शिवजी ने गणेशजी को राम-नाम के जपने की आज्ञा दी । गणेशजी ने हज़ारों वर्ष तक समाधि चढ़ा कर राम-नाम का जप किया उस जप के प्रभाव से गणेशजी पूजने योग्य हुए हैं" ।

नहीं किया है। अपनी करनी को आपने ही कहा है और शिवजी (१) बड़े आदर से पार्वती सहित (उस राम-नाम को) जपते हैं ॥२॥ वाल्मीकि व्याध थे और बहुत पापों की खान थे पर मरा मरा जपने से उनको मुनि और देवताओं ने पूजा । और अगस्त्य (२) मुनि ने राम-नाम के प्रभाव से ही विन्ध्य पर्वत को रोक दिया था और समुद्र को सोख लिया था । और ब्राह्मण (अर्थात् उन्हीं मुनि) के डर से वह जी में हार कर खारी हो गया ॥ ३ ॥ राम-नाम की महिमा का पार नहीं है यह शेषजी, शुकदेवजी, वेद और पण्डित इन्होंने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार बारम्बार कहा है । राम-नाम से प्रीति का होना तुलसी-दास को कामधेनु और कल्पवृक्ष है और राम-नाम ही महा अज्ञानरूपी अँधेरे के लिए तरनि अर्थात् सूर्य्य है ॥ ४ ॥

[ २४८ ]

**पाहि पाहि राम पाहि रामभद्र रामचंद्र सुजस स्रवन सुनि आयो हौं सरन ।**
**दीनबंधु दीनता दरिद्र दाह दोष दुख दारुन दुसह दर दुरित हरन ॥ १ ॥**
**जब जब जगजाल व्याकुल करम काल सब खल भूप भये भूतलभरन ।**
**तब तब तनु धरि भूमिभार दूरि करि थापे मुनि सुर साधु आस्रम वरन ॥ २ ॥**

---

(१) अहो भवन्नाम जपन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ॥
मुमूर्षुमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥

अर्थात् शिवजी रामजी से कहते हैं कि मैं तुम्हारा नाम जपता हुआ पार्वतीजी सहित काशी में रहता हूँ और मरते हुए प्राणी को मुक्ति के लिए हे राम ! तुम्हारा नाम उपदेश करता हूँ ।

(२) एक समय जब सूर्य के तेज से विन्ध्याचल के वृक्ष आदि सब झुलस गये तब पर्वत सूर्य्य पर क्रोध कर ऐसा बढ़ा कि सूर्य्य को ढक दिया यह देख देव दानव आदि सूर्य्य के प्रकाश बिना दुखी हुए फिर अगस्त्यजी पर्वत के पास आये और राम-नाम का स्मरण कर उसके सिर पर हाथ धर के उसे झुका दिया और कहा कि जब तक हम आवें ऐसा ही पड़ा रह । फिर वह वैसाही रहा ।

ऐसे ही एक बार अगस्त्यजी समुद्र के किनारे पूजन कर रहे थे । समुद्र उनकी पूजा की सब सामग्री बहा ले गया । अगस्त्यजी ने क्रोधित हो "राम" इस मन्त्र का उच्चारण कर तीन आचमन से समुद्र को सुखा दिया । फिर देवताओं की स्तुति करने से लघुशङ्का की राह से पानी निकाल उसे भर दिया ।

वेद लोक सब साखी काहु कीरती न राखी रावन की बंदि लागे अमर मरन।
ओक दै बिसोक किये लोक पति लोकनाथ राम राज भयो धर्म चारिहु चरन ॥ ३ ॥
सिला गुह-गीध कपि भील भालु रातिचर ख़्याल ही कृपालु कीन्हे तारन तरन।
पीलउद्धरन सीलसिंधु ढील देखियत तुलसी पै चाहत गलानि-हू गरन ॥ ४ ॥

हे राम! मेरी रक्षा करो, हे रामचन्द्रजी! मेरी रक्षा करो। हे रामचन्द्रजी! तुम्हारे सुन्दर यश को कानों से सुन कर तुम्हारी शरण आया हूँ। तुम ग़रीबों के भाई हो और महा कठिन और दुःसह ग़रीबी, दरिद्र, सन्ताप, दोष, दुःख, भय और पाप इन सब के दूर करने वाले हो ॥ १ ॥ और जब जब (सुर, नर, मुनि) काल और कर्म के वश संसाररूपी जाल में पड़ कर व्याकुल हुए और सब राजाओं के दुष्ट होने से पृथ्वी तल भर गया, तब तब तुमने शरीर धारण कर (अर्थात् अवतार (१) लेकर) धरती का भार उतारा और मुनीश्वर देवता और सन्त इनके आश्रम और वर्णों को रख लिया ॥ २ ॥ इस बात के वेद और लोक सब गवाह हैं कि जब (रावण ने) किसी का ऐश्वर्य नहीं रहने दिया और रावण की क़ैद में देवता मरने लगे तब उनको भी तुमने भरोसा देकर शोकरहित कर दिया और लोकपति कहिए इन्द्रादिकों को उनके लोकों का स्वामी बनाया और हे राम! (सत्य, दया, तप, दान) इन चारों चरणों से धर्मराज्य हो गया ॥ ३ ॥ शिला (अहिल्या), गुह, (निषाद), गिद्ध, सुग्रीव, भील, भालु (जाम्बवन्त) और राक्षस (विभीषण) इनको हे कृपालु! तुमने ख़्याल से ही आप तरने और दूसरों को तारने वाला कर दिया। हे गज का उद्धार करने वाले! हे सुन्दर स्वभाव के समुद्र! तुम्हारी ओर से तुलसी पर ढील दीख रही है सो वह (अपने मन की) ग्लानि में गला चाहता है (सो शीघ्र कृपा कीजिए) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—दर = भय (संस्कृत शब्द है)। दरप (दर्प) = घमण्ड। ओक = भरोसा। पील = हाथी।

---

(१) गीता में कहा है—यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

[ २४९ ]

भली भाँति पहिचाने जाने साहब जहाँ लों जग जूड़े होत थोरेही थोरेही गरम।

प्रीति न प्रवीन नीति हीन, रीति के मलीन, मायाधीन सब किये कालहू करम ॥ १ ॥

दानव दनुज बड़े महामूढ़ मूढ़ चढ़े जीते लोकनाथ नाथ बलनि भरम।

रीझि रीझि दिये बर खीझि खीझि घाले घर आपने निवाजे की न काहू के सरम ॥ २ ॥

सेवा सावधान तू सुजान समरथ साँचो सदगुनधाम राम पावन परम।

सुरुख सुमुख एकरस एकरूप तोहिं विदित विसेषि घट घट के मरम ॥ ३ ॥

तोसों नतपाल न कृपाल, न कंगालु मोसो, दया में बसत देव सकल धरम।

राम कामतरु छाँह चाहै रुचि, मन माँह तुलसी विकल बलि कलि कुधरम ॥ ४ ॥

संसार में जहाँ तक स्वामी हैं उनको मैंने अच्छी तरह से पहचान लिया और जान लिया कि वे थोड़े ही में शीतल ( प्रसन्न ) और थोड़े में ही गरम ( क्रोधित ) हो जाते हैं ( अर्थात् सेवा करने से हाल ही तो वर देते हैं फिर थोड़ा ही चूकने से नाश का उपाय करते हैं ) न तो वे प्रीति के निबाहने में चतुर हैं और न नीति को जानते हैं और उनकी रीतियाँ बुरी हो गई हैं क्योंकि काल, कर्म और माया ने उन सब को अपने अधीन कर रक्खा है ( जब उन्हीं का यह हाल है तब उनसे किसी का भला होने की क्या आशा है ) ॥ १ ॥ और जितने ( हिरण्याक्ष आदि ) बड़े बड़े दैत्य दानव हुए वे बड़े मूर्ख हुए ( उनको अपना भला बुरा न सूझ पड़ा और ऐश्वर्य के मद में आकर कि हम

किसी से नहीं मारे जासकेंगे, महात्माओं के ) शिर पर चढ़े और उन्होंने लोकपालों को जीत लिया । हे नाथ ! तेरे बल का उनको मरम नहीं था ( अर्थात् यह नहीं जानते थे कि हमारे ऊपर और भी कोई ईश्वर है या नहीं । ब्रह्मा आदि देवताओं ने ) प्रसन्न हो होकर पहले तो इनको वर दिये और फिर (जब इन्होंने कष्ट दिया तब ) व्याकुल हो होकर ( तेरे द्वारा ) इनके घरों का नाश करा दिया और अपने निवाजने की किसी को शरम नहीं आई ( अर्थात् यह शर्म नहीं आई कि हमने ही तो इनको कृपा कर बढ़ाया है और हम ही इन्हें क्यों बिगाड़ते हैं ) ॥ २ ॥ हे राम ! जो सावधानी से सेवा करता है उसे तू अच्छी भाँति जानता है । तू सच्चा समर्थ है ( अर्थात् ब्रह्मा आदि का भी वरदायक है ) और अच्छे गुणों का स्थान, बड़ा पवित्र और सुन्दर रुख कहिए दयादृष्टि करने वाला है । तेरा सुन्दर मुख है, तू एक रस ( अर्थात् घटने बढ़ने वाला नहीं ) है, एक रूप है ( अर्थात् तेरा रूप कभी नहीं बदलता ) और तुझे घट घट का भेद अच्छी भाँति विदित है ॥ ३ ॥ हे कृपालु ! तेरे समान तो भक्तों का पालक और कृपालु नहीं और मेरी बराबर कोई कंगाल नहीं सो हे देव ! दया में सब धरम बसते हैं ( अर्थात् मुझ दीन पर दया की तो मानो सब धर्म कर चुका ) । हे राम ! तू कल्पवृक्ष है मेरी रुचि तेरी छाया चाहती है तेरी बलि जाऊँ यह तुलसीदास कलियुग के बुरे धर्मों से मन में बड़ा घबरा रहा है ॥ ४ ॥

सन्धिविभाग—माया + अधीन ।

शब्दार्थ—मरम = भरम, भेद ।

[ २५० ]

**तौ हौं बार बार प्रभुहि पुकारि कै खिजावतौ न जोपै मोकहूँ होतो कहुँ ठाकुर ठहरु ।**
**आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे राजा मेरे राजाराम अवध सहरु ॥ १ ॥**
**सेए न दिगीसन दिनेसन गणेस गौरी, हित कै न माने विधि हरिउ न हरु ।**
**राम नामहीं सों जोग छेम नेम प्रेम पन सुधा सो भरोसो एहु दूसरो जहरु ॥ २ ॥**

समाचारे साथ के अनाथ नाथ कासों कहौं नाथही के हाथ सब चोरऊ पहरु ।
निज काज सुर काज आरत के काज राज बूझिये विलंब कत कहूं न गहरु ॥ ३ ॥
रीतिसुनि रावरी प्रतीति, प्रीति रावरे सों डरत हों देखि कलि-काल को कहरु ।
कहेही बनैगी की कहाये बलिजाउँ राम तुलसी तू मेरौ हारि हिये न हहरु ॥ ४ ॥

हे राम! जो मेरे लिए कोई (दूसरा) स्वामी होता या कहीं (दूसरी) जगह (ठहरने को) होती तो मैं स्वामी को बार बार पुकार कर नहीं चिढ़ाता। हे कृपालु! मुझ सरीखे आलसी अभागों को तुमने ही पाला पोसा है इसलिए हे राजा रामचन्द्रजी! तुम्हीं मेरे राजा हो और अवध (अयोध्या) मेरे रहने को शहर है ॥१॥ क्योंकि न तो मैंने (इन्द्रादिक) लोकपाल, सूर्य, गणेश, और पार्वती की सेवा की और न ब्रह्मा, विष्णु और महेश को अपना हितू माना। मैंने तो क्षेम कहिए कल्याण के लिए राम नाम से ही नेम और प्रेमसहित प्रण करके योग साधा है (अर्थात् इन्द्रियों को विषय से रोक मन लगाया है) और यही (राम का) भरोसा मुझे अमृत के समान और दूसरा (साधन) मुझे ज़हर के समान है॥ २॥ और हे अनाथों के नाथ! मेरे साथ के चोर और चौकीदार सब नाथ के ही हाथ में हैं इस लिए इनका हाल किससे कहूँ (तुम ही काम, क्रोध आदि चोरों को डाट दो और विवेक, वैराग, सन्तोषरूपी पहरुओं को जगा दो कि जिससे यह जीव लुटने न पावे नहीं तो ये चोर मेरा राम-नामरूपी रत्न लूट ले जायँगे)। अपने कामों में, देवताओं के कामों में और दुखी जीवों के कामों में हे राम! समझो तो तुमने कहीं देर नहीं की है फिर अब क्यों देर करते हो। तुम्हारी रीति (१) सुन कर (कि तुमने अहिल्या आदि को तारा है) तुम्हारा भरोसा पड़ता है (कि मुझे भी तारोगे) इसीलिए तुमसे प्रीति

(१) सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।
अर्थात् जो एक बार भी मेरी शरण आकर कहता है कि मैं आपका हूँ तो मैं उस शरणागत को सब प्राणियों से अभय कर देता हूँ यह मेरा व्रत है।

लगाई है परन्तु कलियुग का अन्याय देख कर डरता हूँ ( कि वह औरों की तरह मुझे भी भवसागर में न गिरावे)। हे राम ! तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ अब तो तुम्हारे कहने से ही बनेगी या ( हनूमान से ) कहलाने से बनेगी कि अरे तुलसीदास ! तू मेरा है हृदय में हार मान कर मत घबरावे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—छेम = कल्याण । पहर = पहरुआ । गहर = देर । कहर = सख़्ती वा अन्याय ।

[ २५१ ]

राम रावरो सुभाउ गुन सील महिमा प्रभाउ जान्यो हर हनुमान लषन भरत ।
जिन्ह के हिये सुथल राम प्रेम सुरतरु लसत सरस सुख फूलत फरत ॥ १ ॥
आप माने स्वामी के सखा सुभाइ, पति ते सनेह सावधान रहत डरत ।
साहब सेवक रीति प्रीति परमिति, नीति नेम को निवाह एक टेक न टरत ॥ २ ॥
सुक सनकादिक प्रहलाद नारदादि कहैं राम की भगति बड़ी विरत निरत ।
जाने बिनु भगति न जानिबो तिहारे हाथ समुझि सयाने नाथ पगनि परत ॥ ३ ॥
छमत विमत, न पुरान मत एक पथ, नेति नेति नेति नित निगम करत ।
औरनि की कहा चली एकै बात भले भली राम नाम लिए तुलसीहूँ से तरत ॥ ४ ॥

हे राम ! तुम्हारे सुभाव, गुण, शीलता और महिमा के प्रभाव को महादेव, हनूमान्, लक्ष्मण और भरत इन्होंने जाना है कि जिनके हृदयरूपी सुन्दर थामले में हे

राम ! तुम्हारा प्रेमरूपी कल्पवृक्ष शोभायमान हो रहा है और जिसमें रस भरे सुखरूपी फूल फल लगते हैं (भाव यह है कि जो अपने हृदय में राम का स्मरण करता है उसे सब सुख मिलते हैं) ॥ १ ॥ सुन्दर स्वभाव से तुमने (शिवजी को), स्वामी, (हनूमान्‌जी को) सखा, और (लक्ष्मण भरतजी को) सुन्दर भाई माना है परन्तु वे सब तुम्हें स्वामी मानते हैं, प्रीति में सावधान रहते हैं और डरते रहते हैं। सो स्वामी और सेवक दोनों इसी रीति से प्रीति करें तो वह हद को भी पहुँच जाती है और नीति से अपने नेम का पक्की तरह निर्वाह करते रहें तो वह कभी टलती भी नहीं है (अर्थात् अन्त तक निभ जाती है) ॥ २ ॥ शुकदेवजी, सनक आदि, प्रह्लाद, नारद आदि कहते हैं कि राम की बड़ी भक्ति, वैराग्य में लगने से (अर्थात् देहाभिमान और विषय-सुख त्यागने से) होती है और बिना (वैराग्य के) जाने भक्ति नहीं होती है और (वैराग्य का) जानना तुम्हारे हाथ है इस बात को समझ समझ करके चतुर लोग हे नाथ ! तुम्हारे चरणों में आकर पड़ते हैं ॥ ३ ॥ छहों शास्त्रों का मत अलग अलग है और पुराणों का भी एक मत और एक मार्ग नहीं है और वेद नित्य नेति नेति कहता है (अर्थात् वेद का यह हाल है कि धर्म कर्म तो बतलाता है पर जो परमेश्वर की गति पूछो तो कहता है कि भगवान् की महिमा का अंत हम नहीं जानते) फिर औरों की क्या चलाई है। सो एक ही सुन्दर बात में भला है कि राम-नाम (१) के लेने से तुलसीदास सरीखे भी तर जाते हैं ॥ ४ ॥

[ २५२ ]

**बाप आपने करत मेरी घनी घटिगई।**
**लालची लवार की सुधारिये बारक बलि रावरी भलाई सबही की भली भई ॥ १ ॥**
**रोगवस तनु कुमनोरथ मलिनमन पर अपवाद मिथ्या वाद वानी हुई।**

---

(१) भागवत में शुकदेवजी ने कहा है—

भजन्ति ये विष्णुमनन्यचेतसस्तथैव तत्कर्मपरायणा जनाः। विनष्टरागादिविमत्सरा नरास्तरन्ति संसारसमुद्र-मश्रमम् ॥

अर्थात् जो मनुष्य विष्णु भगवान् को एकाग्रचित्त से भजते हैं और उनके ही पूजा पाठ आदि काम में लगे रहते हैं उनका रागद्वेष जाता रहता है और वे संसार-समुद्र से बिना श्रम पार हो जाते हैं।

साधन की ऐसी विधि साधन बिना न सिद्धि बिगरी बनावै कृपानिधि कृपा नई ॥ २ ॥
पतितपावन हित आरत अनाथनि को निराधार को अधार दीनबंधु दई।
इन्ह में न एको भयो बूझि न जूझ्यौ न जयो ताहि ते त्रिताप तयो लुनियत बई ॥ ३ ॥
स्वाँग सूधो साधु को कुचालि कलि ते अधिक परलोक फीकी मति लोक रंग रई।
बड़े कुसमाज राज आजु लौं जो पाए दिन महाराज केहू भाँति नाम ओट लई ॥ ४ ॥
राम नाम को प्रतापु जानियत नीके आपु, मोको गति दूसरी न विधि निरमई।
खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु, रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ॥ ५ ॥

हे पिताजी! अपने कर्तबों से मेरी बात बहुत घट गई है, तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ (मुझ सरीखे) लालची-लबार की (बात) एक बार सुधार दो। तुम्हारी भलाई से सब की बात सुधरी है (अर्थात् तुम्हारी कृपा बिना जीव क्या कर सकता है। भली, बुरी का होना सब तुम्हारे ही हाथ है) ॥ १ ॥ (मेरी कैसी बिगड़ी है सो सुनिए) शरीर तो रोग के वश रहता है और (विषय आदि के) बुरे बुरे मनोरथों के कारण मन मैला हो रहा है (सो सत्कर्म में नहीं लगता) और दूसरों की निन्दा करने और झूठ बोलने से वाणी वृथा हो गई (अर्थात् मन्त्र जपने लायक़ नहीं रही फिर मुझसे क्या हो सकता है) और (योग आदि) साधनों की ऐसी रीति है कि बिना साधन के उनकी सिद्धि नहीं होती, पर हे कृपानिधान! तुम्हारी कृपा अनोखी है (कि चाहे जैसा पापी शरण में आवे उसे तार देना) वही मेरी बिगड़ी बात को बना देगी ॥ २ ॥ क्योंकि पापियों को पवित्र करनेवाले, दुखिया और अनाथों के हितकारी और जिनको (यमलोक जाने में)

किसी का सहारा नहीं है उनको ( स्वर्ग के लिए ) सहारा देनेवाले और ग़रीबों के भाई ऐसे तुम्हीं समर्थ हो, परन्तु ( पतित, आरत, अनाथ, निराधार और दीन ) न तो इनमें से मैं एक भी हुआ और न विचार कर शत्रुओं से जूझा ( अर्थात् ज्ञान की सेना साज कर न कभी मोह आदि से लड़ा ) और न उनसे जीता ( वरन् उनके कहे में आकर उलटा विषय-वासना में पड़ गया ) इसलिए तीनों तापों से तच रहा हूँ। सो जैसा बोया वैसा काट रहा हूँ ॥ ३ ॥ मेरा स्वाँग तो सीधे साधु का सा है ( अर्थात् ऊपर से तो मैंने तिलक-छाप लगा कर तुलसी की माला पहर साधु का सा झूँठा वेष बना रक्खा है ) और मेरी ( चोरी, ठगई, मिथ्या, अपवाद आदि ) चाल कलियुग से भी बढ़ कर है क्योंकि ( विराग, ज्ञान आदि ) परलोक की ( बातें ) फीकी लगती हैं और मेरी बुद्धि ( स्त्री, पुत्र, धन, धाम आदि ) संसार के रङ्ग ( अर्थात् विषय आदि ) में रङ्ग रही है। सो हे राजन्! ये बड़े बुरे सामान हैं और आज तक के दिन तो पाये गये ( अर्थात् गये गुज़रे ) पर हे महाराज! ज्यों त्यों करके अब तुम्हारे नाम का सहारा लिया है ॥ ४ ॥ हे राम! अपने नाम का प्रताप तुम ही अच्छी तरह जानते हो ( कि जिस पापी ने सहारा लिया वही तर गया और मैं भी तर जाऊँगा )। मेरे लिए तो विधाता ने सिवा राम-नाम के दूसरी गति रची ही नहीं है, पर तुम्हारे रोस होने के लायक़ तो मेरे करोड़ों बुरे बुरे कर्तब हैं और प्रसन्न होने के लायक़ ( केवल ) तुलसीदास की एक बेशरमाई है ( अर्थात् तुम्हारा सहारा लेने पर भी मैं बुरे कर्म करता हूँ और फिर सन्मुख होकर बेशरमाई से अपने उद्धार की विनती करता हूँ ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—बाद = वृथा। दई = सामर्थ्य।

[ २५३ ]

राम राखिए सरन राखि आए सब दिन।

विदित तिलोक तिहूँ काल न दयालु दूजो आरत प्रनतपाल को है प्रभु बिन ॥ १ ॥

लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी नाथ पै अनाथनि सों भए न उरिन।

स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो तैसो काल चाल हेरि होति हिए घनी घिन ॥ २ ॥

खीझि रीझि बिहँसि अनख क्यों हूँ एक बार तुलसी तू मेरो बलि कहियत किन ।
जाहि सूल निरमूल, होहिं सुख अनुकूल महाराज राम रावरी सों तेहि छिन ॥ ३ ॥

हे राम ! तुम मुझे अपनी शरण में रक्खो क्योंकि सदा से तुम (ग़रीबों को) शरण में रखते आये हो। यह बात प्रकट है कि तीनों लोक और तीनों कालों में तुम सरीखा दयावान् दूसरा कोई नहीं है और दुखी भक्तों का पालनेवाला प्रभु के बिना कौन है ( अर्थात् कोई भी नहीं है ) ॥ १ ॥ तुमने आलसी, कर्महीन और पापी इनका लाड़ किया, इनको पाला-पोसा और राज़ी रक्खा तिस पर भी हे नाथ ! तुम अनाथों से उऋन नहीं हुए। हे स्वामी ! तुम सब लायक़ हो और मैं जैसा (भला बुरा ) हूँ तैसा तुम्हारा ही हूँ ( अंत में तुम्हें ही तारना पड़ेगा जो कहो कि ऐसा क्यों घबराया जाता है तहाँ कहते हैं कि कलि) काल की बुरी चाल देख कर मेरे मन में बड़ी घिन होती है ॥२॥ मैं बलैयाँ लूँ तुम प्रसन्न होकर वा दुखी होकर, हँस कर वा रोस करके किसी तरह एक बार यों क्यों नहीं कह देते कि हे तुलसी ! तू मेरा है। इतना कहते ही संसारी दुःख जड़ से नाश हो जायगा और हे महाराज राम ! तुम्हारी सोगन्द उसी क्षण से ( सब ) सुख सामने आकर मिलेंगे ॥ ३ ॥

[ २५४ ]

राम रावरो नाम मेरो मातु पितु है ।
सुजन सनेही गुरु साहब सखा सुहृद राम नाम प्रेम पन अविचल वितु है ॥ १ ॥
सत कोटि चरित अपार दधिनिधि मथि लियो काढ़ि वामदेव नाम घृतु है ।
नाम को भरोसो बल चारिहूँ फल को फल, सुमिरिए छाँड़ि छल भलो कृतु है ॥ २ ॥

**स्वारथ साधक परमारथदायक नाम राम, नाम सारिखो न और हितु है।**
**तुलसी सुभाउ कही साँचिये परैगी सही सीतानाथ नाम नित चितहूँ कौ चितु है ॥ ३ ॥**

हे राम! तुम्हारा नाम मेरा माता पिता है और हे राम! तुम्हारे नाम से अटल प्रेम ही मेरा कुटुम्ब, सम्बन्धी, गुरु, स्वामी, सखा, मित्र और धन है ॥ १ ॥ तुम्हारा सौ करोड़ (१) चरित्ररूपी अपार दही के समुद्र को बिलो कर शिवजी ने उसमें से नामरूप घृत काढ़ लिया है। और नाम का भरोसा और बल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,) चारों फलों का फल है, उसे कपट छोड़ कर सुमरना चाहिए वह ही अच्छा यज्ञ है ॥ २ ॥ अपने स्वारथ को साधनेवाला और परमारथ का देनेवाला नाम ही है। और हे राम! नाम सरीखा हित करनेवाला और दूसरा नहीं है। तुलसी ने स्वभाव से कही है सो (यह बात वेद-पुराणों में जाँचने से) (२) सचों ही सही पड़ेगी। हे जानकीजी के पति! तुम्हारा नाम सदा चित्त का भी चित्त है (अर्थात् चैतन्य को भी चैतन्य करने वाला है) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—वितु = धन। क्रतु = यज्ञ।

---

(१) ऐसा लिखा है कि वाल्मीकिजी ने शतकोटि रामायण लिखी और उसे शिवजी के पास सुनाने के लिए ले गये। जब यह समाचार देवताओं को विदित हुआ कि कैलास पर्वत पर रामायण होती है तब सब देवता सुनने के लिए वहाँ पहुँचे। शङ्कर ने आदर से उन्हें वहाँ बैठाया और एक वर्ष में कथा समाप्त हुई। कथा सुन सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने शिवजी से कहा कि रामायण में से हम लोगों को भी भाग मिले तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध करें। महादेवजी ने प्रसन्न होकर ३३ कोटि, ३३ लाख, ३३ हज़ार, ३३३ श्लोक और १० अक्षर ब्रह्मादि देवताओं को दिये सो वे लेकर स्वर्ग को गये और इतने ही शेष जी को दिये सो पाताल को ले गये और इतना ही भाग मुनियों को दिया सो सात द्वीप और नौ खण्डों में बँट गया अब केवल दो अक्षर (राम) रह गये। इनके तीन भाग हो नहीं सकते थे सो महादेवजी ने लेकर इन्हें अपने हृदय में धरा।

(२) ये ये प्रयोगास्तंत्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलम्। तत्सर्वं सिध्यति क्षिप्रं रामनामानुकीर्तनात् ॥ अर्थात् जो जो प्रयोग तन्त्रों में कहे हैं उन उन से जो फल होता है वह सब राम-नाम के कीर्तन से शीघ्र सिद्ध हो जाता है।

अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः। परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात् ॥ शिवजी का वचन है कि पुण्यात्मा हो वा संपूर्ण दोषों का पात्र पापी हो राम-नाम के कहने से परमपद पाता है।

[ २५५ ]

राम रावरो नाम साधु सुरतरु है ।

सुमिरे त्रिविधघाम हरत पूरत काम सकल सुकृत सरसिज को सरु है ॥ १ ॥

लाभहू को लाभ सुखहू को सुख सरबसु पतितपावन डरहू को डरु है ।

नीचेहू को ऊँचेहू को रंकहू को रायहू को सुलभ सुखद आपनो सो घर है ॥ २ ॥

वेदहुँ पुरानहुँ पुरारिहुँ पुकारि कह्यो, राम नाम प्रेम चारि फलहू को फरु है ।

ऐसे राम नाम सों न प्रीति न प्रतीति मन मेरे जान जानिबो सोइ नर खर है ॥ ३ ॥

नाम सों न मातु पितु मीत हित बंधु गुरु साहिब सुधी सुसील सुधाकरु है ।

नाम सो निबाह नेह दीन को दयालु देहु दासतुलसी को बलि बड़ो वरु है ॥ ४ ॥

हे राम ! तुम्हारा नाम संत लोगें का कल्प-वृक्ष है । यह स्मरण करने से तीनों तापों के ताप को दूर करता है, सब कामनाओं को पूरी करता है और ( पूजा, पाठ, जप, तप आदि ) सब पुण्यरूपी कमलों का तालाब है ( अर्थात् जैसे विना तालाब कमल नहीं रह सकते ऐसे ही नाम बिना पुण्य नहीं ठहर सकता । पाप उसका नाश कर देता है ) ॥ १ ॥ वह लाभ का भी लाभ है ( अर्थात् इससे बढ़कर कोई लाभ नहीं है ) और सुखों का भी सरवस अर्थात् पूरा पूरा सुख है ( भाव—इससे बड़ा कोई सुख नहीं है ) और पापियों को पवित्र करनेवाला और डर कहिए मृत्यु को भी डरानेवाला है ( अर्थात् राम के नाम से काल भी डरता है ) । और नीच ( चांडाल ) को और ऊँच ( ब्राह्मण ) को दरिद्री को और राजा को सब को सहज में सुख का देने वाला अपने

घर के समान है ( अर्थात् जैसे अपने घर में किसी बात का क्लेश नहीं होता ऐसे ही राम नाम के जपने में कुछ इस बात का क्लेश नहीं होता कि न्हाओ, धोओ, पूजा की सामग्री इकट्ठी करो इत्यादि ) ॥ २ ॥ वेद, पुराण और शिवजी ने पुकार पुकार कर कहा है कि राम नाम से प्रेम करना ( धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ) चारों फलों का भी फल है। ऐसे राम नाम की जिसके मन में प्रीति और प्रतीति नहीं है मेरी समझ में उस मनुष्य को गधा जानना चाहिए ॥ ३ ॥ क्योंकि नाम की बराबर माता, पिता, मित्र, हित करने वाला, सम्बन्धी, गुरु और स्वामी कोई नहीं है और वह मंगल करने वाला और चन्द्रमा के समान सुन्दर शीलवान् ( अर्थात् अमृत बरसा कर प्रसन्न करने वाला ) है सो हे दयालु ! मैं बलि जाऊँ तुम्हारे नाम से जिसमें प्रेमपूर्वक मुझ ग़रीब का निर्वाह हो जाय सो दीजिए यही तुलसीदास को बड़ा भारी वर है ॥ ४ ॥

[ २५६ ]

कहे बिनु रह्यो न परत कहे राम रस न रहत ।
तुमसे सुसाहब की ओट जन खोटो खरो, काल की करम की कुसासति सहत ॥ १ ॥
करत विचार, सार पैअत न कहूँ कछु, सकल बड़ाई सब कहाँ ते लहत ।
नाथ की महिमा सुनि समुझि आपनी ओर, हेरि कै हारि कै हहरि हृदयउ दहत ॥ २ ॥
सखा न सुसेवक न सुतिय न प्रभु आप माय बाप तुही साँचो तुलसी कहत ।
मेरी तो थोरी है सुधरैगी बिगरियो बलि राम रावरी सौं रही रावरी चहत ॥ ३ ॥

हे राम ! कहे बिना तो रहा नहीं जाता और कहने में रस नहीं रहता है। तुम सरीखे अच्छे स्वामी (कि जिनके सामने जाते ही सब पाप भय दूर हो जांय) सो तुम्हारी ओट पाकर भी बुरा या भला मैं तुम्हारा दास काल और कर्म के बुरे क्लेशों को सहता हूँ ( अर्थात् कलियुग तो मेरे पीछे काम, क्रोध आदि को लगाता है जिनके कारण मैं

दण्ड सहता हूँ और तुम तमाशा देखते हो यह नहीं चाहिए ) ॥ १ ॥ विचार करता हूँ पर कहीं भी कुछ भेद नहीं पाता कि ( वाल्मीकि, नारद, निषाद आदि ) सब कहाँ से बड़ाई पाते हैं ( अर्थात् किस स्वामी के करे से नीच ऊँचे हो गये। पर वेद, पुराण से ) तुम्हारी महिमा सुन समझ कर ( बड़े बड़े नीचों को दर्शन मात्र से तार दिया ) और अपनी ओर देख कर (कि मैं भी तुम्हारी शरण हूँ और मुझ पर कृपा नहीं करते ) हार मानली और घबराहट से मेरी छाती जलती है ( इसी से कटु वचन कहता हूँ ) ॥२॥ और (तुमसे इसलिए मैं बार बार कहता हूँ कि) न मेरे कोई मित्र है, न कोई सुन्दर सेवक है, न सुन्दर स्त्री है और न स्वामी है। मेरे तो माता पिता तुम ही हो ( तुम्हारा ही आसरा है ) तुलसी सच्ची कहता है। और हे राम ! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ मेरी तो थोड़ी सी है सुधरो या बिगड़ो पर तुम्हारी सौगन्द खाता हूँ कि मैं ( तुम्हारी शरण में रह कर ) तुम्हारी बात रही चाहता हूँ ( अर्थात् कोई यह न कहे कि राम की शरण जाने पर भी कुछ नहीं हुआ। उनकी बड़ाई वेद पुराणों में झूठ है कि वे पतितपावन और ग़रीबनिवाज हैं ) ॥ ३ ॥

[ २५७ ]

दीनबंधु दूरियो किये दीन को न दूसरी सरन।
आपको भले हैं सब आपने को कोऊ कहूँ सब को भलो है राम रावरो चरन ॥ १ ॥
पाहन पसु पतंग कोल भील निसिचर काँच ते कृपानिधान किए सुवरन।
दंडक पुहुमि पायँ परसि पुनीत भई उकठे विटप लागे फूलन फरन ॥२॥
पतिंतपावन नाम वामहूँ दाहिनो देव दुनी न दुसह दुख दूषन दरन।
सीलसिंधु तोसो ऊँची नीचियौ कहत सोभा भलौ तोसो तुही तुलसी की आरातिहरन ॥ ३ ॥

हे दीनबंधु ! तूने दूर तो कर दिया है पर इस ग़रीब को दूसरी शरण नहीं है

क्योंकि अपनी भलाई करने को तो सब भले हैं ( अर्थात् अपना भला तो सब ही स्वामी करते हैं ) पर अपने दासों का भला करने वाला कोई कहीं कहीं है । हे राम ! सब को भले तो तेरे ही चरण हैं ( अर्थात् सब का भला तो तेरे चरणों का ध्यान करने से ही होता है ) ॥ १ ॥ पत्थर ( अहिल्या ) पशु ( वानर ) पतंग ( गिद्ध ) कोल, भील, राक्षस ( विभीषण ) इनको हे कृपानिधान ! तू ने काँच से सोना कर दिया ( अर्थात् नीचों को बड़े पद का अधिकारी कर दिया ) और दण्डक वन की भूमि ( कि जिसके सब वृक्ष शुक्राचार्य्य के शाप से भस्म हो गये थे ) तेरे चरणों से स्पर्श होते ही पवित्र हो गई और सूखे वृक्ष फूलने फलने लगे ॥ २ ॥ तेरा पवित्र नाम दायें और बायें ( अर्थात् सन्मुख और विमुख दोनों ) पतितों को पवित्र करने वाला है और हे देव ! तुझसा दुनिया में दुःसह दुःख और पापों का नाश करने वाला नहीं है । तू शील का समुद्र है इसलिए तुझसे नीची ऊँची कहने में भी शोभा है और तुलसी का दुख हरने वाला तुझसे भला तूही है ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—पाहन = पत्थर । पुहुमि = पृथ्वी । उकठा = सूखा ।

[ २५८ ]

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान एतो मान ढीट हौं उलटी देत खोरि हौं ।
करत जतन जासों जोरिवे को जोगीजन तासों क्यों हूं जुरी सो अभागो बैठे तोरि हौं ॥१॥
मोसे दोष कोसको भुवनकोस दूसरो न आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं ।
गाड़ी के स्वान की नाईं माया मोह की बड़ाई छिनहिं तजत छिन भजत बहोरि हौं ॥२॥
बड़ो साईं द्रोही न बराबरी मेरी को कोऊ नाथ की सपथ किए कहत करोरि हौं ।
दूरि कीजै द्वार ते लवारु लालची प्रपंची सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहू डोरि हौं ॥३॥

राखिए नीके सुधारि नीचु को डारिये मारि दुहुँ ओर की विचारि अब न निहोरि हौं ।
तुलसी कही है साँची रेख बार २ खाँची ढील किये नाम महिमा की नाव बोरि हौं ॥ ४ ॥

हे कृपानिधान ! मैं जान-पहचान कर भी ( कि जीव ब्रह्म का पूर्व सम्बन्ध है ) तुम्हें भूल गया हूँ और घमण्ड के मारे इतना ढीठ हो रहा हूँ कि उलट कर तुम्हें ही दोष देता हूँ । जिससे प्रीति जोड़ने के लिए योगी लोग उपाय करते हैं उससे ज्यों त्यों कर ( प्रीति ) जुड़ गई थी सो मैं ऐसा अभागा कि उसे भी तोड़ बैठा हूँ ॥ १ ॥ मुझ सरीखा दोषों का ख़ज़ाना भुवनों के ख़ज़ाने में ( अर्थात् १४ भुवनों में भी ) दूसरा नहीं है क्योंकि अपनी समझ से मैं ढूँढ़ कर देख आया हूँ । गाड़ी के कुत्ते की भाँति ( अर्थात् जैसे गाड़ी के पीछे लगा कुत्ता कभी गाड़ी के साथ चलता है कभी शिकार आदि देख भाग जाता है फिर आ जाता है ऐसे ही ) मैं छिन छिन में तो माया, मोह की बड़ाई को छोड़ता हूँ और छिन भर में फिर उसी को करने लगता हूँ । ( अर्थात् छिन में तो माया और मोह की बड़ाई देख तुम से विमुख हो विषयों में फँस जाता हूँ फिर जब वहाँ दुःख देखता हूँ तब विषयों को छोड़ कर फिर तुम्हारे सम्मुख हो जाता हूँ ) ॥ २ ॥ और स्वामी से अधिक द्रोह करने में मेरी बराबर दूसरा कोई नहीं है मैं नाथ की करोड़ों सौगन्दें खा कर कहता हूँ । सो या तो मुझे अपने द्वार से (निकाल कर) दूर कर दो ( कि जिसमें तुम्हारे सामने न रहूँ ) नहीं तो मैं ऐसा उचक्का, लोभी और छल छिद्रों का भरा हूँ कि अमृत सा जो पानी है उसे सुअरिया की तरह घंघोर डालूँगा ( अर्थात् सामने रहूँगा तो निर्मल जल के समान तुम्हारे यश को यों गदला कर दूँगा कि सबसे यह कहता फिरूँगा कि रामजी का पतित-पावन यश केवल कहने का ही है करने का नहीं है ) और जो रखना है तो अच्छी तरह से सुधार कर ( अर्थात् मेरे अंतःकरण को शुद्ध करके ) रक्खो । न हो तो मुझ दुष्ट को मार डालो (जैसे राजा अपने से विमुख को मार डालता है) सो दोनों ओर की विचार लो (कि मुझे शरण में रखना या नहीं रखना) मैं अब तुम्हारा निहोरा नहीं करूँगा । तुलसी ने बार बार लकीर खींच कर सच्ची बात कह दी है जो देर करोगे तो नाम की महिमा की जो नाव है उसे डुबो दूँगा (अर्थात् सब जगह कहता फिरूँगा कि मैंने बरसों तक राम-नाम जपा कुछ नहीं हुआ । उसका आसरा करना वृथा है फिर कोई तुम्हारा नाम न लेगा ) ॥ ४ ॥

[ २५९ ]

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरेगी मेरी कहो बलि वेद किन लोकु कहा कहै गो ।
प्रभु को उदास भाउ जन को पाप प्रभाउ दुहूँ भाँति दीनबंधु दीन दुख दहैगो ॥ १ ॥
मैं तो दियो छाती पवि लयो कलिकाल दवि सासति सहस परवस को न सहैगो ।
बाँकी विरुदावलि बनैगी पालेही कृपाल अंत मेरो हाल हेरि यों न मन रहेगो ॥२॥
करमी धरमी साधु सेवक विरतरत आपनी भलाई थलु कहाँ को न लहैगो ।
तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो ॥३॥
काल पाय फिरत दसा दयालु सबही की, तोहि विनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो ।
वचन करम हिये कहौं राम सौंह किए तुलसीपै नाथ के निबाहे निबहैगो ॥४॥

( जो कहो कि मैं तेरा भला किया चाहता हूँ तू आपही अपना बिगाड़ करता है तहाँ कहते हैं कि ) तेरी सुधारी हुई मेरी ( दशा ) मेरे बिगाड़ने से बिगड़ जायगी तो मैं तेरी बलैयाँ लेता हूँ, कहता क्यों नहीं कि वेद और संसार क्या कहेगा ( क्योंकि जब तूने बना दी और उसे मैंने बिगाड़ दी तब वेद-विदित तेरी महिमा झूँठी हो जायगी और संसार मुझे ही ईश्वर मानेगा कोई तेरा नाम न लेगा। उधर ) प्रभु का तो उदास भाव ( अर्थात् मेरी ओर कृपादृष्टि न करना ) और ( इधर ) मुझ भक्त का पाप-प्रभाव ( अर्थात् बड़ा पापी होना ) हे दीनबन्धु ! दोनों भाँति से यह ग़रीब दुःख से जलेगा ॥ १ ॥ मैंने तो अपनी छाती पर वज्र रख दिया है ( अर्थात् मैंने तो वज्र की छाती कर

ली है ) क्योंकि कलियुग ने मुझे दबा लिया है सो जो पराये वश पड़ा है ऐसा कौन हज़ारों क्लेश नहीं सहेगा ( अर्थात् पराधीन होने से सबको क्लेश सहने ही पड़ते हैं कुछ नई बात नहीं ) परन्तु हे कृपालु ! अपनी बाँकी विरदावली से मुझे तो पालते ही बनेगा ( नहीं तो तेरे पतित-पावन आदि यश में बट्टा लग जायगा । तुझे भले ही अब दया न आवे पर ) अंत में जब मेरा हाल याद करेगा ( अर्थात् जब यम के दूत मुझे पकड़ेंगे और मैं त्राहि त्राहि कर तुझे पुकारूँगा ) तब तेरा यह मन नहीं रहेगा ( भाव—तू अवश्य दौड़ कर मुझे छुड़ावेगा ) ॥ २ ॥ कर्मी ( जप तप, आदि के करने वाले ) धर्मी ( वर्णाश्रम का धर्म पालनेवाले ) साधु, सेवक और वैरागी ये अपनी अपनी भलाई से कौन कहाँ जगह नहीं पावेंगे ( अर्थात् सब अपने अपने कर्मानुसार स्वर्ग आदि पावेंगे ) पर तेरे मुख फेरने से मुझ सरीखे कायर, कपूत, खोटे, दुबले, विषय में सने हुओं को कौन स्वीकार करेगा ॥ ३ ॥ और यों समय पाकर तो सब ही की दशा पलटती है पर हे दयालु ! तेरे विना मुझे कभी कोई नहीं चाहेगा । हे राम ! मैं मन, वचन और हृदय से सौगन्द खाकर कहता हूँ कि तुलसीदास तो नाथ के निभाने से ही निभेगा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—पवि = वज्र । हेरना = स्मरण करना । लटपटा = कामी ।

[ २६० ]

साहब उदास भये दास खास खीस होत, मेरी कहा चली हौं बजाइ जाइ रह्यो हौं ।<br>
लोक में न ठाउँ परलोक को भरोसो कौन हौंतो बलिजाउँ राम नाम हींते लह्यो हौं ॥१॥<br>
करम सुभाउ काल काम कोह लोभ मोह ग्राहअति गहनि गरीब गाढ़े गह्यौ हौं ।<br>
छोरिवे को महाराज बाँधिवे को कोटि भट, पाहि प्रभु पाहि तिहुँ ताप पाप दह्यो हौं ॥२॥<br>
रीझि बूझि सब की प्रतीति प्रीति एही द्वार, दूध को जऱ्यो पिअत फूंकि २ मह्यौ हौं ।

रटत रटत लट्यो जाति पाँति भाँति घट्यो, जूठनि को लालची चहौं न दूध्यो नह्यो हौं ॥३॥
अनत चह्यों न भलो सुपथ सुचाल चल्यो, नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं।
तुलसी समुझि समुझायो मन बार बार आपनों सो नाथहूँ सों कहि निरवह्यों हौं ॥४॥

स्वामी के उदास होने से ( अर्थात् रुख़ फेर लेने से ) ख़ास दास को भी खिसियाना होना पड़ता है फिर मेरी क्या चली है। मैं तो डङ्का बजा कर जा रहा हूँ ( अर्थात् मनमाने बुरे कर्म कर रहा हूँ ) जब कि मेरा संसार में ही ठिकाना नहीं है तब परलोक का क्या भरोसा। हे राम! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ मैंने तो तुम्हारे नाम का ही सहारा ले रक्खा है। (अपने बुरे) कर्म (कुटिल) स्वभाव (कलियुग सरीखा) काल और काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी बड़े भारी ग्राहों ने मुझ ग़रीब को ख़ूब ज़ोर से पकड़ रक्खा है। सो हे महाराज! छुड़ाने के लिए तो तुम (अकेले) हो और बाँधने के लिए करोड़ों योधा हैं सो हे प्रभो! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो क्योंकि मैं तीनों तापों और पापों से तच रहा हूँ ॥ २ ॥ ( जो कहो कि किसी दूसरे से क्यों नहीं कहता तहाँ कहते हैं कि हम सरीखों की कहीं दाल नहीं गलेगी ) हम सब की तो रीझ-बूझ प्रीति और प्रतीति एक तुम्हारे ही द्वार पर होगी ( जो कहो कि हम पर ही भरोसा है तो चुपका होकर बैठ, क्यों बार बार पुकारता है तहाँ कहते हैं कि यह तो सच है ) पर मैं दूध का जला छाँछ को फूँक फूँक कर पीता हूँ। क्योंकि मैं पुकारता पुकारता लट गया और मेरी जाति पाँति और भाँति ( अर्थात् कुल की मर्यादा ) सब घट गई ( किसी काम का नहीं रहा ) और हे प्रभो! मैं तो तुम्हारी केवल जूठन का लालची हूँ कुछ दूध मलाई नहीं चाहता हूँ ( अर्थात् बड़ी बड़ी कामना नहीं चाहता थोड़ी सी भक्ति का भूखा हूँ फिर क्यों देर लगा रक्खी है ) ॥ ३ ॥ मैं और जगह ( अर्थात् दूसरे देवताओं की शरण जाकर धर्मज्ञान के ) सुन्दर मार्ग में अच्छी चाल चल कर ( अर्थात् अच्छी तरह निर्वाह कर ) अपना भला नहीं चाहता हूँ ( क्योंकि कोई शरणागत पाल नहीं है ज़रा से चूकने पर निकाल बाहर करेंगे ) और यहाँ ( तुम्हारी शरण में ) विना चाहना का भी अच्छा हूँ इस बात को मैं जी में अच्छी तरह जानता हूँ। तुलसी ने समझ कर मन को बार बार समझा दिया है ( कि भगवान् की शरण छोड़

कहीं मत जा ) और अपना सा ( जहाँ तक हुआ ) नाथ से कह कर भी निवट गया ( आगे तुम्हारे हाथ है जो चाहो सो करो ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—कोह = क्रोध । गहनि = कड़े । नह्यो = मलाई ।

[ २६१ ]

मेरी न बने बनाये मेरे कोटि कलप लौं राम रावरे बनाए बने पल पाउ मैं ।
निपट सयाने हौ कृपानिधान कहा कहौं लिये बेर बदलि अमोलमनि आउ मैं ॥१॥
मानस मलीन करतब कलिमल पीन, जीह हूँ जप्यो नाम बक्यो आउबाउ मैं ।
कुपथ कुचाल चल्यौ भयो न भूलिहूं भलो, बाल दसाहूँ न खेल्यो खेलत सुदाउ मैं ॥२॥
देखी देखा दंभ ते कि संग ते भई भलाइ, प्रगटि जनाइ कियो दुरित दुराउ मैं ।
राग रोष द्वेष पोषे गोगन समेत मन इनकी भगति कीन्हीं इनहीं को भाउ मैं ॥३॥
आगिलौ पाछिलौ अबहूँ को अनुमानही ते बूझिअत गति कछु कीन्हौं तो न काउ मैं ।
जग कहै राम को प्रतीति प्रीति तुलसीहू झूठे साँचे आसरोय साहब रघुराउ मैं ॥४॥

हे राम ! मेरे बनाने से मेरी करोड़ों कल्प तक नहीं बनेगी और हे राम ! तुम्हारे बनाने से चौथाई पल में बन जायगी ॥ १ ॥ हे कृपानिधान ! तुम तो ( स्वयं ) बड़े चतुर हो, तुम से मैं क्या कहूँ, मैंने अनमोल मणि के समान आयु के बदले में बेर ले लिये ( अर्थात् सुन्दर मनुष्य तन पाकर तो तुम्हारी भक्ति चाहिए थी सो इतनी आयु विषय में खो दी । कैसे खो दी कि विषयों से ) मेरा मन मैला हो गया और जो काम

किये सो भी कलियुग के पापों के कारण बढ़ते गये और जीभ ने भी तुम्हारा नाम नहीं जपा और मैं तो ( जन्म भर ) आँय बाँय ही बकता रहा हूँ ( लोक-वेद-प्रतिकूल ) बुरे मार्ग में मैं तो कुचाल ही चलता रहा हूँ ( अर्थात् पाप ही करता रहा हूँ ) । और भूल कर भी मुझसे किसी का भला नहीं हुआ और बचपन में भी खेलते समय मैं सुन्दर दाँव ( अर्थात् रामलीला आदि ) नहीं खेला ॥ २ ॥ और ( दूसरों की ) देखा-देखी या पाखंड से वा संग से ( जो कुछ ) भलाई हो भी गई तो उसे मैंने सब को प्रकट जता दिया ( कि मैंने ऐसे ऐसे पुण्य किये हैं ) और जो पाप किये थे उन्हें छिपाये ( अर्थात् किसी से भी नहीं कहे ) और मैंने राग, रोष और द्वेष इनसे इन्द्रियगण समेत मन को .खूब मोटा कर लिया और इनकी ही भक्ति की और इन्हीं का भाव किया ॥ ३ ॥ अगली पिछली और हाल की ( अपनी दशा ) मैंने अटकल से ही जान ली कि कुछ कोई सा भी तो ( भला ) काम मैंने नहीं किया । परन्तु संसार कहता है (कि तुलसी रघुनाथजी का है ) और तुलसी को भी ( प्रणतपाल आदि महिमा सुन कर ) रामजी की प्रतीति और उनसे प्रीति है सो मैं झूठा होऊँ वा सच्चा ( जो कुछ हूँ ) हे स्वामी रघुनाथजी ! तुम्हारे आसरे हूँ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—आउ = आयु, उमर । पीन = मोटा । आउबाउ = बेमतलब की बात । दुरित = पाप । गो = इन्द्रियाँ ।

[ २६२ ]

कह्यो न परत बिनु कह्यो न रह्यो परत बड़ो सुख कहत बड़े सों बलि दीनता ।

प्रभु की बड़ाई बड़ी आपनी छोटाई छोटी प्रभु की पुनीतता आपनी पापपीनता ॥१॥

दुहूँ ओर समुझि सकुचि सहमत मन सनमुख होत सुनि स्वामी समीचीनता ।

नाथ गुनगाथ गाए हाथ जोरि माथो नाए, नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रवीनता ॥२॥

एहि दरबार है गरब ते सरबहानि, लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता ।

मोटो दसकन्ध सो न दूबरो विभीषन सो, बूझि परि रावरे की प्रेमपराधीनता ॥ ३ ॥
यहां की सयानप अयानप सहस सम, सूधो सतभाय कहै मिटति मलीनता ।
गीध सिला सबरी की सुधि सब दिन किए, होइगी न साँई सों सनेह हित हीनता ॥४॥
सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु सुमिरत, होत कलिमल छलछीनता ।
करुनानिधान वरदान तुलसी चहत सीतापति भगति सुरसरि नीर मीनता ॥५॥

हे भगवन् ! ( जो अपना कर्म विचारता हूँ तो ) कहा भी नहीं जाता और बिना कहे भी नहीं रहा जाता परन्तु मैं बलैयाँ लूँ बड़े से अपनी ग़रीबी के कहने में बड़ा सुख होता है ( कारण उदार स्वामी याचना करने से उसे पूर्ण कर देता है । जो कहो कि सुख होता है तो अपना स्वारथ क्यों नहीं कहता तहाँ कहते हैं कि ) स्वामी की तो बड़ी बड़ाई और अपनी छोटी छोटाई, फिर स्वामी की तो पवित्रता और अपने पापों की मुटाई ॥१॥ दोनों ओर की ( निचाई उँचाई ) विचार कर मन शरम के मारे सहमता है (अर्थात् पीछे को हटता है ) पर स्वामी की सुन्दरता सुन कर ( कि बड़े पतितपावन हैं ) फिर सम्मुख होता है । और हे नाथ ! तेरे गुणों की कथा गाने से और हाथ जोड़ कर शिर नवाने से नीच भी निहाल हो जाते हैं यह तुझमें प्रीति की रीति निबाहने की चतुराई है ॥ २ ॥ इस दरबार में अभिमान करने से सब ( तरह की ) हानि है और बड़ी सादगी और ग़रीबी करने में सुख और कल्याण का लाभ है । रावण सरीखा तो मोटा ( अर्थात् प्रतापी नहीं ) और विभीषण सरीखा दुबला ( कहिए दीन ) नहीं ( पर जब वह शरण में आया और उसने प्रणाम किया तब रावण को बिना मारे ही उसे लङ्का का अकंटक राज दे दिया ) इसीसे तेरा, प्रेम से पराधीन होना मुझे जान पड़ा ॥३॥ यहाँ (तेरे सामने) चतुराई छाँटना हज़ारों मूर्खता के समान है (भाव—चतुराई करने से नारद की सी दुर्दशा होती है) और सीधे और सच्चे भाव से कहने से मलीनता मिट जाती है ( अर्थात् पाप अवगुण सब मिट जाते हैं । और गति दे चुकने पर भी ) तू गिद्ध, शिला ( अहिल्या ) शबरी की

हर दिन याद करता रहता है इसलिए स्वामी से सनेह और भलाई की कमी नहीं होगी ॥४॥ सुमरन करने से तेरा नाम-रूप कल्पवृक्ष सब कामनाओं को देता है और उससे कलियुग के पाप और कपट नाश हो जाते हैं। हे करुणानिधान रामचन्द्र! तुलसीदास यह बरदान चाहता है कि तेरी भक्तिरूपी गङ्गाजी के जल में मछली की तरह मग्न रहै ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—समीचीनता = सुन्दरता, बड़ाई। प्रवीनता = चतुराई। जोग = सुख, कल्याण, क्षेम। मिसकीनता = अरबी शब्द है इसका अर्थ बहुत सादगी का है।

[ २६२ ]

नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन जीय की।
रावरो भरोसो नाह कैसे सुप्रेम नेम लियो रुचिर रहनि रुचि मति तीय की ॥१॥
दुकृत सुकृत बस सबहीं सों संग पर्यौ परखी पराई गति आपनेहूँ कीय की।
मेरे भले को गोसाँई पोच को हू सकल भाव किये, कहौं सौंह साँची सिअ पीअ की ॥२॥
ज्ञानहूँ गिरा के स्वामी बाहेर अन्तरजामी यहाँ क्यों दुरैगी बात मुख की औ हिअ की।
तुलसी तिहारो तुमहीं पै तुलसी के हित राखि कहूँ हौं जो पै ह्वै-हौं माखी घीय की ॥३॥

हे नाथ! मुझ भक्त के जी की ठीक ठीक जान लेना। मेरी बुद्धिरूपी स्त्री ने तुम्हारे भरोसे के साथ ऐसा पति (१) का सा प्रेम करने का नेम किया है जैसे सुन्दर आचरण वाली (अर्थात् पतिव्रता स्त्री) रुचि गति (अर्थात् अन्तःकरण से) से अपने पति में प्रेम का नेम करती है (और स्वप्न में भी दूसरे देवता वा पति को नहीं जानती) ॥ १ ॥ पाप और पुण्य करने के वश सब का ही संग करना पड़ा (अर्थात् जैसे कर्म किये वैसे

(१) शिवपुराण में कहा है "स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम्। नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा पतिव्रता—सरलार्थः।

ही वैसे लोगों का संग मिला ) सो उन दूसरों की दशा भी परखी और अपनी करनी को भी परखा। पर मुझ नीच का तो स्वामी ने सब तरह से भला ही किया। मैं रघुनाथजी की सौगन्द खा कर सच्ची सच्ची कहता हूँ ॥ २ ॥ तुम ज्ञान के और वाणी के स्वामी हो और बाहर-भीतर की जानने वाले हो सो यहाँ ( तुम्हारे सामने ) मुँह और मन की बात क्यों छिपेगी। पर तुलसीदास तुम्हारा है और तुम तुलसीदास का हित करने वाले हो जो इसमें मैं ( कुछ कपट ) रख कर कहता होऊँ तो मैं घी की मक्खी हो जाऊँगा ( अर्थात् स्वयं तुरन्त नष्ट हो जाऊँगा ) ॥ ३ ॥

[ २६४ ]

मेरो कह्यो सुनि जिय पुनि भावै तोहिं करि सो ।
चारिहूँ विलोचन विलोक तू धौं तिलोक महुँ तेरो तिहुँकाल कहुँ को है हितु हरि सो ॥१॥
नए नए नेह अनुभये, देह गेह बसि, परिखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो ।
सुहृद समाज दगाबाजिही को सौदा सूत जब जाको काज तब मिलै पाँय परि सो ॥२॥
विबुध सयाने पहिचाने कैंधौ नाहीं नीके देत एक गुन लेत कोटि गुन भरि सो ।
करम धरम स्रम फल रघुवर विनु राखु को सो होम है ऊसर कोसो बरिसो ॥३॥
आदि अंत बीच भलो भलो करै सबही को जाको जस लोक वेद रह्यो है बगरि सो ।
सीतापति सारिखो न साहब सीलनिधान कैसे कल परै सठ बैठो सो विसरि सो ॥४॥
जीव को जीवन प्रान प्रान को परमहित, प्रीतम पुनीत कृत नीच निदरि सो ।

**तुलसी तोको कृपाल जो कियो कोसलपाल चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ॥५॥**

अरे तुलसी ! एक बार तू मेरा कहा सुन ले पीछे तुझे अच्छा लगे सो करियो । ( दो बाहर की और दो भीतर की ) अपनी चारों आँखों से तीनों लोकों में देख ले; तीनों कालों में भगवान् के समान तेरा हित करनेवाला कहाँ और कौन है ( अर्थात् सुर, नर, मुनियों में कोई भी नहीं है ) ॥ १ ॥ इस शरीररूपी घर में रह कर ( स्त्री पुत्रादिकों से ) तेरे नये नये नेह पैदा हुए और तूने उनके भी कपट भरे प्रेम को परखा ( कि विपत्ति में किसी ने सहारा नहीं दिया ) और वह अन्त में खुल गया । मित्रों का समाज दगाबाज़ी का सैादासूत ( कहिए लेन-देन का व्यवहार ) है जब जिसका काम पड़ता है तब वह मिल कर पैरों पड़ता है । (और बिना स्वारथ कोई बात नहीं करता, यह तो मनुष्यों का हाल है ) ॥ २ ॥ और देवता भी बड़े चालाक हैं तूने उनको अच्छी तरह पहचाना या नहीं ? वे कोटि-गुना भर लेते हैं, (अर्थात् जप, तप आदि में परिश्रम करा लेते हैं) तब एक गुना देते हैं ( और जो करने में चूके तो उलटा विघ्न कर देते हैं ) । सो रामजी के बिना कर्म, धर्म करने का फल कोरा श्रम है ( और कुछ नहीं ) । वह राख का सा होम है ( अर्थात् जैसे बिना अग्नि के कोई राख में होम करे तो साकल्य वृथा जाय और फल कुछ न मिले ) और ऊसर धरती पर बरसने के समान है ( अर्थात् ऊसर धरती में बीज बोओ और उस पर कितना ही मेंह बरसे लेकिन उसमें बीज नहीं जमता है ) ॥ ३ ॥ जो पहले ( गर्भ में ) पीछे ( अर्थात् मरण के पीछे ) और बीच में ( अर्थात् जीवन पर्यन्त ) भले हैं और सब ही का भला करते हैं और जिनका यश संसार और वेदों में फैल रहा है । ऐसा रामचन्द्रजी सरीखा साहब सुन्दर स्वभाव का स्थान कोई नहीं है उसे भूल कर रे मूर्ख ! तुझे बैठे बैठे कैसे चैन मिलेगा ॥ ४ ॥ जो जीवों का जिलाने वाला, प्राणों का भी प्राण, ( शरण होते ही ) परमहित करनेवाला, बड़ा प्यारा और जिस ने ( भील सरीखे ) नीचों को पवित्र किया उसका निरादर करता है । हे तुलसीदास ! उस कृपालु रामचन्द्र ने तेरे लिए जो चित्रकूट में चरित्र किया था ( अर्थात् तुझे साक्षात् दर्शन ( १ ) दिया था ) उसे चेत कर मन में याद कर ले ॥ ५ ॥

[ २६५ ]

**तन सुचि मन रुचि मुख कहौं जन हौं सिय पीको ।**

( १ ) गोसाईं जी के जीवनचरित्र में देखो ।

केहि अभाग जान्यो नहीं जो न होइ नाथ सों नातो नेहु न नीको ॥१॥

जल चाहत पावकु लहौं विषु होत अमी को।

कलि कुचाल संतनि कहीं सोइ सहीं मोहि कछु फहमु न तरनि तमी को ॥२॥

जानि अंध अंजनु कहै वन बाघिनि घी को।

सुनि उपचार विकार को सुविचार करौं जब तब बुद्धि बल हरै हीको ॥३॥

प्रभु सों कहत सकुचत हौं परौं जनि फिरि फीको।

निकट बोलि बलि बरजिये परिहरै ख्याल अब तुलसिदास जड़ जीको ॥४॥

हे राम! (मैं अपनी जान में) शरीर को पवित्र रखता हूँ और मन में चाहता हूँ और अपने मुख से कहता हूँ कि मैं सीताजी के पति रामचन्द्रजी का दास हूँ। परन्तु मैं नहीं जानता कि किस अभाग से नाथ के साथ सुन्दर नाता और प्रेम नहीं होता ॥ १ ॥ मैं पानी चाहता हूँ और अग्नि मिलती है (अर्थात् मैं तो चाहता हूँ कि चित्त शांत हो सो तो नहीं होता, उलटा तीनों तापों से तचता है) और अमृत का ज़हर हो जाता है। (अर्थात् अमृतरूपी जो परमार्थ साधन करता हूँ सो पाखण्ड आदि करने से वह जीव के मारने को विष रूप हो जाता है)। सन्तों ने जो कलियुग की कुचालें कही हैं (कि कलियुग की ऐसी चाल है कि परमार्थ होने नहीं पाता) सो वे सब सही हैं, मुझे सूर्य्य और अँधेरे की कुछ समझ नहीं है (अर्थात् आत्मज्ञान और अविद्या की पहचान नहीं है। हे स्वामी! कलिकाल का एक तमाशा देख लो वह) मुझे (ज्ञान का) अंधा जान कर वन की सिंहनी के घी का अंजन बताता है (कि तू वन की सिंहनी के घी को आँखों में आँजे तो तेरी दृष्टि खुल जायगी सो अपने नेत्रों के) इस विकार का उपाय सुन कर जब मैं विचार करता हूँ (कि पालतू बाघिनी हो तो कदाचित् घी की आशा भी हो और वन की बाघिनी तो पास जाते ही खा जायगी, घी कैसा? अर्थात् कलियुग की प्रेरणा से विषयरूपी घी के लिए संसाररूपी वन की विषय-वासना-रूपी बाघिनी के पास कैसे जाऊँ, जाने में तो नुक़सान है) तब वह (कलियुग) हृदय से

बुद्धि का बल हर लेता है ( सो मुझे उसी की बताई दवा अर्थात् विषय-भोग ही अच्छा लगता है इसीसे जानता हूँ कि तुम्हारी प्रीति में कलियुग ही बाधक है ) ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! ( एक बात है उसे ) कहने में शरमाता हूँ कि कहीं मैं फिर फीका न पड़ जाऊँ ( अर्थात् कहीं मेरी बात ख़ाली न पड़े ) इससे मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ कि ( कलि को ) पास बुला कर मने कर दो कि वह तुलसीदास सरीखे जड़ जीव का ख़याल छोड़ दे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—अमी = अमृत । फ़हम = समझ, ज्ञान । तरनि = ( तरणि ) सूर्य । तम = अँधेरा । उपचार = उपाय ।

[ २६६ ]

ज्यौं ज्यौं निकट भयो चहौं कृपालु त्यौं त्यौं दूरि पस्यो हौं ।
तुम चहुँ जुग रस एक राम हौ हूँ रावरौ जदपि अघ अवगुनन्हि भस्यो हौं ॥१॥
बीच पाइ नीच बीचहीं छरानि छस्यो हौं ।
हौं सुवरन कुवरन कियो नृप ते भिखारि करि सुमति ते कुमति कस्यो हौं ॥२॥
अगनित गिरि कानन फिस्यो बिनु आगि जस्यो हौं ।
चित्रकूट गये मैं लखी कलि की कुचाल सब अब अपडरनि डस्यो हौं ॥ ३ ॥
माथ नाइ नाथ सों कहौं हाथ जोरि खस्यो हौं ।
चीन्हों चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि प्रभु सों गुदरि निवस्यो हौं ॥ ४ ॥

हे कृपालु ! ज्यों ज्यों तुम्हारे पास होना चाहता हूँ त्यों त्यों दूर पड़ता जाता हूँ । हे राम ! तुम चारों युगों में एक रस हो और यद्यपि मैं पाप और औगुणों से भरा हूँ तो भी तुम्हारा हूँ ॥ १ ॥ ( जब मैं अज्ञान से तुम्हारे विमुख था तब ) नीच ( कलि ) ने बीच कहिए मौक़ा पाकर मुझे बीच ही में ऐसे ऐसे छल करके छला कि सुवर्ण से कुवर्ण ( कहिए राँगा, सीसे के बराबर ) कर डाला ( अर्थात् मैं कुन्दन के समान

सच्चिदानन्द था सो मेरे पीछे माया लगा कर दाग़ी कर दिया और इन्द्रिय मन आदि को रोक कर शरीररूपी देश में राज्य करता था, सो इन्द्रियों को विषय में आसक्त करा के ) राजा से भिखारी कर दिया और ज्ञानवान से मूर्ख कर डाला ( भाव—मेरी बुद्धि जो परमेश्वर में लग रही थी उसे संसार के विषयों में लगा दी ) ॥ २ ॥ ( पहले ) मैं अनगिनती पहाड़ और वनों में डोलता फिरा और बिना आग के ही जलता रहा ( अर्थात् चित्त का शांत रहना तो दूर रहा उलटा ताप ने मुझे जलाया )। पर जब मैं चित्रकूट गया तब देखा कि ये सब कलियुग की कुचालें हैं सो अब उसके भय से मैं डर गया हूँ ( क्योंकि वह सबल है और मैं निर्बल हूँ ) ॥ ३ ॥ मैं हाथ जोड़े खड़ा हूँ और स्वामी से माथा नवा कर कहता हूँ कि पहचान लेने से चोर जीव को मार डालता है सो मैं तुलसी इस कथा को ( लोगों से ) सुनकर और प्रभु से पुकार मचा कर निबट चुका ( भाव—कलियुग पहचाना हुआ चोर है मुझे जान से मारे बिना नहीं छोड़ेगा तुम्हें भावे सो करो ) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—गुहराना = पुकार मचाना।

[ २६७ ]

प्रन करि हौं हठि आजुते राम द्वार पस्यो हौं।
तू मेरो यह बिन कहे उठि हौं न जनम भरि प्रभु की सौंह करि निबस्यो हौं ॥ १ ॥
दै दै धका जमभट थके टारे न टस्यो हौं।
उदर दुसह सासाति सहि बहुबार जनमि जग नरक निदरि निकस्यो हौं ॥२॥
हौं मचला लै छाँड़ि हौं जेहि लागि अस्यो हौं।
तुम दयालु बनिहै दिये बलि बिलंबु न कीजै जात गलानि गस्यो हौं ॥३॥
प्रगट कहत जों सकुचिये अपराध भस्यो हौं।
तो मन में अपनाइये तुलसिहि कृपा करि कलि बिलोकि हहस्यो हौं ॥ ४ ॥

हे रामजी! आज से मैं हठ से प्रण कर ( अर्थात् धन्ना देकर ) तुम्हारे द्वार पर पड़ा हूँ। और "तू मेरा है" यह कहाये बिना जन्म भर नहीं उठूँगा, प्रभु की सौगन्द खाकर निवटता हूँ ॥ १ ॥ ( जो कहो कि तू न हटेगा तो हम धक्के देकर उठवा देंगे तहाँ कहते हैं कि पहले पाप के कारण जब मैं नरक में गया और यम पीड़ा को भोग चुका तो ) यम के दूत मुझे धक्के दे देकर थक गये ( कि ख़बरदार अब यहाँ मत आइयो ) पर मैं टाला नहीं टला। और संसार में बार बार जन्म लेकर (माता के) पेट की दुःसह पीड़ा को सहा ( और बार बार नरक में गया ) और नरक का निरादर कर ( अर्थात् नरकवालों का नाक में दम करके ) निकला हूँ ( सो धक्के खाने में भी बड़ा पक्का हूँ। याद रखना तुम्हारे धक्कों से कभी नहीं टलूँगा ) ॥ २ ॥ और मैं तो जिस लिए मचला हूँ और अड़ा हूँ उसे लेकर पीछा छोड़ूँगा। तुम दयावान् हो ( जो मागूँगा ) तुम्हें दिये ही बनेगा। मैं बलि जाऊँ अब देर न कीजिए। मैं दुःख से गला जाता हूँ ( क्योंकि लोग कहेंगे कि ऐसे स्वामी के द्वार पर धन्ना देकर भी कोरा ही रहा, बड़ा अभागा है ) ॥ ३ ॥ और मैं अपराधों से भरा हूँ इसलिए जो ( मुझे ) अपना कहने में तुम सब के सामने शरमाते हो तो कृपा कर मुझ तुलसी को मन में ही अपनालो क्योंकि मैं कलि को देखकर घबरा रहा हूँ ॥ ४ ॥

[ २६८ ]

तुम अपनायो तब जानि हौं जब मन फिरि परि है।
जेहि सुभाउ विषयनि लग्यो तेहिं सहज नाथ सों नेह छाँड़ि छल करि है ॥१॥
सुत की प्रीति प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरि है।
अपनो सो स्वारथ स्वामीसों चहुँ बिधि चातक ज्यों एकटेक ते नहिं टरि है ॥२॥
हरषि है न अति आदरे निदरे न जरि मरि है।
हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित कलि कुचाल परिहरि है ॥३॥
प्रभु गुन सुनि मन हरषि है नीर नयननि ढरि है।

तुलसिदास भयो राम को बिस्वास प्रेम लखि आनँद उमँगि उर भरि है ॥४॥

हे नाथ! तुमने मुझे अपनाया (अर्थात् अपना दास समझा) इस बात को मैं तब जानूँगा कि जब मेरा मन फिर जायगा। और हे नाथ! जिस स्वभाव से विषयों में लगा है उसी सहज स्वभाव से कपट छोड़ कर तुमसे स्नेह करेगा ॥ १ ॥ और जैसे बेटे से प्रीति करता है और मित्र का भरोसा करता है और राजा के डर से डरता है वैसेही वह अपना सब स्वार्थ प्रभु से ही रक्खेगा (अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष स्वामी से ही होना मानेगा) और चारों ओर से पपीहे की भाँति एक टेक से नहीं हटेगा ॥ २ ॥ और बहुत आदर करने से ख़ुशी न होगा और अनादर करने से जल नहीं मरेगा और हानि-लाभ, सुख-दुःख, भलाई-बुराई इन सबों को एकसा समझेगा और कलियुग की बुरी चालों को छोड़ देगा ॥ ३ ॥ और प्रभु के गुणों को सुन कर मन में प्रसन्न होगा और आँखों में से जल गेरेगा (इतनी बातें जब होने लगेंगीं) तब तुलसी को रामचन्द्रजी के दास होने का विश्वास होगा और इस प्रेम को देख कर आनन्द हृदय में भर कर उमंग जायगा (अर्थात् इतना आनन्द होगा कि हृदय में समावेगा नहीं) ॥ ४ ॥

[ २६९ ]

राम कबहुँ प्रिय लागि हौ जैसे नीर मीन को ।
सुख जीवन ज्यों जीव को मनि ज्यों फनि को हित ज्यों धन लोभलीन को ॥१॥
ज्यों सुभाय प्रिय लागति नागरी नागर नवीन को ।
त्यों मेरे मन लालसा करिये करुनाकर पावन प्रेम पीन को ॥२॥
मनसा को दाता कहैं स्रुति प्रभु प्रवीन को ।
तुलसिदास को भावतो बलि जाउँ दयानिधि दीजै दान दीन को ॥३॥

हे राम ! तुम मुझे भी कभी प्यारे लगोगे । जैसे मछली को पानी प्यारा लगता है और जैसे जीव को सुख से जीना प्यारा लगता है और जैसे साँप को मणि प्यारा लगता है और जैसे लोभी को धन प्यारा लगता है ॥ १ ॥ और जैसे

तरुण पुरुष को स्वभाव से ही नवयौवना चतुर स्त्री प्यारी लगती है। वैसे ही हे करुणाकर! (अपने चरणारविन्दों में) पवित्र प्रेम के पुष्ट होने की इच्छा मेरे हृदय में उत्पन्न कर दो॥ २॥ वेद कहते हैं कि प्रभु मनसा के देनेवाले हैं और उनसा चतुर कौन है (कि जो पात्र कुपात्र विचारे बिना ही याचक मात्र की कामना पूर्ण करते हैं) सो मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ हे दयानिधान! तुलसीदास ग़रीब को भी मन का भावता दान दे दीजिए॥ ३॥

शब्दार्थ—फनि = सर्प। नवीन = तरुण। पीन = पुष्ट, दृढ़।

[ २७० ]

कबहुँ कृपा करि रघुबीर मोहूँ चितैहो।
भलो बुरो जन आपनो जिय जानि दयानिधि औगुन अमित बितैहो॥१॥
जनम जनम हौं मन जित्यो अब मोहिं जितैहो।
हौं सनाथ ह्वैहौं सही तुमहूँ अनाथपति जो लघुताहि न भितैहो॥
विनय करौं अपभयहुँ ते तुम्ह परम हितै हो।
तुलसिदास कासों कहै तुमही सब मेरे प्रभु गुरु मात पितै हो॥

हे रघुवीर! कभी दया कर मेरी ओर भी देखोगे। और मन में अपना बुरा भला दास जान हे दयानिधि! मेरे अनगिनती औगुनों को भी बिता दोगे (अर्थात् माफ़ कर दोगे)॥ १॥ और पहले जन्मों में तो मन मुझे जीतता रहा अब मुझे भी उससे जिताओगे। (ऐसा करने से) मैं सच्चोंही सनाथ हो जाऊँगा और तुम भी जो मेरी छोटाई (अर्थात् नीचपन) से न डरोगे तो अनाथों के पति कहाओगे॥ २॥ मैं अपने डर के मारे यों विनती करता हूँ कि तुम मेरे बड़े हितकारी हो। और तुलसीदास किससे कहे क्योंकि मेरे तो मालिक, गुरु, माता पिता तुम ही हो॥ ३॥

[ २७१ ]

जैसो हौं तैसो हौं राम रावरो जन जनि परिहरिये।
कृपासिंधु कोसलधनी सरनागतपालक ढरनि आपनीउ ढरिये॥१॥
हौं तो बिगरायल और को बिगरो न बिगारिये।

तुम सुधारि आए सदा सबकी सबही विधि अब मेरियो सुध-
रिए ॥२॥
जग हँसिहै मेरे सँग्रहें कत एहि डर डरिए।
कपि केवट कीन्हें सखा जेहि सील सरल चित तेहि सुभाउ
अनुसरिए ॥३॥
अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरिए।
टूटियो बाँह गरे परै फूटे हूँ विलोचन पीर होत हित करिए ॥४॥

हे राम! मैं जैसा हूँ तैसा तुम्हारा दास हूँ मुझे मत त्यागो। हे कृपासिन्धु! हे अयोध्यापति! हे शरणागतपाल! अपनी ढरनि पर ढरो (अर्थात् पापियों के पवित्र करने की जो तुम्हारी रीति है उस पर चलो) ॥ १ ॥ और मैं तो औरों का बिगाड़ा हुआ हूँ (अर्थात् इन्द्रियों के विषयों ने मेरा नाश कर दिया है) सो मुझ बिगड़े हुए को और मत बिगाड़ो, क्योंकि तुम तो सदा सब की सब तरह से सुधारते आये हो अब मेरी भी सुधारो (अर्थात् मुझे अपनी शरण में रक्खो) ॥२॥ मेरे ग्रहण करने से संसार हँसी करेगा इससे क्यों डरते हो। तुमने जिस स्वभाव और सीधे मन से सुग्रीव, निषाद को मित्र बनाया था उसी स्वभाव के अनुसार चलो ॥ ३ ॥ यद्यपि मैं पापी हूँ परन्तु तुम्हारा ही हूँ इससे तुलसीदास को मत भूलो (क्योंकि अपना बुरा हो तो भी फेंका नहीं जाता)। जैसे बाँह टूट जाय तो भी गले पड़ती है (अर्थात् निबाहनी पड़ती है कुछ काटी नहीं जाती) और आँखों के फूटी होने पर भी जब दर्द होता है तब उनकी दवाई की जाती है (कोई निकाल कर नहीं फेंक देता सो मुझे भी शरण में लीजिए) ॥ ४ ॥

[ २७२ ]

तुम जनि मनु मैलो करो लोचन जनि फेरो।
सुनहु राम विनु रावरे लोकहुँ परलोकहुँ कोउ न कहूँ हितु मेरो ॥
अगुन अलायकु आलसी जानि अघनु अनेरो।
स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा कैसो टोटकु औचट उलटि
न हेरो ॥२॥

भक्ति हीन वेद बाहिरो लखि कलिमल घेरो ।
देवनिहूँ देव परिहर्‍यो अन्याउ न तिनको हौं अपराधी सब केरो ॥
नाम की ओट लै पेट भरत हौं पै कहावत चेरो ।
जगत विदित बात ह्वै परी समुझिए धौं अपने लोक की वेद बड़ेरो ॥४॥
ह्वै है जब तब तुम्हहिं ते तुलसी को भलेरो ।
दीन दिनहुँ दिन बिगरिहै बलिजाउँ बिलंबु किए अपनाइए सबेरो ॥५॥

हे राम ! तुम मन को मैला मत करो और आँखों को मत फेरो ( अर्थात् अन्तःकरण से अपना जानते रहो और कृपादृष्टि बनाये रहो ) हे राम ! तुम सुन लो कि इस लोक और परलोक में तुम्हारे सिवा मेरा भला करने वाला कहीं भी कोई नहीं है ॥ १ ॥ क्योंकि मुझे गुणहीन, नालायक़, आलसी और पापी जान कर कोई पास नहीं आने देता है। और ( माता पिता आदि ) मतलब के साथियों ने भी मुझे तिजारी के टोटके की तरह भूल से भी उलट कर नहीं देखा ( अर्थात् जैसे जब तिजारी बुख़ार आता है तब उसके लिए एक मट्टी की रकाबी में पुतला बना कर उसे पूज कर बीमार के ऊपर सात बार उतार कर चौराहे में धर आते हैं और उसे फिर कर नहीं देखते ऐसे ही मूलों में होने के कारण जिस दिन से मुझे माता पिता ने त्यागा उस दिन से मेरी कभी सूरत नहीं देखी ) ॥ २ ॥ और मुझ भक्तिहीन, वेदमार्ग से बाहर और कलियुग के पापों से घिरे हुए को हे देव ! देवताओं ने भी छोड़ दिया है सो यह उनकी कुछ बेइन्साफ़ी नहीं है क्योंकि ( उनका पूजन पाठ न करने से ) मैं उन सब का अपराधी हूँ ॥ ३ ॥ ( जो कहो कि तू ऐसा नीच है तो हम तुझे शरण में कैसे रक्खें तहाँ कहते हैं कि ) मैं तो तुम्हारे नाम की ओट से ( अर्थात् झूठे को तुम्हारा नाम लेकर ) पेट भरता हूँ परन्तु कहाता तुम्हारा गुलाम ही हूँ। यह बात संसार को मालूम पड़ गई है सो तुम भी समझ लो कि लोक बड़ा है या वेद बड़ा है ( मेरे जान में तो लोक बड़ा है क्योंकि वेद का कहा कोई भी नहीं करता है और जब लोक मुझे तुम्हारा कहता है तो क्यों नहीं मुझे शरण में रखते हो, लोक में बड़ाई भी तो तुम्हारी ही दी हुई है ) ॥ ४ ॥ और तुलसी का भला तो जब होगा तब तुम से ही होगा। और मैं बलि

जाऊँ जो तुम देर करोगे तो यह ग़रीब दिन पर दिन और भी बिगड़ेगा ( फिर सुधारने में देर लगेगी ) इसलिए इसे सिदौसी अपना बना लो ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अघन = पापी । तिजरा = तिजारी । औचट = भूल । हेरो = देखो ।

[ २७३ ]

तुम तजि हौं कासों कहौं और को हितु मेरे ।
दीनबंधु सेवक सखा आरत अनाथ पर सहज छोहु केहि केरे ॥
बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरिनी बिनु बेरे ।
कृपा कोप सतिभायहुँ धोखेहुँ तिरिछेहुँ राम तिहारेहि हेरे ॥२॥
जो चितवनि सौंधी लगै चितइए सबेरे ।
तुलसिदास अपनाइए कीजै न ढील अब जीवन अवधि अति नेरे ॥३॥

हे राम ! तुम्हें छोड़ कर मैं किस से कहूँ और कौन दूसरा मेरा भला करने वाला है । और हे दीनबन्धु ! दास पर, मित्र पर, दुखी पर और अनाथ पर सहज स्वभाव से किसकी कृपा है ॥ १ ॥ हे राम ! कृपा से वा कोप से, सच्चे भाव से वा धोखे से, वा तिरछी दृष्टि से तुम्हारे देखने पर बहुत से पापी संसाररूपी समुद्र से बिना ( साधन-रूपी ) नाव और बेड़े के तर गये ॥ २ ॥ जौनसी दृष्टि तुम्हें प्यारी लगे उसीसे जल्दी देखो और तुलसीदास को अपना कर लो, अब देर न करो, क्योंकि जीवन का अन्त ( अर्थात् मरण काल ) बहुत पास आगया है ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—छोह = कृपा । तरिनि = नाव । सौंधी = अच्छी । नेरे = पास ।

[ २७४ ]

जाऊँ कहाँ ठौर है कहाँ देव दुखित दीन को ।
को कृपालु स्वामी सारिखो राखै सरनागत सब अँग बल विहीन को ॥१॥
गुनिहिं गुनिहिं साहब लहै सेवा समीचीन को ।
अधम अगुन आलसिन कों पालवो फबि आयो रघुनायक नवीन को ॥२॥

मुख कै कहा कहौं विदित है जी की प्रभु प्रवीन कौं।
तिहुँ काल तिहुँ लोक में एक टेक रावरी तुलसी से मन मलीन कौं ॥३॥

हे देव! मैं कहाँ जाऊँ मुझ दुखी ग़रीब का कहाँ ठिकाना है। तुम सरीखा दयावान् कौन है कि (जो जप, तप, आदि) सब साधनरूपी बल से रहित शरणागत को रक्खे ॥१॥ मालिक तो, गुणवान् और पढ़े लिखे अच्छी सेवा करनेवाले (नौकर) को रखते हैं। और नीच, औगुनी और आलसियों का पालन करना तो रामचन्द्रजी को ही फबता आया है, इन्हें छोड़ और नया कौन है ॥ २ ॥ मुख से क्या कहूँ चतुर स्वामी को मेरे जी की विदित ही है कि तुलसीदास सरीखे मन के पापी को तीनों काल और तीनों लोकों में एक तुम्हारी ही टेक है (अर्थात् तुम्हारा ही सहारा है) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—गनी = धनवान्। समीचीन = अच्छी। फबना = अच्छा लगना।

[ २७५ ]

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परी पाहूँ।
हैं दयालु दुनि दसदिसा दुख दोष दलन छमि कियो न संभाषन काहूँ ॥१॥
तनुतजेउ कुटिल कीट ज्यौं तज्यौ मातु पिताहूँ।
काहे को रोसु दोसु काहिधौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत सब छुइ छाहूँ ॥२॥
दुखित देखि संतन कह्यौ सोचै जनि मन माहूँ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न सरन गए रघुवर ओर निबाहूँ ॥
तुलसी तिहारो भए भयो सुखी प्रीति प्रतीति बिनाहूँ।
नाम की महिमा सीलु नाथ को मेरो भलो बिलोकि अबतें सकुचाहूँ सिहाहूँ ॥४॥

हे प्रभो! मैं द्वार द्वार पर दाँत काढ़ कर और पैरों पड़ पड़ कर अपनी ग़रीबी कहता फिरा। और दुनिया में ऐसे ऐसे दया करनेवाले हैं कि दशों दिशाओं में दुःख और

दोषों के दूर करने में समर्थ हैं परन्तु उन में से किसी ने भी मेरी बात न पूँछी ॥ १ ॥ ( और तो क्या ) जैसे खोटा कीट ( सर्प ) अपनी कांचली को ( निकम्मी जान कर ) छोड़ देता है ऐसे ही मुझे ( जन्मते ही अभागा जान ) माता-पिता ने त्याग दिया। काहे को रोस करूँ और किसे दोष दूँ मेरे ही अभाग से ( मुझे पास बैठाना तो दूर रहा ) वे सब मेरी छाया तक छूने में रुकने लगे ॥ २ ॥ ( जब मेरा यह हाल हुआ तो ) सन्तों ने मुझे दुखी देख कर कहा कि तू मन में सोच मत करे। तुझ सरीखे नीच और पातकी पशुओं को भी शरण जाने पर रामचन्द्रजी ने नहीं छोड़ा और अन्त तक उनका निर्वाह किया ॥ ३ ॥ ( यह सुन ) तुलसीदास तुम्हारी प्रीति और प्रतीति के हुए बिना ही जब से तुम्हारा हुआ है तब से सुखी है। नाथ के नाम की महिमा और सुन्दर स्वभाव ने मेरा भला किया यह देख कर तब से मैं तुमसे सकुचता हूँ और तुम्हारी सराहना करता फ़िरता हूँ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—रद = दांत। छम = योग्य। तनुजनेउ = काचली। ओर = अन्त।

[ २७६ ]

कहा न कियो कहाँ न गयो सीस काहि न नायों।
राम रावरो बिन भये जन जनमि जनमि जग दुख दसहूँ दिसि पायो ॥१॥
आस विवस खास दास है नाच प्रभुनि जनायो।
हाहा करि दीनता कहि द्वार द्वार बार बार परी न छार मुँह बायो ॥२॥
असन वसन बिन बावरो जहँ तहँ उठि धायो।
महिमा अति प्रिय प्रानते तजि खोलि खलनि आगे खिन खिन पेट खलायो ॥३॥
नाथ हाथ कछु नहिं लग्यो लालच ललचायो।
सांच कहौं नाच कौन सो जौ न मोहि लोभ लघु निलज नचायो ॥४॥
स्रवन नयन मन मग लगे सब थल पतितायो।

**मूंड़मारि हिय हारि कै हित हेरि हहरि अब चरन सरन तकि आयो ॥५॥**
**दसरथ के समरथ तुही त्रिभुवन जसगायो।**
**तुलसी नमत अवलोकिए बलि बाँह बोल दै विरदावली बुलायो॥**

मैंने क्या नहीं किया और मैं कहाँ नहीं गया और मैंने किसको सिर नहीं नवाया। पर हे राम! बिना तेरे दास हुए संसार में जन्म जन्म कर दशों दिशाओं में दुःख ही दुःख पाया है॥ १॥ आशा के वश ख़ास दास हो कर मुझ नीच ने (अपना दुःख बहुत से) प्रभुओं को जताया। और हाहा खा कर दरवाज़े दरवाज़े पर अपनी ग़रीबी को बार बार कहता हुआ मुँह बाये फिरा (पर भोजन की तो क्या चलाई है) मेरे मुँह में ख़ाक भी नहीं पड़ी (अर्थात् सबसे माँगा पर दरिद्र न गया)॥ २॥ और बिना खाये और बिना वस्त्र पहने मैं पागल की तरह जहाँ तहाँ उठ दौड़ा। और प्राणों से भी प्यारी जो महिमा है (अर्थात् मान-प्रतिष्ठा) उसे त्याग कर दुष्टों के सामने छिन छिन में अपने ख़ाली पेट को खोल कर दिखाया॥ ३॥ लालच के मारे बहुत ललचाया पर हे नाथ! मेरे हाथ कुछ नहीं लगा। मैं सच सच कहता हूँ कि ऐसा नाच कौन सा है कि इस नीच लोभ ने मुझ बेशरम को न नचाया हो (अर्थात् सब ही पाखण्ड कराये)॥ ४॥ कान, आँख और मन इनको रास्ते में लगाया (अर्थात् कान से बड़ाई सुनी, नेत्रों से दर्शन किये, मन से प्रीति करी) और सब जगह पति कहिये बड़े आदमियों को ताया छाना (कि कुछ दें पर कुछ न मिला) फिर शिर को पीट हिये में हार मान कर और अपना भला देख घबड़ा कर अब तेरे चरणों की शरण ताक कर आया हूँ॥ ५॥ हे दशरथ के (पुत्र)! तूही समर्थ है (अर्थात् सब कुछ करने लायक़ है) और तेरे यश को तीनों लोकों में (सुर-नर मुनियों ने) गाया है। तुलसी प्रणाम करता है उसे देख, मैं बलैयाँ लेता हूँ तेरी विरदावली ने मुझे बाँह और वचन देकर बुलाया है॥ ६॥

शब्दार्थ—छार = धूल। असन = भोजन। खिन (क्षण) = छिन। खलायो = ख़ाली। स्रवन = कान। हेरि = देख कर। हहरि = घबरा कर। विरदावली = यश की पाँति।

[ २७७ ]

**रामराय विन रावरे मेरे को हितु साँचो।**

स्वामी सहित सब सों कहौं सुनि गुनि विसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥१॥
देह जीव जोग के सखा मृषा टाँचुन टाँचो।
किये विचारु सारु कदली ज्यों मनि कनक संग लघु लसत बीच बीच काँचो ॥२॥
विनयपत्रिका दीन की बापु आपही बाँचो।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूछिअहि पाँचो ॥३॥

हे राम राजा! तुम्हारे बिना मेरा सच्चा हितू कौन है? मैं इस बात को स्वामी समेत सबसे कहता हूँ उसे सुन कर और विचार कर कोई और बढ़ कर हो तो तुम दूसरी रेखा खींचो (अर्थात् दूसरे को बताओ) ॥ १ ॥ (जो कहो कि तेरे माता, पिता, भाई, बन्धु आदि बहुत से हितू हैं तहाँ कहते हैं) देह जीव के सम्बन्ध से (अर्थात् जब तक देह में जीव बना है तब तक) वे हितकारी (भासते) हैं पर (असल में) वे मिथ्यारूपी टाँकियों से छिले छिलाये हैं (अर्थात् बिलकुल मिथ्या हैं क्योंकि जिन टाँकियों से ये गढ़ कर बनाये गये हैं वे ही झूँठी हैं तो ये सच्चे कैसे हो सकते हैं)। और विचार करने से ये केले के सार की तरह हैं (अर्थात् जैसे केले के वृक्ष में कोरे छिलके ही छिलके निकलते हैं भीतर कुछ गूदा नहीं निकलता, ऐसे ही ये ऊपर के हितू हैं इनके भीतर हित नहीं है। जो कहो कि ध्रुव, प्रहलाद, अंबरीष आदि तो लोक-व्यवहार से ही उत्तम भक्त हुए, इससे तो लोक-सम्बन्ध सच्चा ही दीखता है, उसे झूँठा कैसे कहते हो, तहाँ कहते हैं कि) जैसे मणि और सुवर्ण के संग से बीच बीच में लघु अर्थात् झूठा काँच भी शोभा देता है (वैसे ही ईश्वररूपी मणि और जीवरूपी सोने के सम्बन्ध से उन हितूरूपी काँच के टुकड़ों की सजावट दीख रही है पर सुवर्ण मणि से अलग होने पर वे झूँठे हैं सच्चे नहीं हैं) ॥ २ ॥ हे पिताजी! इस ग़रीब की बनाई विनयपत्रिका को तुम ख़ुद बाँचो। तुलसी ने इसे अपने हृदय के विचार से (अर्थात् जितना उसमें विद्या-बुद्धि का बल है उससे) लिखी है, उस पर अपने (उस कोमल उदार) स्वभाव से (अर्थात् जिससे अहिल्या, केवट, गिद्ध, शवरी आदि को सही किया था उसी स्वभाव से) सही करके (कि ठीक है) फिर (जानकीजी, लक्ष्मण,

भरत, शत्रुघ्न, हनूमान् ) पाँचों से पूँछो ( कि कैसी है और जो बिना सही करे पूँछोगे तो कदाचित् कोई कह देगा कि अच्छी नहीं बनी तो मेरा परिश्रम वृथा जायगा ) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—टाँचुन = टाँकियाँ ( जिनसे सन्तराश पत्थर को साफ़ करता है ) । टाँचना = छीलना । कदलि = केला । सारु = गूदा । कनक = सोना । लघु = छोटा । कम कीमती

[ २७८ ]

पवन सुवन रिपुदवन भरत लाल लषन दीन की ।
निज निज अवसर सुधि किये बलि जाउँ दास आस पूजि है खास खीन की ॥१॥
राज द्वार भली सबु कहैं साधु समीचीन की ।
सुकृत सुजसु साहिब कृपा स्वारथु परमारथु गति भये गतिबिहीन की ॥२॥
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की ।
प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपालहि परमिति पराधीन की ॥३॥

हे पवनपुत्र ! हे शत्रुघ्नजी ! हे भरतजी ! हे लक्ष्मणलालजी ! मुझ ग़रीब की, अपने अपने अवसर से ( अर्थात् जब तुम्हारा मौक़ा लगे ) याद रखना मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ, ऐसा करने से इस ख़ास और दुर्बलदास की आशा पूरी हो जायगी ( अर्थात् रघुनाथजी मेरी विनयपत्रिका को पसंद कर लेंगे ) ॥ १ ॥ राजाओं के दरबारों में अच्छे सन्तों को तो सबही अच्छा कहते हैं, परन्तु मुझ सरीखे शरणरहित की गति हो जाने से तुम्हें पुण्य होगा, तुम्हारा सुन्दर यश फैलेगा, तुम्हारे ऊपर स्वामी की कृपा होगी और तुम्हारे स्वारथ और परमारथ ( दोनों सिद्ध ) होंगे ॥ २ ॥ सो समय को सँभार कर ( अर्थात् मौक़ा देख कर ) इस पापी तुलसी की ( बात ) सुधार देना । और भक्तों के पालनेवाले कृपालु रामचन्द्रजी से मुझ पराधीन की प्रीति की रीति की हद को समझा देना ( कि तुलसी कलियुग के अधीन होकर भी तुमसे बेहद प्रीति करता है यह विनती है ) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—खास = मुख्य । खीन ( क्षीण ) = दुबला । समीचीन = अच्छा । नत = भक्त । परिमिति = हद ।

[ २७९ ]

मारुति मन रुचि भरत की लषि लषन कही है ।
कलिकालहुँ नाथ नाम सों परतीति प्रीति एक किंकर की निबही है ॥१॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानि रीति रही है ।
कृपा गरीबनिवाज की देखत गरीब को साहिब बाँह गही है ॥२॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैंहूँ लही है ।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है ॥३॥

( अब उस हाल को कहते हैं कि जो रामजी के दरबार में हुआ । दो पहर पीछे दरबार जुड़ा है । आज रामनवमी है, भगवान् के जन्मोत्सव का दिन है, भाँति भाँति के उत्सव और आनन्द-मङ्गल हो रहे हैं । श्रीरामचन्द्रजी जानकी सहित रत्न-जटित सिंहासन पर विराजमान हैं, बड़े बड़े राजा, सिंहासन के सामने बैठे हैं । मंत्री हाथ जोड़े खड़े हैं । सिंहासन के पास दाईं ओर लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और हनुमान् और बाईं ओर सुग्रीव, जामवन्त आदि सब सेवा में खड़े हैं । इस समय भगवान् को बड़े प्रसन्न देख भरतजी और हनूमानजी ने लक्ष्मणजी से कहा कि भगवान् के सामने तुलसीदास की विनयपत्रिका की चर्चा चलाने का यह अच्छा अवसर है यह सुन कर और ) हनूमानजी का मन और भरतजी की इच्छा देख कर लक्ष्मणजी ने (रघुनाथजी से) कहा कि, हे नाथ ! कलि के समय में भी एक तुम्हारे दास ( तुलसी ) की तुम्हारे नाम से प्रीति और प्रतीति निभ गई । ( और उसकी रचित यह विनयपत्रिका है ) ॥ १ ॥ इस बात को सुन कर सब सभा बोल उठी कि हाँ हाँ उसकी रीति हमारी जानी पड़ी है (सच-मुच वह आपका पूर्णभक्त है और उसको कलि की बाधा नहीं व्यापी । यह सुन कर भरतजी ने कहा ) ग़रीबनिवाज रामचन्द्रजी की कृपा ऐसी ही है । स्वामी ने देखते देखते उस ग़रीब की बाँह पकड़ी है ( फिर क्यों न निबहेगी ) ॥ २ ॥ ( सब सभावालों की और भरतजी की बात सुन कर ) रामचन्द्रजी ने हँस कर कहा कि यह तुम्हारा कहना सच है मुझे भी उसकी ख़बर मिल गई है ( हमसे जानकीजी भी कई बार कह चुकी हैं ) और फिर तुलसी सरीखे अनाथ की बनाई ( विनयपत्रिका ) पर रघुनाथजी के हाथ

की सही हो गई ( अर्थात् भगवान् ने उसे स्वीकार कर उस पर हस्ताक्षर कर दिये ) और अपनी बात बनने से मैंने प्रसन्न होकर उनको मस्तक नवाया । ( बोलो सियाबर रामचन्द्रजी की जय ) ॥ ३ ॥

इति श्रीतुलसीदासकृता विनयपत्रिका आगरा-निवासी पं० रामेश्वर भट्ट-कृत सरला टीकया संवलिता समाप्ता ।

# भक्तमालसार ।

## १—वाल्मीकि ।

वाल्मीकि ऋषि पहले व्याध थे और मनुष्यों को लूटमार कर कुटुम्ब पालते थे । एक बार उन्हें कई ऋषि मिले और जब वाल्मीकि ने उन्हें लूटना चाहा तब उन्होंने कहा कि तू इस पाप-कर्म करके कुटुम्ब पालता है सो तेरा कुटुम्ब खाने का ही साथी है, अथवा तुझे जो पाप का फल मिलेगा उसका भी साथी है ? यह सुन वाल्मीकि ने कुटुम्बियों से पूँछा, कि तुम लोग खाने के ही साथी हो या पाप के भी ? जब उन्होंने कहा कि हम तो खाने के साथी हैं, पाप के नहीं तब वाल्मीकि ने सबको छोड़ ऋषियों के पास जाकर उनसे धर्म-विषय सुना और भगवान् का उलटा नाम मरा मरा जपते जपते वे इस परमगति को प्राप्त हुए कि उन्हें घर बैठे भगवान् का दर्शन हुआ और वे शतकोटि-रामायण बनाने में समर्थ हुए ।

## २—हनुमान् ।

हनुमान् रामजी के अनन्यभक्त थे । इन्होंने भगवान् के लिए दो कार्य बड़े अनोखे किये, एक तो समुद्र फाँद कर लङ्का से जानकीजी की ख़बर लाना और दूसरा संजीवनी बूटी के पहाड़ के पहाड़ को उठा लाना । यह बड़े बुद्धिमान्, सुशील, आज्ञाकारी और निःस्वार्थ थे । भगवान् को इनसे बड़ी सहायता मिली ।

## ३—प्रहलाद ।

हिरण्यकश्यप की स्त्री गर्भवती थी । एक दिन नारदजी ने आकर उसे ज्ञानोपदेश किया सो उसे तो ज्ञान न हुआ, पर गर्भ के बालक को ज्ञान हो गया । यह वही प्रहलाद है कि जिसके लिए विष्णु ने नृसिंहरूप धारण कर उसे राज्य दिया और दैत्यकुल का नाश किया ।

## ४—अम्बरीष ।

राजा अम्बरीष विष्णु का बड़ा भक्त था, एकादशी का व्रत कर द्वादशी के दिन ब्राह्मण को भोजन कराय आप पारण करता था, एक बार इसने दुर्वासा ऋषि को

नेवता दिया, वे स्नान करने को गये। राजा ने द्वादशी थोड़ी जान ब्राह्मण की आज्ञा से चरणोदक ले भोजन किया। जब दुर्वासाजी ने आकर यह जाना तब जटा का एक बाल भूमि पर पटका। उससे कृत्या राक्षसी उत्पन्न हो राजा को मारने चली। सो वह तो भूमि पर बेसुध हो गिरा और ऋषि के पीछे सुदर्शनचक्र लगा तो ऋषि विष्णु की शरण में गये परन्तु इन्होंने न रक्खा बरन राजा की ही शरण में भेजा कि वही तुम्हारी रक्षा करेगा। फिर ऋषि राजा के यहाँ आये। राजा ने इन्हें आदर से बैठा कर चक्र को निवारण किया और ऋषि को षट्रस भोजन करा कर सत्कारपूर्वक विदा किया।

## ५—ध्रुव।

स्वायंभू मनु और शतरूपा के राजा उत्तानपाद हुए। इनकी दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी से ध्रुव हुए थे। एक दिन जब राजा छोटी रानी के पास, कि जिस पर अधिक स्नेह था, बैठे थे उस समय ध्रुव राजा की गोद में जा बैठे। इस पर छोटी रानी ने उन्हें गोद से उतार कर कहा कि, तुम मुझसे उत्पन्न होते तो इस गोद के योग्य थे। यह सुन कर ध्रुव को बड़ी लज्जा हुई और जब अपनी माता से तप की आज्ञा लेकर जाने लगे, तब राजा ने बहुत समझाया और राज्य तक देना चाहा; पर वे न माने और नारद के उपदेश से तप कर अचल लोक के स्वामी हुए।

## ६—अजामिल।

अजामिल बड़ा पापी था। एक दिन वह बाहर गया था उस समय थोड़े से साधु उसके घर पर आये। उसकी गर्भवती स्त्री ने उनका अच्छे प्रकार से अतिथि-सत्कार किया। उन्होंने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया कि तेरे पुत्र होगा और तू उसका नाम "नारायण" रखियो। फिर उस स्त्री ने वैसा ही किया। अजामिल पुत्र को प्यार करने लगा और अन्त समय जब मरने लगा और अधिक पापी होने के कारण यमदूत उसे भय दिखाने लगे, तब उसने अपने पुत्र नारायण को पुकारा, नाम लेते ही भगवान् के दूत आये और उन्होंने उसको सुन्दर गति दी।

## ७—गजेन्द्र।

जब ग्राह ने गजेन्द्र को जल में पकड़ा और अधिक युद्ध होने पर वह उसे जल में डुबाने लगा और सूँड़ का थोड़ासा भाग ऊपर रह गया, तब उसने भगवान् को पुकारा कि हे भगवन्! रक्षा करो, रक्षा करो। ऐसी टेर सुन कर भगवान् ने आकर उसे छुड़ाया।

## ८—पिङ्गला।

एक गणिका ( रंडी ) थी, उसका नाम पिङ्गला था। एक दिन वह अनेक प्रकार से श्रृङ्गार करके बैठी थी कि, कोई विषयी आवे तो धन हरण करूँ पर घात न लगी और जब कोई न आया, तब खाट पर लेट कर विचारने लगी कि, जितनी देर पुरुष की राह देखी उतनी देर भगवान् का स्मरण करती तो संसार-बन्धन से छूटती। यह विचार कर बराबर भगवान् का स्मरण करती रही और भगवत्-कृपा से उसने मोक्ष पाई।

## ९—कुब्जा।

कुब्जा कंस की दासी भगवान् की बड़ी भक्त थी। जब भगवान् कंस को मारने गये तब उसने मार्ग में भगवान् का दर्शन पाकर और उनके मस्तक पर चन्दन लगा कर अपना जन्म सफल किया था। भगवान् ने उसकी ऐसी भक्ति देख पाँव पर पाँव धर दो उँगली ठोढ़ी के तले लगा कर उसे उचकाय सीधा कर दिया और वह भगवान् का हाथ लगते ही एक महासुन्दरी नारी हो गई थी। उसकी भक्ति और विनय के वश भगवान् ने जाकर उसका घर पवित्र किया और दर्शन देकर उसे सब भाँति कृतार्थ किया।

## १०—सुदामा।

सुदामाजी द्राविड़ देश के रहनेवाले थे। यह श्रीकृष्णचन्द्र के गुरुभाई अति दीन, तन-छीन और महादरिद्री थे। इनकी स्त्री ने दरिद्रता से महादुख पाय इन्हें श्रीकृष्णचन्द्र के पास भेजा और उनकी भेंट के लिए एक श्वेत वस्त्र में थोड़े से चावल भेंट को दे दिये। सुदामा के मिलने पर भगवान् ने उनका बड़ा आदर-भाव किया और अतुल संपत्ति देकर उनका दरिद्र दूर किया।

## ११—जटायु।

यह गृध्रराज बड़ा पराक्रमी था। जब रावण सीताजी को हर कर लिये जाता था उस समय इसने रावण से बड़ा घोर युद्ध किया पर अंत में रावण ने इसके पंख काट डाले कि जिससे यह पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब रघुनाथजी सीता को ढूँढ़ते हुए वन में गये और इसे अध मरा पड़ा देखा तब अपना हाथ इसके मस्तक पर फेरा कि जिससे इसकी सब पीड़ा जाती रही। इसने भगवान् से सीताजी का हाल कहा और भगवान् के बहुत कहने पर भी शरीर नहीं रक्खा और यह रामकृपा से वैकुंठ को गया।

## १२—शवरी।

यह जाति की भीलनी थी और मतङ्ग ऋषि की सेवा किया करती थी। जब ऋषि

परमधाम को जाने लगे तब इसने भी जाने के लिए हठ किया। ऋषि ने कहा तू अभी यहीं रह। त्रेता में जब तुझे भगवान् का दर्शन होगा तब तू उनकी अविचल भक्ति पाकर परमधाम पावेगी। श्रीरामचन्द्रजी गृध्र की क्रिया कर और उसे परमधाम देकर शवरी के आश्रम में पधारे। शवरी भगवान् के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरी और फिर आसन पर बैठा कर चरण धोय चरणामृत लेकर उनके सामने बेर फल लाकर धरे। भगवान् ने बार बार बेरों की सराहना कर प्रेम के साथ भोजन किया। एक कवि ने इसका अच्छा वर्णन किया है यथा :—

कवित्त—बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु रसिक विहारी देत बन्धु कहँ फेर फेर।
चाखि चाखि भाखैं यह वाहू तें महान मीठो लेहु तौ लषण यों बखानत हैं हेर हेर॥
बेर बेर देवे बेर शवरी सुबेर बेर तोऊ रघुवीर बेर बेर तेहिं टेर टेर।
बेर जनि लावौ बेर बेर जनि लावौ बेर बेर जनि लावौ बेर लावौ कहैं बेर बेर॥

बेर खाकर भगवान् ने उसे नवधाभक्ति का उपदेश किया और वह सुग्रीव की मित्रता का संकेत कर और भगवान् के चरण-कमलों का हृदय में ध्यान धर तथा योगाग्नि में देह जलाय वहाँ गई कि जहाँ जाकर फिर नहीं लौटते॥

## १३—विदुर।

विदुरजी का जन्म व्यासजी के वीर्य्य और दासी के गर्भ से हुआ था। यह धृतराष्ट्र और पांडु के भाई बड़े धर्मात्मा, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और भगवान् के भक्त थे। जब श्रीकृष्णजी पांडवों का मेल कराने के लिए हस्तिनापुर गये थे तब दुर्योधन के न्यौते का अनादर कर उन्होंने इनके ही यहाँ भोजन किया था। यह कुरुवंश के हितसाधन में सदा उत्साही रहते थे परन्तु पक्षपातरहित थे।

## १४—जामवन्त।

जामवन्त ऋच्छ सेना का अधिपति था। लंका-युद्ध में इससे भी बड़ी सहायता मिली थी। इसी ने हनुमान्‌जी को समुद्र लाँघ कर सीताजी की सुध लाने की प्रेरणा की थी।

## १५—केवट।

यह श्रीरामचन्द्रजी का बड़ा भक्त था। इसने भगवान् को अपनी नाव में बैठा कर गंगा पार किया था और उतरते समय भगवान् से बड़ी मनहरन बातें की थीं।

## १६—गुह निषाद।

गुह भगवान् का बड़ा भक्त था। जब श्रीरामजी शृङ्गवेरपुर में गंगाजी से उतर परले पार गये थे उस समय यह उनका आगमन सुन अपने कुटुम्बियों को साथ ले उनसे मिलने को गया और दोनों में भर भर कर कन्द मूल फल भगवान् की भेंट करे और उनके लिए कोमल कुश और पत्तों की एक शय्या तैयार कर दी और फिर आगे वन में सर्वदा महाराज की सेवा करता रहा।

## १७—यमलार्जुन (विटप)।

यमलार्जुन (नलकूबर) पूर्वजन्म में कुबेर के लड़के थे। शिवजी की सेवा कर धनवान् हुए थे। एक दिन ये स्त्रियों को ले कैलास में गये और वहाँ सब मद पीकर और नंगे होकर गंगा में नहाने लगे, इस बीच में वहाँ नारदजी आ निकले, उनको देख स्त्रियों ने तो वस्त्र पहने पर ये जलक्रीड़ा ही करते रहे। इस पर नारदजी ने इन्हें शाप दिया कि तुम गोकुल में जाकर वृक्ष हो जाओ, श्रीकृष्णजी तुमको मुक्ति देंगे। यों वे गोकुल में उत्पन्न हुए और इनका नाम यमलार्जुन हुआ।

इधर गोकुल में जसोदा रानी ने ऊधम मचाने के कारण श्रीकृष्णजी को उलूखल से बाँध दिया था सो उन्होंने उसे घसीट और पेड़ों के बीच आड़ा डाल ऐसा झटका दिया कि वृक्ष टूट पड़े और उनमें से दो सुन्दर पुरुष निकले और श्रीकृष्णजी की स्तुति कर बोले कि आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दे हम को यहाँ से मुक्त किया। अब इतना और वर दीजिए कि आपकी भक्ति हमारे हृदय में सदा बनी रहे।

## १८—विभीषण।

विभीषण रावण का छोटा भाई भगवान् का बड़ा भक्त और राजनीतिज्ञ था। जब रावण ने इसके अच्छे उपदेश नहीं सुने और इसे लात मार कर निकाल दिया तब यह भगवान् की शरण में गया। भगवान् ने इसे लंका का राजतिलक किया और समय समय पर इसकी नीति के अनुसार काम लिया तथा इसके द्वारा लंका का सब भेद पाया।

## १९—पाडव।

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये पाँचों पाण्डव कहलाते हैं। इनकी उत्पत्ति अपने पिता पांडु से नहीं थी, क्योंकि पांडु की, एक मृग के शाप के कारण पुत्रोत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो गई थी। इसलिए कुन्ती के गर्भद्वारा धर्मराज के वीर्य से

युधिष्ठिर, पवन के वीर्य से भीम, और इन्द्र के वीर्य से अर्जुन हुए। और माद्री के गर्भ और दोनों अश्विनीकुमार के वीर्य से नकुल और सहदेव हुए। ये पाँचों पाण्डव महाबली, महापराक्रमी और श्रीकृष्णजी के परम भक्त थे। बिना उनकी आज्ञा और परामर्श के कुछ नहीं करते थे। भगवान् सदा उनकी सहायता करते रहे।

## २०—अहिल्या।

एक समय ब्रह्माजी ने अपनी इच्छा से एक कन्या अहिल्या नाम उत्पन्न की। वह परम मनोहर थी कि जिसकी सुन्दरता देख सब देवता मोहित होते थे। ब्रह्माजी उस कन्या को गौतम ऋषि को धरोहर की भाँति सौंप कर चले गये। कुछ दिन पीछे फिर ब्रह्माजी ने कन्या माँगी और जब ऋषि ने उन्हें ज्यों की त्यों सौंप दी तब ब्रह्माजी उनके जितेन्द्रियपने को देख बड़े प्रसन्न हुए और उस कन्या को उन्हीं को विवाह दी, यह बात इन्द्र को बुरी लगी। एक दिन वह छल करके गौतम ऋषि का भेष बना अहिल्या के पास आय उससे विषय कर रहा था कि, गौतम आगये। अहिल्या ने घबड़ा कर इन्द्र से पूछा कि तू सत्य कह कौन है? उसने नाम बताया। अहिल्या इसे छिपा कर देर से द्वार खोलने आई। ऋषि ने देर से आने का कारण पूँछा और जब अहिल्या ने छिपाया तब गौतम ने तपोबल से उसका सब मर्म जान इन्द्र को शाप दिया कि, तेरे शरीर में सहस्र भग होवें, और हे अहिल्या! तू मुझ से झूँठ बोली इस पाप से तू शिला होजा और जब श्रीरामचन्द्रजी तुझे दर्शन देंगे तब तेरा उद्धार होगा। सो जब विश्वामित्र ऋषि श्रीरामजी को दशरथजी से माँग कर ले गये और भगवान् सुबाहु आदि राक्षसों को दण्ड देकर धनुष-यज्ञ में जा रहे थे तब मार्ग में इन्होंने ऋषि से अहिल्या का सब समाचार जान और उसे अपने चरण से स्पर्श कर उसका उद्धार किया और वह भगवान् की विनती कर अपने पति-लोक को गई।

# गूढ़ार्थ-कोश

१—अग्नि—(१) दक्षिणाग्नि (२) गार्हपत्य (३) आहवनीय ।

२—अवस्था—(१) जाग्रत (२) स्वप्न (३) सुषुप्ति (४) तुरीय ।

३—अविद्या—ईश्वर की मोहशक्ति ।

४—अष्ट-सिद्धि—(१) अणिमा (२) महिमा (३) गरिमा (४) लघिमा (५) प्राप्ति (६) प्राकाम्य (७) ईशत्व (८) वशित्व ।

५—आकर—(१) जरायुज (२) अंडज (३) स्वेदज (४) उद्भिज ।

६—आश्रम—(१) ब्रह्मचर्य (२) गार्हस्थ (३) वानप्रस्थ (४) संन्यास ।

७—ईति—छः हैं—(१) अतिवृष्टि (२) अनावृष्टि (३) मूषक (४) टीडी (५) शुक (६) राजा की चढ़ाई होना ।

८—४ उपवेद—(१) ऋग्वेद का आयुर्वेद (२) यजुर्वेद का धनुर्वेद (३) सामवेद का गान्धर्ववेद (४) अथर्व का स्थापत्य ।

९—ऋतु—(१) शिशिर (२) वसन्त (३) ग्रीष्म (४) वर्षा (५) शरद (६) हेमन्त ।

१०—कर्मेन्द्रिय ५—(१) वाणी (२) हाथ (३) चरण (४) गुदा (५) लिङ्ग ।

११—कला—६४ हैं ।

१२—कल्प—चार युगों की एक चौकड़ी और हज़ार चौकड़ी का एक कल्प ।

१३—चतुर्गुण—(१) साम (२) दाम (३) दण्ड (४) भेद ।

१४—चतुर्युग—(१) सतयुग (२) त्रेता (३) द्वापर (४) कलियुग ।

१५—गुरु—माता, पिता, गुरु ।

१६—चार फल—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ।

१७—चार रिपु—(१) काम (२) क्रोध (३) लोभ (४) मोह ।

१८—चार वर्ण—(१) ब्राह्मण (२) क्षत्री (३) वैश्य (४) शूद्र ।

१९—तीन अवस्था—(१) बालक (२) युवा (३) वृद्ध ।

२०—तीन एषणा—लोक-बड़ाई, धन-राज्यादि, स्त्री-पुत्रादि ।

२१—तीन कर्म—संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण ।

२२—तीन काल—(१) भूत (२) भविष्यत् (३) वर्तमान ।

२३—तीन गुण—रजोगुण, तमोगुण, सत्वगुण ।

२४—तीन ताप वा शूल—आध्यात्मिक, ( जो शरीर से हो—रोग ) आधिभौतिक, ( जो भूमि से हो—अर्थात् सिंहादि भय आदि) आधिदैविक (जो दैवकोप से हो) ।

२५—तीन देव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।

२६—तीन भुवन वा लोक—स्वर्ग, मृत्यु, पाताल ।

२७—तीन वायु—शीतल, मंद, सुगन्ध ।

२८—तीन श्रोता—मुक्त, मुमुक्षु, विषयी ।

२९—दश इन्द्रियाँ—५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ ।

३०—दश दिक्पाल—इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, राक्षस, वायु, शिव, ब्रह्मा, अनंत ।

३१—नौखण्ड—इलावृत्ति, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, हरि, भारत, केतुमाल, भद्राश्व, किंपुरुष ।

३२—नवगुण—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य ।

३३—नवद्वार नेत्र, कान, नाक के दो छेद, मुख, गुदा, लिङ्ग ।

३४—नव निधि—महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्व । ( कुबेर के ख़ज़ानों के नाम हैं )

३५—नरक—२८ हैं ।

३६—नव रस—१ शृङ्गार २ वीर ३ करुणा ४ अद्भुत ५ हास्य ६ भयानक ७ बीभत्स ८ रौद्र ९ शान्त ।

३७—पंचकोश—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय ।

३८—पंचगव्य—गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, घृत ।

३९—पंचतत्त्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ।

४०—पंचमहायज्ञ—वेदपाठ, तर्पण, होम, बलिवैश्वदेव, अतिथि सत्कार ।

४१—पंचवायु—प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान ।

४२—पुराण—ब्रह्मपुराण, पद्मपु०, विष्णुपु०, शिवपु०, श्रीमद्भागवत, नारदपु०, मार्कंडेय-पु०, अग्निपु०, भविष्यपु०, ब्रह्मवैवर्तपु०, लिङ्गपु०, बाराहपु०, स्कन्दपु०, वामनपु०, कूर्मपु०, मत्स्यपु०, गरुड़पु०, ब्रह्माण्ड पुराण ।

४३—भक्त—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, विज्ञान-निवास ।

४४—भक्ति—श्रवण, कीर्त्तन, अर्चन, वन्दन, चरणसेवा, स्मरण, आत्मनिवेदन, दासत्व, सख्य।

४५—मद—जातिमद, कुलमद, युवावस्थामद, रूपमद, विद्यामद, ज्ञानमद, ध्यानमद, धनमद, राज्यमद।

४६—योनि—( ८४ लाख )—९ लाख जलचर, ४ लाख मनुष्य, २७ लाख स्थावर, ११ लाख कृमि, १० लाख पक्षी, २३ लाख चौपाये।

४७—राम—परशुराम, रामचन्द्र, बलराम।

४८—लोक—तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक।

४९—विद्या—ब्रह्मज्ञान, रसायन, श्रुतिविद्या, वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण, धनुर्विद्या, तैरना, संगीत, नाटक, अश्वारोहण, कोकशास्त्र, चोरी, चतुरता।

५०—वेद—ऋक्, यजु, साम, अथर्व।

५१—वेदांग—छः हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष।

५२—शास्त्र—सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक।

५३—षट् कर्म—(१) पढ़ना (२) पढ़ाना (३) यज्ञ करना (४) यज्ञ कराना (५) दान देना (६) दान लेना।

५४—षट्रस—कटु, तीखा, अम्ल, मधुर, कषाय और लवण।

५५—सप्तद्वीप—जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, पुष्कर, शाल्मली और गोमेद।

५६—सप्तर्षि—वशिष्ठ, अत्रि, कश्यप, विश्वामित्र, भरद्वाज, यमदग्नि, गौतम।

५७—सप्तावर्ण—जल, पवन, अग्नि, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्व, प्रकृति।

५८—ज्ञानेन्द्रिय—कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नाक।

---

*True copy of the letter received from Dr. Sir G. A. Grierson, Ph.D., C.I.E., I.C.S., K.C.I.E., Rathfarnham, England, to the address of the Commentator of* Vinaya Pattrikâ.

*Dated 6th September, 1914.*

DEAR SIR,

Forgive a stranger for addressing you. I write to say how highly I appreciate your excellent edition of the तुलसीदास कृत विनयपत्रिका, which I obtained from the "Indian Press" a few days ago. It is a worthy successor of your Edition of the रामचरितमानस, and really fills a want which I have long felt. The *Vinaya Pattrikâ* is a difficult work, but I think it is one of the best poems written by Tulasî Dâsa, and should be studied by every devout भक्त. I have already found it of great assistance in explaining difficult passages.

May I hope that you will go on with your work, and bring out similar editions of the गीतावली and of the कवित्तावली (including the हनुमान्बाहुक), both of which are very important. The कवित्तावली is most important, as it throws so much light on the life of the poet.

Yours faithfully,
GEORGE A. GRIERSON.

Pandit Râmesvar Bhaṭṭ.

विनयपत्रिका के विषय में डाक्टर सर जी० ए० ग्रियर्सन महाशय पी० एच० डी०, सी० आई० ई०, आई० सी० एस० के० सी० आई० ई०, के पत्र का भावार्थ हम नीचे देते हैं कि जो उन्होंने विलायत से पंडित रामेश्वर भट्ट के नाम भेजा है—

पत्र लिखने के कारण एक अपरिचित व्यक्ति को क्षमा करना। मैं यह प्रकट करने के लिये पत्र लिखता हूँ कि थोड़े दिन हुए मुझे आपकी मुद्रित की हुई तुलसीदास कृत विनयपत्रिका की अत्युत्तम आवृत्ति इंडियन प्रेस से प्राप्त हुई। मैं उसे कितना अधिक पसंद करता हूँ। आपने रामचरितमानस की आवृत्ति के पीछे उसी शैली पर यह उत्तम पुस्तक निकाली है। यह वास्तव में एक ऐसी कमी को पूरा करती है जिसका मैं बहुत दिन से अनुभव कर रहा था। विनयपत्रिका एक कठिन पुस्तक है परन्तु मेरी संमति में यह तुलसीदास के लिखे सर्वोत्तम ग्रंथों में से एक है और प्रत्येक सच्चे भक्त को इसे पढ़ना चाहिये। कठिन पदों के समझने में मुझे इससे बड़ी सहायता मिली है।

क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि आप अपना काम जारी रक्खेंगे और गीतावली तथा (हनुमानबाहुक सहित) कवित्तावली की भी ऐसी ही आवृत्तियाँ निकालेंगे? ये दोनों बड़ी बढ़िया पुस्तकें हैं। कवित्तावली सबसे अधिक बढ़िया पुस्तक है क्योंकि इससे कवि के जीवन का बहुत कुछ पता लगता है

आपका विश्वासपात्र
जार्ज. ए. ग्रियर्सन

पण्डित रामेश्वर भट्ट.

श्रीसीताराम की जय।

# समालोचना।

( गज़ल )

मुकुटमणि भक्तकुल भूषन, गुसाँईं की विनय बानी।
मधुर मंजुल, सरस सुंदर, अनूपम प्रेम रस-सानी ॥ १ ॥
छिपी शब्दों के पर्दे में झलक अपनी दिखाती थी।
छटा मुखचंद्र की पूरन मगर पड़ने न पाती थी ॥ २ ॥
घनक्षर की सियाही में तड़ित द्युति सी दमकती थी।
प्रभा चष पूतरी उसकी, न खुलकर देख सकती थी ॥ ३ ॥
ढकी फानूस में इक ज्योति अद्भुत झिलमिलाती थी।
सनेही सन्त परवानों के दिल लुर लुर लुभाती थी ॥ ४ ॥
रसिक जन दूरही से नूर आनन का निरखते थे।
स्वयं टपके हुए रसकन कोई विरले ही चखते थे ॥ ५ ॥
रसिकवर आगरावासी शिरीयुत भट्ट रामेश्वर।
कृपाकर हो गये उद्यत अनोखी छवि दिखाने पर ॥ ६ ॥
सरस रसना से टीका कर बहाई गंग की धारा।
घटा घन घोर बरसा कर किया शरबोर जग सारा ॥ ७ ॥
उठा कर शब्द का चिलमन दिखाई अर्थ की झाँकी।
सलोनी मोहिनी मूरत हँसन हेरन अदा बाँकी ॥ ८ ॥
जयतिजय, हे दयामूरति, जयतिजय हे सुयश सागर।
जयति भारत रतन, साहित्य भूषन, भट्ट गुन आगर ॥ ९ ॥
गुसाँई की गिरा चमका रही थी चाँदनी छनकर।
चुआया आपने ससिरस शरद की यामिनी बनकर ॥ १० ॥
गहन गंभीर आशय आपने इस रंग झलकाया।
मनोभावों का गोस्वामी के इक फोटो नज़र आया ॥ ११ ॥

अमल अनुवादरूपी सैरवीं में देख गुलकारी ।
सरल रंगीन रचना पर खिले यूरोपियन भारी ॥१२॥
प्रियाप्रीतम शरन पुष्पांजुली यह पेश करता है ।
युगल सन्तों के पद पंकज की रज निज सीस धरता है ॥१३॥

देवीप्रसाद "प्रीतम"
बिजावर (बुँदेलखंड)

ा० १२-९-१३

---